संयुक्त सूक्ष्मदर्शी (Compound Microscope)

क, नेत्रक (eyepiece); ख, अन्तर नली (draw tube); ग, कांड नलिका (body tube); घ, उपवर्ती धर (परिक्रामी) (nosepiece—revolving); ङ, अभिदृश्यक (objective); च, सूक्ष्म समंजित्र (fine adjustment); छ, स्थूल समंजित्र (coarse adjustment); ज, भुजा (arm); झ, क्लिप (clip); ञ, मंच (stage); ट, संघनित्र (condenser); ठ, समंजन छद (iris-diaphragm); ड, दर्पण (mirror); ढ, नति सन्धि (inclination joint); ण, स्तम्भ (pillar); और त, पाया (नाल आकार) (foot—horseshoe-shaped)। इनमें से क, ङ, ट, और ड प्रकाशीय भाग (optical parts हैं और शेष यांत्रिक भाग (mechanical parts) हैं।

वनस्पति

ए० सी० दत्त, एम० एससी०
भूतपूर्व अध्यक्ष, वनस्पति तथा
कॉटन कालेज, गोहाटी

तथा

एन० एस० परिहार, एम०
वनस्पति विज्ञान विभाग, इ

ऑक्सफ़ोर्ड युनिव
बम्बई कलकत्ता
१९६५

वनस्पति शास्त्र

ए० सी० दत्त, एम० एससी०

भूतपूर्व अध्यक्ष, वनस्पति तथा जीव विज्ञान विभाग,
कॉटन कालेज, गोहाटी

तथा

एन० एस० परिहार, एम० एससी०

वनस्पति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद युनिवर्सिटी

ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस

बम्बई कलकत्ता मद्रास

१९६५

VANASPATI SHASTRA

A Class-Book of Botany (Hindi)

by A. C. Dutta and N. S. Parihar

© ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९६५

प्रथम प्रकाशन १९६५

First published 1965

PRINTED IN INDIA BY V. N. BHATTACHARYA, M.A.,
AT THE INLAND PRINTING WORKS, 60-3 DHARAMTALA STREET, CALCUTTA-13
AND PUBLISHED BY JOHN BROWN, OXFORD UNIVERSITY PRESS,
MERCANTILE BUILDINGS, CALCUTTA-1

प्रस्तावना

माध्यमिक कक्षा के विद्यार्थियों को राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा देना एक प्रगतिशील कदम है। अतः हिन्दी में लिखी वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकों की मांग अनिवार्य हो गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वनस्पति विज्ञान के माध्यमिक, उच्च माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय-पूर्व परीक्षाओं के छात्रों के लिये यह पुस्तक प्रस्तुत की जा रही है।

इस पुस्तक का मूल आधार डॉ॰ प्रोफेसर ए॰ सी॰ दत्त की अंग्रेजी में लिखी प्रसिद्ध पुस्तक, *A Class-Book of Botany* है जो भारतीय विश्वविद्यालयों या माध्यमिक परिषदों की माध्यमिक परीक्षा के छात्रों में लगभग ३० वर्ष से सर्व प्रिय रही है। उक्त पुस्तक के नवीनतम संशोधित संस्करण का प्रामाणिक हिन्दी संस्करण इस रूप में प्रकाशित हो रहा है। लेखकों ने इस संस्करण को छात्रों के अधिक से अधिक उपयुक्त और भाषा को सरल बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। इसके लिये अनेक स्थानों पर विषय सामग्री को घटाने, बढ़ाने या पुनर्व्यवस्थित करने की आवश्यकता पड़ी है।

पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग में यह ध्यान रखा गया है कि भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित 'पारिभाषिक शब्द-संग्रह' के शब्द अवश्य ग्रहण किये जाँय लेकिन जो पारिभाषिक शब्द उक्त शब्द-संग्रह में नहीं थे उन्हें शब्द निर्माण के उन सिद्धान्तों के अनुकूल ही गढ़कर प्रयुक्त किया गया है जिनके आधार पर यह शब्द-संग्रह तैयार किया गया है।

आशा है कि वनस्पति विज्ञान के छात्र एवं अध्यापक इस हिन्दी संस्करण को उपयुक्त और सुविधाजनक पायेंगे तथा इस पाठ्य पुस्तक में सुधार करने के लिये जो सुझाव देंगे, उनका हम स्वागत करेंगे।

एन॰ एस॰ परिहार | ए॰ सी॰ दत्त

विषय सूची

विषय सूची

विषय प्रवेश

१. वनस्पति विज्ञान (Botany)—जीवित वस्तुओं के अध्ययन से सम्बन्धित विज्ञान को सामान्य नाम जीव विज्ञान दिया गया है। पौधे और जन्तु दोनों जीवित हैं, इसलिए जीव विज्ञान में इन दोनों का अध्ययन समाविष्ट है। अतः जीव विज्ञान दो शाखाओं में विभाजित किया गया है: वनस्पति विज्ञान (botany; *botane*, शाक) जो पादपों के अध्ययन से सम्बन्ध रखता है, और जन्तु विज्ञान (zoology; *zoon*, जन्तु) जन्तुओं के अध्ययन से सम्बन्धित विज्ञान है।

२. वनस्पति विज्ञान का विषय क्षेत्र (Scope of Botany)—वनस्पति विज्ञान का विषय पौधों का अध्ययन अनेक दृष्टिकोणों से करता है। पौधों की आन्तरिक तथा बाह्य संरचना, उनके वृद्धि, पोषाहार, गति, और प्रजनन के सम्बन्ध में कार्य, पर्यावरण की विभिन्न परिस्थितियों से सम्बन्धित उनके अनुकूलन, उनका स्थान विस्तार और काल विस्तार, उनके पारस्परिक सम्बन्ध, उनके जीवन वृत्त, निम्नतर तथा सरलतर रूपों से उच्चतर तथा अधिक संकीर्ण रूपों में उनके विकास में निहित सिद्धान्त, पौधों के विभिन्न उपयोग, और अन्ततः मनुष्य जाति के द्वारा श्रेष्ठतर उपयोग के लिये पौधों को उन्नत करने की विधियों का अन्वेषण यह विज्ञान करता है।

३. जीवन की उत्पत्ति और सातत्य (Origin and Continuity of Life)—जीवन स्वयं रहस्यमय है और इसकी उत्पत्ति अभी भी उलझी हुई पहेली है। तथापि, यह माना जाता है कि कई लाख वर्ष पूर्व अकार्बनिक या निर्जीव पदार्थों में कुछ रासायनिक और भौतिक परिवर्तनों के फलस्वरूप बाहरी परिस्थितियों में जीवद्रव्य (protoplasm) के एक सूक्ष्म बिन्दु के रूप में जीवन की पहले पहल जल में उत्पत्ति हुई। अत. जीवद्रव्य सबसे प्रथम बना जीवित पदार्थ है, और एक बार बनने के बाद इसका सातत्य अनुक्रमिक पीढ़ियों में बना रहा और कई लाख वर्षों तक सरलतर से अधिक संकीर्ण पौधों और जन्तुओं के रूप में इसमें क्रमिक परिवर्तन होते रहे। दूसरे शब्दों में प्राचीनतम और सरलतम रूपों से वर्तमान जटिल व विविध रूपों के पौधों और जन्तुओं तक जीवन कई धाराओं में होते हुये एक सतत प्रवाह रहा है। क्रमिक परिवर्तनों के फलस्वरूप पूर्ववर्ती रूपों से नये रूपों का परिवर्धन हुआ। यह परिवर्धन जो वास्तव में पूर्वरूपों से उद्भव है, विकास (evolution) कहलाता है। विकास की सर्वप्रथम अवस्थाओं में पौधों और जन्तुओं में कोई भेद नहीं था। जीवधारी जिनको प्रोटिस्टा (सर्वप्रथम बने हुये) कहते हैं एककोशिक, और सरलतम संरचना के थे। लेकिन शीघ्र ही जीवन दो शाखाओं में विभाजित हो गया। एक ने

पादप जगत की स्थापना की और दूसरे ने जन्तु जगत की। यद्यपि पौधे और जन्तु इस अवधि में विभिन्न रूप के हो गये लेकिन दोनों में जीवद्रव्य स्थिर ही रहा। निम्न तथ्यों को नोट करना रोचक है: जीवद्रव्य दुबारा आरम्भ से नहीं बनता, अतः कोई नया जीव नहीं बन सकता और न बनाया जा सकता है; तथापि, जीवद्रव्य सतत है; और यदि विकास न होता तो जीव प्रथम निर्मित एककोशिक अवस्था में ही रहता।

४. हरे पौधों का महत्व (Importance of Green Plants)—हरे पादप सब प्रकार के जीवन, मनुष्य के जीवन समेत, के लिये सारभूत हैं। इस सम्बन्ध में इनका महत्व इस तथ्य के कारण है कि, प्रथमतः, वास्तव में पौधे ही वे विरचनायें हैं जो वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करें तथा उतने ही आयतन की आक्सीजन (जल को विघटित कर) को अपने शरीर से निर्मुक्त कर वायुमंडल का शोधन कर सकते हैं; और, दूसरा, पौधे अपक्व पदार्थों से–कार्बन डाइऑक्साइड वायु से और जल तथा अकार्बनिक लवण भूमि से ग्रहण कर—खाद्य पदार्थ, जैसे मंड, का निर्माण करते हैं जो चावल, गेहूं, आलू इत्यादि का मुख्य अवयव है। ये दोनों कार्य, अर्थात् वायुमंडल का शोधन और खाद्य का निर्माण हरे पौधों के एकाधिकार हैं और दिन के समय पत्तियों के हरिम कणकों द्वारा सम्पादित होते हैं, तथा सूर्य का प्रकाश ऊर्जा का स्रोत होता है। जन्तुओं में हरिम कणकों के अभाव के कारण यह शक्ति नहीं होती। अतः यह स्पष्ट है कि जन्तु, मनुष्य सहित, इन मूल आवश्यकताओं, अर्थात् श्वसन के लिये आक्सीजन और पोषाहार के लिये भोजन, के लिये पौधों के ऋणी हैं। इसलिये जहाँ तक जीवित जगत का सम्बन्ध है हरिम कणकों का एक मार्मिक स्थान है।

५. पौधों के उपयोग (Uses of Plants)—मनुष्य की तीन प्राथमिक आवश्यकतायें हैं: खाद्य (भोजन), वस्त्र, और आश्रय। ये सब पादप जगत द्वारा प्राप्त होते हैं। मनुष्य की सबसे आवश्यक आवश्यकता भोजन है। यह भोजन मुख्यतः पौधों से धान्यों (चावल, गेहूँ, मक्का, जई, राइ), जुवार–बाजरा (छोटे धान्य), दालें, सब्जियां और फल के रूप में प्राप्त होता है। वस्त्र के लिये भी पौधे अपरिहार्य हैं। पतले व मोटे रेशों के रूप में वस्त्रों को बनाने के लिये उनका मूल्य कभी भी ज्यादा नहीं आँका जा सकता। इस सम्बन्ध में कपास का एक महत्वपूर्ण स्थान है और इसके साथ-साथ जूट या पटसन और कुछ अन्य रेशों का भी जो मोटे कपड़ों को बनाने के काम में आते हैं। छोटे पैमाने में सन, लिनेन वस्त्र बनाने के काम में आता है। खाद्य और वस्त्रों के अधिक बढ़ती हुई मांग की पूर्ति के लिये पादप पदार्थों के उच्चतर उपयोग के लिये वनस्पति विज्ञान के ज्ञान का विनियोग अति महत्वपूर्ण समझा

गया है। इसके अतिरिक्त मौसम की कठोरताओं से आश्रय के लिये तथा प्राकृतिक शत्रुओं से रक्षा के लिये मनुष्य ने प्राचीन काल से ही अनुभव किया। इस सम्बन्ध में लकड़ी और साथ-साथ उसके परिरक्षण के साधनों का महत्व अनर्घ्य समझा गया है। अन्य पदार्थ जैसे बाँस, बेंत, सरकंडा, छप्पर छाने की घास, आदि का मूल्य भी कम नहीं आँका जा सकता। सभ्यता की प्रगति के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएं भी बढ़ती जाती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य ने अपने वैज्ञानिक ज्ञान के द्वारा आराम और विभिन्न उपयोगों के प्राप्ति के स्रोत के लिये पौधों का उपयोग किया और वह बहुत मात्रा तक सफल रहा। इस ज्ञान और उसके ठीक विनियोग (application) से पादप जगत से अनेक पदार्थ प्राप्त हुये हैं। इस सम्बन्ध में निम्न पादप पदार्थों का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। काष्ठ या लकड़ी [फर्नीचर के लिये, पुल बनाने के लिये, नाव बनाने के लिये, रेलवे के सपंक (slippers), ईंधन, इत्यादि], तेल (स्नेहन के लिये, साबुन बनाने के लिये, और रंगों के आधार के लिये), रेशे (बोरा, रस्सी, चटाइयाँ, दरी, किरमिच के लिये), औषधियाँ (रोगों की चिकित्सा के लिये), रंग, कागज, टैनिन, सर्जास, गोंद, गंध तेल, रबर, ऐलकोहल, चाय, कॉफी, कोको, तम्बाकू, मसाले, इत्यादि। भूमि की उर्वरता तथा किण्वन (fermentation) से सम्बंधित अनेक कवकों और जीवाणुओं की उपयोगिता का भी कम मूल्य नहीं आँका जा सकता। अन्त में, लेकिन कम महत्व की नहीं, आधुनिक काल की अद्भुत औषधियाँ जिनको प्रतिजैविक पदार्थ (antibiotics) कहते हैं, उदाहरणार्थ पैनिसिलिन, का उल्लेख किया जा सकता है, जो भूमि के कवकों और जीवाणुओं से प्राप्त होती हैं और भयानक संक्रामक रोगों की चिकित्सा में उपयोग में लायी जाती हैं। अतः ऊपर वर्णित तथ्यों से स्पष्ट है कि वनस्पति विज्ञान का ज्ञान और उसका उपयुक्त विनियोग विविध प्रकार से मनुष्य जाति के कल्याण से सम्बन्धित है।

६. जीवधारियों के संलक्षण (Characteristics of Living Objects)—हम नहीं जानते कि वास्तव में जीवन (life) क्या है। यह कोई रहस्यमय वस्तु है और हम इसकी व्याख्या करने में असमर्थ हैं। तथापि, सब जीवधारियों के कुछ ऐसे संलक्षण हैं जिनके द्वारा वे निर्जीव वस्तुओं से पृथक किये जा सकते हैं। ये संलक्षण निम्नलिखित हैं:

(१) जीवन चक्र (Life-cycle)—सब सजीव पदार्थ जन्म, वृद्धि, प्रजनन, वृद्धावस्था और मृत्यु के एक निर्दिष्ट जीवन चक्र का अनुसरण करते हैं। जानवर या पौधा एक भ्रूण (embryo) से उत्पन्न होता है जिसका उद्भव भी एक कोशिका,

जिसको अण्ड कोशिका कहते हैं, से होता है। भ्रूण क्रमशः वृद्धि कर जानवर या पौधे का रूप धारण कर लेता है। कालान्तर में यह अपनी स्पीशीज (species) के सातत्य (continuity) के लिये और साथ ही संख्या में वृद्धि करने के लिये प्रजनन करता है। अन्ततः जीवधारी वृद्धावस्था को प्राप्त होता है और मर जाता है।

(२) कोशिक्य संरचना (Cellular Structure)—सब सजीव पदार्थ कोशिकाएं (cells) नामक विशय प्रकार की संरचनात्मक इकाइयों के बने होते हैं, जो बहुत सूक्ष्म कक्षों (chambers) स्वरूप होते हैं। प्रत्येक कक्ष या कोशिका में सजीव पदार्थ की एक अत्यन्त क्षुद्र मात्रा भरी रहती है, जिसको जीवद्रव्य (protoplasm) कहते हैं, और पौधों में यह एक निश्चित निर्जीव भित्ति से घिरा रहता है, जिसको कोशिका भित्ति (cell-wall) कहते हैं, किन्तु जन्तुओं में यह नहीं घिरा होता। कोशिक्य संरचना समस्त जीव जगत का एक मात्र लक्षण है।

(३) जीवद्रव्य (Protoplasm)—जीवद्रव्य के बिना जीवन नहीं रह सकता। पौधों और जन्तुओं दोनों में ही यह वास्तविक जीवित पदार्थ है और जैसे हक्सले ने इसकी व्याख्या की है यह जीवन का भौतिक आधार है। यह सब जीवकर (vital) क्रियाएं सम्पन्न करता है; यह विभिन्न प्रकार की गतियां (movements) प्रदर्शित करता है, और सब प्रकार के उद्दीपनों (stimuli), जैसे प्रकाश, ताप, रासायनिक पदार्थ, विद्युत् आघात (electric shock), इत्यादि के प्रति संवेदी है। यह बहुत ही कोमल और संकीर्ण पदार्थ है और विश्लेषण का कोई भी प्रयत्न इसको मृत कर देता है और इसके जीवन प्रदान करने वाले गुणों को नष्ट कर देता है। भौतिक दृष्टि से यह रंगहीन, श्यान (viscous) पदार्थ है और सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर दानेदार (granular) दिखाई देता है। रासायनिक दृष्टि से जीवद्रव्य प्रोटीन तथा कई प्रकार के अन्य रासायनिक यौगिकों का एक बहुत ही संकीर्ण मिश्रण है जो विशेष अनुपातों और विशेष प्रतिरूपों में रहते हैं और समरस तथा समंजस विधि से परस्पर क्रिया (interact) करते हैं। इन सब पदार्थों की समन्वित (co-ordinated) क्रिया पर ही वह गुण निर्भर है जिसको हम जीवन कहते हैं।

(४) श्वसन (Respiration)—श्वसन जीवन का एक चिह्न है। सभी सजीव पदार्थ—पौधे और जन्तु—निरन्तर रात दिन सांस लेते हैं, और श्वसन की क्रिया के लिये वे आक्सीजन गैस वायुमंडल से लेते हैं और लगभग उतने ही आयतन का कार्बन डाइऑक्साइड गैस बाहर निकालते हैं। पौधों

में गैसों का यह विनिमय साधारणतः पत्तियों के छोटे छिद्रों द्वारा होता है। श्वसन एक ऊर्जा निर्मुक्त करने वाला प्रक्रम है, अर्थात् जो ऊर्जा (energy), खाद्य और अन्य पदार्थों में संचित रहती है, इस प्रक्रम में निर्मुक्त होती है और जीवद्रव्य द्वारा उसके विविध क्रियाओं (activities) में इसका उपयोग होता है।

(५) प्रजनन (Reproduction)—सब जीवधारी—जन्तु और पौधे—प्रजनन, अर्थात् अपने जैसे बच्चे उत्पन्न करने की शक्ति रखते हैं। निर्जीव वस्तुओं में यह शक्ति नहीं होती। वे यान्त्रिक तौर पर अनेक टुकड़ों में टूट सकते हैं किन्तु जैविक पदार्थ कुछ निश्चित आवर्ती (periodic) प्रजनन की विधियों का पालन करते हैं, और अपने ही समान सन्तान उत्पन्न करते हैं।

(६) उपापचयन (Metabolism)—उपापचयन जीवन की एक घटना है। इसमें वे रचनात्मक या उपचय (anabolic) और नाशक या अपचय (katabolic) परिवर्तन सम्मिलित हैं जो जीवद्रव्य में निरन्तर होते रहते हैं। उपापचय क्रियायें जिनके फलस्वरूप जीवद्रव्य की टूट फूट होती है सब जीवधारियों का विशेष लक्षण है। उपचय परिवर्तनों से खाद्य पदार्थों का निर्माण होता है और अन्ततः जीवद्रव्य बनता है। अपचय परिवर्तनों में खाद्य पदार्थों और जीवद्रव्य का विघटन होता है और उससे अन्ततः नाना प्रकार के रासायनिक पदार्थ बनते हैं।

(७) पोषाहार (Nutrition)—प्रत्येक जीवधारी को भोजन की आवश्यकता होती है। पौधों और जन्तुओं के भोजन के रासायनिक अवयव लगभग समान हैं। ये अन्त में पचकर जीवद्रव्य द्वारा अपने पोषाहार और वृद्धि के लिये स्वांगीकरित (assimilated) कर लिये जाते हैं। अतः भोजन का नियमित रूप से प्राप्त होना जीवधारी के लिये अति आवश्यक है।

(८) वृद्धि (Growth)—सब जीवधारी—पौधे व जन्तु, वृद्धि करते हैं। निर्जीव पदार्थ भी वृद्धि कर सकते हैं, जैसे कि केलास या मणिभ (crystal) की वृद्धि, लेकिन उनकी वृद्धि भिन्न है। निर्जीव पदार्थों की वृद्धि बाह्य (external) होती है, अर्थात् उस माध्यम (medium) में से जो कि उस वस्तु को घेरे हुये है, उसके ही समान भौतिक और रासायनिक गुण वाले वस्तु के कण (particles) या अणु (molecules) उस वस्तु के बाह्य स्तर पर निक्षिप्त (deposited) होते रहते हैं और इस प्रकार उनकी वृद्धि होती है। इसके विपरीत सजीव पदार्थों में वृद्धि आन्तरिक (internal) होती है, अर्थात् यह अन्दर से प्रारम्भ होती है और उनके शरीर के अन्दर जीवद्रव्य नये व विभिन्न [illegible] करता है। वृद्धि केवल गुण रखने वाले कण या अणु स्रावित (ex- [illegible]

बाहर से ही दिखाई देती है। जीवधारियों में वृद्धि उपचय और अपचय दोनों प्रकार की क्रियाओं की एक जटिल प्रकमों की श्रेणी का परिणाम होती है।

(९) गति (Movement)—गति साधारणतः जीवन का एक चिह्न माना जाता है। अधिकांश पौधों में गति सीमित (restricted) होती है क्योंकि वे भूमि में स्थिर रहते हैं, जब कि अधिकांश जन्तु स्वतन्त्रतापूर्वक गति करते हैं। जानवर या पौधों की गतियां स्वतः प्रेरित (spontaneous) या पर प्रेरित (induced) होती हैं।

(क) **स्वतः प्रेरित गति** (Spontaneous Movement)—यह किसी जीवधारी या एक जन्तु या पौधे के किसी अंग की वह गति है जिसे वह अपनी इच्छा से, अर्थात् बिना किसी वाह्य प्रभाव के करे। इस प्रकार की गति जीवन का लाक्षणिक चिह्न मानी गयी है। स्वतः प्रेरित गति जन्तुओं में बहुत स्पष्ट दिखाई देती है, और पौधों में यह बहुत से एककोशिक शैवालों, उदाहरणार्थ यूग्लीना (*Euglena*), और कुछ तन्तुमय (filamentous) शैवालों, उदाहरणार्थ आॅसीलेटोरिआ (*Oscillatoria*) में दिखाई देती है। पुष्पी पादपों में स्वतः प्रेरित गति का सबसे उत्तम उदाहरण शालिपर्णी (Indian telegraph plant) में दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त जीवद्रव्य की धारा गतियां (streaming movements) उच्चतर पौधों की कोशिकाओं में सूक्ष्मदर्शी द्वारा स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

(ख) **पर प्रेरित गति या उत्तेजनशीलता** (Induced Movement or Irritability)—यह जीवधारियों या उनके अंगों की वह गति है जो वे वाह्य उद्दीपनों के प्रतिक्रिया के फलस्वरूप करते हैं। जीवद्रव्य अनेक वाह्य उद्दीपनों के लिये संवेदी है, और जब कोई एक विशेष उद्दीपन प्रयुक्त किया जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया प्रायः गति के रूप में होती है, अतः जब कोई जन्तु जलता है तो वह तुरन्त ऊष्मा के स्रोत (source of heat) से हट जाता है। जब कोई हरा पौधा एक बन्द कमरे या कोष्ठ में, जिसके एक ओर खुली खिड़की हो, उगाया जाता है, तो वह वृद्धि करके प्रकाश के स्रोत की ओर मुड़ जाता है। इन दशाओं में ऊष्मा और प्रकाश उद्दीपक का कार्य करते हैं, और जीवधारी तदनुसार अपने आप को समंजित करके प्रतिक्रिया करते हैं। निर्जीव पदार्थ, जैसे लकड़ी के कुन्दे (log) या धातु के छड़, में इस प्रकार का कोई भी प्रभाव नहीं दिखाई देता है। पर प्रेरित गति के परिचित उदाहरण छुईमुई (sensitive plant) और बननारंग (sensitive wood-sorrel) के पर्णक (leaflets) हैं जो छूने पर बन्द हो जाते हैं। जब कोई कीड़ा ड्रोसेरा (*Drosera*) नामक कीटाहारी पादप (insectivorous plants) के पर्ण पर गिरता है तो ड्रोसेरा के

संस्पर्शक (tentacles) चारों तरफ से कीड़े के ऊपर मुड़ते हैं और उसे जकड़ लेते हैं। इसी प्रकार वीनस फ्लाई ट्रैप (Venus' fly trap), जो एक दूसरा कीटाहारी पादप है, के पत्रदल को जब कोई कीड़ा छूता है तो वह तुरन्त बन्द हो जाता है। बहुत पौधों की पत्तियां शाम को प्रकाश लुप्त होने पर बन्द हो जाती हैं और फिर प्रातःकाल खुल जाती हैं। यह निद्रा गति (sleep movement) कहलाती है। उत्तेजनशीलता जन्तुओं में पौधों से अधिक प्रत्यक्ष होती है।

७. सजीव तथा निर्जीव में अन्तर—(Differences between the Living and the Non-living)—सजीव व निर्जीव में निरपेक्ष अन्तर (absolute differences) मालूम करना अति कठिन है। फिर भी, दोनों के सामान्य अन्तर के लिये कुछ बातें लिखी जा सकती हैं। जीवद्रव्य जीवन का भौतिक आधार है; अतः वे वस्तुएं जिनमें जीवद्रव्य पाया जाता है सजीव कही जाती हैं। निर्जीव वस्तुओं में इसका अभाव होता है। अतः जीवद्रव्य की उपस्थिति या अनुपस्थिति चेतन या सजीव (animate) और अचेतन या निर्जीव (inanimate) पदार्थ का आधारभूत अन्तर है, और जीवद्रव्य द्वारा की जाने वाली विभिन्न जीवन क्रियाएं, जैसे श्वसन, उपापचयन, पोषाहार, वृद्धि, गति, प्रजनन ही सजीव पदार्थों के संलक्षण हैं। कुछ अर्थों में निर्जीव पदार्थ भी गति और वृद्धि प्रदर्शित करते हैं। कुछ निर्जीव पदार्थ, जैसे मशीनें भी गति करती हैं जब कि बाह्य बल (external force) उन पर प्रेरण किया जाता है। किसी द्रव में अंतर्भूत (embedded) बहुत ही सूक्ष्म कण भी बहुत तेजी से कम्पन (vibrate) करते हुए दिखाई देते हैं। इस कम्पन को ब्राउनीय गति (Brownian movement) कहते हैं, क्योंकि इसको सबसे पहले राबर्ट ब्राउन नामक वैज्ञानिक ने १८२८ में देखा था जब कि वे पराग कणों को सूक्ष्मदर्शी द्वारा देख रहे थे। निर्जीव पदार्थ, जैसे केलास या मणिभ और प्रवाल (corals) भी वृद्धि कर सकते हैं, लेकिन जैसा पहले बताया जा चुका है सजीव व निर्जीव की वृद्धि की विधियों में अन्तर होता है। पुनरावृत्त उद्दीपन (repeated stimulation) के कारण सब तंत्रिकायें (nerves) और ऊतक (tissues) थक जाते हैं और कुछ समय के विश्राम के बाद अपनी पहली दशा में आते हैं। निर्जीव वस्तुएं, जैसे धातुएं भी अधिक समय तक काम में लाने से थक जाती हैं, और जैसा कि स्वर्गीय सर जे० सी० बोस ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया था कि औषधियों द्वारा धातुएं भी विषयुक्त (poisoned) और उद्दीपित की जा सकती हैं। इस प्रकार सजीव व निर्जीव में कोई निश्चित और नियमित अन्तर नहीं बताया जा सकता।

८. वनस्पति तथा जन्तुओं में भेद (Distinctions between Plants and Animals)—उच्चतर पादप और उच्चतर जन्तु एक दूसरे से बहुत आसानी से पहचाने जा सकते हैं, क्योंकि इनमें कुछ निश्चित अंग निश्चित कार्य करने के लिये रहते हैं, जैसे कि जन्तुओं में संचलन (locomotion) के अंग। लेकिन जब हम अवर (lower) एककोशिक पौधों और जन्तुओं पर ध्यान देते हैं तो कठिनाई प्रतीत होती है। वास्तव में वनस्पति जगत और जन्तु जगत के बीच में भिन्नता की कोई अकाट्य रेखा खींचना सरल नहीं है। साधारणतः निम्नलिखित लक्षणों (features) से इन दोनों को पहचाना जा सकता है।

(१) वृद्धि (Growth)—पौधों के वृद्धि के प्रदेश स्थानिक (localized) होते हैं। ये मुख्यतः अग्र भाग में स्थित रहते हैं, जैसे मूल अग्रक (root apex) और स्तम्भ अग्रक (stem apex)। इसके अतिरिक्त ये प्रदेश भीतरी भी होते हैं, अर्थात् वृद्धि अग्रस्थ (apical) और आन्तर्निविष्ट (intercalary) होती है; लेकिन जन्तुओं की वृद्धि किसी निश्चित प्रदेश में स्थानिक नहीं होती, अर्थात् सब भागों में वृद्धि युगपत् (simultaneous) होती है। इसके अतिरिक्त पौधों में वृद्धि मृत्यु होने तक होती रहती है, जब कि जन्तुओं में वृद्धि मृत्यु के बहुत पहले ही रुक जाती है।

(२) पर्णहरिम (Chlorophyll)—कवकों (fungi) और पूर्ण पराश्रयी (total parasites) पौधों के अतिरिक्त अन्य सब पौधों की यह विशेषता है कि उनकी पत्तियों और कोमल प्ररोहों (shoots) में हरा रंग द्रव्य या पर्णहरिम होता है। पर्णहरिम विशेष जीवद्रव्यीय कायों में रहता है जिनको आदि लव (plastids) कहते हैं, और ये प्रायः एक कोशिका में अधिक संख्या में होते हैं; जन्तु कोशिकाओं में पर्ण हरिम और आदि लव का सर्वथा अभाव होता है, तथापि कुछ जन्तु पौधों के हरे भागों को खा कर हरे हो सकते हैं।

(३) कोशिका-भित्ति (Cell-wall)—पौधे और जन्तु दोनों रचना में कोशिकय होते हैं। प्रत्येक पादप कोशिका एक निश्चित लेकिन मृत भित्ति से घिरी रहती है, जिसको कोशिका भित्ति (cell-wall) कहते हैं। कोशिका भित्ति प्रत्येक पौधे में उपस्थित रहती है और बहुत अभिदृश्य होती है। जन्तुओं का शरीर भी कोशिकाओं का बना होता है लेकिन उनके कोशिकाओं में कोशिका-भित्ति का अभाव होता है।

(४) सैलूलोज (Cellulose)—पौधों की कोशिका भित्ति एक रासायनिक पदार्थ की बनी होती है, जिसको सैलूलोज (cellulose) कहते हैं; तथापि कवकों में शुद्ध सैलूलोज नहीं होता। किन्तु जन्तुओं के शरीर में इसका सर्वथा अभाव होता है।

(५) भोजन या खाद्य (Food)—हरे पौधे अपक्व (raw) खाद्य पदार्थ
बाहर से अवशोषण करते हैं—पानी और अकार्बनिक लवण भूमि से व कार्बन
डाइऑक्साइड हवा से—और इन सब से वे कार्बनिक खाद्य पदार्थ तैयार करते हैं।
यह कार्य मुख्यत: पत्तियों में पर्णहरिम की सहायता से सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति
में होता है। जन्तुओं में पर्णहरिम न होने के कारण अपने भोजन को स्वयं निर्माण
करने की शक्ति नहीं होती। इस मुख्य आवश्यकता के लिये उनको पौधों के
ऊपर पूर्णतया निर्भर रहना पड़ता है। यह भी नोट करने की बात है कि पौधे
केवल विलयन (solution) के रूप में ही भोजन ग्रहण करते हैं, जब कि
जन्तु ठोस भोजन भी अन्तर्ग्रहण (ingest) कर सकते हैं।

(६) कार्बन-डाइऑक्साइड का उपयोग (Utilization of Carbon di-
oxide)—पौधों में वायुमंडल के कार्बन डाइऑक्साइड को उपयोग करने की शक्ति है।
अत: दिन के समय पत्तियों की हरी कोशिकाएं वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड
अवशोषण करती हैं, और शर्करा (sugars), मण्ड (starch), इत्यादि
निर्माण करती हैं और लगभग समान आयतन में आक्सीजन (जल को विघटित कर)
बाहर निकालती हैं। जन्तुओं में यह शक्ति नहीं होती कि वे कार्बन डाइऑक्साइड
का उपयोग कर सकें और भोजन का निर्माण कर सकें।

(७) गति (Movement)—पौधे भूमि में या किसी और आधार पर
स्थित रहकर वृद्धि करते हैं और इस लिये कुछ निम्न श्रेणी के पौधों के अतिरिक्त
वे एक स्थान से दूसरे स्थान में नहीं जा सकते, किन्तु जन्तु भोजन तथा आश्रय
की खोज में स्वतन्त्रतापूर्वक गति करते हैं, और आक्रमण किये जाने पर युक्ति-
चालन करते हैं। कुछ जन्तु भी किसी वस्तु पर स्थिर होकर वृद्धि करते हैं।

(८) अंग (Organ)—जन्तुओं में विभिन्न अंग, जैसे सञ्चलन के अंग,
श्वसन अंग, उत्सर्गी अंग, इत्यादि सुचारु रूप से क्रिया करने के लिये चरम सीमा
तक पहुँच चुके हैं; जब कि पौधों में तदनुरूपी अंग (corresponding
organs) साधारण आकार के हैं या बिल्कुल ही नहीं हैं।

(९) भोजन का अन्तर्ग्रहण (Ingestion of Food)—पौधे बाहर से कोई
भी पदार्थ विलयन के अतिरिक्त किसी भी रूप में नहीं ले सकते जब कि जन्तु
ठोस भोजन अन्तर्ग्रहण कर सकते हैं।

९. वनस्पति विज्ञान के विभाग (Branches of Botany)—[illegible]
की भांति वनस्पति विज्ञान का अध्ययन भी दो दृष्टिकोणों से किया [illegible]
है—विशुद्ध (pure) और व्यावहारिक या आर्थिक (applied or [illegible]
पौधे प्रकृति में जिस रूप में पाये जाते हैं उनका [illegible]

में किया जाता है, और मनुष्य के कल्याण के लिये इस विज्ञान के उपयोग का अध्ययन व्यावहारिक वनस्पति विज्ञान में किया जाता है। उत्तरोक्त (latter) के अध्ययन के लिये पूर्वोक्त (former) का व्यापक ज्ञान होना आवश्यक है। वास्तव में बाद की अवस्थाओं में विशुद्ध वनस्पति विज्ञान व्यावहारिक वनस्पति विज्ञान के अध्ययन के लिये आधार का काम करता है। इसलिये प्रारम्भ में हम केवल विशुद्ध वनस्पति विज्ञान का अध्ययन ही अपना ध्येय रखेंगे। यह निम्नलिखित विभागों में विभाजित किया जा सकता है:

(१) आकृति विज्ञान या आकारिकी (Morphology)--इसका सम्बन्ध पौधों के अंगों, जैसे मूल, स्तम्भ, पर्ण, पुष्प, फल और बीज के आकृतियों और लक्षणों के अध्ययन से है।

(२) औतिकी (Histology)--पौधों की आन्तरिक संरचना के अध्ययन को औतिकी कहते हैं। इसको शारीर (anatomy) भी कहते हैं, क्योंकि आन्तर संरचना का अध्ययन पतले सैक्शन (section) काट कर ही हो सकता है। औतिकी का सम्बन्ध मुख्यतः कोशिकाओं तथा ऊतकों से है जैसे कि वे सूक्ष्मदर्शी के द्वारा दिखाई देते हैं। कोशिका विज्ञान (cytology) जिसका सम्बन्ध नाभिक के व्यवहार के विशेष अभ्युद्देश से कोशिका की संरचना से है औतिकी का एक नया सुस्थापित विभाग है।

(३) कार्यिकी (Physiology)--इसके अन्तर्गत हम पौधों के विभिन्न कार्यों का अध्ययन करते हैं। ये कार्य जीवकर (vital) हो सकते हैं या यांत्रिक (mechanical)। जीव कार्य (vital functions) सजीव पदार्थ अर्थात् जीवद्रव्य द्वारा किये जाते हैं, और यांत्रिक कार्य कुछ निश्चित मृत ऊतकों द्वारा बिना जीवद्रव्य के हस्तक्षेप (intervention) के किये जाते हैं, उदाहरणार्थ काग व छाल पादप काय की रक्षा करते हैं और कुछ दृढ़ ऊतक उसको सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

(४) पारिस्थितिकी (Ecology)--किसी एक पौधे या पादप समुदाय का अपने पर्यावरण से जो सम्बन्ध होता है उसके अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं।

(५) पादप भूगोल (Plant Geography)--यह वनस्पति का पृथ्वी के सतह पर वितरण तथा उससे सम्बन्धित कारकों (factors) के अध्ययन से सम्बन्ध रखता है।

(६) वर्गीकरण विज्ञान या वर्गीकृत वनस्पति विज्ञान (Taxonomy or Systematic Botany)--पौधों का वर्णन, अभिज्ञान या पहचान, (identification) और आकारिकीय लक्षणों की समानता तथा भिन्नता के आधार पर

उनका विभिन्न वर्गों या समुदायों में वर्गीकरण करने के विज्ञान को वर्गीकृत वनस्पति विज्ञान कहते हैं।

(७) वनस्पति फॉसिल विज्ञान (Palaeobotany)—यह भूवैज्ञानिक युगों में पृथ्वी के स्तरों में फॉसिल (fossil) रूप में सुरक्षित पुरातन रूप के पौधों से सम्बन्ध रखता है।

व्यावहारिक या आर्थिक वनस्पति विज्ञान (Applied or Economic Botany)—इसका सम्बन्ध वनस्पति विज्ञान के ज्ञान का मनुष्य जाति के कल्याण के लिये उपयोग से है। इसके भी अनेक विभाग हैं। (क) कृषि विज्ञान (agriculture)—जो फसलों का उद्योग तथा खाद्य के लिये कर्षण (cultivation) से सम्बन्ध रखता है; (ख) उद्यान विज्ञान (horticulture)—उद्यान के पौधों का फूलों तथा फलों के लिये कर्षण से सम्बन्ध रखता है; (ग) पादप-रोग विज्ञान (plant pathology)—इसका सम्बन्ध पौधों के रोगों के कारण, निदान (diagnosis), आरोग्यकरण तथा निवारण के अध्ययन से है; (घ) भेषज विज्ञान (pharmocognosy)—भेषजीय पौधों (medicinal plants) का ज्ञान औषधियों के निर्माण तथा परिरक्षण (preservation) के विशेष अभ्युद्देश से सम्बन्ध रखता है; (ङ) वन विज्ञान (forestry)—वन के पौधों का काष्ठ तथा अन्य वन पदार्थों के उपयोग से सम्बन्ध रखता है। (च) वनस्पति प्रजनन विज्ञान (plant breeding)—पौधों के संकरण (cross breeding) से सम्बन्ध रखता है जिससे कि नये और उन्नत (improved) इच्छित विशिष्ट गुणों वाले पौधे पैदा किये जा सकें।

१०. वनस्पति या पादप जगत् के विभाग (Divisions of the Plant Kingdom)—वनस्पति जगत के दो मुख्य विभाग हैं, अर्थात् क्रिप्टोगम्स (cryptogams) और फेनीरोगैम्स (phanerogams)। क्रिप्टोगम्स निम्न श्रेणी के पौधे हैं जिनमें न बीज और न स्पष्ट पुष्प ही पाये जाते हैं, लेकिन फेनीरोगैम्स उच्चतर पौधें हैं जिनमें सदा बीज व फूल लगते हैं। इस प्रकार क्रिप्टोगम्स बीजरहित या पुष्परहित पौधे और फेनीरोगैम्स बीजयुक्त या पुष्पी पादप माने जा सकते हैं।

अ. क्रिप्टोगम्स (Cryptogams)—क्रिप्टोगम्स के प्रधान समूह निम्नतर रूप से उच्चतर रूप तक निम्न हैं:

१. थैलोफाइटा (Thallophyta)—थैलोफाइटा निम्नतर क्रिप्टोगम्स हैं जिनमें पादप काय मूल, स्तम्भ व पत्तियों में विभिन्न नहीं रहता। इस प्रकार के अविभिन्न पादप काय (undifferentiated plant body) को मूकाय

(thallus) कहते हैं। फ़ाइटॉन (phyton) शब्द का अर्थ होता है पौधा—इसलिये इसको थैलोफाइटा कहते हैं। थैलोफाइटा के दो मुख्य समूह शैवाल (algae) और कवक (fungi) हैं।

(क) शैवाल (Algae)—शैवाल सामान्यत: हरे थैलोफाइटा हैं जिनमें पर्ण हरिम पाया जाता है, यद्यपि हरा रंग अन्य रंगद्रव्यों के कारण आच्छादित हो सकता है। ये अधिकतर पानी में उगते हैं और विभिन्न आकार के हैं। साधारण शैवाल स्पाइरोगाइरा (*Spirogyra*), युलोथ्रिक्स (*Ulothrix*), प्लूरोकोकस (*Pleurococcus*), क्लैमिडोमोनास (*Chlamydomonas*), ऑसीलेटोरिया (*Oscillatoria*), फ्यूकस (*Fucus*), इत्यादि हैं।

(ख) कवक (Fungi)—ये अहरित थैलोफाइटा हैं जिनमें पर्ण हरिम नहीं पाया जाता। ये अधिकतर भूमि में या तो पराश्रयी (parasites; देखिये पृष्ठ ४८) या मृतोपजीवी (saprophytes; देखिये पृष्ठ ५१) के रूप में रहते हैं। शैवालों के समान ये भी विभिन्न आकार के हैं। कवकों के सामान्य उदाहरण म्यूकर (*Mucor*), ऐल्ब्यूगो (*Albugo*), ऐगेरिकस (*Agaricus*) यीस्ट (yeast), कंडवा (smut), रतुआ (rust), फफूंद (mould), इत्यादि हैं।

२. ब्रायोफाइटा (Bryophyta)—यह उच्चतर क्रिप्टोगम्स का समूह है और इसमें मॉस (moss) और लिवरवर्ट्स् (liverworts) सम्मिलित हैं। वे कुछ मूल सदृश्य संरचनाएं उत्पन्न करते हैं जिनको मूलांग (rhizoids) कहते हैं, लेकिन इनमें सत्य जड़ का अभाव होता है, और संवाहन ऊतक बहुत साधारण तथा पूर्वंग (primitive) होता है। वे पुरानी, नम दीवारों, नम भूमि या पेड़ की छालों में उगते हैं और सुन्दर हरी, कालीन सदृश संरचनाएं बनाते हैं। वे संरचना में थैलोफाइटा से अधिक जटिल होते हैं। इनके सामान्य समूह और उदाहरण निम्नलिखित हैं:

(क) लिवरवर्ट्स् (Liverworts)—यह अवर ब्रायोफाइटा का समूह है। इनका काय (body) एक हरा, चपटा, युग्मभुजी शाखीय, सूकाय है, जिसके निचली सतह पर कुछ मूलांग होते हैं, या ये पर्णवत् होते हैं। इनके सामान्य उदाहरण रिक्सिआ (*Riccia*) और मार्केन्शिया (*Marchantia*) हैं।

(ख) मॉसेस (Mosses)—यह उच्चतर ब्रायोफाइटा का समूह है। इनका काय अक्ष या स्तम्भ, पर्णों और कुछ मूलांगों में भिन्नित रहता है। इनके साधारण उदाहरण फ्यूनेरिया (*Funaria*), पोलीट्राइकम (*Polytrichum*), इत्यादि हैं।

३. टेरीडोफाइटा (Pteridophyta)—यह उच्चतम क्रिप्टोगम्स का समूह है और इसमें पर्णांग (ferns) और उनके मित्र सम्मिलित हैं। इन पौधों का काय एक भूमिगत, क्षैतिज स्तम्भ (प्रकन्द) या ऊर्ध्व स्तम्भ, पत्तियों

तथा सत्य मूल में मिश्रित रहता है, और इनमें संवाहन ऊतक सुविकसित होते हैं। टेरीडोफ़ाइटा, ब्रायोफ़ाइटा से बहुत अधिक जटिल होते हैं और पुष्पी पादपों से इस बात में भिन्न हैं कि इनमें फूल, फल तथा बीज नहीं होते। ये पत्तियों में बीजाणु (spores) धारण करते हैं जिनके द्वारा वे प्रजनन करते हैं और संख्या में वृद्धि करते हैं। ये अधिकतर नम तथा छायादार जगहों में उगते हैं। इनके साधारण समूह और उदाहरण निम्नलिखित हैं:

(क) पर्णांग (Ferns)—इनकी तरुण पत्तियां कुत्ते की पूंछ के समान कुंडलित रहती हैं, और परिपक्व पत्तियां (बीजाणुपर्ण) निचली सतह पर बीजाणु (spores) धारण करती हैं। इसके सामान्य उदाहरण टेरीस (*Pteris*), पोलीपोडियम (*Polypodium*), ऐडिएन्टम (*Adiantum*), इत्यादि है।

(ख) हॉर्सटेल्स (Horsetails)—जैसे एक्विसिटम (*Equisetum*)। ये छोटी ऊर्ध्व शाखाएं उत्पन्न करते हैं, जिनमें सूक्ष्म शल्क सदृश पत्तियों के आवर्त रहते हैं। इनमें बीजाणु धारण करने वाले पर्ण (बीजाणुपर्ण) प्ररोह की चोटी पर आवर्त रूप में विन्यस्त रहकर एकत्रित रहते हैं और एक शंकु या कोन (cone) बनाते हैं।

(ग) क्लब मॉसेस (Club-mosses)—जैसे लाइकोपोडियम (*Lycopodium*) और सेलाजिनेला (*Selaginella*)। ये विसर्पी पौधे हैं जिनमें बहुत छोटी पत्तियां होती हैं। इनमें एक्विसिटम के समान बीजाणुपर्ण प्ररोह की चोटी पर एकत्रित होकर शंकु या कोन (cone) बनाते हैं। लाइकोपोडियम में पत्तियां अधिकतर सूचिकाकार होती हैं और शाखा पर सर्पिल रूप में विन्यस्त रहती हैं। बीजाणुपर्ण भी कोन में सर्पिल रूप में विन्यस्त रहते हैं। सेलाजिनेला की अधिकतर स्पीशीज़ में पत्तियां (दो प्रकार की) चपटी होती हैं और शाखा पर चार पंक्तियों में विन्यस्त रहती हैं, और बीजाणुपर्ण भी प्राय चार पंक्तियों में शंकु या कोन में विन्यस्त रहते हैं।

आ. फेनीरोगैम्स या स्पर्मेटोफाइट्स (Phanerogams or spermatophytes)—ये पुष्पी या बीज धारण करने वाले पादप हैं। ये पादप जगत का उच्चतम विभाग गठित करते हैं और इनमें पौधों के सब समुदायों से अधिक संख्या की स्पीशीज़ पायी जाती हैं। फेनीरोगैम्स के दो मुख्य समूह हैं: जिम्नोस्पर्म्स और ऐंजियोस्पर्म्स।

१. जिम्नोस्पर्म्स (Gymnosperms)—ये नग्न-बीजी पौधे हैं, अर्थात् वे पौधे जिनमें बीज-फलों में परिवेष्टित नहीं रहते। ये अवर पुष्पी पादप माने जा सकते हैं, जिनमें पुष्प साधारण रचना के और पूर्वंग प्रकृति के हैं। जिम्नोस्पर्म्स के दो मुख्य वर्ग हैं: साइकैड्स और कोनीफ़र्स।

(क) साइकैड्स (Cycads; साइकस, इत्यादि)—ये तुलनात्मक रूप में

छोटे पादप हैं जिनमें ताड़ सदृश्य ऊर्ध्व, मजबूत, साधारणतः अशाखित स्तम्भ होता है जिसके शिखर पर पर्णाग सदृश पक्षवत् पत्तियों का मुकुट होता है। पुष्प (नर वा मादा) सामान्यतः शंकु रूप में मुख्य स्तम्भ के शिखर पर अलग-अलग वृक्षों में पाये जाते हैं। इनके भ्रूण में दो बीजपत्र होते हैं। साइकैड्स निम्नतर रूप के जिम्नोस्पर्म्स हैं।

(ख) **शंकु वृक्ष या कोनिफर्स** (Conifers ; पाइनस, इत्यादि)—ये लम्बे, ऊर्ध्व वृक्ष या क्षुप हैं जिनमें स्तम्भ अत्यधिक शाखीय होता है और सरल (पाइनस में सूचिकाकार) पत्तियाँ धारण करता है। पुष्प (नर व मादा) हमेशा कोन या शंकु के रूप में होते हैं और एक ही पौधे में या अलग-अलग पौधों में मुख्य स्तम्भ या शाखाओं में पार्श्व रूप में रहते हैं। भ्रूण में दो से अनेक बीजपत्र होते हैं। जो शंकु बीज धारण करता है बहुत अभिव्यक्त होता है। कोनिफर्स उच्चतर प्रकार के जिम्नोस्पर्म्स हैं।

२. **ऐंजियोस्पर्म्स** (Angiosperms)—ये संवृतबीजी (closed-seeded) पौधे हैं, अर्थात् वे जिनमें बीज फल में परिवेष्टित रहते हैं। ये उच्चतर पुष्पी पादप समझे जा सकते हैं जिनमें पुष्प रचना में अधिक जटिल हैं और प्रगत (advanced) हैं। ऐंजियोस्पर्म्स के दो वर्ग हैं:

(क) **द्विबीजपत्री** (Dicotyledons)—यह ऐन्जियोस्पर्म्स का बड़ा वर्ग है जिसमें बीज के भ्रूण में दो बीजपत्र होते हैं और पुष्पों में सामान्यतः पांच या पांच के गुणज दल (petals) होते हैं, जैसे मटर, चना, सरसों, इत्यादि।

(ख) **एकबीजपत्री** (Monocotyledons)—यह ऐन्जियोस्पर्म्स का दूसरा बड़ा वर्ग है, जिसमें बीज के भ्रूण में केवल एक बीजपत्र होता है और पुष्प में सामान्यतः तीन या तीन के गुणज दल होते हैं, जैसे ताड़, प्याज, गेहूं, इत्यादि।

११. **ज्ञात स्पीशीज की संख्या** (Number of Species on Record)

(१) शैवाल	... ... २०,०००	स्पीशीज
(२) कवक	... ... ९०,०००	,,
(३) ब्रायोफ़ाइटा	... ... २२,७००	,,
(४) टेरीडोफ़ाइटा	... ... १०,०००	,,
(५) जिम्नोस्पर्म्स	... ... ७००	,,
(६) ऐन्जियोस्पर्म्स (१९९,०००)		
(क) द्विबीजपत्री	... ... १५९,०००	,,
(ख) एकबीजपत्री	... ... ४०,०००	,,
संपूर्ण योग	... ३४२,४००	,,

भाग १

आकारिकी या आकार विज्ञान (MORPHOLOGY)

अध्याय १

एक पुष्पी पादप के भाग

वर्धी भाग (Vegetative Parts)—श्रम भाजन के प्रतिचार स्वरूप पौधों का शरीर स्पष्ट अंगों जैसे मूल, स्तम्भ, शाखाओं, पत्तियों और फूलों, तथा उनके अतिरिक्त (accessory) भागों (चित्र १) में भिन्नित रहता है। ये अंग विशिष्ट कार्य करते हैं तथा सम्पूर्ण पौधे के जीवन तथा अस्तित्व, और जाति की सततता में योगदान देते हैं। मोटे तौर से ये कार्य वर्धी (vegetative) और प्रजनक (reproductive) हो सकते हैं। वर्धी कार्य पादप काय (plant body) के पोषाहार और वृद्धि से सम्बन्धित रहते हैं, लेकिन प्रजनक कार्य जाति की सततता के लिये नये पौधों के बनने और उनकी संख्या में वृद्धि होने से सम्बन्ध रखते हैं। चूँकि मूल, शाखाओं सहित स्तम्भ और पत्तियां सीधे रूप में या अप्रत्यक्ष रूप से वर्धी कार्य करते हैं, इसलिये इनको वर्धी अंग (vegetative organs) कहते हैं, और ये मूल तंत्र (root system) और प्ररोह तंत्र (shoot system) बनाते हैं। पुष्प प्रजनन से सम्बन्ध रखते हैं, इसलिये इनको प्रजनक अंग या जननेन्द्रिय (reproductive organs) कहते हैं। मूल तंत्र सामान्यतः भूमिगत (underground) रहता है और प्रधान मूल, जो लगभग ऊर्ध्वाधर दिशा में (vertically) भूमि में नीचे को जाता है, और पार्श्व मूल, जो विभिन्न दिशाओं में फैले रहते हैं, का बना होता है। प्रत्येक मूल के शिखर पर एक टोपी होती है, जिसको मूलछद (root-cap) कहते हैं, जो कि कोमल, वर्धन अग्रक की रक्षा करता है। मूलछद के जरा पीछे मूल में बहुत पतले और नरम रोमों के गुच्छे होते हैं, जिनको मूल रोम (root-hairs) कहते हैं। सम्पूर्ण मूल तंत्र मुख्यतः दो कार्य करता है: स्थिरीकरण (fixation) और अवशोषण (absorption)। मुख्य मूल और पार्श्व मूल पौधे को भूमि में स्थिर रखते हैं, जब कि मूल रोम भूमि से जल तथा अपक्व खाद्य पदार्थ (खनिज लवण) अवशोषण करते हैं। इसके विपरीत प्ररोह तंत्र प्रायः वायवीय (aerial) होता है और मुख्य स्तम्भ, शाखाओं और पत्तियों का बना होता है। सामान्यतः पत्तियों युक्त शाखा वर्धी प्ररोह और पुष्पी शाखा प्रजनक प्ररोह कहलाती है। मुख्य स्तम्भ और उसकी शाखाएं दो प्रमुख कार्य करते हैं: सहारा (support) और संवाहन (conduction)। ये अंग पत्तियों और फूलों को सहारा देते हैं, और अपने अपने कार्य को सुचारु रूप से करने के लिये उनको चारों ओर फैलाये रहते हैं। जल तथा अपक्व खाद्य पदार्थ का मूल से

पत्ती तक और निर्मित खाद्य पदार्थ का पत्तियों से संग्रह अंगों तक संवाहन भी स्तम्भ या शाखाओं के द्वारा होता है। पत्तियां स्तम्भ या शाखा के पार्श्व उद्वर्ध (outgrowths) हैं। प्रत्येक पत्ती में एक डंठल होता है जिसको पत्रवृन्त (petiole) कहते हैं, और एक चपटा, हरा फैला हुआ भाग, जिसको पत्रदल (leaf-blade or -lamina)

चित्र १—एक पुष्पी पादप (सरसों का पौधा) के भाग।

कहते हैं। पत्रदल में अनेक शिराओं का जाल फैला होता है, और बीच में स्थित मोटी शिरा को मध्य-शिरा (mid-rib) कहते हैं। पत्ती पर्णहरिम के कारण हरी होती है और खाद्य पदार्थ का निर्माण करती है। यह अति महत्वपूर्ण वर्धी अंग समझा जाता है। स्तम्भ तथा शाखाओं में पर्व (internodes) और गांठें (nodes) होती हैं, जिनका मूल में सर्वथा अभाव होता है। पत्ती के कक्ष में एक कलिका (bud) उत्पन्न होती है। यह वृद्धि करती है और दीर्घित होकर

शाखा को जन्म देती है। स्तम्भ और शाखा के शिखर पर भी एक कलिका होती है जो कि अपने सतत वृद्धि के कारण उन अंगों को लम्बाई में वृद्धि के लिये उत्तरदायी है।

प्रजनक भाग (Reproductive Parts)—पुष्प एक अति विशेषित प्रजनक प्ररोह है। प्रत्येक प्रारुपिक पुष्प में चार स्पष्ट प्रकार के सदस्य होते हैं जो कि एक लम्बे या छोटे वृन्त के शिखर पर चार अलग-अलग लेकिन सटे हुए आवर्तों (whorls) या वृत्तों (circles) में एक दूसरे के ऊपर विन्यस्त रहते हैं। नीचे के दो आवर्त सहायक (helping) या अतिरिक्त (accessory) आवर्त कहलाते हैं, और ऊपर के दो आवश्यक (essential) या प्रजनक (reproductive) आवर्त हैं। दो अतिरिक्त आवर्तों में से पहला या सबसे निचला प्रायः हरा होता है, और बाह्यदल पुंज (calyx) कहलाता है, तथा इसका प्रत्येक भाग बाह्यदल (sepal) कहलाता है। दूसरा आवर्त जो कि प्रायः चटकीला रंगीन होता है दलपुंज (corolla) कहलाता है, और इसका प्रत्येक भाग दल (petal) कहलाता है। पुष्प के कलिका अवस्था में बाह्यदल पुंज और दलपुंज आवश्यक अंगों को रक्षा प्रदान करते हैं, लेकिन बाद में जब पुष्प खुलता है बाह्यदल पुंज थोड़े से भोजन का निर्माण करता है, जब कि दलपुंज का मुख्य कार्य कीड़ों को अपने चटकीले रंगों की सहायता से दूर से ही आकर्षित करना है। पुष्प का तीसरा आवर्त या पहला आवश्यक आवर्त नर आवर्त है और पुमंग (androecium) कहलाता है, और इसका प्रत्येक सदस्य पुंकेसर (stamen) या नर प्रजनक अंग है। पुष्प का चौथा या सब से ऊपर का आवर्त या दूसरा आवश्यक आवर्त स्त्री आवर्त है, और जायांग (gynoecium) कहलाता है। इसका प्रत्येक सदस्य स्त्री केसर या अण्डप (carpel) कहलाता है। जायांग एक अण्डप या दो या दो से अधिक अण्डपों के आपस में संयुक्त होने से बना होता है। प्रत्येक पुंकेसर के शिखर पर एक कोष होता है, जिसको पराग कोष (anther) कहते हैं। इसके अन्दर धूल के कणों के समान पराग कणों (pollen grains) का पुंज रहता है। प्रत्येक पराग कण में एक जनन नाभिक (generative nucleus) होता है, जो कि बाद में विभाजित होकर दो नर प्रजनक इकाइयों या नर युग्मकों (male gametes) को जन्म देता है। जायांग के आधार के पास एक कक्ष होता है, जिसको अण्डाशय (ovary) कहते हैं। यह कुछ छोटे लेकिन संकीर्ण अण्डे सदृश कायों को घेरे रहता है जिनको बीजाण्ड (ovules) कहते हैं। प्रत्येक बीजाण्ड के अन्दर एक स्त्री प्रजनक इकाई या स्त्री युग्मक रहता है जिसको अण्ड कोशिका (egg-cell) कहते हैं। जायांग का शिखर जो कि बाद में पराग कणों को ग्रहण करता है वर्तिकाग्र (stigma) कहलाता है।

फल, बीज और भ्रूण (Fruit, Seed and Embryo)

बीज यद्यपि कभी-कभी आकार में बहुत छोटा होता है लेकिन एक संकीर्ण काय है जो कि केवल पुष्पी पादपों में बनता है। यह बीजाण्ड से तभी विकसित होता है जब कि पुष्प में पुंकेसर और जायांग के बीच कुछ प्राथमिक प्रक्रम हो चुके होते हैं। प्रथम, जब पराग कोष फटते हैं तो पराग कण वायु या कीड़ों द्वारा जायांग के वर्तिकाग्र तक पहुंचाये जाते हैं और वहां जमा हो जाते हैं; इस प्रक्रम को परागण (pollination) कहते हैं। द्वितीय, पराग कण वर्तिकाग्र पर अंकुरित होते हैं, और प्रत्येक एक पतली नलिका, जिसको **पराग-नलिका** (pollen-tube) कहते हैं, बनाती है, जो कि अपने अन्दर दो नर युग्मकों को लिये हुये जायांग के ऊतक में होती हुई दीर्घित होती है और अन्त में बीजाण्ड में एक छोटे छिद्र द्वारा प्रवेश करती है। वहां एक नर युग्मक स्त्री युग्मक अर्थात् अण्ड कोशिका से सायुज्यित हो जाता है। इस प्रक्रम को गर्भाधान या निषेचन (fertilization) कहते हैं। गर्भाधान एक शक्तिशाली उद्दीपक का कार्य करता है जिसके फलस्वरूप पुष्प के अण्डाशय या कभी-कभी अन्य भागों में श्रेणीबद्ध परिवर्तन होते हैं: अण्ड कोशिका वृद्धि करती है और एक भ्रूण (अर्थात् बीज के अन्दर शिशु पौधा) को जन्म देती है, बीजाण्ड बीज (seed) को, और सम्पूर्ण अण्डाशय फल (fruit) को जन्म देता है। भ्रूण बीज में सुषुप्त अवस्था में रहता है और बीज फल के अन्दर रहता है। बीज और फल भ्रूण की यथाप्रद रक्षा करते हैं, तथा उसके लिये खाद्य पदार्थ संग्रह करते हैं, और प्राय: विकिरण के लिये भली-भांति उपयोजित रहते हैं। अन्त में जब बीज अंकुरित होता है तो भ्रूण **नवोद्भिज** (seedling) में वृद्धि करता है जो कि क्रमश: वृद्धि कर प्रौढ़ पौधा बन जाता है।

अध्याय २

बीज (THE SEED)

बीज को एक दिन या उसकी प्रकृति के अनुसार कुछ अधिक या न्यून समय तक पानी में भिगो रखने के बाद उसके विभिन्न भागों का सुगमतया अध्ययन किया जा सकता है। जब वह भीग कर नरम और यथेष्ट फूला हुआ दिखाई पड़े तो उसके भागों का अध्ययन करने के लिये उसे तैयार समझा जा सकता है।

चने के बीज (Gram Seed) के भाग (चित्र २)

(१) **बीजावरण** (seed-coat)—बीज एक भूरे रंग के आवरण से आच्छादित
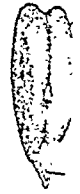
रहता है जिसको बीजावरण कहते हैं। यह दो स्तरों या कवचों का बना होता है। वाह्य स्तर को बीजकवच (testa) और आन्तरिक स्तर को अन्तःकवच (tegmen) कहते हैं। बीजकवच भूरे रंग का होता है और अपेक्षाकृत मोटा होता है; इसके विपरीत अन्तःकवच श्वेत, झिल्लीरूप होता है और बीजकवच से सायुज्यित (fused) रहता है। बीजावरण अंतः स्थित भ्रूण की रक्षा करता है। बीज के एक ओर इसके नुकीले सिरे के ऊपर एक सूक्ष्म अण्डाकार गर्त दिखाई देता है जिसको वृन्तक (hilum) कहते हैं। वृन्तक उस विन्दु का प्रतीक है जहां से बीज अपने डंठल (वृन्त) से जुड़ा (आवद्ध) रहता है। वृन्तक के ठीक ऊपर एक सूक्ष्म द्वार दिखाई देता है; यह अण्डद्वार (micropyle) कहलाता है। यदि एक भीगे हुए बीज को धीरे से दबाया जाय तो इस द्वार से पानी और हवा के बुलबुले निकलते दिखाई देते हैं। वृन्तक के ऊपर वृन्त बीजावरण से संलग्न रहता है और कूटक सा बनाता है। यह कूटक, जो बीजकवच से सायुज्यित रहता है, संधिरेखा (raphe) कहलाता है।
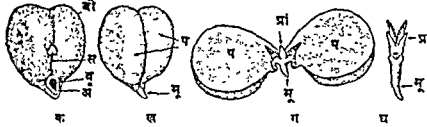
चित्र २—चने का बीज। क, सम्पूर्ण बीज ; ख, भ्रूण (बीजावरण को हटाने के बाद); ग, भ्रूण खुले हुये बीजपत्रों सहित; और घ, भ्रूण का अक्ष। बी, बीजावरण; स, संधिरेखा; वृ, वृन्तक ; अ, अण्डद्वार ; प, बीजपत्र ; मू, मूलांकुर ; और प्रा, प्रांकुर।

(२) भ्रूण (embryo)—बीजावरण को हटा देने पर जो पीला काय दिखाई देता है वह भ्रूण या तरुण पौधा कहलाता है। जब बीज अंकुरित होता है तो नवोद्भिज (seedling) उत्पन्न होता है जो अन्त में चने का पौधा बन जाता है। भ्रूण के दो मुख्य भाग होते हैं: (क) दो श्वेत मांसल काय जिनको बीजपत्र (cotyledons) कहते हैं, और (ख) एक क्षुद्र अक्ष जिससे बीजपत्र जुड़े रहते हैं। अक्ष का जो भाग बीज के नुकीले सिरे की ओर स्थित रहता है (१) मूलांकुर (radicle) कहलाता है; और दूसरा सिरा जो दोनों बीजपत्रों के मध्य में स्थित रहता है (२) प्रांकुर या भ्रूणाग्र (plumule) कहलाता है। प्रांकुर चोटी की ओर अनेक सूक्ष्म पत्तियों से आवेष्ठित रहता है। इसलिये यह देखने में कुछ-कुछ एक छोटे पंख के सदृश्य लगता है। जब बीज अंकुरित होता है तो मूलांकुर से मूल उत्पन्न होता है और प्रांकुर से प्ररोह (shoot)। बीजपत्रों में खाद्य पदार्थ संचित रहता है।

चन का बीज— { बीजावरण, बीजकवच, वृन्तक, अण्डद्वार, संघिरेखा और अन्तःकवच सहित
भ्रूण— { मूलांकुर तथा प्रांकुर सहित अक्ष
मांसल, खाद्य पदार्थ सहित दो बीजपत्र }

मटर के बीज (Pea Seed) के भाग (चित्र ३)

(१) बीजावरण (seed-coats)—बीज आकार में कुछ-कुछ गोल सा होता है और दो पृथक स्पष्ट बीजावरणों से ढका होता है। इन दो आवरणों में से बाह्य श्वेत आवरण बीजकवच (testa) कहलाता है, और जब बीज पानी में भिगोया जाता है तो यह आसानी से अलग हो जाता है। बीजकवच के अन्दर एक ढीला, पतला, पारदर्शक, झिल्लीकृत आवरण रहता है। इस भीतरी आवरण को अन्तःकवच (tegmen) कहते हैं। बीजावरण के एक ओर एक संकरा, लम्बा चिह्न स्पष्ट दिखाई देता है जो उस विन्दु का प्रतीक है जहां पर कि बीज अपने वृन्त से जुड़ा रहता है; इसको वृन्तक कहते हैं। वृन्तक के समीप एक सिरे पर एक सूक्ष्म छिद्र है जिसको अण्डद्वार (micropyle) कहते हैं। जब बीज अंकुरित होता है तो मूलांकुर अण्डद्वार के द्वारा वाहर आता है। वृन्तक से संलग्न बीजकवच में एक कूटक दिखाई देता है, यह संघिरेखा (raphe) है।
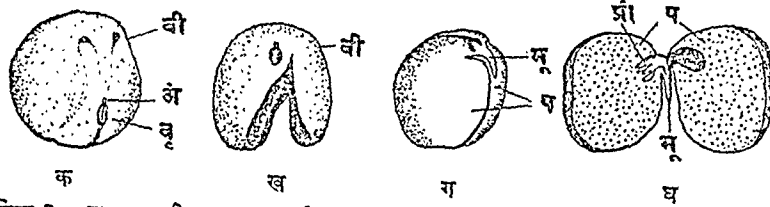
चित्र ३—मटर का बीज। क, सम्पूर्ण बीज; ख, बीजावरण, वृन्तक और अण्डद्वार सहित; ग, भ्रूण (बीजावरण को हटाने के बाद); घ, भ्रूण खुले हुये बीजपत्रों सहित। वी, बीजावरण; अं, अण्डद्वार; वृ, वृन्तक; मू, मूलांकुर; प, बीजपत्र; प्रां, प्रांकुर।

(२) भ्रूण (embryo)—बीजावरण को हटाने के बाद एक श्वेत मांसल काय दिखाई देता है, यह भ्रूण है। इसके दो भाग होते हैं: (क) दो मांसल बीजपत्र जिनमें चने के बीज के समान खाद्य पदार्थ संचित रहता है, और (ख) एक क्षुद्र अक्ष जिससे बीजपत्र जुड़े रहते हैं। अक्ष का वह भाग जो बीजपत्र के बाहर स्थित है अन्दर की ओर मुड़ा होता है और अण्डद्वार की ओर है (i) मूलांकुर (radicle) कहलाता है, और दूसरा भाग जो दो बीजपत्रों के बीच में स्थित है (ii) प्रांकुर (plumule) कहलाता है। प्रांकुर के सिरे पर कुछ सूक्ष्म तरुण पत्तियां होती हैं।

मटर का बीज—
- बीजावरण, बीजकवच, वृन्तक, अण्डद्वार, संधिरेखा और अन्तःकवच सहित
- भ्रूण—
  - मूलांकुर और प्रांकुर सहित अक्ष
  - मांसल, खाद्य पदार्थ सहित दो बीजपत्र
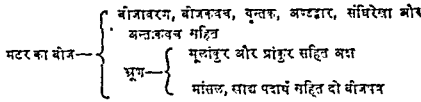
सेम के बीज (Bean Seed) के भाग (चित्र ४)

(१) बीजावरण—सेम का बीज लगभग अंडाकार होता है और एक काले या लाल कठोर बीजावरण से ढका रहता है। बीजावरण दो स्तरोंका बना होता है जो एक दूसरे से सायुज्यित रहते हैं। बाह्य आवरण बीजकवच और आन्तरिक आवरण अन्तःकवच कहलाता है। बीजावरण के सिरे पर एक श्वेत दीर्घित कूटक होता है जिसको संधिरेखा कहते हैं। संधिरेखा के आधारलग्न भाग में एक स्पष्ट चौड़ा चिह्न (किण) होता है जिसे वृन्तक कहते हैं। संधिरेखा के दूसरे सिरे पर वृन्तक से दूर एक सूक्ष्म लेकिन स्पष्ट छिद्र होता है जो अण्डद्वार है। यदि भिगोये हुए बीज को धीरे से दबाया जाय तो इस द्वार से पानी निकलता हुआ दिखाई देता है।
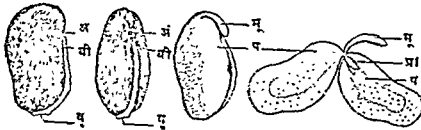
चित्र ४—सेम का बीज। अं, अण्डद्वार; बी, बीजावरण; वृ, वृन्तक; मू, मूलाकुर; प, बीजपत्र; प्रा, प्राकुर।

(२) भ्रूण—बीजावरण को हटा देने के बाद उसके अन्दर पूरी जगह घेरे हुए एक स्पष्ट, श्वेत मासल काय दिखाई देता है। यह भ्रूण है। इसके दो भाग होते हैं: (क) दो मांसल बीजपत्र, और (ख) एक अक्ष जिसपर बीजपत्र जुड़े रहते हैं। अक्ष का वह भाग जो अपनी चोटी अण्डद्वार की ओर किये हुए बाहर की ओर रहता है (i) मूलांकुर है, और अक्ष का दूसरा भाग जो बीजपत्रों के बीच में स्थित रहता है और सूक्ष्म, तरुण पत्तियों का बना होता है (ii) प्रांकुर कहलाता है।

एरंड (रेंड़ी) के बीज (Castor Seed) के भाग (चित्र ५)

(१) बीजावरण—कड़ा और काला सा चित्तीदार छिल्का बाह्य बीजावरण होता है। बीजावरण के एक सिरे पर एक श्वेत काय होता है जो अण्डद्वार पर निर्मित एक उद्वर्ध (outgrowth) है, इसे बीजचोल (caruncle) कहते हैं। बीजचोल से

लगभग छिपा हुआ बीजावरण पर एक छोटा चिह्न दिखाई देता है जो कि उस स्थान को प्रदर्शित करता है जहां पर कि बीज अपने वृन्त से जुड़ा रहता है, यह वृन्तक है। बाह्य कड़े
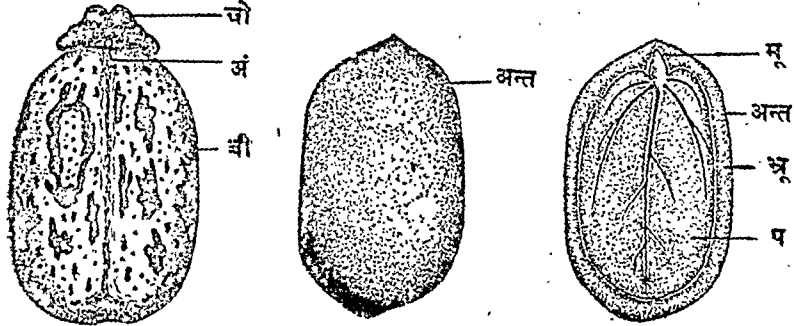
चित्र ५ क—एरंड का बीज। चो, बीजचोल; अं, वृन्तक; बी, बाह्य बीजावरण; अन्त, आन्तर बीजावरण; भ्रू, भ्रूणपोष; प, बीजपत्र; मू, मूलांकुर।

बीजावरण को अलग करने पर एक भीतरी पतला, झिल्लीकृत आवरण स्पष्ट दिखाई देता है जो भ्रूणपोष या श्विति को घेरे रहता है। बीज के दोनों आवरणों में से वाह्य आवरण को **बीजकवच** और आन्तरिक आवरण को **अन्तःकवच** कहते हैं। बाह्य बीजावरण या बीजकवच पर वृन्तक से नीचे की ओर एक कूटक दिखाई देता है; यह वृन्त के बीजकवच से सायुज्यित होने से बनता है और **संधिरेखा** कहलाता है।

(२) **भ्रूणपोष** (endosperm) या **श्विति** (albumen)—बीजावरणों को अलग करो और अवलोकन करो कि उनके अन्दर एक श्वेत, मांसल पुंज (mass) दिखाई देता है, यह **भ्रूणपोष** या **श्विति** है। यह संचित भोज्य पदार्थ, विशेषकर तैल, का भाण्डागार है, जो कि भ्रूण द्वारा अंकुरण काल में उपयोग में लाया जाता है।

(३) **भ्रूण**—यह भ्रूणपोष में सन्निविष्ट पड़ा रहता है। भ्रूणपोष को चीर करके खोलो और अवलोकन करो कि भ्रूण में दो **बीजपत्र** और उनके बीच एक क्षुद्र **अक्ष** होता है। (क) बीजपत्र पतले, चपटे, पत्र सदृश होते हैं और इनमें शिराएं स्पष्ट दिखाई देती हैं,
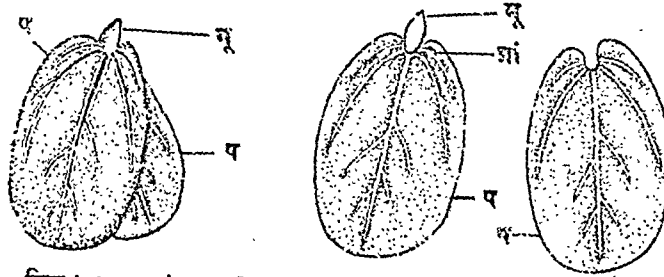
चित्र ५ ख—एरंड का बीज। प, बीजपत्र; मू, मूलांकुर; प्रां, प्रांकुर

और (ख) अक्ष बहुत छोटा होता है और इसके दो भाग होते हैं, (i) मूलांकुर जो कि बीजचोल की ओर एक छोटा सा प्रोद्वर्ध है, और (ii) प्रांकुर जो कि अक्ष का कुण्ठित आन्तरिक सिरा है और दो बीजपत्रों के बीच में स्थित है। प्रांकुर की चोटी अनेक छोटी पत्तियों से आच्छादित रहती है। मूलांकुर से जड़ उत्पन्न होती है और प्रांकुर से प्ररोह। बीजपत्र भ्रूणपोष में सन्निविष्ट (embedded) रहते हैं और उनका कार्य खाद्य पदार्थ को भ्रूणपोष से मूलांकुर तथा प्रांकुर में पहुंचाना है, और बाद में बीज के अंकुरण के पश्चात वे पर्ण सदृश और हरे हो जाते हैं। (देखिये चित्र १०)

एरंड का बीज—
- बीजावरण, बीजकवच, वृन्तक, बीजचोल, सधिरेखा और अन्त:कवच सहित
- खाद्य पदार्थ से भरा हुआ भ्रूणपोष
- भ्रूण—
  - मूलांकुर तथा प्रांकुर सहित अक्ष
  - पतले, पर्ण सदृश दो बीजपत्र
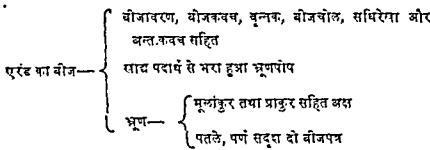
धान के दाने (Rice Grain) के भाग (चित्र ६)

धान का दाना एक छोटा एक-बीज-वाला (one-seeded) फल है। प्रत्येक दाना एक भूरे तुष या छिल्का (husk) के अन्दर रहता है जिसके दो भाग होते हैं, जो एक दूसरे को अंशतः ढके रहते हैं; बाह्य और बड़े भाग को पुष्पी तुष निपत्र (flowering glume) और आन्तरिक व छोटे भाग को अवपत्र (palea) कहते हैं। धान के दाने के आधारतल पर दो छोटे श्वेत शल्क होते हैं जिनको अपुष्पी तुष निपत्र (empty glumes) कहते हैं। चावल के दाने और तुष के मिले रूप को धान का दाना कहते हैं।

(१) बीजावरण—तुष को अलग करने पर एक भूरा झिल्लीकृत स्तर दाने से चिपका हुआ दिखाई देता है। यह स्तर बीजावरण और फल भित्ति या फलावरण (pericarp) के सायुज्यित होने से बनता है।

(२) भ्रूणपोष—यह दाने का अधिकांश भाग होता है और भोज्य पदार्थ से भरा रहता है। दाने के अनुदैर्घ्य काट में यह भ्रूण से एक निश्चित स्तर के द्वारा, जिसे उपकला (epithelium) कहते हैं, स्पष्ट पृथक दिखाई देता है।

(३) भ्रूण—यह बहुत छोटा होता है और भ्रूणपोष के एक सिरे की प्रसीता (groove) में रहता है। इसके दो भाग होते हैं: (क) एक वर्माकार बीजपत्र जिसको वर्णिका (scutellum) कहते हैं, और (ख) एक क्षुद्र अक्ष जिसके ऊपरी भाग को (i) प्रांकुर और निचले भाग को (ii) मूलांकुर कहते हैं। प्रांकुर छोटी पत्तियों से आवेष्टित रहता है, और मूलांकुर की रक्षा के लिये एक मूलछद होता है।

संपूर्ण प्रांकुर (वर्धमान अग्र, growing point और सत्य पत्र, foliage leaves) एक पर्ण आवरण से आच्छादित रहता है जिसको **प्रांकुर चोल या भ्रूणाग्र चोल** (coleoptile) कहते हैं। इसी प्रकार मूलांकुर भी एक मूल आवरण से आवृत रहता है जिसको भ्रूण
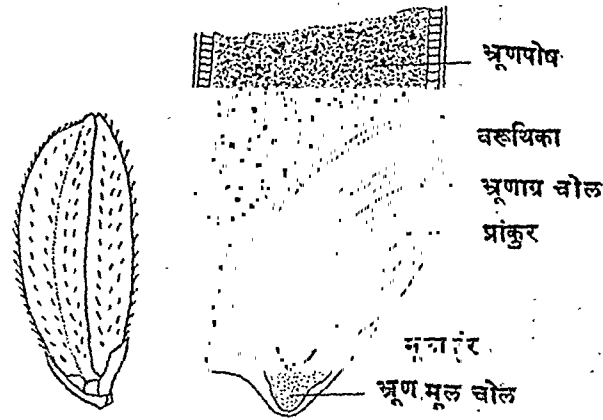
चित्र ६—धान का दाना : क, दाना छिलके के अन्दर;
ख, दाना अनुदैर्घ्य काट में (एक भाग)।

मूल चोल (coleorhiza) कहते हैं। वरूथिका के विलोम पार्श्व में एक छोटा उभरा हुआ भाग होता है जिसको **बहिःस्तर** (epiblast) कहते हैं। इस रचना को दूसरा विलोपित (suppressed) बीजपत्र माना गया है। वरूथिका का तल स्तर जो कि भ्रूणपोष के सम्पर्क में रहता है उपकला (epithelium) कहलाता है। इसका कार्य भ्रूणपोष में संचित भोज्य पदार्थ का पाचन और अवशोषण करना है।

मक्का के दाने (Maize Grain) के भाग (चित्र ७)

धान के दाने की भांति मक्का का दाना भी एक छोटा एक-बीज-वाला फल है। बीज फल की भित्ति से चिपका रहता है और उससे पृथक्करणशील नहीं है। दाने के एक ओर एक छोटा अपारदर्शी, श्वेत, त्रिकोण क्षेत्र शेष दाने से बिलकुल अलग दिखाई देता है। भ्रूण इस क्षेत्र में सन्निविष्ट रहता है। इस क्षेत्र से होते हुये दाने के अनुदैर्ध्य काट (longitudinal section) में निम्नलिखित भाग दिखाई देते हैं:

(१) **बीजावरण**—यह एक पतला स्तर है जो सम्पूर्ण दाने को आवेष्ठित किये हुये है। यह स्तर बीजावरण और फल भित्ति या फलावरण (pericarp) के सायुज्यित होने से बना है।

(२) **भ्रूणपोष**—दाना एक स्पष्ट स्तर, अधिच्छद (epithelium),

द्वारा दो असमान भागों में विभाजित होता है। बड़ा भाग भ्रूणपोष, और छोटा भाग भ्रूण होता है। यदि दाने का कटा हुआ भाग आयोडीन के मन्द घोल से शोधित किया जाय तो पूरा भ्रूणपोष गहरा नीला हो जाता है, और भ्रूण पीलापन ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार दोनों भाग स्पष्ट विभिन्न हो जाते हैं।

(३) भ्रूण—इसके दो भाग होते हैं: (क) चावल के दाने की भांति ढाल के आकार का बीजपत्र जिसको वरूथिका कहते हैं, और (ख) अक्ष। अक्ष के ऊपर का भाग जिसके सिरे पर छोटी-छोटी पत्तियां रहती हैं प्रांकुर कहलाता है, और निचला भाग जिसमें मूलच्छद रहता है मूलांकुर कहलाता है। प्रांकुर एक पर्ण आवरण से आवृत रहता
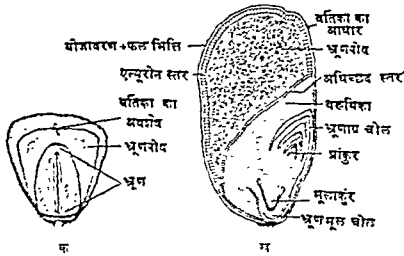
चित्र ७—मक्का का दाना। क, सम्पूर्ण दाना; ख, दाना अनुदैर्घ्य काट में।

है जिसको प्रांकुर चोल या भ्रूणाग्र चोल कहते हैं, और मूलांकुर एक मूल आवरण से आवृत रहता है जिसको भ्रूण मूल चोल कहते हैं। वरूथिका का तल स्तर जो कि भ्रूणपोष के सम्पर्क में रहता है उपकला (epithelium) कहलाता है। इसका कार्य संचित भोज्य पदार्थ का पचाना और अवशोषण करना है।

नोट—चावल, गेहूं, मक्का, जौ, जई, इत्यादि अन्नों, तथा ज्वार, बाजरा कोदों और घास कुल के दूसरे पौधों में बीजपत्र को वरूथिका कहते हैं। यह उपकला की सहायता से वर्धमान भ्रूण को भ्रूणपोष से खाद्य पदार्थ प्रदान करता है।

मक्का का दाना—
- फलावरण से सायुज्यित बीजावरण
- खाद्य पदार्थ से भरा हुआ भ्रूणपोष
- भ्रूण—
  - मूलांकुर व भ्रूण मूल चोल और प्रांकुर व भ्रूणाग्र चोल सहित अक्ष
  - वर्माकार बीजपत्र (वरूथिका)—१

द्विबीजपत्री (Dicotyledons) और एकबीजपत्री (Monocotyledons)

'पुष्पी' पादप दो बड़े वर्गों में विभाजित किये गये हैं, द्विबीजपत्री और एकबीजपत्री। सब द्विबीजपत्री पौधों में बीज के भ्रूण में दो बीजपत्र होते हैं और सब एकबीजपत्री पौधों में बीज के भ्रूण में केवल एक बीजपत्र होता है। इमली, लौकी, कपास, संतरा, कटहल, चना, अरहर, आम, मटर, एरंड, पपीता, पोस्ता इत्यादि द्विबीजपत्री पौधों के सामान्य उदाहरण हैं; और चावल, गेहूं, मक्का, घास, ताड़, केला, ऑर्किड, सूरन कुल के पौधे एकबीजपत्री पौधों के सामान्य उदाहरण हैं। द्विबीजपत्री पौधे एकबीजपत्री पौधों से संख्या में बहुत अधिक हैं और इनमें क्रमानुसार १५९,००० और ४०,००० स्पीशीज़ हैं।

भ्रूणपोषी और अभ्रूणपोषी बीज (Albuminous and Exalbuminous Seeds)

(१) वे बीज भ्रूणपोषी कहलाते हैं जिनमें **भ्रूणपोष** पाया जाता है। यह एक विशेष प्रकार के ऊतकों का पुंज है और भ्रूण के लिये खाद्य पदार्थ का भाण्डागार है। जिन बीजों में भोजन के संचय के लिये कोई विशेष ऊतक नहीं होता **अभ्रूणपोषी** कहलाते हैं। द्विबीजपत्री बीजों में भ्रूणपोष अन्दर स्थित भ्रूण को आच्छादित करता है; इसके विपरीत एकबीजपत्री बीजों में भ्रूणपोष एक ओर हो सकता है, जैसे धान्यों (cereals) में, या भ्रूण भ्रूणपोष में सन्निविष्ट हो सकता है, जैसे ताड़ में। एकबीजपत्री बीज अधिकतर भ्रूणपोषी होते हैं। इसके विपरीत द्विबीजपत्री पौधों में अभ्रूणपोषी बीज भ्रूणपोषी बीजों की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं।

(२) भ्रूणपोषी बीजों में खाद्य पदार्थ भ्रूणपोष में स्थित रहता है। बीज के विकास के पूर्व प्रक्रम में ही इनमें भोजन संचयन होने लगता है। इसके कारण और इसके साथ-साथ नये कोशिकाओं के निर्माण के कारण भ्रूणपोष तेजी से वृद्धि करता है और बढ़ता है। अन्त में परिपक्व बीज में यह भ्रूण के लिये खाद्य पदार्थ के भाण्डागार का काम करता है। जब बीज का अंकुरण होता है तो यह संचित भोज्य पदार्थ भ्रूण द्वारा उपयोग में लाया जाता है।[1] भ्रूणपोषी बीजों में एक बीजपत्र (एकबीजपत्री पौधों में) या दो बीजपत्र (द्विबीजपत्री पौधों में) छोटे तथा पतले होते हैं और जैसे-जैसे बीज का अंकुरण होता है उनका कार्य भ्रूणपोष से खाद्य पदार्थ का अवशोषण करना और उसको मूलांकुर तथा प्रांकुर को प्रदान करना है।

अभ्रूणपोषी बीजों में, जैसा कि अनेक द्विबीजपत्री पौधों में, जो खाद्य पदार्थ बीज के विकास के पूर्व प्रक्रम में भ्रूणपोष में संचयन होता है विकासन भ्रूण द्वारा उपयोग होता रहता है इसलिये भ्रूणपोष निःशेषित (exhausted) हो जाता है। इस दशा में खाद्य पदार्थ बीजपत्रों में जमा रहता है जिसके कारण वे मोटे व मांसल हो जाते हैं।

---

[1] बीज में संचित खाद्य पदार्थ के लिये देखिये अध्याय ८, भाग ३।

द्विबीजपत्री बीज
- अभ्रूणपोषी, उदाहरणार्थ, चना, मटर, सेम, लौकी, इमली, आम, बादाम, दालें, सूर्यमुखी, अमरूद, इत्यादि।
- भ्रूणपोषी, उदाहरणार्थ, एरंड, पोस्ता, परौना, शरीफा, इत्यादि।

एकबीजपत्री बीज
- अभ्रूणपोषी, उदाहरणार्थ, ऑर्किड्स, सेजीटेरिया (*Sagittaria*) अलिज़्मा (*Alisma*), नाजास (*Najas*), इत्यादि।
- भ्रूणपोषी, उदाहरणार्थ, धान्य (चावल, गेहूं, जई, जौ), ज्वार, बाजरा, घासें (गन्ना और बांस समेत), ताड़, लिली, सूरन कुल के पौधे, इत्यादि।

अंकुरण (GERMINATION)

बीज के अन्दर भ्रूण सुषुप्तावस्था (dormant) में होता है, लेकिन जब बीज को नमी प्राप्त होती है तो भ्रूण सक्रिय हो जाता है और वृद्धि करना आरम्भ करता है, तथा एक छोटे नवोद्भिज (seedling) में विकसित हो जाता है। भ्रूण के सुषुप्तावस्था से जागने तथा वृद्धि प्राप्त करने की क्रिया को अंकुरण कहते हैं। भ्रूण बीजपत्र में, या भ्रूणपोष की उपस्थिति में भ्रूणपोष में संचित खाद्य द्रव्य को अवशोषण करके वृद्धि करता है। प्रारम्भ में बीज नमी अवशोषण करता है और बहुत काफी फूल जाता है। तब मूलांकुर दीर्घित होता है और अण्डद्वार द्वारा बाहर निकल कर मूल या जड़ बन जाता है। भूमि में बीज किसी भी स्थिति में डाला जाय मूलांकुर सदैव नीचे की ओर वृद्धि करता है और मूल तंत्र उत्पन्न करता है। इसकी वृद्धि की गति प्रांकुर की अपेक्षा यथेष्ट तीव्र होती है। बीज के फूलने के कारण बीजावरण का स्फुटन हो जाता है और बीजपत्र थोड़ा या पूर्णतया एक दूसरे से पृथक हो जाते हैं और अन्दर स्थित प्रांकुर को रास्ता मिल जाता है। अधिकतर दशाओं

चित्र ८ चित्र ९

उपरिभूमिक अंकुरण। चित्र ८—कद्दू का बीज। चित्र ९—इमली का बीज।
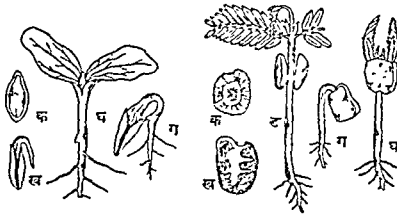
में वीजपत्र प्रकाश की उपस्थिति में हरे रंग के हो जाते हैं और पर्ण सदृश दिखाई देने लगते हैं और थोड़े या अधिक समय तक जीवित रहते हैं। कुछ बीजों में ये सिकुड़ जाते हैं और जब मूल जमीन में काफी गहराई तक पहुँच जाता है और नवोद्भिज प्रतिष्ठापित (established) हो जाता है तो वे गिर जाते हैं। प्रांकुर दोनों वीजपत्रों के बीच में छिपा हुआ रहता है, और जब मूलांकुर थोड़ा बहुत दीर्घित हो जाता है तो प्रांकुर वीजपत्रों से बाहर निकल आता है और ऊपर की ओर वृद्धि करने लगता है। शनैः शनैः यह प्ररोह में विकसित हो जाता है। बीजों का अंकुरण मुख्यतया दो प्रकार का होता है : उपरिभूमिक (epigeal) और अधोभूमिक (hypogeal)।
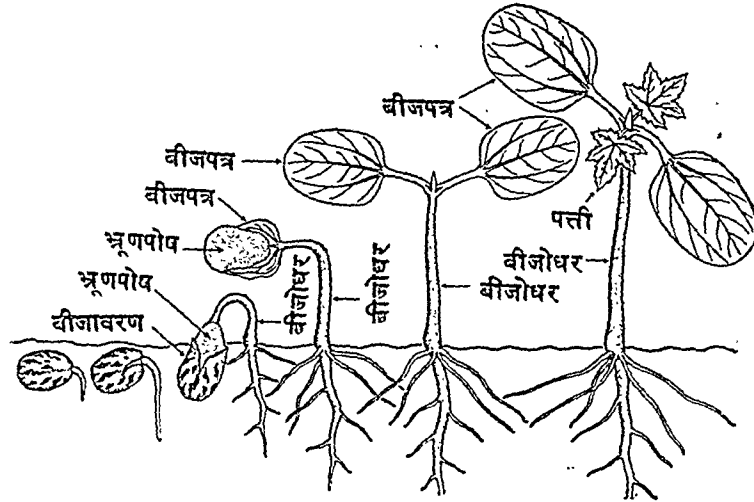
उपरिभूमिक अंकुरण। चित्र १०—एरंड का बीज।

(१) उपरिभूमिक अंकुरण (epigeal germination) (चित्र ८–१०)–कुछ बीजों, जैसे ककड़ी, कपास, लौकी, एरंड, पपीता, आदि में बीजोधर या बीजोधर मूल (hypocotyl) (अक्ष का वह भाग जो बीजपत्रों के ठीक नीचे रहता है) लम्बाई में तेजी से वृद्धि करता है जिसके परिणामस्वरूप वीजपत्र भूमि के ऊपर खिंच आते हैं। इस प्रकार का अंकुरण उपरिभूमिक (epigeal) कहलाता है (*epi*, उप, *ge*, भूमि)। इस प्रकार के अधिकतर बीजों में जैसे ही वीजपत्र भूमि से ऊपर आते हैं वे चपटे, हरे पर्ण सदृश दिखाई देने लगते हैं। इसके विपरीत दूसरे बीजों में, विशेषकर जब वीजपत्र बहुत मोटे होते हैं, जैसे इमली, बड़ी सेम (sword bean) इत्यादि में, वे पर्ण सदृश नहीं होते लेकिन शनैः शनैः सिकुड़ कर गिर जाते हैं।

(२) अधोभूमिक अंकुरण (hypogeal germination) (चित्र ११–२)—

दूसरे बीजों, जैसे चना, मटर, बाकला (broad bean), मूंगफली, आम, इत्यादि में बीजपत्र भूमि के अन्दर या ठीक उसके धरातल पर ही रहते हैं। इन दशाओं में बीजोपर
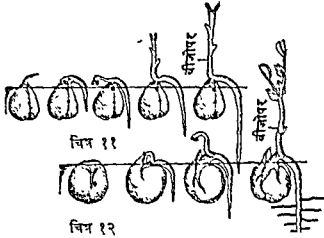
अधोभूमिक अंकुरण। चित्र ११—चने का बीज ; चित्र १२—मटर का बीज।

या बीजोपराक्ष (epicotyl), अर्थात् अक्ष का वह भाग जो बीजपत्रों के ठीक ऊपर रहता है, लम्बाई में बढ़ता है और प्रांकुर (plumule) को ऊपर ढकेल देता है। बीजपत्र हरे नहीं होते, लेकिन शनैः शनैः सूखते जाते हैं और अन्त में गिर जाते हैं। इस प्रकार के अंकुरण को अधोभूमिक (hypogeal) अंकुरण कहते हैं।

एकबीजपत्री बीजों का अधोभूमिक अंकुरण—एकबीजपत्री बीज अधिकतर भ्रूणपोषी होते हैं और इनके अंकुरण में बीजपत्र और भ्रूणपोष भूमि के अन्दर दबे रहते हैं, अतः इनका अंकुरण अधोभूमिक होता है (केवल प्याज में यह उपरिभूमिक होता है)। एकबीजपत्री बीजों (उदाहरणार्थ मक्का और धान) में बीजपत्र या वरूथिका (scutellum) भ्रूणपोष में संचित भोजन का अवशोषण करता है। अंकुरित होने
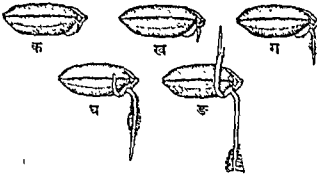
अधोभूमिक अंकुरण। चित्र १३—धान।

पर मूलांकुर अपना रास्ता मूल आवरण या **भ्रूण मूल चोल** (coleorhiza) में से होकर बना लेता है जो कि आवरण का नीचे का छोटा कालर के समान सिरा है। प्रांकुर, आवरण के ऊपरी स्पष्ट बेलनाकार भाग, जिसको प्रांकुर आवरण या **भ्रूणाग्र चोल** (coleoptile) कहते हैं, से होकर फूट निकलता है (देखिए चित्र १३–१४)। मूलांकुर नीचे की ओर वृद्धि करता है और प्रारम्भ में यह प्राथमिक मूल (primary root) बनाता है। अधिकतर दशाओं में ये प्राथमिक मूल शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और भ्रूणाक्ष के आधार से नये रेशेदार (fibrous) मूल निकल आते हैं। प्रांकुर ऊपर की ओर वृद्धि करता है।
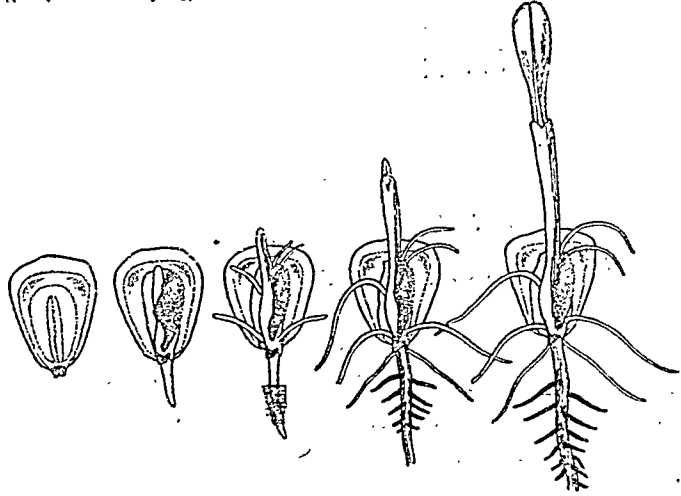
अधोभूमिक अंकुरण। चित्र १४—मक्का का दाना।

प्रांकुर आवरण से शीघ्र पहली पत्ती प्रस्फुटित हो जाती है और बाद में उत्तरोत्तर दूसरी पत्तियां निकलने लगती हैं। अधिकतर ताड़ों (palms) के बीजों के अंकुरण में बीजपत्र का एक भाग आवरण के सदृश संरचना बनाता है जो कि लम्बाई में काफ़ी बढ़ जाता है और भ्रूणाक्ष को कुछ गहराई तक भूमि में ले जाता है। (देखिये चित्र १८)।

विशेष प्रकार का अंकुरण—खारे पानी की झीलों और समुद्र तट पर उगने वाले बहुत से पौधों के बीजों का अंकुरण एक विशेष प्रकार का होता है जिसको **पितृस्थ या जनकस्थ अंकुरण** (viviparous germination) कहते हैं। बीज, फल के भीतर तभी अंकुरित होने लगता है जब कि यह जनक (parent) पौधे से ही जुड़ा होता है और उससे पोषित होता रहता है। मूलांकुर दीर्घित हो जाता है और नीचे के भाग में फूल जाता है। अन्त में नवोद्भिज् (seedling) जनक पौधे से अपने बढ़ते हुये भार के कारण अलग हो जाता है और उदग्रतया गिरकर नीचे

मुलायम कीचड़ में प्रविष्ट हो जाता है। मूलांकुर भूमि में प्रवेश करता है और दब जाता है और शीघ्र ही स्थिरता के लिये पर्व मूलों का निर्माण होता है। इसके उदाहरण राइज़ोफोरा (*Rhizophora*), सोनेरेशिया (*Sonneratia*), एविसेनिया (*Avicennia*) और ईजीसेरास (*Aegiceras*) हैं।

चित्र १५—पितृस्थ अंकुरण। क-ख, अंकुरण की अवस्थाएं; ग, नवोद्भिज।

अंकुरण के लिये आवश्यक परिस्थितियां—

यदि कीड़ों या कवकों द्वारा भ्रूण को कोई हानि न पहुंच सके तो शुष्क बीज अपनी प्रकृति के अनुसार महीनों क्या वर्षों तक अपनी अंकुरण क्षमता (viability) स्थापित रखते हैं। तब उनके अंकुरण के लिये निम्नलिखित बाह्य परिस्थितियों की आवश्यकता होती है: (१) जल या नमी, (२) मध्यम ताप (moderate temperature), और (३) वायु या आक्सीजन।
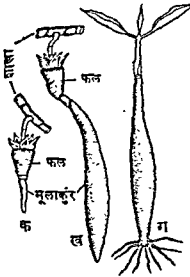
(१) नमी (Moisture)—बीज की वृद्धि और विकास के लिये जीवद्रव्य (protoplasm) जल से संतृप्त (saturated) होना चाहिये। हवा में सुखाये हुए बीजों में १० से १५ प्रतिशत पानी रहता है। पानी की इतनी कम मात्रा की उपस्थिति में जीवकर क्रिया (vital activity) सम्भव नहीं है। इसलिये सुषुप्त भ्रूण को क्रियाशील बनाने के लिये, बीजपत्रों या भ्रूणपोष में संचित विभिन्न लवणों तथा कार्बनिक पदार्थों को विलीन करने के लिये, आवश्यक रासायनिक परिवर्तनों के लिये, और बीजावरण को नरम करने के लिये, जिससे भ्रूण को बाहर निकलने में सहायता मिले, पानी की आवश्यकता होती है।

(२) ताप (Temperature)—बीज के अंकुरण के लिये उपयुक्त ताप की आवश्यकता है। जीवद्रव्य ताप की निश्चित सीमा में साधारणतः कार्य करता है। इस सीमा के अन्दर, जो कि बीज की प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है, जितना उच्चतर ताप होगा उतना ही द्रुत अंकुरण होगा।

(३) वायु या हवा (Air)—अंकुरित बीजों के श्वसन के लिये ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है जो कि वायु का एक अवयव है। इस क्रिया में ऊर्जा (energy) की बहुत अधिक मात्रा विमुक्त होती है। अंकुरित बीजों में श्वसन बहुत तीव्र गति से होता है क्योंकि क्रियाशील जीवद्रव्य को अविराम ऑक्सीजन के प्रदाय की आवश्यकता

होती है, इसलिये जो बीज भूमि में अधिक गहराई में बोया जाता है, वह या तो अंकुरण के चिह्न बहुत कम दिखलाता है या बिलकुल ही नहीं दिखलाता, क्योंकि उसको ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा नहीं मिलती।

यहां यह अवलोकन कर लेना चाहिये कि प्रकाश अंकुरण के लिये आवश्यक परिस्थिति नहीं है। वास्तव में बीज अंधेरे में अधिक द्रुत गति से अंकुरित होते हैं। कुछ बीज, उदाहरणतः टमाटर और प्याज बिना अंधेरे में रखे अंकुरित नहीं होते। लेकिन उत्तरवर्ती वृद्धि के लिए प्रकाश अनिवार्य है। निरन्तर अंधेरे में उगाये हुये पौधे बहुत तेजी से लम्बाई में बढ़ते हैं, लेकिन दुर्बल होते हैं, पर्णहरिम नहीं बना पाते, और उनमें पीली तथा अविकसित पत्तियां होती हैं। इस अवस्था या दशा में नवोद्भिज पाण्डुरित (etiolated) कहलाता है।

तीन सेम के बीजों का प्रयोग (चित्र १६)

चित्र १६—तीन सेम के बीजों का प्रयोग।

एक साधारण प्रयोग द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है कि अंकुरण के लिये उपरोक्त सब परिस्थितियां आवश्यक हैं। इस प्रयोग को **तीन सेम के बीजों का प्रयोग** कहते हैं। लकड़ी के एक टुकड़े में हवा में सुखाये हुये तीन बीज इस प्रकार लगा दिये जाते हैं कि एक-एक तो दोनों सिरों पर और एक बीच में हो। तब इस लकड़ी को बीकर में रख दिया जाता है और इसमें इतना पानी (पानी पहले उबाल कर ठंडा कर लिया जाता है ताकि जल की विलीन वायु निकल जाय) भरा जाता है कि बीच का बीज पानी में आधा डूबा रहे। बीकर किसी अल्प उष्ण स्थान में कुछ दिनों के लिये रख दिया जाता है। समय-समय पर बीकर में पानी डालते रहते हैं ताकि पानी अपने मूल तल पर रहे। यह देखने में आता है कि बीच का बीज सामान्यतः अंकुरित होता है क्योंकि उसको पर्याप्त नमी, ऑक्सीजन और उष्मा प्राप्त है। पानी के अन्दर स्थित निचले बीज को नमी तथा उष्मा प्राप्त है लेकिन ऑक्सीजन नहीं मिलता, इसलिये मूलांकुर तो निकल आता है लेकिन भावी वृद्धि ऑक्सीजन के अभाव के कारण रुक जाती है। ऊपर वाले बीज में अंकुरण के कोई चिह्न नहीं दिखाई देते क्योंकि उसको केवल पर्याप्त ऑक्सीजन तथा उष्मा तो प्राप्त होता है लेकिन नमी नहीं मिलती।

इस प्रयोग से स्पष्ट विदित होता है कि नमी और ऑक्सीजन अंकुरण के लिये अनिवार्य हैं; ताप का प्रभाव केवल अप्रत्यक्षरूप से सिद्ध होता है। यह प्रत्यक्षरूपेण निम्नलिखित विधि से सिद्ध किया जा सकता है। यदि बीजों सहित बीकर को हिम-मिश्रण (freezing mixture) या उच्च स्थिर ताप वाले उष्मक (bath) में रखकर ताप को बहुत कम या बहुत अधिक कर दिया जाय लेकिन दूसरी परिस्थितियां वही रहें,

तो यह देखा जाता है कि कोई भी बीज अंकुरित नहीं होता। अतः ताप भी अंकुरण के लिये आवश्यक परिस्थिति है।

प्याज के बीज की संरचना तथा अंकुरण (चित्र १७)

संरचना—छोटा, काला बीज आकार में अर्ध-वृत्ताकार, एक ओर चपटा और संकीर्ण किनारे पर प्रसीती होता है। इसका बाह्य काला आवरण (क) बीजावरण या
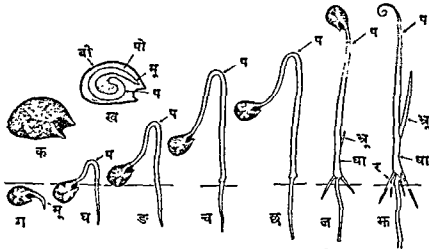
चित्र १७—प्याज का बीज। क, सम्पूर्ण बीज; ख, बीज अनुदैर्घ्य काट में; ग-झ, अंकुरण की अवस्थाएं; बी, बीजावरण; पो, भ्रूणपोष; मू, मूलांकुर; प, बीजपत्र; भ्रू, भ्रूणाग्र; घा, बीजोधर; र, रेशेदार मूल।

बीजकवच है। बीज को लम्बान में काटो और अवलोकन करो (ख) भ्रूणपोष—जो बीजावरण के अन्दर पतला श्वेत पुंज है, और (ग) भ्रूण जो कि पतला, दीर्घित, रंगहीन वक्र काय है और भ्रूणपोष में सन्निविष्ट रहता है। भ्रूण में एकल बीजपत्र, प्रांकुर और मूलांकुर होता है। वक्र काय का बड़ा भाग जो कि सिरे पर पाशित (looped) होता है बीजपत्र है और इसका संकीर्ण किनारा जो बीज के नोकदार किनारे की ओर अभिमुख होता है मूलांकुर है। प्रांकुर जो बहुत ही सूक्ष्म और अभिन्नित होता है, बहुत छोटे बीजोधर के प्रदेश में पार्श्व में छिपा रहता है और केवल अंकुरण के समय स्पष्ट दिखाई देता है।

अंकुरण—बीज अंकुरित होने पर मूलांकुर बीज के नुकीले सिरे से बाहर निकल आता है और नीचे की ओर वृद्धि करता है। बीजपत्र दीर्घित होता है और इसके पाशित किनारे के अतिरिक्त बाकी भाग बीज से बाहर निकल आता है और एक स्पष्ट पाशी (loop) या चाप बनाता है। यह हरे रंग का हो जाता है और पर्ण आवरण के रूप में परिदीर्घित होकर बीज को धरती के ऊपर उठा लेता है। अंकुरण उपरिभू क

होता है। वीजपत्र का सिरा अब तक वीज के अन्दर ही कुण्डलित रहता है और अवशोषण अंग का काम करता है, तथा भ्रूणपोष से खाद्य पदार्थ का अवशोषण करके वर्धमान अंगों को प्रदाय करता है। मूल और भी दीर्घित होता है और वीजपत्र गहरे हरे रंग का हो जाता है और प्रथम पर्ण का कार्य करता है। वीजपत्र और वृद्धि करता है और लगभग सीधा हो जाता है और शीर्ष में वीज को धारण करता है। वीजोधर के आधार पर थोड़ा फूला हुआ भाग दिखाई देने लगता है और इस भाग से कुछ रेशेदार मूल निकल आते है। थोड़ा ऊपर प्रांकुर पर्ण आवरण को फाड़कर वाहर निकल आता है और एक पतले काय के रूप में ऊपर को वृद्धि करता है। यह हरा हो जाता है और नवोद्भिज की दूसरी पत्ती वनाता है। वीजपत्र का कुंडलित भाग मुरझा जाता है और वीजावरण तुरन्त या कुछ देर वाद गिर जाता है। इस समय तक भ्रूणपोष भी निश्शेषित (exhausted) हो जाता है।
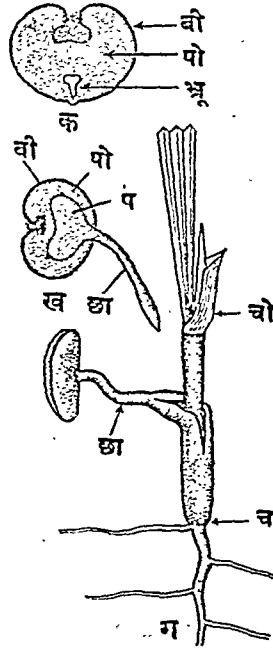
चित्र१८—खजूर का वीज। क, वीज काट में; ख, अंकुरित वीज काट में; ग, नवोद्भिज। वी, वीजावरण और फल की आन्तरभित्ति; पो, भ्रूणपोष; भ्रू, भ्रूण; प, वीजपत्र; छा, वीजपत्र की छाद; चो, भ्रूणाग्र चोल; च, भ्रूण मूल चोल।

खजूर के वीज (Date-palm Seed) की संरचना और अंकुरण (चित्र १८)

वीज का काला, पाषाणवत् आवरण **वीजावरण** है। अवलोकन करो कि यह वीज से चिपका रहता है। इसके एक ओर एक प्रसीता (groove) होती है। यदि वीज वीच में आर से पार काटा जाय तो एक सफेद पुंज दिखाई देता है जो एक गुहा (cavity) में भरा रहता है; यह श्वेत पुंज अष्टि (kernel) या **भ्रूणपोष** है। वीजावरण के समान यह भी कठोर और काष्ठीय है। इसकी कोशिका भित्तियां हेमीसैलूलोज़ या संचित सैलूलोज़ के भारी संचय के कारण वहुत स्थूल होती हैं। भ्रूण, प्रसीता से दूर परिधि के पास, भ्रूणपोष में सन्निविष्ट रहता है।

जव अंकुरण आरम्भ होता है तो एकल वीजपत्र वृद्धि करता है। यह एक पाचक रस स्रावित करता है जो कि संचित सैलूलोज़ पर क्रिया करता है और उसको विलेय वना देता है [संचित सैलूलोज़ शर्करा (sugar) में परिवर्तित हो जाता है]।

बीजपत्र शर्करा का अवशोषण करता है और भ्रूणपोष का व्यय करके स्वयं वृद्धि करता है। बीजपत्र का कुछ भाग आवरण के रूप में बीजावरण को फाड़कर बाहर निकल आता है और इसके अन्दर भ्रूण का अक्ष रहता है। बीजपत्र का यह आवरण दीर्घित होता है और भ्रूण के अक्ष को अपने साथ नीचे ले जाता है। जब यह धरती में प्रवेश कर जाता है तो अक्ष का मूलांकुर मूल आवरण या भ्रूण-मूल चोल को छेद कर बाहर निकल आता है और नीचे की ओर वृद्धि करके मूल बनाता है। अन्त में प्रांकुर, भ्रूणाग्र चोल को फाड़कर हवा में ऊपर की ओर वृद्धि करता है और प्ररोह बनाता है

नारियल के बीज की संरचना और अंकुरण (चित्र १९)

इसका स्थूल कर्पर (shell) या पाषाण फल का भाग है। इस कर्पर को फोड़ देने पर एक पतली व काली पर्त अष्टि (kernel) से चिपका हुआ दिखाई देगा। यह बीजावरण है। श्वेत, स्थूल अष्टि (गूरी) भ्रूणपोष है। तीनों आंखों में से एक पर भ्रूण एक छोटे अभिभित काय के समान दिखाई देता है। दूसरे ताड़ों के समान नारियल के बीज के अंकुरण में नियमित छाद (sheath) नहीं बनता और अभिभित भ्रूण अपने स्थान पर ही अंकुरित होता है। इसके नीचे का सिरा बढ़ता है और एक बीजपत्र बनाता है, जो क्रमशः एक गोलाकार स्पन्जी
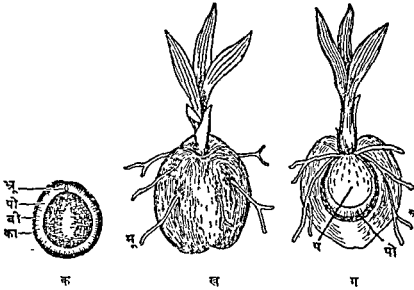
चित्र १९—नारियल का बीज। क, अनुदैर्घ्य काट में, ख, अंकुरित फल; ग, अंकुरित फल अनुदैर्घ्य काट में। भ्रू, भ्रूण; पो, भ्रूणपोष; बी, बीजावरण; का, काष्ठ; म, मूल; प, बीजपत्र।

काय में वृद्धि करता है और बीज के पूर्ण विवर को भर देता है। बीजपत्र की वृद्धि के साथ साथ भ्रूणपोष पतला होता जाता है। भ्रूण का ऊपरी सिरा एक छोटे **प्ररोह** में विकसित होता है जिसके आधार पर अनेक रेशेदार मूल उत्पन्न हो जाते हैं। ये मूल फल के स्थूल रेशेदार आवरण को छेद कर विभिन्न दिशाओं में निकल आते हैं।

बीजपत्रों के कार्य (Functions of Cotyledons)

(१) अभ्रूणपोषी बीजों में बीजपत्र में खाद्य पदार्थ संचित रहता है जो कि अंकुरित होते समय भ्रूण के काम आता है।

(२) भ्रूणपोषी बीजों में वे पाचक पदार्थ स्रावित करते हैं जो भ्रूणपोष में संचित अविलेय खाद्य पदार्थ पर क्रिया करके उसको विलेय कर देते हैं। तब वे इस विलेय खाद्य पदार्थ को अवशोषण कर मूलांकुर तथा प्रांकुर को प्रदाय करते हैं।

(३) जब बीजपत्र धरती के ऊपर ढकेल दिये जाते हैं, जैसे कि उपरिभूमिक अंकुरण में होता है, तो वे साधारणतः हरे रंग के हो जाते हैं और सामान्य पत्तियों का काम करते हैं, अर्थात् वे सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में भोजन का निर्माण करते हैं।

(४) एकबीजपत्री बीजों में बीजपत्र भ्रूणपोष से खाद्य पदार्थ अवशोषण करता है, और अंत में एक छाद के समान वृद्धि करता है और अंकुरण के समय मूलांकुर और प्रांकुर को बाहर निकालता है। घास कुल के पौधों में वरुथिका के उपकला स्तर (epithelial layer) द्वारा भोजन के अवशोषण में सहायता मिलती है।

अध्याय २

मूल (THE ROOT)

मूल पौधे के अक्ष का भूमि में नीचे की ओर जाने वाला भाग है और भ्रूण के मूलांकुर (radicle) से विकसित होता है। मूलांकुर का सीधा बढ़ता हुआ भाग प्राथमिक मूल (primary root) कहलाता है। यदि यह जीवित रहता है और निरन्तर वृद्धि करता है तो इसको मूसला मूल (tap root) कहते हैं। मूसला मूल सामान्यतः द्विबीजपत्री पौधों में बनता है। यह पार्श्व शाखाएं पैदा करता है जिनको परवर्ती मूल (secondary roots) कहते हैं, और ये फिर तृतीय मूल (tertiary roots) पैदा करते हैं, और इसी प्रकार यह क्रम जारी रहता है। ये सब पार्श्व मूल अग्राभिसारी अनुक्रम (acropetal succession) में उत्पन्न होते हैं, अर्थात् पुराने व लम्बे मूल अग्र भाग से दूर, और नये तथा छोटे मूल अग्र भाग की ओर रहते हैं। मूसला मूल संहति (tap root system) द्विबीजपत्री पौधों का संलक्षण समझा जा सकता है।
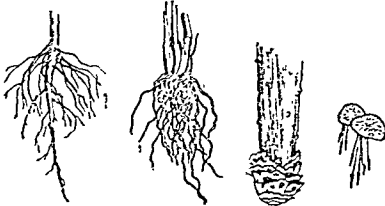
चित्र २० चित्र २१ चित्र २२ चित्र २३

चित्र २०—द्विबीजपत्री पौधे में मूसला मूल और पार्श्व मूल। चित्र २१—एकबीजपत्री पौधे में रेशेदार मूल। चित्र २२—केवड़ा में बहुमूलछद। चित्र २३—लेम्ना में मूलगोह।

एकबीजपत्री पौधों (monocotyledons) में भी मूलांकुर प्राथमिक मूल उत्पन्न करता है, लेकिन यह आगे विकसित नहीं होता या जल्दी ही नष्ट हो जाता है और इसके स्थान पर पतले मूलों का एक गुच्छा तने के आधार से निकलता है। ये रेशेदार मूल (fibrous root) कहलाते हैं। ये जड़ें तने या स्तम्भ (stem) की गाठों (nodes) से भी उत्पन्न होते हैं, जैसे गन्ना (sugarcane), बांस (bamboo) में, या प्रायः भूशायी शाखाओं के गाठों से, जैसे घासों (grasses) में। कुछ एकबी

पौधों में प्राथमिक मूल थोड़े या अधिक समय तक जीवित रहता है। रेशेदार मूल संहति (fibrous root system) एकबीजपत्री पौधों का संलक्षण माना जा सकता है।

मूल के प्रदेश (Regions of the Root)

मूल में निम्नलिखित प्रदेश चोटी या अग्रक (apex) से ऊपर की ओर पहचाने जा सकते हैं :

(क) मूलछद (Root-cap)—प्रत्येक मूल अग्रक भाग में एक टोपी या अंगुलित्र द्वारा ढका रहता है, जिसे मूलछद कहते हैं। यह मूल के कोमल अग्रक भाग की उस समय रक्षा करता है जब वह मिट्टी में अग्रसर होता है। जैसे-जैसे मूलछद का बाह्य भाग घिसता जाता है वैसे वैसे अधःस्थित वर्धन ऊतक (underlying growing tissue) द्वारा उत्पन्न नई कोशिकाएं इसमें जुड़ती रहती हैं। वास्तव में यह मूल का रक्षक प्रदेश है। मूलछद प्रायः जलीय पौधों (aquatic plants) में नहीं पाया जाता।

(ख) कोशिका भाजन का प्रदेश (Region of cell-division) – यह मूलछद के ठीक पीछे स्थित रहता है और लगभग एक मिलीमीटर की लम्बाई तक फैला रहता है। इस प्रदेश की कोशिकाओं में बारंबार कोशिका भाजन (cell division) होता रहता है।

(ग) दीर्घभावी प्रदेश (Region of Elongation) – यह कोशिका भाजन के प्रदेश के ठीक ऊपर स्थित होता है और इसका विस्तार १ से ५ मिलीमीटर तक होता है। इस प्रदेश की कोशिकाओं में बहुत तीव्र दीर्घन होता है। मूल की लम्बाई में वृद्धि इस प्रदेश की कोशिकाओं के दीर्घित होने के कारण होती है।

चित्र २४—मूल के प्रदेश। क, परिपक्वता का प्रदेश; ख, दीर्घभावी प्रदेश; ग, कोशिका भाजन का प्रदेश; घ, मूलछद।

(घ) परिपक्वता का प्रदेश (Region of Maturation)—जरा से अधिक ऊंचे तल पर मूल में बहुत बारीक रेशे सदृश संरचनाओं का घना समूह होता है, जिनको मूल रोम (root-hairs) कहते हैं। ये भूमि से पानी तथा खनिज लवणों का अवशोषण (absorption) करते हैं। वास्तव में यह मूल का अवशोषक प्रदेश है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में ऊतकों का भेदकरण होता है।

(ङ) पार्श्व मूलों का प्रदेश (Region of lateral roots)–यह परिपक्वता के प्रदेश से ऊपर स्थित होता है और स्तम्भ के आधार तक फैला रहता है। इस प्रदेश में मूल रोम लुप्त हो चुके होते है, और पार्श्व मूल अग्राभिसारी अनुक्रम से उत्पन्न होते हैं। आन्तरिक रूप में इस प्रदेश में प्राथमिक ऊतक (primary tissues) पूर्ण रूप से बन जाते हैं। इस प्रदेश के तीन मुख्य काम हैं, अर्थात् पौधों का भूमि में स्थिरीकरण या लांगलन (anchorage), पानी तथा अपक्व खाद्य पदार्थ का ऊर्ध्व संवाहन (upward conduction), और पार्श्व मूलों का निर्माण।

मूल के संलक्षण (Characteristics of the Root)–मूल के कुछ विशिष्ट लक्षण है जिनके द्वारा स्तम्भ से उनका भेदीकरण किया जा सकता है। ये लक्षण निम्नलिखित है :

(१) मूल अक्ष का अवरोही भाग (descending portion) होता है और प्रकाश की विलोम दिशा में वृद्धि करता है; इसके विपरीत स्तम्भ अक्ष का उद्रोही भाग (ascending portion) है, और प्रकाश की ओर वृद्धि करता है। इसके अतिरिक्त यह भी देखा जाता है कि मूल प्रायः हरे रंग का नहीं होता; जब कि स्तम्भ साधारणतः हरा होता है। कुछ विशेष पौधों, जैसे ऑर्किड्स (orchids), गुरुच (*Tinospora*), सिघाड़ा (*Trapa*), इत्यादि में यदि मूल बहुत समय तक प्रकाश में रहता है तो वह हरा हो जाता है। सिघाड़े में जलनिमग्न विभाजित मूल (submerged dissected roots) हरे रंग के होते हैं।

(२) मूल में सामान्यतः वर्धी कलिकाएं (vegetative buds) और पुष्प कलिकाएं (floral buds) पैदा नहीं होती, किन्तु स्तम्भ का यह साधारण कार्य है कि वह वर्धी वृद्धि तथा प्रजनन (reproduction) के लिये इनको उत्पन्न करे। केवल कुछ दशाओं में मूल में वर्धी कलिकाए प्रजनन के लिये उत्पन्न की जाती हैं (लेकिन पुष्प कलिकाएं नही)। कैथ (*Feronia*), परवल (*Trichosanthes*), शीशम (*Dalbergia*), शकरकन्द (sweet potato), नीबू (lemon), गुलाब (rose), इपीकाकुन्हा, इत्यादि में ये कलिकाए नये पौधों में विकसित हो जाती हैं। ये पौधे कभी-कभी जड़ कलम (root cutting) द्वारा प्रजनित किये जाते है, उदाहरणार्थ इपीकाकुन्हा (ipecacuanha)।

(३) मूल के अग्र भाग में एक टोपी या अंगुलित्र के आकार की संरचना होती है जो मूल की रक्षा करती है। इसको मूलछद (root-cap) कहते है (चित्र २५); लेकिन तने के शीर्ष पर एक अग्रस्थ कलिका (terminal bud) होती है, जिसमें स्तम्भ का वर्धन अग्रक भाग कई नवीन तरुण पत्तियों से आवृत रहता है (चित्र २६)। केवड़ा (screwpine) के वायवीय (aerial) मूलों के सिरों पर स्पष्ट बहुमूलछद (multiple root-cap) दिखाई देता है (चित्र २२)।

कुछ जलीय पौधों, जैसे लेम्ना (*Lemna*), पिस्टिया (*Pistia*), आइसौरनिया (*Eichhornia*), इत्यादि में प्रत्येक मूल के अग्र भाग पर ढीला छाद (sheath) स्पष्ट दिखाई देता है जो आसानी से निकल आता है। यह विषम मूलछद है जिसको मूल गोह (root-pocket) कहते हैं (चित्र २३)।

चित्र २५ चित्र २६ चित्र २७ चित्र २८

चित्र २५—मूल अग्रक। चित्र २६—स्तम्भ अग्रक। चित्र २७—पार्श्व मूल (अंतर्जात)। चित्र २८—शाखा (वहिजात)।

(४) मूल में एककोशिक रोम होते हैं (चित्र ३०)। लेकिन स्तम्भ या प्ररोह (shoot) में प्रायः बहुकोशिक रोम होते हैं (चित्र ३१), यद्यपि एककोशिक प्ररोह रोम भी असाधारण नहीं हैं। मूल रोम जड़ के अग्रक भाग से जरा पीछे उसके

चित्र २९ चित्र ३० चित्र ३१

चित्र २९—सरसों के नवोद्भिज में मूल रोम। चित्र ३०—दो मूल रोम (आवर्धित) एककोशिक। चित्र ३१—दो प्ररोह रोम (आवर्धित) बहुकोशिक।

कोमल भाग में समूह में पाये जाते हैं। नवोद्भिज की दशा में मूल रोम पूरे मूल में विकसित होते हैं। बाद में जैसे-जैसे मूल वृद्धि करता है, पुराने मूल रोम नष्ट होते रहते हैं और अग्रक भाग की ओर नये पैदा होते जाते हैं। इसके विपरीत प्ररोह रोम विभिन्न प्रकार के होते हैं और वे तमाम प्ररोह के सतह पर फैले रहते हैं।

मूल रोमों में सैलूलोज की बनी हुई तनु भित्ति होती है; किन्तु प्ररोह रोम कुछ स्थूलित और उच्चर्मीयित (cutinized) होते हैं। मूल रोम थोड़े समय, प्रायः कुछ दिन या सप्ताह, तक जीवित रहते हैं; किन्तु प्ररोह रोम अधिक समय तक जीवित रहते हैं। मूल रोम भूमि से पानी तथा खनिज लवण अवशोषण करते हैं, और प्ररोह रोम पौधों के शरीर की सतह से पानी के वाष्पन को रोकते हैं और रक्षा प्रदान करते हैं।

(५) पार्श्व मूल सदैव आन्तरिक स्तर से विकसित होते हैं (चित्र २७); इसलिए वे अंतर्जात (endogenous) कहलाते हैं। इसके विपरीत स्तम्भ शाखाएं कुछ बाह्य स्तरों से विकसित होती हैं, इसलिये वे बहिर्जात (exogenous) कहलाते हैं।

(६) स्तम्भ में पर्व (internodes) और गाठें (nodes) सदैव उपस्थित रहती हैं, यद्यपि वे सदा स्पष्ट दिखाई नहीं देती; लेकिन मूल में वे नहीं होती।

मूल के प्रकार (KINDS OF ROOTS)

मूसला मूल संहति (Tap Root System)–प्राथमिक मूल और उसकी शाखाएं पौधे की मूसला मूल संहति बनाती हैं। प्राथमिक या मूसला मूल सामान्यत: कुछ या अधिक दूर तक सीधे नीचे की ओर वृद्धि करता है, लेकिन शाखी मूल (परवर्ती, या तृतीय) तिरछे रूप में नीचे जाते है, या कई दशाओं में अनुप्रस्थ रूप में बहिर्मुख फैलते हैं। पौधे की आवश्यकता के अनुसार प्राथमिक मूल अल्पश या अत्यन्त शाखी हो सकते हैं। मूसला मूल संहति का कार्य साधारणत: भूमि से जल तथा खनिज लवण का अवशोषण, उसको स्तम्भ में उपरि सवाहन, और पौधे को उचित स्थिरीकरण देना है, लेकिन कुछ विशेषित कार्य करने के लिये यह कई प्रकार के आकारों में रूपान्तरित हो जाते हैं (देखिये पृष्ठ ३१)।

अस्थानिक मूल संहति (Adventitious Root System)–मूलांकुर के अतिरिक्त पौधे के किसी भी भाग से उत्पन्न होने वाले मूलों को अस्थानिक मूल कहते हैं। वे स्तम्भ के आधार से, प्राथमिक मूल को प्रतिस्थापित करके, या इसके अतिरिक्त, या किसी तना या शाखा के पर्व या गाठ से, या विशेष दशाओं में पत्तियो से विकसित हो सकते हैं। अस्थानिक मूल कई प्रकार के हैं और वे नाना प्रकार के कार्य करते हैं। सामान्य कार्यों के लिये ये जड़ें भूमि में नीचे की ओर जाते हैं और साधारण जड़ों के समान व्यवहार क

हैं, लेकिन विशेषित कार्यों के लिये वे भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विभिन्न आकार धारण करते हैं और वे भूमिगत (subterranean) या वायवीय (aerial) हो सकते हैं।

सामान्य कार्यों को करने वाले अस्थानिक मूल निम्नलिखित प्रकार के हैं :

(१) रेशेदार मूल (Fibrous Roots; चित्र २१)—एकबीजपत्री पौधों के रेशेदार मूल सब अस्थानिक मूल होते हैं। वे स्तम्भ के आधार से गुच्छे के रूप में निकलते हैं, जैसे प्याज (onion), ट्यूबरोज (tuberose) इत्यादि में; या भूशायी शाखाओं की गाठों से निकलते हैं, जैसे कई घासों में; या स्तम्भ की निचली गाठों से निकलते हैं जैसे मक्का, ईख, बांस, इत्यादि में।

(२) पर्ण मूल (Foliar Roots; चित्र ३२)—पर्ण मूल वे मूल हैं जो प्रत्यक्षतः पर्ण से, मुख्यतः पर्ण वृन्त (petiole) या शिरा (vein) से निकलते हैं। ये जड़ें या

चित्र ३२—पर्ण (अस्थानिक) मूल पोगोस्टीमोन में

चित्र ३३—अस्थानिक मूल कोलियस में

तो स्वतः निकल आती हैं, या विशेषतया चोट लगने से (अर्थात् काटने पर) निकलते हैं, या कुछ रासायनिक पदार्थों, जिनको वृद्धि यामक पदार्थ (growth promoting

substances) कहते हैं, के लगाने से प्रेरित (induced) की जा सकती है। पोगोस्टेमोन (*Pogostemon*) की पत्ती को कृत्रिम या सांश्लेषिक हार्मोन (synthetic hormone) से शासित किये जाने पर उसके पर्णवृन्त से मूलों का समूह उत्पन्न होता है। ये जड़ें प्रकृति में साधारणतः नहीं होती लेकिन वे ऊपर लिखे हुए उपचार (treatment) से प्रेरित (induced) की जा सकती हैं।

(३) अस्थानिक मूल (Adventitious Roots)—कई पौधे, जैसे ब्राह्मी (Indian pennywort), और चुका तिनती (wood-sorrel; चित्र ७३), इत्यादि अपने पर्वों तथा गांठों से अस्थानिक मूल उत्पन्न करते हैं। कई दशाओं में ये जड़ें शाखा कलमों (branch cuttings) से भी उत्पन्न की जा सकती हैं जब वे भूमि में लगा दी जांय, जैसे कि ईख, गुलाब, गुड़हल, गेंदा, टेपियोका, क्रोटन, या कुछ दशाओं में बोतल में रखे पानी में डुबो रखी जांय, जैसे कि कोलियस (चित्र ३३) इत्यादि में। अस्थानिक मूल पत्तियों में विकसित पर्ण कलिकाओं से भी उत्पन्न होते हैं। अजूबा या घावपत्ता (ब्रायोफिल्म पिनेटम) की पत्ती अपने किनारों पर कई कलिकाएं उत्पन्न करती है (चित्र ३४)। इन कलिकाओं में पतले अस्थानिक मूलों का गुच्छा रहता है जो भूमि में जाकर
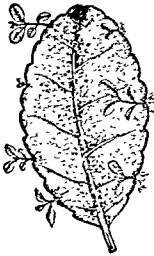
चित्र ३४ चित्र ३५

चित्र ३४—ब्रायोफिलम की पर्ण कलिकाए और अस्थानिक मूल।

चित्र ३५—बेगोनिया की पर्ण कलिकाए और अस्थानिक मूल।

कलिकाओं या सम्पूर्ण पत्ती को भूमि में स्थिर रखता है। बेगोनिया ([illegible] में इसी प्रकार की कलिकाए तथा मूल पर्ण की सतह पर शिराओं से और [illegible] हैं (चित्र ३५)। [illegible]हेंजा (*Kalanch.*[illegible]) की पत्ती भी अधिक [illegible] पर कलिकाए और मूल पैदा करती है।

रूपान्तरित मूल (MODIFIED ROOTS)

रूपान्तरित मूल नाना प्रकार के विशेषित कार्य करते हैं और पौधों की विशेष आवश्यकता के अनुसार वे अपने को उसके अनुकूल बनाते हैं। इन कार्यों के लिये मूसला मूल या उसकी शाखाएं और कई अस्थानिक मूल रूपान्तरित होते हैं अर्थात् यह देखा जाता है कि खाद्य के संग्रह के लिये कुछ पौधों के मूल (दोनों मूसला मूल तथा अस्थानिक) स्थूल, मांसल तथा प्रायः सरस हो जाते हैं। दूसरे विशेषित कार्य विशेष प्रकार के रूपान्तरित मूलों द्वारा किये जाते हैं, जिनका वर्णन नीचे किया जायेगा।

(क) रूपान्तरित मूसला मूल (खाद्य के संग्रह के लिये)

(१) तर्कुरूप मूल (Fusiform Root; चित्र ३६)—जब मूल या बीजोधर मूल (hypocotyl) बीच में फूला तथा आधार व अग्रक भाग की ओर क्रमशः पतला होता जाता है, अर्थात् तर्कु आकार रूप होता है तो उसको तर्कुरूप कहते हैं, उदाहरणार्थ मूली। मूली में वास्तव में बीजोधर मूल और स्तम्भ का आधार फूला रहता है और इसका केवल गावदुम (tapering) किनारा प्रमुख जड़ है।

(२) कुम्भी रूप मूल (Napiform Root; चित्र ३७)—जब जड़ के ऊपर का भाग (साधारणतः बीजोधर मूल) यथेष्ट फूल जाता है, और लगभग गोलाकार हो जाता है, तथा नीचे का भाग अकस्मात गावदुम हो जाता है, तो इसको कुम्भीरूप मूल कहते हैं, उदाहरणार्थ शलजम और चुकन्दर। शलजम में बीजोधर मूल फूल कर गोलाकार हो जाते हैं; किन्तु चुकन्दर में बीजोधर मूल और मूल दोनों फूल जाते हैं।
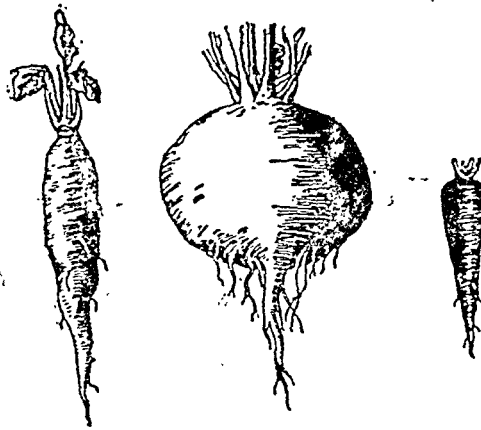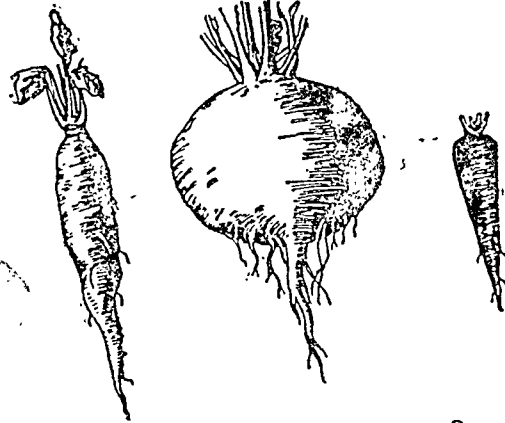
चित्र ३६ चित्र ३७ चित्र ३८
रूपान्तरित मूल। चित्र ३६—मूली का तर्कुरूप मूल।
चित्र ३७—शलजम का कुम्भीरूप मूल।
चित्र ३८—गाजर का शंकुरूप मूल।

(३) शंकुरूप मूल (Conical Root; चित्र ३८)—जब जड़ आधार पर चौड़ा और शीर्ष की ओर शंकु के समान क्रमशः पतला होता जाता है तो उसको शंकुरूप मूल कहते हैं, उदाहरणार्थ गाजर। गाजर में प्रमुख मूल ही फूलता है।

(४) कन्दिल मूल (Tuberous or Tubercular Root)—जब मूल स्थूल तथा मांसल होता है लेकिन कोई विशेष आकार धारण नहीं करता तो उसको कन्दिल मूल कहते है, उदाहरणार्थ गुलअब्बास (*Mirabilis*)।

(ख) रूपान्तरित शाखी मूल (श्वसन के लिये)

(५) श्वसन मूल (Pneumatophores)—बहुत से दलदल या खारी झीलों में उगने वाले पौधे कभी-कभी ज्वारभाटे के जल में व्याप्त (inundated) हो जाते हैं, जैसे सुन्दरवन में। ये पौधे श्वसन के लिये एक विशेष प्रकार के मूल पैदा करते हैं, जिन्हें श्वसन मूल या न्यूमैटोफोर कहते हैं (देखिये चित्र ३९-४०)। ऐसे मूल पौधे के भूमिगत जड़ों से पैदा होते हैं लेकिन वे उदग्रोन्मुख (vertically upwards) उठते हैं और पानी के ऊपर कई शंकुरूप शल्यों (spikes) के सदृश बाहर निकल आते हैं। ये प्राय. पेड़ के स्कन्ध (trunk) के चारों ओर बहुत अधिक संख्या में रहते हैं। इस प्रकार की प्रत्येक जड़ के ऊपरी सिरे की ओर कई छोटे-छोटे छिद्र या श्वसन दरियाएं (respiratory spaces) होती हैं जिनके द्वारा श्वसन के लिये वायु अन्दर ले जाई जाती है। इसके उदाहरण राइज़ोफोरा (*Rhizophora*), सोनेरेशिया (*Sonneratia*), एविसेनिया (*Avicennia*), सुन्दरी (*Heritiera*) हैं।

चित्र ३९ चित्र ४०

श्वसन मूल। चित्र ३९—दो पौधे श्वसन मूलों सहित। चित्र ४०—श्वसन मूल भूमिगत मूल से उदग्रोन्मुख वृद्धि कर रहे हैं।

(ग) अस्थानिक मूल (रूपान्तरित)

(अ) खाद्य के संग्रह के लिये

(१) कन्दिल मूल (चित्र ४१)—यह फूली हुई जड़ है जिसका कोई विशेष आकार नहीं होता, उदाहरणार्थ शकरकन्द (*Ipomoea batatas*) ...रण या ...में नहीं अस्थानिक दोनों रूप में कन्दिल मूल सदा अकेले विकसित होते हैं, ... निकलते।

३८

रूपान्तरित मूल (MODIFIED ROOTS)

रूपान्तरित मूल नाना प्रकार के विशेपित कार्य करते हैं और पौधों की विशेष आव-
न्तरित मूल नाना प्रकार के विशेपित कार्य करते हैं। इन कार्यों के लिये मूसला मूल
कता के अनुसार वे अपने को उसके अनुकूल वनाते हैं अर्थात् यह देखा जाता
या उसकी शाखाएं और कई अस्थानिक मूल रूपान्तरित होते हैं (दोनों मूसला मूल तथा अस्थानिक) स्थूल,
है कि खाद्य के संग्रह के लिये कुछ पौधों के मूल (दोनों मूसला मूल तथा अस्थानिक) स्थूल,
मांसल तथा प्रायः सरस हो जाते हैं। दूसरे विशेपित कार्य विशेप प्रकार के रूपान्तरित
मूलों द्वारा किये जाते हैं, जिनका वर्णन नीचे किया जायेगा।

(क) रूपान्तरित मूसला मूल (खाद्य के संग्रह के लिये)

(१) तर्कुरूप मूल (Fusiform Root; चित्र ३६)—जब मूल या वीजोधर
मूल (hypocotyl) वीच में फूला तथा आधार व अग्रक भाग की ओर क्रमशः पतला
होता जाता है, अर्थात् तर्कु आकार रूप होता है तो उसको तर्कुरूप कहते हैं, उदाहरणार्थ
मूली। मूली में वास्तव में वीजोधर मूल और स्तम्भ का आधार फूला रहता है और
इसका केवल गावदुम (tapering) किनारा प्रमुख जड़ है।

(२) कुम्भी रूप मूल (Napiform Root; चित्र ३७)—जब जड़ के ऊपर
का भाग (साधारणतः वीजोधर
मूल) यथेष्ट फूल जाता है, और
लगभग गोलाकार हो जाता है,
तथा नीचे का भाग अक्स्मात
गावदुम हो जाता है, तो इसको
कुम्भीरूप मूल कहते हैं, उदा-
हरणार्थ शलजम और चुकन्दर।
शलजम में वीजोधर मूल फूल
कर गोलाकार हो जाते हैं;
किन्तु चुकन्दर में वीजोधर मूल
और मूल दोनों फूल जाते हैं।

चित्र ३६ चित्र ३७ चित्र ३८

रूपान्तरित मूल। चित्र ३६—मूली का तर्कुरूप मूल।
चित्र ३७—शलजम का कुम्भीरूप मूल।
चित्र ३८—गाजर का शंकुरूप मूल।

(३) शंकुरूप मूल (Conical
Root; चित्र ३८)—जब जड़
आधार पर चौड़ा और शीर्ष की
ओर शंकु के समान क्रमशः पतला
होता जाता है तो उसको
शंकुरूप मूल कहते हैं, उदाहरणार्थ गाजर। गाजर में प्रमुख मूल ही फूलता है।

(४) कन्दिल मूल (Tuberous or Tubercular Root)—जब मूल स्थूल
तथा मांसल होता है लेकिन कोई विशेप आकार धारण नहीं करता तो उसको कन्दिल
मूल कहते हैं, उदाहरणार्थ गुलअब्बास (*Mirabilis*)।

(ख) रूपान्तरित शाखी मूल (श्वसन के लिये)

(५) श्वसन मूल (Pneumatophores)—[illegible] में उगने वाले पौधे कभी-कभी ज्वारभाटे के [illegible] हैं, जैसे सुन्दरवन में। ये पौधे श्वसन के लिये एक [illegible] करते हैं, जिन्हे श्वसन मूल या न्यूमैटोफोर कहते हैं (देखिये चित्र [illegible])। [illegible] के भूमिगत जड़ों से पैदा होते है लेकिन वे [illegible] (negatively geotropic [illegible]) उठते है और पानी के ऊपर कई [illegible] निकल आते हैं। ये प्रायः पेड के स्कन्ध (trunk) के [illegible] रहते है। इस प्रकार की प्रत्येक जड के ऊपरी सिरे की [illegible] श्वसन छिद्रिकाएं (respiratory spaces) होती है जिनके द्वारा श्वसन के लिये वायु अन्दर ले जाई जाती है। इसके उदाहरण राइजोफोरा (Rhizophora), सोनेरेशिया (Sonneratia), एविसेनिया (Avicennia), [illegible] (Heritiera) है।

चित्र ३९ चित्र ४०

श्वसन मूल। चित्र ३९—दो पौधे श्वसन मूलों सहित। चित्र ४०—श्वसन मूल भूमिगत मूल से उदग्रोन्मुख वृद्धि कर रहे हैं।

(ग) अस्थानिक मूल (रूपान्तरित)

(अ) खाद्य के संग्रह के लिये

(१) कन्दिल मूल (चित्र ४१)—यह फूली हुई जड़ है जिसका कोई विशेष आकार नहीं होता, उदाहरणार्थ शकरकन्द (*Ipomoea batatas*)। साधारण या अस्थानिक दोनों रूप में कन्दिल मूल सदा अकेले विकसित होते हैं, कभी झुंड में नहीं निकलते।

(२) सूत्रिकला मूल (Fasciculated Root; चित्र ४२)—जब बहुत से कन्दिल मूल स्तम्भ के आधार पर गुच्छे या संघात सा बना देते हैं तो उनको सूत्रिकला मूल कहते हैं। उदाहरणार्थ डलिया, सतावरी (*Asparagus*), रुएलिया (*Ruellia*)।

(३) ग्रन्थामय मूल (Nodulose Root; चित्र ४३)—जब पतला मूल अपने
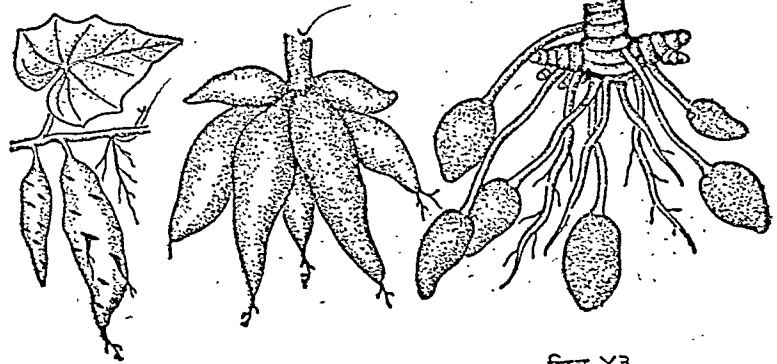
चित्र ४१ चित्र ४२ चित्र ४३

अस्थानिक मूल। चित्र ४१—शकरकन्द का कन्दिल मूल। चित्र ४२—डलिया का सूत्रिकला मूल। चित्र ४३—आमाहल्दी का ग्रन्थामय मूल।

शीर्ष के समीप अचानक मोटा हो जाता है तो उसको ग्रन्थामय मूल कहते हैं, जैसे आमाहल्दी (*Curcuma amada*) और अरारूट (*Maranta arundinacea*)।

(४) मनकाकार मूल (Moniliform or Beaded Root; चित्र ४४)—जब कि थोड़े-थोड़े अन्तर पर मूल फूल कर मोटा या साकन्द हो जाता है तो उसको मनकाकार मूल कहते हैं, उदाहरणार्थ ककरोल (*Momordica cochinchinensis*), अमलवेल (*Vitis trifolia*) और कुछ घासों में।
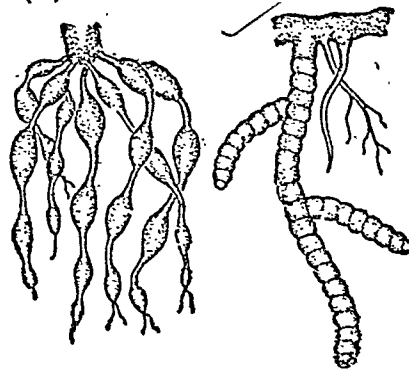
(५) वलयित मूल (Annulated Root; चित्र ४५)—जब मूल में वलय सदृश गण्ड माला होती है तो उसको वलयित मूल कहते हैं, जैसे इपिकाकुआन्हा (एक भेषजीय पौधा जो सिनकोना के साथ दार्जीलिंग जिले में उगाया जाता है) में।

चित्र ४४ चित्र ४५

अस्थाविक मूल। चित्र ४४—ककरोल का मनकाकार मूल। चित्र ४५—इपिकाकुआन्हा का वलयित मूल।

(आ) यांत्रिक आधार के लिये (For Mechanical Support)

(६) स्तम्भक मूल (Prop Roots; चित्र ४६)—बरगद और रबर इत्यादि पौधों की शाखाओं से बहुत से मूल उत्पन्न होते हैं जो कि नीचे की ओर वृद्धि करते हैं और भूमि में प्रवेश करते हैं। क्रमशः ये स्थूल होते जाते हैं और लम्बी, मजबूत फैली हुई

चित्र ४६ चित्र ४७

अस्थानिक मूल। चित्र ४६—बरगद के स्तम्भक मूल।
चित्र ४७—केवड़ा के जटामूल।

शाखाओं को सहारा देने में स्तम्भों का काम करते हैं। ऐसे मूल स्तम्भक मूल कहलाते हैं। कलकत्ता के इन्डियन बोटेनिकल गार्डन (भारतीय औद्भिदीय उद्यान) के बड़े बरगद के पेड़ की शाखाओं से इस प्रकार के ९०० स्तम्भक मूल पैदा हो गए हैं। इसकी आयु १९२ वर्ष के करीब आगणित की गई है और इसके मुकुट (crown) की परिधि १२०० फीट है।

(७) जटामूल (Stilt Roots; चित्र ४७)—केवड़ा (screwpine) और राइजोफोरा (*Rhizophora*) में मुख्य तना भिन्न-भिन्न ऊंचाइयों पर चारों ओर से कई यथेष्ट स्थूल अस्थानिक मूल पैदा करता है, जो नीचे की ओर तिरछी दिशा में जाते हैं और भूमि में पहुंच कर तने को सहारा देते हैं। इस प्रकार के मूल जटामूल कहलाते हैं।

(८) आरोही मूल (Climbing Roots; चित्र ४८)—पान (*Piper betle*), पिपली (*P. longum*), काली मिर्च (*P. nigrum*), पोथॉस (*Pothos*);

आदि कुछ आरोही पादप अपनी गांठों और प्रायः पर्वों से मूल पैदा करते हैं, जिनके द्वारा वे अपने को आधार से आवद्ध कर देते हैं और उसके ऊपर चढ़ते हैं। आधार पर मजबूती से चिपकने के लिये ऐसे मूल एक प्रकार का चिपकने वाला रस स्रावित (secrete) करते हैं जो हवा के सम्पर्क में आने पर तुरन्त सूख जाता है, जैसे आईवी (*Hedera helix*)

चित्र ४८ चित्र ४९

अस्थानिक मूल। चित्र ४८—पान का आरोही मूल।
चित्र ४९—जूसिया का श्वसन मूल।

और फाइकस पुमिला (*Ficus pumila*), इत्यादि में (देखिये चित्र ५३)। प्रायः वे अपने सिरों पर फलप्रद सहारे के लिये एक बिम्ब सदृश संरचना या एक प्रकारका पंजा सा बनाते हैं। इस प्रकार के मूलों को वलक मूल (clinging roots) कहते हैं।

(इ) जीवकर कार्यों के लिये (For Vital Functions)

(९) पराश्रयी शोषकमूल (Sucking Roots or Haustoria; चित्र ६५–६६)—पराश्रयी पौधे (parasites) एक प्रकार की जड़ें उत्पन्न करते हैं जो पोषक (host) पादप के ऊतकों में प्रवेश करते हैं और उनसे भोजन शोषण करते हैं। इस प्रकार के मूलों को पराश्रयी शोषक मूल कहते हैं। पराश्रयी पौधों, मुख्यतः अहरित (non-green), को अपने शोषक मूलों के द्वारा पोषक पौधों से खाद्य पदार्थ शोषण करके जीवित रहना पड़ता है। इनके सामान्य उदाहरण आकाशबेल (*Cuscuta*; देखिये चित्र ६५), अमरबेल (*Cassytha*), सरसों बंडा (*Orobanche*), भांगरा (*Viscum*; देखिये चित्र ६९), और बांदा (*Loranthus*) हैं।

(१०) श्वसन मूल (Respiratory Roots; चित्र ४९)—जलीय पादपों, जैसे जूसिया (*Jussiaea*), में तैरने वाली शाखाओं से एक प्रकार के अस्थानिक मूल निकलते हैं जो कोमल, हल्के, रंगहीन और छिद्रिल (porous) होते हैं। वे

साधारणतः जल के तल से ऊपर उत्पन्न होते हैं और वायु को संग्रह करने में सहायता देते हैं। अतः वे श्वसन क्रिया में सहायता पहुंचाते हैं।
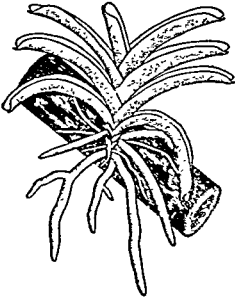
चित्र ५०—वैन्डा (एक ऑकिड) के उपरिरोही मूल।

(११) उपरिरोही मूल (Epiphytic Roots; चित्र ५०)—कुछ ऐसे पौधे हैं, विशेषकर ऑर्किड, जो पेड़ों की शाखाओं पर उगते हैं। इस प्रकार के पौधों को उपरिरोही (epiphytes) कहते हैं। वे आधारक पौधों से भोजन शोषण नहीं करते, जैसा पराश्रयी पौधे करते हैं। इसलिये शोषक मूलों के विपरीत वे एक प्रकार के वायवीय मूल (aerial roots) पैदा करते हैं, जो हवा में स्वतन्त्रतापूर्वक लटकते रहते हैं। प्रत्येक प्रपाती (hanging) मूल एक छिद्रिल ऊतक, जिसको जलपोषक त्वचा (velamen; देखिये चित्र ७१) कहते हैं, के द्वारा आच्छादित रहता है। जलपोषक त्वचा की सहायता से प्रपाती मूल अपने चारों ओर के वायु से नमी (moisture) अवशोषण करते हैं। इसका सामान्य उदाहरण एक उपरिरोही ऑर्किड वैन्डा (*Vanda*) है।

(१२) प्रकाश संश्लेषक मूल (Assimilatory Roots)—गुरच या गिलोटा (*Tinospora*) की शाखाएं पास के पेड़ों पर चढ़ती हैं और लम्बी, पतली लटकने वाली जड़ें पैदा करती हैं जो पर्णहरिम (chlorophyll) उत्पन्न करते हैं और हरे हो जाते हैं। ये हरे मूल प्रकाश संश्लेषक मूल कहलाते हैं। ये कार्बन स्वीकरण (carbon-assimilation) करते हैं, अर्थात् ये वायु से कार्बन-डाइऑक्साइड अवशोषण करते हैं और कार्बोहाइड्रेट खाद्य पदार्थ का निर्माण करते हैं। उपरिरोही ऑर्किड के लटकते हुए मूल भी प्रायः हरे हो जाते हैं और प्रकाश संश्लेषक मूल का कार्य करते हैं।

- मूल
  - प्राथमिक
    - साधारण झकड़ा मूल
      - झकड़ा मूल और उसकी शाखाएं
    - रूपान्तरित झकड़ा मूल (खाद्य के संग्रह के लिये)
      - तर्कुरूप, उदाहरणार्थ, मूली
      - कुम्भी रूप, उदाहरणार्थ, शलजम
      - शंकुरूप, उदाहरणार्थ, गाजर
      - कन्दिल, उदाहरणार्थ, गुलअब्बास
  - अस्थानिक
    - साधारण (सामान्य कार्यों के लिये)
      - रेशेदार मूल, जैसे एकबीजपत्री पौधों में
      - पर्ण मूल, जैसे पोगोस्टीमोन में
      - दूसरे प्रकार के, जैसे वल्लरी (creepers) और स्तम्भ कलमों में
    - रूपान्तरित (विशेषित कार्यों के लिये)
      - (खाद्य संग्रह के लिये)
        - कन्दिल, जैसे शकरकन्द में
        - सूत्रिकला जैसे शतावरी में
        - ग्रन्थामय, जैसे आमा-हल्दी में
        - मनकाकार, जैसे ककरोल में
      - (यांत्रिक आधार के लिये)
        - स्तम्भक, जैसे बरगद में
        - जटामूल, जैसे केवड़ा में
        - आरोही मूल, जैसे पान में
      - (जीवकर कार्यों के लिये)
        - शोषकमूल, जैसे आकाश बेल में
        - श्वसन मूल, जैसे जूसिया में
        - उपरिरोही, जैसे वैन्डा में
        - प्रकाश संश्लेपक, जैसे गुरच में

मूल के कार्य और अनुकूलन (Functions and Adaptations of the Roots) मूल कई प्रकार के कार्य करते हैं—यांत्रिक जैसे स्थिरीकरण या लांगलन, और कार्यिकीय (physiological), जैसे अवशोपण, संवाहन और संग्रह। ये मूल के सामान्य कार्य हैं। इसके अतिरिक्त मूल विशिष्ट कार्य भी करते हैं और वे उसके

अनुकूल बन जाते हैं। सब कार्यों और अनुकूलनों का सविस्तार वर्णन रूपान्तरित मूलों के प्रसङ्ग में किया जा चुका है (देखिये पृष्ठ ३०–३६)

(१) स्थीरीकरण या लांगलन (Anchorage)–जड़ का यांत्रिक कार्य पौधे को मजबूती से भूमि में स्थिर करना है। मुख्य मूल भूमि में गहराई तक जाता है और पार्श्व मूल भिन्न-भिन्न दिशाओं में फैलते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण मूल संहति पौधे को भूमिमें स्थिर रखता है। एकबीजपत्री पौधों में यह लांगलन रेशेदार मूलों द्वारा होता है।

(२) अवशोषण (Absorption)–मूल का सबसे महत्वपूर्ण कार्यिकीय कार्य भूमि से पानी व अपक्व खाद्य पदार्थ का अवशोषण है। यह कार्य मूलरोमों की सहायता से किया जाता है जो कि मूलछद से जरा पीछे एक गुच्छे के रूप में विकसित होते हैं।

(३) संवाहन (Conduction)–मूल का सम्बन्ध पानी तथा खनिज लवणों के संवाहन से भी है। ये उनको स्तम्भ में ऊपर भेजते हैं और अन्त में वे पर्ण में भेजे जाते हैं।

(४) संग्रह (Storage)–मूल में, विशेषकर उसके प्रौढ़ प्रदेश में, कुछ मात्रा में खाद्य पदार्थ संचित रहता है। जैसे मूल वृद्धि करता है यह संचित भोजन मूल द्वारा उपयोग होता है।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि लांगलन, संवाहन, और संग्रह के कार्य सामान्यत: मूल संहति के प्रौढ़ भागों द्वारा किये जाते हैं, और अवशोषण मूल रोमों तथा कोमल भागों द्वारा होता है।

अध्याय ४

स्तम्भ या तना (THE STEM)

पौधों का शरीर मूल तथा प्ररोह (shoot) का बना होता है। प्ररोह शब्द में शाखाओं सहित तना (स्तम्भ), पर्ण, तथा पुष्प (फूल) सम्मिलित हैं। मूल, शाखाओं सहित स्तम्भ और पर्ण (पत्ती) पौधों के वर्धी (vegetative) अंग हैं, और पुष्प जननेन्द्रिय (reproductive organs) कहलाते हैं।

स्तम्भ के संलक्षण (Characteristics of the Stem)—स्तम्भ पौधे के अक्ष का उद्रोही (ऊपर की ओर बढ़ने वाला) भाग है और प्रांकुर (plumule) की वृद्धि के फलस्वरूप विकसित होता है, [illegible] शाखाएं, पर्ण तथा पुष्प उत्पन्न करता है। तरुण अवस्था में यह सामान्यतः हरा होता है। वर्धमान अग्रक (growing [illegible]

अनेक सूक्ष्म पर्णों द्वारा आवृत व सुरक्षित रहता है और वे उसके ऊपर चाप बनाते हैं (देखिये चित्र ५१)। स्तम्भ में प्रायः नाना प्रकार के बहु कोशिक रोम पाये जाते हैं। यह वहिर्जात (exogenous) शाखा उत्पन्न करता है; और इसमें पर्व (internodes) और गांठें (nodes) होती हैं जो सब दशाओं में स्पष्ट नहीं दिखाई देती हैं। शाखाएं तथा पर्ण सामान्यतः गांठों से विकसित होते हैं। जब स्तम्भ या शाखा का एक वर्धी कलिका (vegetative bud) में अन्त होता है (देखिये पृष्ठ ४०) तो यह ऊपर की ओर या पार्श्व में वृद्धि सतत रखती है। लेकिन यदि एक पुष्प कलिका (flower bud) में इसका अन्त होता है तो वृद्धि रुक जाती है।

कुछ पारिभाषिक शब्द (Some descriptive terms)—स्तम्भ आकार में प्रायः बेलनाकार (cylindrical) होता है, लेकिन नरकुल (sedges) आदि में यह त्रिकोणाकार, और तुलसी (*Ocimum*) और कुछ अन्य पौधों में चतुष्कोणाकार होते हैं। कैक्टस आदि (cacti) में विभिन्न आकार के स्तम्भ देखने को मिलते हैं। कुछ स्नुहाओं (spurges) में, जैसे यूफोर्बिया (*Euphorbia*) में स्तम्भ मांसल तथा सरस होते हैं। यह एकान्तरित कूटों (ridges) और सीताओं (furrows) सहित पांशुलित (ribbed) हो सकता है, जैसे ककड़ी में, या स्पष्टतः संधिमान (jointed) हो सकता है, जैसे ईख में। जब स्तम्भ खोखला होता है तो उसको नलिकाकार (fistular) कहते हैं, जैसे धनिया में। यह कुछ विशेष आकारों में भी रूपान्तरित हो सकता है।

स्तम्भ के रूप या आकार (FORMS OF STEMS)

विभिन्न प्रकार के कार्यों को संपन्न करने के लिये अनुकूलित स्तम्भ के विभिन्न रूप हैं। वे वायवीय (aerial) या भूमिगत (underground) हो सकते हैं। वायवीय स्तम्भ ऊर्ध्व (erect), अनाम्य (rigid) तथा दृढ़ हो सकते हैं, ताकि वे अपने को ऊर्ध्व स्थिति में रख सकें। इसके विपरीत कुछ इतने दुर्बल होते हैं कि वे अपने को उस स्थिति में नहीं संभाल सकते। वे या तो भूशायी होते हैं या समीपवर्ती पौधों या अन्य वस्तुओं पर चढ़ते हैं। कुछ स्तम्भ स्थायी रूप से भूमिगत रहते हैं और वहां से अनुकूल परिस्थितियों में नियतकालिक रूप से वायवीय प्ररोह उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार के स्तम्भ खाद्य संग्रह और वर्षानुवर्षजीविता या चिरजीविता (perennation) के लिये होते हैं (देखिये पृष्ठ ५२-५७)।

(१) ऊर्ध्व (erect) या दृढ़ स्तम्भ—अशाखी, ऊर्ध्व, बेलनाकार और स्थूल स्तम्भ, जिन पर गिरी हुई पत्तियों के निशान चिह्नित होते हैं समूलाक्ष (caudex) कहलाते हैं, जैसे ताड़ का स्तम्भ। अशुषिर (ठोस) गांठों और शुषिर (खोखले) पर्वों सहित सन्धिमान स्तम्भ को सन्धि स्तम्भ (culm) कहते हैं,

जैसे बांस का स्तम्भ। कुछ शाकीय (herbaceous) पौधों, विशेषकर एकबीज-पत्री पौधों में, वायवीय स्तम्भ नहीं पाये जाते। इनमें स्तम्भ प्रायः विलोपित (suppressed) और भूमिगत होता है तथा पर्णों के समूह उत्पन्न करता है जो ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानों मूल से निकल रहे हों। पुष्प निकलने के समय भूमिगत स्तम्भ से एक ऊर्ध्व (खड़ा), वायवीय प्ररोह उत्पन्न होता है जो या तो एक पुष्प या पुष्पों का गुच्छा धारण करता है। इस प्रकार के पुष्पी प्ररोह को स्केप (scape) कहते हैं, और पौधा अल्पस्तम्भी (acaulescent) या बाह्य दृष्टि से स्तम्भहीन कहलाता है। फूल लगने की ऋतु समाप्त होते ही स्केप सूख जाता है। स्केप के सामान्य उदाहरण गुलचन्नों (Indian tuberose), प्याज और सूरन कुल के पौधे (aroids) हैं।

(२) दुर्बल (weak) स्तम्भ—जो दुर्बल स्तम्भ गांठों पर मूल उत्पन्न किये बिना ही भूमि पर रेंगता हुआ बढ़ता है वह साधारणतः (१) सर्पी (trailing) कहलाता है। जो सर्पी स्तम्भ भूमि पर सीधे शयित रहता है उसे भूशायी (prostrate) या आनत (procumbent) कहते हैं, जैसे इवोल्वुलस (*Evolvulus*), कुल्फा (*Portulaca*) में। जब स्तम्भ कुछ दूर तक भूमि में शयित रहकर बढ़ने के पश्चात अग्रक भाग में थोड़ा सा उठने की प्रवृति दिखलाता है तो उसको अर्धभूशायी या अवरोही (decumbent) कहते हैं, जैसे ट्राइडेक्स (*Tridax*)। जब स्तम्भ बहु शाखी होता है और शाखायें भूमि में चारों दिशाओं में फैली रहती हैं तो उसको प्रसृत (diffuse) कहते हैं, जैसे पुनर्नवा (*Boerhaavia*) में। जो दुर्बल स्तम्भ जमीन में रेंगता है और गाठों के पास मूल उत्पन्न करता है (२) विसर्पी (creeping) कहलाता है। विभिन्न प्रकृति के अनुसार विसर्पी स्तम्भ भूप्रसारी (runner), विरोहक (stolon), भूस्तारिका (offset) या मूस्तारी (sucker) कहलाता है (देखिये पृष्ठ ५७-५९)। जब कोई दुर्बल स्तम्भ अपने पास की वस्तु से किसी विशेष युक्ति से आसंजित (attached) हो जाता है और उस पर चढ़ता है तो उसको (३) आरोही (climbing) कहते हैं, जैसे मटर, ककड़ी, कद्दू, अंगूर, आदि (देखिये पृष्ठ ४३–४७)।

गांठ (Node) और पर्व (Internode)—जिस विन्दु पर स्तम्भ में पत्ती या पत्तियां लगी होती हैं उसको गांठ कहते हैं, और दो क्रमिक (successive) गांठों के बीच की जगह को पर्व कहते हैं। कभी पर्व व गाठें अभिदृश्य होते हैं, जैसे बास और घासों में; दूसरों में वे सदैव स्पष्ट चिह्नित नहीं होते।

कलिका (THE BUD)

कलिका (चित्र ५१) एक संघनित (condensed) और अविकसित प्ररोह है जिसके पर्व दीर्घित नहीं हो पाते, और तरुण, अल्पविकसित पत्तियां, जो विकसित होती रहती हैं, पास-पास ही एकत्रित होने के कारण एक सुदृढ़ संरचना (compact structure) बनाते हैं। कलिका के नीचे की पत्तियां ऊपर की पत्तियों की अपेक्षा पुरानी व बड़ी होती हैं। अनुदैर्घ्यतया (longitudinally) कटी हुई पातगोभी या बंदगोभी (cabbage) के द्वारा कलिका का अच्छा ज्ञान होता है। इसमें पर्ण अग्राभिसारी अनुक्रम से विकसित होते हैं और एक संघनित प्ररोह में वर्धमान अग्रक (growing apex) होता है। कलिका की सामान्य स्थिति स्तम्भ या शाखा के अग्रक भाग में या पर्ण के कक्ष में है। पूर्वोक्त (former) दशा में कलिका को **अग्रस्थ कलिका** (apical bud) और उत्तरोक्त (latter) दशा में **कक्षस्थ कलिका** (axillary bud) कहते हैं। अग्रस्थ कलिका की वृद्धि के फलस्वरूप स्तम्भ दीर्घित होता है, और कक्षस्थ कलिका की वृद्धि के फलस्वरूप शाखा उत्पन्न होती है और उस समय स्वयं कलिका की स्थिति अग्र भाग में होती है। जब माली किसी पौधे की लम्बाई की अपेक्षा झाड़ी के समान आकृति बनाना चाहता है तो वह उसको कृन्तन (prune) करता है और अग्रस्थ कलिकाओं को काट देता है। कलिकाएं दो प्रकार की होती हैं: यदि वे पर्णों सहित शाखा को उत्पन्न करती हैं तो **वर्धी कलिका** (vegetative bud), और यदि पुष्प को जन्म देती हैं तो **पुष्प कलिका** (floral bud) कहलाती हैं। यदि एक पर्ण के कक्ष में एक से अधिक कलिकाएं उत्पन्न होती हैं तो उनको **उप या अतिरिक्त कलिकाएं** (accessory buds) कहते हैं। उपरोक्त वर्णन अनुसार स्तम्भ का अग्रक और पर्णों का कक्ष कलिकाओं की सामान्य स्थितियां होती हैं। लेकिन वे कभी-कभी अनियमित रूप से पौधे के अन्य अंगों से, जैसे मूल से (मूल कलिकाएं) उत्पन्न दिखाई पड़ती हैं, जैसे कथ (*Feronia elephantum*), शकरकन्द, गुलाब, परवल में; या पर्णों से उत्पन्न होती हैं (पर्ण कलिकाएं), जैसे ब्रायोफिलम (*Bryophyllum*) (देखिये चित्र ३४), बीगोनिया (देखिये चित्र ३५), एडिएन्टम (*Adiantum*), हैजा (*Kalanchoe*) और निलोफर (*Nymphaea*) में; या स्तम्भ और शाखाओं की विभिन्न स्थितियों में (स्तम्भीय कलिकाएं, cauline buds)।
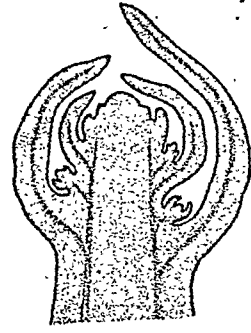
चित्र ५१—एक कलिका अनुदैर्घ्य काट में।

चित्र ५२—कलिकाएं

अपनी असामान्य स्थिति के कारण ये अस्थानिक कलिकाएं (adventitious buds) कहलाती हैं। जब कोई पेड़ ठूंठ बना दिया जाता है तो कटे हुए सतह के चारों ओर अस्थानिक कलिकाएं निकल आती हैं। इन सब कलिकाओं में क्रमशः नई शाखाएं, और कुछ दशाओं में स्वतन्त्र पौधों के रूप में विकसित होने की शक्ति होती है। कलिकाएं सक्रिय (active) या सुपुप्त (dormant) हो सकती हैं। पूर्वोक्त दशा में कलिकाएं ज्योंही स्तम्भ से निकलती हैं विकसित होने लगती हैं। उत्तरोक्त दशा में वे कुछ समय तक अकर्मण्य (inactive) रहती हैं और बाद में वृद्धि करती हैं और विकसित होना प्रारंभ करती हैं। यह उनकी सुपुप्तावस्था है। कुछ पौधों की कलिकाएं आरम्भिक स्थिति में कई शल्क पत्रों द्वारा आवरित रहती हैं जो उनकी धूप व वर्षा से रक्षा करते हैं; ऐसी कलिकाओं को शल्की कलिकाएं (scaly buds) कहते हैं। जब उनके ऊपर कोई आवरण नहीं होता तो उनको नग्न कलिकाएं कहते हैं।

कलिका की रक्षा (Protection of the Bud)–कलिकाओं को पुष्प, पर्ण और शाखाओं की उत्पत्ति करना होता है अत. उचित है कि बाह्य आघातों–धूप, वर्षा, मचकों, कीड़ों, आदि से इनकी रक्षा की जाय, और यह रक्षा कई विधियों से होती है।

(१) सामान्यतः कलिका की तरुण पत्तिया (किशलय) एक दूसरे को अतिछादित किये रहती हैं और नाना प्रकार से वेल्लित होकर (लपेटी जाकर) या भजित होकर (तेहिया कर) अपनी व वर्धमान अग्रक की धूप व वर्षा से रक्षा करती हैं। (२) वे रोमों से आवरित हो सकती हैं और कुछ दशाओं में रालदार (resinous) या गोंदीले (gummy) स्राव द्वारा सनी रहती हैं। (३) वे कुछ शुष्क और शल्की बाह्य पर्णों द्वारा समावृत हो सकती हैं जो कलिका शल्क (bud scales) कहलाते हैं, जैसे बरगद, कटहल, नागकेसर (*Mesua*), मैग्नोलिया (*Magnolia*), इत्यादि में। (४) पत्ती की सतह पर मोम या उच्चर्मि (cutin) का आवरण हो सकता है जिससे पानी का वाष्पन रोका जा सके और पत्तियां और वर्धमान अग्रक शीघ्र सूखने से बच जाय।

कलिका के रूपान्तर (Modification of the Bud)–वर्धी कलिकाएं (vegetative buds) तन्तुओं (tendrils) में रूपान्तरित हो सकती (देखिये चित्र ५९), जैसे झुमकलता (passion-flower) और [illegible] कंटक (thorns) में रूपान्तरित हो सकती हैं, जैसे [illegible] (wood [illegible]

और नीलकांटा (*Duranta*) में। कभी-कभी ये विशेष प्रकार के प्रजनन अंगों में रूपान्तरित हो जाती हैं जिनको **पत्रकन्द** (bulbils) कहते हैं (देखिये पृष्ठ ६३)। पुष्प कलिकाएं भी इसी प्रकार तन्तुओं में रूपान्तरित हो सकती हैं, जैसे एन्टीगोनन (*Antigonon*), या प्रजनन के लिये पत्रकन्द में रूपान्तरित हो सकती हैं।
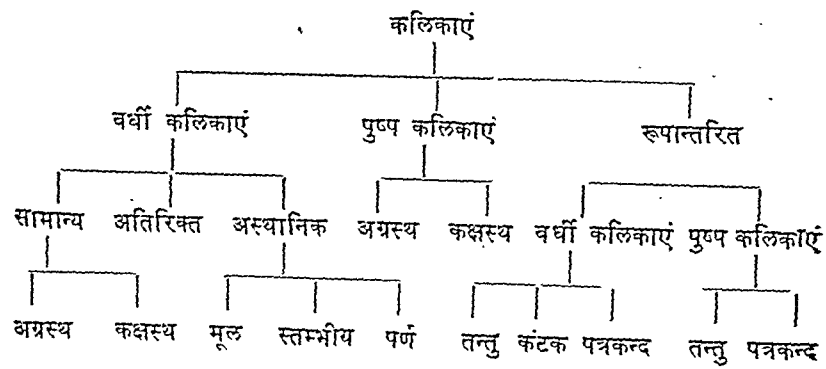
पौधे का स्वरूप (HABIT OF THE PLANT)

स्तम्भ की प्रकृति, पौधों की ऊँचाई, और उनके जीवन की विधि और अवधि से ही पौधों का स्वरूप निश्चय होता है।

(१) शाक (Herbs)–ये कोमल स्तम्भ वाले छोटे पौधे हैं। उनके जीवन की अवधि के अनुसार उनको निम्नलिखित विभागों में बांटा जा सकता है: (१) **वार्षिक** (annuals), (२) **द्विवर्षजीवी** (biennials), और (३) **वर्षानुवर्षी** (perennials)। (१) **वार्षिक** (annuals), वे पौधे हैं जो अपनी पूर्ण वृद्धि एक ऋतु में प्राप्त कर लेते हैं, और कुछ महीनों तक या अधिक से अधिक एक वर्ष तक जीवित रहते हैं। इस अवधि में वे पुष्प और बीज पैदा करते हैं और ऋतु के अन्त में आयु समाप्त कर देते हैं। इसके साधारण उदाहरण सूर्यमुखी, सरसों, जूट, भिंडी, मटर, सेम, इत्यादि हैं। (२) **द्विवर्षजीवी** (biennials), वे पौधे हैं जो दो वर्ष तक जीवित रहते हैं। वे अपनी पूर्ण वर्धी वृद्धि (vegetative growth) प्रथम वर्ष में प्राप्त कर लेते हैं और पुष्प व बीज दूसरे वर्ष में उत्पन्न करते हैं और उसके बाद नष्ट हो जाते हैं। इसके साधारण उदाहरण पातगोभी या बंदगोभी, मूली, चुकन्दर, गाजर, शलजम इत्यादि हैं (उष्णकटिबंधीय जलवायु में ये वार्षिक पौधों के समान व्यवहार करते हैं); और (३) **वर्षानुवर्षी** (perennials), वे पौधे हैं जो कई वर्षों तक जीवित रहते हैं। इन पौधों के वायवीय भाग ऋतु समाप्त होने पर पुष्प व बीज पैदा करके प्रति वर्ष नष्ट हो

सकते हैं, लेकिन वर्षा की कुछ झड़ियों के बाद भूमिगत स्तम्भ से नये प्ररोह निकल आते हैं, उदाहरणार्थ कैना (*Canna*), अदरक, केला, अरारूट, तारा (*Alpinia*) इत्यादि।

(२) क्षुप (Shrubs)—ये मध्य आकार के कठोर और काष्ठी पौधे हैं। इनके स्तम्भ में जमीन के पास ही बहुत सी शाखाएं निकल आती हैं जिससे पौधे झाड़ीदार हो जाते हैं और स्कन्ध (trunk) प्रायः स्पष्ट नहीं होता। ये शाक से बड़े लेकिन वृक्षों से बहुत छोटे होते हैं, उदाहरणार्थ, गुड़हल, क्रोटन, हरसिंगार और नीलकांटा (*Duranta*), इत्यादि।

(३) वृक्ष (Trees)—ये बहुत लम्बे पौधे हैं। इनका स्कन्ध (trunk) स्पष्ट दिखाई देता है और स्तम्भ तथा शाखाएं कठोर तथा काष्ठी होते हैं, उदाहरणार्थ आम, कटहल, सागौन, जंगली सरो (*Casuarina*), देशी बादाम, इत्यादि। क्षुप व वृक्ष वर्षानुवर्षी होते हैं।

(४) आरोही पौधे (Climbers)—इनके स्तम्भ पतले तथा लम्बे होते हैं, तथा शाखाएं प्रसारित होती हैं। पास के पौधों पर अपने शरीर के आधार के लिये और आरोहण में सहायता के लिये वे प्रायः संयोजन के विशेष अंग उत्पन्न करते हैं। आरोही पौधे अपने चढ़ने की विधियों के अनुसार कई विभागों में बांटे गये हैं।

(अ) मूलक आरोही (Rootlet climbers)—ये वे पौधे हैं जो छोटे अस्थानिक मूलों द्वारा ऊपर चढ़ते हैं। आधारक पौधों या उपयुक्त वस्तु के सम्पर्क में आने पर ये अस्थानिक मूल इन पौधों के आन्तर पार्श्व (inner side) से या गांठों से निकलते हैं। इस प्रकार के मूल या तो छोटे अभिलागी बिम्ब या मंडलक (adhesive discs) या नखर (claws) उत्पन्न करते हैं जो स्थापित्र (hold fast) का काम करते हैं; वे एक प्रकार का संलागी रस (sticky juice) स्रावित करते हैं जो सूख कर आरोही को उनके आधार पर स्थिर कर देता है। इसके उदाहरण पान (*Piper betle*, चित्र ४८), पिपली (*Piper longum*) चाब (*Piper chaba*), गजपिप्पली (*Scindapsus*), आइवी (*Hedera helix*), भारतीय आइवी (*Ficus pumila*) (चित्र ५३) होया (*Hoya*), पोथॉस (*Pothos*), इत्यादि में मिलते हैं। वलीयित पराश्रयी (twining parasites) विशेष प्रकार के मूल उत्पन्न करते हैं जिनको पराश्रयी शोषक मूल (haustoria) कहते हैं, जो पोषक पौधे से केवल भोजन ही चूषण नहीं करते बल्कि पराश्रयी पौधों को उनके पोषक पौधों पर स्थिर करते हैं और अतः उनको वेष्टन (twining) में मदद करते हैं, उदाहरणार्थ आकाशबेल (*Cuscuta*; देखिये चित्र ६५)

(ब) हुक-आरोही (Hook climbers)—कटेली चम्पा (*Artabotrys*) का पुष्पवृन्त (flower-stalk) एक वक्र हुक पैदा करता है जो शाखाओं के चढ़ने में कुछ अंश तक सहायता करता है (चित्र ५६)। कुछ पौधों में कंटक (thorns)

और शल्य या शिताग्र (prickles) वक्र और सांकुश होते हैं। अतः बेंत (*Calamus*; चित्र ५७) में पर्ण आवरण से एक पतला व लम्बा अक्ष पैदा होता है जिसमें बहुत से तेज व वक्र अंकुश (हुक) होते हैं। यह अक्ष, पास के झाड़ियों और पेड़ों की शाखाओं में घुस जाती हैं और वहां चिपक कर पौधे के भार को संभालती है। इस प्रकार से कई बेंत, जैसे रैटन बेंत (rattan canes) जंगल में पास के क्षुप और वृक्षों पर ५००-६०० फीट की ऊंचाई तक चढ़ जाते हैं। लता गुलाब (climbing rose; चित्र ५८) और पिसोनिया (*Pisonia*) में चढ़ने (और साथ ही आत्म रक्षा) के लिये कई वक्र शल्य होते हैं। बोगेन-विलिया (*Bougainvillea*;

चित्र ५३—फाइकस पुमिला—एक मूलक आरोही; क, उपरि पार्श्व, ख, निचला पार्श्व

चित्र ५४ चित्र ५५ चित्र ५६

हुक (अंकुश) और कंटक आरोही। चित्र ५४—बोगेनविलिया। चित्र ५५—अंकेरिया (*Uncaria*)। चित्र ५६—कंटेली चम्पा (*Artabotrys*)।

चित्र ५४) प्रायः वक्र कंटक उत्पन्न करता है जो कि चढ़ने में आधार अंग का काम करते हैं। अकेरिया (*Uncaria*; चित्र ५५), एक बड़ा आरोही क्षुप भी वक्र अंकुश (कंटकों) द्वारा चढ़ता है। ये हुक किसी वस्तु पर लिपटने के बाद वृद्धि जारी रखते हैं और कठोर व काष्ठी हो जाते हैं।

(३) तन्तु आरोही (Tendril climbers)—ये वे पौधे हैं जो सर्पिलाकार कुंडलित संरचना पैदा करते हैं जिनको तन्तु (tendrils) कहते हैं। ये इनकी मदद से वस्तुओं के ऊपर चढ़ते हैं। तन्तु किसी आधारक के चारों ओर लिपट जाते हैं और पौधे को अपना भार संभालने और सरलता से चढ़ने में सहायता करते हैं। तन्तु स्तम्भ का रूपान्तर हो सकती हैं, जैसे झुमकलता (passion-flower

चित्र ५७ चित्र ५८
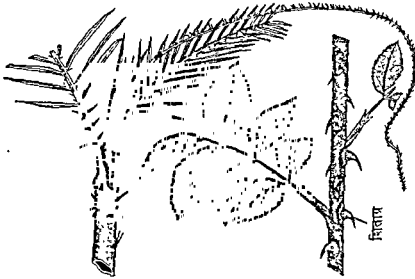
शिताग्र (शलक) आरोही। चित्र—५७ बेंत। चित्र ५८—गुलाब।

चित्र ५९); अंगूर, कार्डियोस्परमम (*Cardiospermum*; देखिये चित्र ८३); या पर्णों का, जैसे मटर (चित्र ६०), जंगली मटर (*Lathyrus*; चित्र ६१) इत्यादि में; या अनुपत्र (stipule) का, जैसे स्माइलैक्स (*Smilax*) में।

(४) पर्ण आरोही (Leaf climbers)—क्लीमेटिस (*Clematis*; चित्र ६२) और ट्रोपिओलम (*Tropaeolum*) के पर्ण वृन्त किसी बाहरी अंग के स्पर्श संवेदक होते हैं, अतः पर्ण वृन्त किसी पास के उपयुक्त आधार के सम्पर्क में आते ही उसके चारों ओर लिपट जाते हैं और पौधे को चढ़ने में सहायता करते हैं। कलिहारी या इन्द्रपुष्पिका (*Gloriosa*, चित्र ६३) में पर्ण अग्रक तन्तु के समान

रहता है, घटपर्णी (*Nepenthes*; चित्र ६४) नामक मांसभक्षी (carnivorous) में घट का वृन्त प्रायः आधार के चारों ओर तन्तु के समान कुण्डलित रहता है और घट को उदग्र (vertical) स्थिति में स्थिर रखता है।
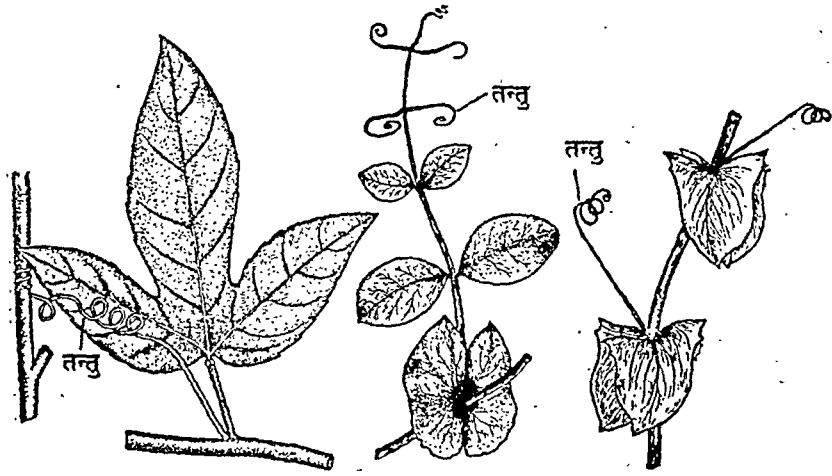
चित्र ५९ चित्र ६० चित्र ६१

तन्तु आरोही। चित्र ५९—झुमकलता। चित्र ६०—मटर।
चित्र ६१—जंगली मटर।

(५) **स्तम्भ आरोही या वल्ली** (Twiners)—ये लम्बे तथा पतले स्तम्भों तथा शाखाओं वाले पौधे हैं। ये अपने शरीर को वृक्षों, क्षुपों तथा झाड़ियों के चारों ओर लपेट कर चढ़ते हैं, उदाहरणार्थ सेम, रेलवे कीपर, अपराजिता, पोई (*Basella*), लाल मालती (Rangoon creeper), कामलता (*Quamoclit*), रत्ती या घुंघची (*Abrus precatorius*), इत्यादि में। वल्ली (twiner) के संयोजन के कोई विशेष अंग नहीं होते जैसे मुख्य आरोही पौधों में होते हैं। कुछ आरोही पौधे दक्षिणावर्त (clockwise or dextrorse) और कुछ वामावर्त (anticlockwise or sinistrorse) लिपटते हैं और कुछ गति की दिशा के सम्बन्ध में उदासीन होते हैं।

(६) **महालता या प्रतानिनी** (Lianes)—ये बहुत मोटे व काष्ठी वर्षानुवर्षी आरोही पौधे हैं जो प्रायः जंगलों में पाये जाते हैं। वे सूर्य के प्रकाश की खोज में लम्बे पेड़ों के चारों ओर लिपट जाते हैं और अन्त में उनकी चोटी तक पहुंच जाते हैं। वहां उनको अधिक मात्रा में सूर्य का प्रकाश मिलता है और वे पर्णों का वितान (canopy)

बनाते हैं। सामान्य उदाहरण मधुलता (*Hiptage*), घम्पुली (*Bauhinia vahlii*) और फाइकस (*Ficus*) की कुछ स्पीशीज़ हैं।
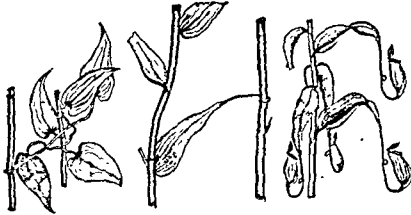
चित्र ६२ चित्र ६३ चित्र ६४

पर्ण आरोही। चित्र ६२—क्लीमेटिस। चित्र ६३—ग्लोरिओसा। चित्र ६४—घटपर्णी (नेपेन्थीस)

स्तम्भ

- सबल
  - अक्षकेन्द्री, जैसे अशोक
  - अपक्षयी, जैसे बरगद
  - प्रमूलाक्ष, जैसे ताड़
  - सन्धिस्तम्भ, जैसे बांस
  - स्केप, जैसे गुलशब्बो
- निर्बल
  - सर्पी
    - (क) भूशायी, जैसे पोई
    - (ख) अवरोही, जैसे ट्राइडेक्स
    - (ग) प्रसृत, जैसे पुनर्नवा
  - विसर्पी, जैसे दूब
  - आरोही
- आरोही
  - मूलक, जैसे पान
  - हुक, जैसे कंटेली चम्पा
  - तन्तु, जैसे झुमकलता
  - पर्ण, जैसे क्लीमेटिस
  - वल्ली, जैसे सेम
  - आरोही, जैसे मधुलता

विशिष्ट प्रकार के पौधे (SPECIAL TYPES OF PLANTS)

बहुत से ऐसे पौधे हैं जिनकी पोषाहार-विधि सामान्य नहीं है। ऐसे पौधे अपना पोषाहार विभिन्न विधियों से प्राप्त करते हैं। वे निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं।

१. पराश्रयी (Parasites) – ये वे पौधे हैं जो दूसरे जीवित पौधों पर वृद्धि करते हैं और उनसे भोजन सामग्री अवशोषित करते हैं। अवशोषण के लिये पराश्रयी विशेष प्रकार के मूल उत्पन्न करते हैं जिनको शोषक मूल (haustoria) कहते हैं जो पोषक पौधों के ऊतकों में प्रवेश करते हैं और उनसे पोषक पदार्थ प्राप्त करते हैं। पराश्रयता की विभिन्न दशाएं हैं। कुछ पूर्ण पराश्रयी (total parasites) और कुछ आंशिक पराश्रयी (partial parasites) होते हैं। पूर्ण पराश्रयी कभी हरे नहीं होते हैं क्योंकि वे अपना पूरा भोजन पोषक पौधे से प्राप्त करते हैं, लेकिन आंशिक पराश्रयी पौधों में पर्ण हरिम होता है और वे स्वयं थोड़ा या अधिक मात्रा में भोजन निर्माण करने में समर्थ होते हैं। वे स्तम्भों, शाखाओं या मूलों पर पराश्रयी होते हैं।
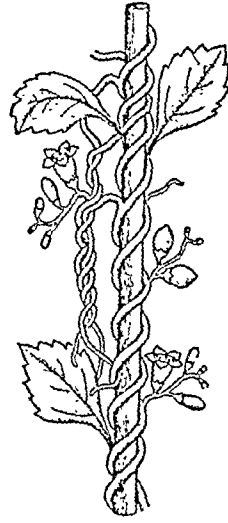
चित्र ६५

चित्र ६५—आकाशवेल (*Cuscuta*) एक पूर्ण स्तम्भ पराश्रयी
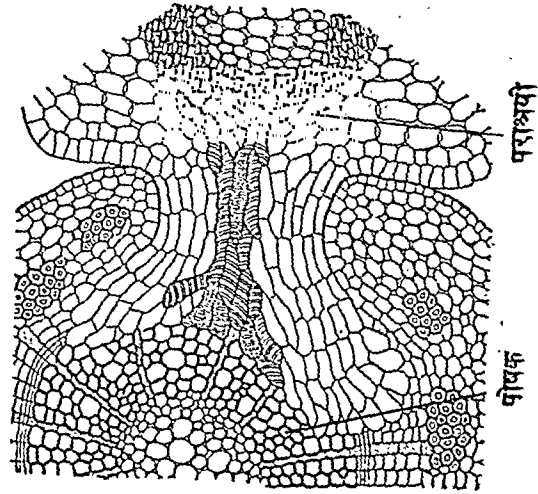
चित्र ६६

चित्र ६६—आकाशवेल (और पोषक पादप) का अनुप्रस्थ काट जिसमें पराश्रयी शोषक मूल दिखाया गया है।

तदनुसार उनको स्तम्भ पराश्रयी (stem-parasites) या मूल पराश्रयी (root-parasites) कहते हैं। निम्नलिखित विभिन्न प्रकार के पराश्रयी पौधों के सामान्य उदाहरण हैं:

(१) पूर्ण स्तम्भ पराश्रयी (Total stem-parasite), उदाहरणार्थ आकाशबेल (*Cuscuta*; चित्र ६५)।

(२) आंशिक स्तम्भ पराश्रयी (Partial stem-parasites)–भोंगरा (*Viscum*; चित्र ६९), बांदा (*Loranthus*), अमरबेल (*Cassytha*)।

चित्र ६७—गंठवा एक पूर्ण मूल पराश्रयी।

चित्र ६८—बैलेनोफोरा एक पूर्ण मूल पराश्रयी

(३) पूर्ण मूल पराश्रयी (Total root-parasites)–गठवा (*Orobanche*; चित्र ६७) आलू, टमाटर, बैंगन, सरसों, शलजम व तम्बाकू, इत्यादि पेड़ो की जड़ों पर पराश्रयी है और प्रायः इन फसलों को काफ़ी हानि पहुंचाता है। बैलेनोफोरा (*Balanophora*; चित्र ६८) पेड़ों की जड़ों पर पराश्रयी होता है और आसाम के जंगलों में पाया जाता है, और रैफ्लिशिया (*Rafflesia*), वाइटिस (*Vitis*) की जड़ों पर पराश्रयी होता है और जावा व सुमात्रा में पाया जाता है।

रैफ्लिसिया एक बहुत रोचक पौधा है, क्योंकि यह संसार का सबसे बड़ा फूल उत्पन्न करता है जिसकी परिधि ३–५ फीट है और कुछ दशाओं में इसका भार १८ पौंड होता है। यह वाइटिस व अंजीर इत्यादि के मूलों पर पराश्रयी होता है। इस पौधे के विशिष्ट लक्षण यह है . इसका तना प्रहृसित होकर तन्तुवत सदृश रचना हो गया है जो पोषक पौधे की जड़ में प्रवेश करता है और यहां वहां भूमि के ऊपर बहुत बड़े आकार के फूल उत्पन्न करता है। इस पौधे को सर्वप्रथम १८१८ में सर स्टैमफोर्ड रैफिल्स ने खोजा था, जब कि वे सुमात्रा के आन्तर भाग में भ्रमण कर रहे थे, और इस पेड़ का नाम रैफ्लीसिया उन्हीं के नाम पर रखा गया है। सुमात्रा, जावा और निकटवर्ती द्वीपों में कुल मिलाकर छः स्पीशीज का पता लगा है। इसका
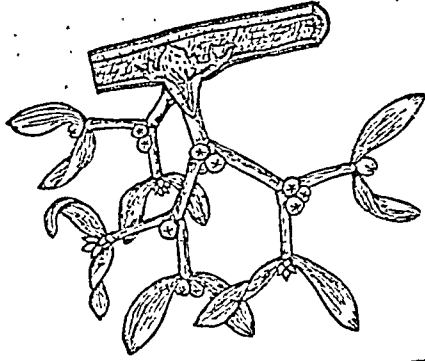
रंग का होता है और इसकी गंध सड़े हुए मांस की तरह होती है।

(४) आंशिक मूल पराश्रयी (Partial root-parasites) – उदाहरणार्थ चन्दन (*Santalum*) जो मैसूर में अधिकतर पाया जाता है।

चित्र ६९—मांगरा—एक आंशिक स्तम्भ पराश्रयी।

२. उपरिरोही (Epiphytes)–ये वे पौधे हैं जो दूसरे पौधों के ऊपर उगते हैं (देखिये चित्र ५०), लेकिन पराश्रयी पौधों के समान उनसे भोजन अवशोषण नहीं करते। ये प्रायः दो प्रकार के मूल उत्पन्न करते हैं, अर्थात् वलक मूल (clinging roots) और वायवीय मूल (aerial roots)। वलक मूल सहायक पेड़ के छाल (bark) के फटान और विदरों में उगते हैं और उपरिरोही पौधों को शाखा में ठीक स्थिति में स्थिर रखते हैं। वायवीय मूल हवा में लटकते रहते हैं और अवशोषण का कार्य करते हैं। इनमें विशेष ऊतकों
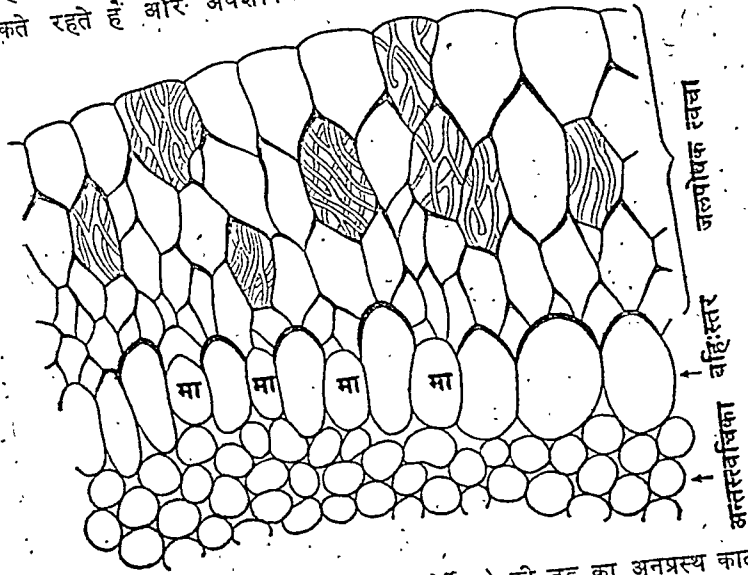
चित्र ७०—वैन्डा (एक उपरिरोही ऑर्किड) की जड़ का अनुप्रस्थ काट जिसमें जलपोषक त्वचा दिखाई गई है।

का एक आवरण होता है जिसको जलपोषक त्वचा (velamen) कहते हैं जो प्रायः ४ या ५ स्तर आयतरूप बहुभुज (oblong polygonal) आकार के कोशिकाओं की बनी होती हैं। ये कोशिकाएं मृत होती हैं और इनमें केवल हवा या पानी होता है। इनकी भित्तियों में रेशेदार स्थूलन (fibrous thickenings) विकसित होती हैं। भित्तियों में छोटे गर्त भी होते हैं। जलपोषक त्वचा स्पन्ज का काम करता है और आसपास की वायु से नमी और घुली हुई गैसें, जैसे ऑक्सीजन और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को आवशोषण करता है।

३. मृतोपजीवी (Saprophytes)—यह वे पौधे हैं जो उन जगहों में पाये जाते हैं जहां वनस्पति व जन्तु उद्भव के अपक्षित (decaying) कार्बनिक पदार्थ प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। मोनोट्रोपा (*Monotropa*; चित्र ७१) और ऑर्किड्स इसके अच्छे उदाहरण हैं। मोनोट्रोपा खासी पहाड़ियों में ६००० से ८००० फीट की ऊँचाई में पाया जाता है। पूर्ण मृतोपजीवी रंगहीन होते हैं लेकिन आंशिक मृतोपजीवी हरे रंग के होते हैं। उनके मूल, कवक के सूत्रवत् पुंज से सम्बन्धित हो जाते हैं जो कि मूल रोमों की जगह लेते हैं और उनके समान कार्य करते हैं, अर्थात् मिट्टी में उपस्थित विघट (decomposed) कार्बनिक पदार्थों से खाद्य पदार्थ अवशोषण करते हैं। कवक के उच्च पौधों के मूल से इस सम्बन्ध को संकवक (mycorrhiza) कहते हैं। कवक या तो पराश्रयी या मृतोपजीवी होते हैं।

चित्र ७१—मोनोट्रोपा—एक मृतोपजीवी।

४. सहजीवी (Symbionts)—जब दो जीवधारी साथ-साथ रहते हैं और पारस्परिक रूप से एक दूसरे को लाभदायक होते हैं तो उनको सहजीवी, और इस दशा को सहजीवन (symbiosis) कहते हैं। पुष्पी पादपों में सकवक (mycorrhiza) सहजीवन का श्रेष्ठ उदाहरण है। कवकसहजीवन प्रायः जगल के पेड़ों, मृतोपजीवी पुष्पी पादपों और ऑर्किड के नवोद्भिज में पाया जाता है। ऑर्किड के नवोद्भिज उस समय तक वृद्धि प्राप्त नहीं कर सकते जबतक उनकी जड़ें किसी विशेष कवक द्वारा संसृष्ट (infected) नहीं होतीं। लेग्यूमिनोसी कुल के पौधों (leguminous plants) की जड़ें नाइट्रोजन स्थिरक जीवाणुओं से सम्बन्धित रहती हैं। साइकस (*Cycas*) के मूल के अन्तस्त्वचिका (cortex) में शैवाल

(algæ) और जीवाणुओं का सम्बन्ध दिखाई देता है। अन्य उदाहरण लाइकेन (lichens) हैं जो कि शैवाल व कवकों का साहचर्य है। कुछ सामान्य लाइकेन पेड़ों के स्कन्धों पर पतले, गोल, हरे सिध्म बनाते हैं।

५. मांसाहारी या कीटाहारी पादप (Insectivorous or carnivorous plants)—मांसाहारी पौधे वे है जो कीड़ों और छोटे जानवरों को पकड़ लेते हैं और उन्हीं को खाते हैं। सामान्य उदाहरण ड्रोसेरा (*Drosera*), बटरवर्ट, वीनस फ्लाई ट्रैप (Venus' fly trap), घटपर्णी (pitcher plant), ब्लैडरवर्ट (bladderwort) और ऐलड्रोवैन्डा (*Aldrovanda*) हैं।

स्तम्भों के रूपान्तर (MODIFICATIONS OF STEMS)

कुछ पौधों के स्तम्भ व शाखाएं उदग्रोन्मुख (vertically upwards) वृद्धि और सामान्य स्तम्भ के समान पर्ण व पुष्प धारण करने के बजाय विशेष कार्य सम्पन्न करने के लिये विभिन्न आकारों में रूपान्तरित हो जाते हैं। इस प्रकार के स्तम्भ निम्नलिखित मुख्य कार्य करते हैं: (क) चिरजीविता (perennation) अर्थात् कई वर्षों तक प्रतिकूल ऋतुओं के अनुक्रम में सुपुप्त, पर्णहीन अवस्था में जीवित रहना, (ख) विभिन्न दिशाओं में फैली हुई लम्बी व पतली शाखाओं द्वारा वर्धी प्रचारण (vegetative propagation); और (ग) परिवर्तित (metamorphosed) अंगों द्वारा विशेष कार्य। इसलिये ऊपर लिखे हुए कार्यों की पूर्ति के लिये स्तम्भ विभिन्न मात्रा में रूपान्तरित होते हैं। विभिन्न रूपान्तर निम्नलिखित शीर्षकों में पर्यालोचित किये जा सकते हैं; भूमिगत रूपान्तर, अवःवायवीय रूपान्तर और वायवीय रूपान्तर।

१. स्तम्भों के भूमिगत रूपान्तर (Underground Modifications of Stems)

चिरजीविता के लियें स्तम्भ भूमिगत उगते हैं और स्थायी रूप में वहीं रहते हैं। कुछ समय तक वे सुपुप्त अवस्था में रहते हैं और फिर प्रतिवर्ष अनुकूल अवस्थाओं में वायवीय प्ररोह उत्पन्न करते हैं। वे हमेशा मोटे व मांसल होते हैं और उनके अंदर संचित भोज्य पदार्थों का भारी संग्रह होता है। भूमि के अन्दर उगने, हरे न होने और मिट्टी में दबे रहने के कारण इनका साधारण रूप मूल के समान प्रतीत होता है, लेकिन (क) पर्वों व गाँठों, (ख) शल्क पत्रों, और (ग) कलिकाओं (अग्रस्थ व कक्षस्थ) की उपस्थिति से वे शीघ्र ही मूलों से पहचाने जा सकते हैं। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि इस वर्ग के रूपान्तरित स्तम्भों का मुख्य कार्य चिरजीविता है, लेकिन उनका कार्य भोज्य पदार्थ का संग्रह और पौधों का वर्धी प्रचारण भी है। इस वर्ग में विभिन्न प्रकार के निम्नलिखित स्तम्भ हैं:—

(१) प्रकंद (Rhizome, चित्र ७२)–प्रकंद एक भूशायी, स्थूलित (thickened) स्तम्भ है जो भूमितल के नीचे क्षैतिज अवस्था में रेंगता है। इसमें स्पष्ट गांठें और छोटे या लम्बे पर्व रहते हैं। यह गांठों में कुछ शल्क पत्र धारण करता है; इसके शल्क पत्र के कक्ष में एक कलिका होती है, और प्रकंद एक अग्रस्थ कलिका में अन्त होता है। इसके निचले सतह से कुछ पतले अस्थानिक मूल निकलते हैं। प्रकंद अशाखी हो सकता है, या कभी-कभी कक्षस्थ कलिकाएं छोटी व मोटी शाखाएं उत्पन्न करती हैं। यह भूमि के अन्दर सुषुप्त अवस्था में रहता है और अनुकूल वर्षा ऋतु के आते ही अग्रस्थ कलिका वायवीय प्ररोह में वृद्धि प्राप्त करती है। कभी-कभी शाखाएं स्वयं ही अलग हो जाती हैं और प्रत्येक शाखा एक स्वतन्त्र पौधे के रूप में वृद्धि प्राप्त करती है। ऋतु के समाप्त होते ही या पुष्पों के लगने के पश्चात प्रतिवर्ष वायवीय भाग मर जाते हैं और आगामी वर्ष में वृद्धि एक या अधिक पार्श्व कलिकाओं द्वारा होती है और इस प्रकार वर्ष प्रति वर्ष वृद्धि सतत रहती है। इसकी दिशा सामान्यतः क्षैतिज होती है लेकिन कभी-कभी यह उदग्र (vertical) दिशा में बढ़ता है, तब इसको मूलवृन्त (root-stock) कहते हैं, जैसे मनकन्द (*Alocasia*) में। प्रकंद के उदाहरण कैना (*Canna*), अदरक, हल्दी, अरारूट, कमल, फर्न और कई सूरन कुल (aroids) के पौधों में दिखाई देते हैं।

भूमिगत रूपान्तरित स्तम्भ। चित्र ७२—अदरक का प्रकन्द (राइज़ोम)

(२) कन्द (Tuber, चित्र ७३)–यह एक विशेष भूमिगत शाखा का फूला हुआ भाग है। भूमिगत शाखा नीचे की पत्ती के कक्ष में उत्पन्न होती है और क्षैतिज दिशा में बाहर की ओर बढ़ती है और अन्त में चोटी में फूल जाती है। इसके तल पर कई अक्षियाँ या कलिकाएं होती हैं जो कि नये पौधों में विकसित होती हैं। अस्थानिक मूल, जो भूमिगत स्तम्भों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, कन्द में प्रायः अनुपस्थित होते हैं। भोज्य पदार्थ के अधिक संग्रह के कारण कन्द प्रायः बहुत फूल जाता है, यहाँ तक कि यह कभी-कभी लगभग गोलाकार हो जाता है, उदाहरणार्थ आलू। हाथीचूक (Jerusalem artichoke) एक दूसरा उदाहरण है।

आलू के कन्द का विकास और आकारिकीय स्वरूप (Development and

निकलते हैं, जैसे शकरकन्द में, या अधिमूल के रूपान्तर होते हैं, जैसे गुलअब्बास (four o'clock plant) में, और इनमें पर्व, गाँठें, शल्क पत्र व कलिकाएं नहीं होती। शकरकन्द में कुछ कलिकाएं, जो बिना शल्क पत्रों के होती हैं, मूल में फैली दिखाई देती हैं; (ग) स्तम्भ-कन्द की आन्तर रचना स्तम्भ के समान होती है, लेकिन मूल कन्द की आन्तर रचना मूल से मिलती है। इसलिये हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि स्तम्भ-कन्द स्तम्भ संरचना है और स्तम्भ का भूमिगत रूपान्तर है, और मूल-कन्द एक मूल संरचना है और अस्थानिक मूल या अधिमूल का रूपान्तर है।

(३) बल्ब (Bulb; चित्र ७४)—यह बहुत ह्रस्वित (shortened) भूमिगत स्तम्भ है। इसमें एक छोटा उत्तल (convex) या शंक्वाकार (conical) पट्ट या बिम्ब (disc) होता है, जिसके ऊपरी सतह से मांसल या शुष्क शल्क पत्र निकलते हैं जो कि लगभग एक दूसरे को अतिछादित करते हैं, और रेशेदार अस्थानिक मूल इसके आधार से निकलते हैं, उदाहरणार्थ प्याज, लहसुन, लीक, लिली इत्यादि। इसकी दिशा

भूमिगत रूपान्तरित स्तम्भ।

चित्र ७४—प्याज का बल्ब। क, एक सम्पूर्ण प्याज जिसमें बल्ब का निचला भाग अस्थानिक मूलों सहित और बाहरी शुष्क शल्क पत्र स्पष्ट शिराओं सहित दिखाई देते हैं। ख, एक प्याज अनुदैर्घ्य काट में; और ग, एक प्याज अनुप्रस्थ काट में।

उदग्र है और बल्ब की अग्रस्थ कलिका वायवीय प्ररोह को जन्म देती है। मांसल शल्क पत्रों के कक्ष में कुछ कक्षस्थ कलिकाएं भी उत्पन्न हो सकती है। ये या तो वायवीय प्ररोह में विकसित हो सकती हैं या अनुजात बल्ब (daughter bulb) उत्पन्न करती हैं। अनुजात बल्ब आगामी वर्ष में बढ़ते हैं।

बल्ब सवेष्ट (tunicated) हो सकता है, जैसे प्याज में, या शल्की (scaly) या नग्न, जैसे लिली में। सवेष्ट बल्ब में आन्तर मांसल शल्क एक दूसरे को एककेन्द्रीय (concentric) रूप से समावृत करते हैं और यह बाहर से कुछ बाह्य शुष्क शल्कों द्वारा

Morphological Nature of Potato Tuber)—आलू का कन्द एक स्तम्भ संरचना है। पहले स्तम्भ के भूमिगत भाग की एक कक्षस्थ कलिका एक पतली लगभग क्षैतिज शाखा [वास्तव में विरोहक (stolon)] में वृद्धि करती है। इस शाखा में पर्व, गांठ, शल्क पर्ण, और एक अग्रस्थ कलिका रहती है। इसकी वृद्धि शीघ्र ही रुक जाती

भूमिगत रूपान्तरित स्तम्भ। चित्र ७३—आलू का कन्द।

है, लेकिन फिर भी हरे वायवीय भाग से इस शाखा में खाद्य का निरन्तर प्रवाह होता रहता है, जो इसके सिरे पर एकत्रित होता रहता है। इस प्रकार यह क्रमशः बढ़ता जाता है और प्रायः अन्त में लगभग गोलाकार हो जाता है। भूमिगत शाखा का यह विस्तृत सिरा ही कन्द कहलाता है। शाखा के समान कन्द में कलिकाएं होती हैं [जो सामान्यतः 'आँखें' (eyes) कहलाती हैं]। ये कलिकाएं गाँठ पर स्थित शल्क पत्रों के कक्ष में विकसित होती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें एक अग्रस्थ कलिका भी होती है। एक दीर्घित कन्द में स्तम्भ व शाखा के समान शल्क पत्रों और कलिकाओं का सर्पिल विन्यास आसानी से देखा जा सकता है। इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि इसका स्तम्भ स्वरूप है। इसकी आन्तरिक रचना भी स्तम्भ के समान है।

स्तम्भ-कन्द (Stem-tuber) और मूल-कन्द (Root-tuber)—ये दोनों संरचनाएं भूमिगत रहते हैं और एक समान दिखाई देते हैं, लेकिन (क) स्तम्भ-कन्द का स्तम्भ के गाँठ में शल्क पत्र के कक्ष में बहिर्जात उद्‌भव होता है, इसमें पर्व व गाँठें होती हैं और वर्धी प्रचारण के लिये शल्क पत्र के कक्ष में कलिकाएं होती हैं; इसके विपरीत मूल-कन्द या ग्रन्थिल मूल (tuberous root) स्तम्भ के किसी भाग से अस्थानिकतया

निकलते हैं, जैसे शकरकन्द में, या अधिमूल के रूपान्तर होते हैं, जैसे गुलअब्बास (four o'clock plant) में, और इनमें पर्व, गांठें, शल्क पत्र व कलिकाएं नहीं होती। शकरकन्द में कुछ कलिकाएं, जो बिना शल्क पत्रों के होती हैं, मूल में फैली दिखाई देती हैं; (ग) स्तम्भ-कन्द की आन्तर रचना स्तम्भ के समान होती है, लेकिन मूल कन्द की आन्तर रचना मूल से मिलती है। इसलिये हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि स्तम्भ-कन्द स्तम्भ संरचना है और स्तम्भ का भूमिगत रूपान्तर है, और मूल-कन्द एक मूल संरचना है और अस्थानिक मूल या अधिमूल का रूपान्तर है।

(३) बल्ब (Bulb; चित्र ७४)—यह बहुत ह्रस्वित (shortened) भूमिगत स्तम्भ है। इसमें एक छोटा उत्तल (convex) या शंक्वाकार (conical) पट्ट या बिम्ब (disc) होता है, जिसके ऊपरी सतह से मांसल या शुष्क शल्क पत्र निकलते हैं जो कि लगभग एक दूसरे को अतिछादित करते हैं, और रेशेदार अस्थानिक मूल इसके आधार से निकलते हैं, उदाहरणार्थ प्याज, लहसुन, लीक, लिली इत्यादि। इसकी दिशा

भूमिगत रूपान्तरित स्तम्भ।

चित्र ७४—प्याज का बल्ब। क, एक सम्पूर्ण प्याज जिसमें बल्ब का निचला भाग अस्थानिक मूलों सहित और बाहरी शुष्क शल्क पत्र स्पष्ट शिराओं सहित दिखाई देते हैं। ख, एक प्याज अनुदैर्घ्य काट में, और ग, एक प्याज अनुप्रस्थ काट में।

ऊर्ध्व है और कन्द की अग्रस्थ कलिका वायवीय प्ररोह को जन्म देती है। मांसल शल्क पत्रों के कक्ष में कुछ कक्षस्थ कलिकाएं भी उत्पन्न हो सकती हैं। ये या तो वायवीय प्ररोह में विकसित हो सकती हैं या अनुजात बल्ब (daughter bulb) उत्पन्न करती हैं। अनुजात बल्ब आगामी वर्ष में बढ़ते हैं।

बल्ब सवेष्ट (tunicated) हो सकता है, जैसे प्याज में, या शल्की (scaly) या नग्न, जैसे लिली में। सवेष्ट बल्ब में आन्तर मांसल शल्क एक दूसरे को एककेन्द्रीय (concentric) रूप से समावृत करते हैं और यह बाहर से कुछ बाह्य शुष्क शल्कों द्वारा

ढके रहते हैं। शल्की वल्त्र में वाह्य शुष्क शल्क नहीं होते और आन्तर माँसल शल्क एक दूसरे को अंशतः केवल तट पर समावृत करते हैं।

(४) घनकंद (Corm, चित्र ७५-७६) – यह प्रकंद का संघनित रूप है और स्थूल, ठोस, माँसल, भूमिगत स्तम्भ है जो कि उदग्र दिशा में वृद्धि करता है। यह आकार में लगभग गोल या प्रायः शीर्ष से नीचे तक कुछ चिपिटित होता है। इसमें खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा में संचित रहता है और यह प्रायः वहुत परिमाण में वढ़ता है। यह शल्क
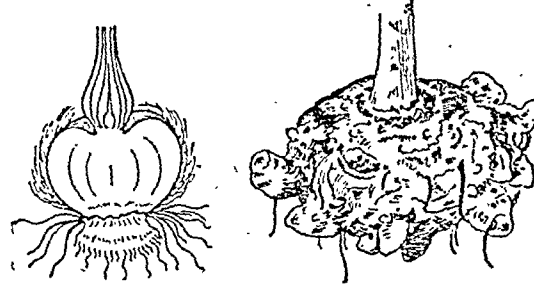
चित्र ७५—केसर का घनकन्द। चित्र ७६—सूरन का घनकन्द।
भूमिगत रूपान्तरित स्तम्भ।

पत्रों के कक्षों में एक या अधिक कलिकाएं उत्पन्न करता है और इनमें से कुछ कलिकाएं अनुजात घनकन्दों (daughter corms) में वढ़ते हैं। अस्थानिक मूल सामान्यतः आधार से, लेकिन कभी-कभी पार्श्व से भी निकलते हैं। घनकंद सूरन (*Amorphophallus*), कचालू (*Colocasia*), केसर (*Crocus*), कौलकीकम (*Colchicum*), इत्यादि में पाये जाते हैं। केसर काश्मीर में उगाया जाता है।

घनकंद पूर्ण रूप से विकसित तभी होता है जव उसमें फूल लगना समाप्त हो जाता है। प्रति वर्ष एक घनकंद उत्पन्न होता है और दो या तीन क्रमागत वर्षों में एक दूसरे के ऊपर दो या तीन घनकंद पैदा हो सकते हैं, लेकिन पुराने घनकंद काफी हद तक सिकुड़ने तथा सूखने लगते हैं। वसन्त ऋतु में एक अग्रस्थ कलिका उत्पन्न होती है जो कि वायवीय प्ररोह में विकसित हो जाती है। शल्कों के कक्षों में पार्श्व कलिकाएं भी उत्पन्न हो सकती हैं, और प्रत्येक एक अनुजात घनकंद में विकसित होती है। ये अनुजात घनकंद तत्पश्चात अलग-अलग हो कर नये पौधों को जन्म देते हैं।

२. स्तम्भों के अधःवायवीय रूपान्तर (Sub-aerial Modifications of Stems)

वर्धी प्रचारण के उद्देश्य की पूर्ति के लिये कुछ पौधों में स्तम्भ की कुछ निचली सुपुप्त कलिकाएं पतली पार्श्व शाखाओं में वृद्धि करती हैं। इनको उद्भव (origin), प्रकृति (nature) और प्रचारण की विधि के अनुसार अलग-अलग नाम दिये गये

हैं। इनमें से कुछ अधःवायवीय हैं और भूमि के तल पर फैलते हैं और कुछ अंशतः भूमिगत हैं। इनके विभिन्न रूप भूप्रसारी (runner), विरोहक (stolon), भूस्तारिका (offset) और भूस्तारी (sucker) हैं। कभी-कभी इन रूपान्तरित शाखाओं से प्रचारण इतनी तीव्र गति से होता है कि थोड़े ही समय में धरती का काफी भाग इनकी संतति (progeny) द्वारा ढक जाता है।

(१) भूप्रसारी (Runner चित्र ७७)–यह एक पतली भूगामी शाखा है जिसमें लम्बे पर्व होते हैं। यह भूमि में सर्पण करती है और गाँठों पर जड़ें पैदा करती हैं। भूप्रसारी कक्षस्थ कलिका के रूप में उत्पन्न होती है और मातृ पौधे से कुछ दूर पर सर्पण करती है। यह नई जड़ें उत्पन्न करती है और एक नये पौधे के रूप में वृद्धि करती

चित्र ७७–खट्टी बूटी का भूप्रसारी।
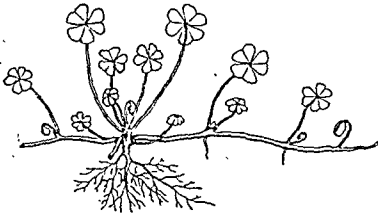
है। मातृ पौधे द्वारा ऐसे कई भूप्रसारी उत्पन्न किये जाते हैं जो भूमि में चारों दिशाओं में फैल जाते हैं। ये मातृ पौधे से अलग हो सकते हैं और स्वतन्त्र [illegible] पौधे के रूप में बढ़ते हैं। दूसरे वर्षों प्रचारण [illegible] के लिये होते हैं। इनके उदाहरण खट्टी बूटी (Oxalis) मार्सीलिया (Marsilea) स्ट्राबेरी, ब्राह्मी (Centella) इत्यादि हैं।
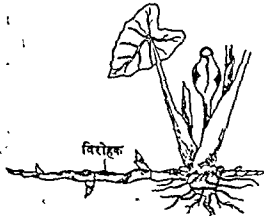
चित्र ७८—कचालू का विरोहक।

(२) विरोहक (Stolon. चित्र ७८)–यह स्तम्भ के आधार पर उत्पन्न

और भूमि में दबा हुआ एक प्ररोह है और यह क्षैतिज वहिर्मुख (horizontally outwards) एक लम्बे या छोटे पतले भूमिगत शाखा के रूप में बढ़ती है। शाखाएं भिन्न-भिन्न दिशाओं में बढ़ती है और कुछ दूरी पर उनके सिरे (अग्रस्थ कलिकाएं) भूमि से बाहर निकल आते हैं और एक नये पौधे के रूप में विकसित हो जाते हैं। इस प्रकार की भूमिगत शाखा विरोहक कहलाती है। विरोहक भूप्रसारी से सब बातों में समान होती है, केवल यह भूमिगत है और भूप्रसारी अधःवायवीय है। विरोहक के उदाहरण कचालू, अरारूट, झुमकलता (passion-flower) कुछ प्रकार के बेला (jasmines) श्वेत रंगन (*Ixora*), ड्रेसीना (*Dracaena*) टिकोमा ग्रैन्डीफ्लोरा (*Tecoma grandiflora*) है।

चित्र ७९—पिस्टिया की भूस्तारिका।

(३) भूस्तारिका (Offset; चित्र ७९)—भूप्रसारी के समान यह छोटी और लगभग स्थूलित भूशायी शाखा है जो एक पत्ती के कक्ष में उत्पन्न होती है। यह चोटी पर ऊपर की ओर पत्तियों का गुच्छा और नीचे की ओर अस्थानिक मूलों को उत्पन्न करती है। भूस्तारिका प्रायः मातृ पौधे से अलग हो जाती है और तब अनुजात पौधा अपना जीवन अलग रूप से आरम्भ करता है, उदाहरणार्थ पिस्टिया (*Pistia*) और जल कुम्भी या आइसोरनिया (*Eichhornia*) में। भूस्तारिका भूप्रसारी से छोटा व स्थूल है और केवल गुलाबवत् (rosette) प्रकार के पौधों में पाया जाता है।

(४) भूस्तारी (Sucker, चित्र ८०)—विरोहक के समान भूस्तारी स्तम्भ के भूमिगत भाग से विकसित पार्श्व शाखा है, लेकिन यह तिर्यक्रूपेण वहिर्मुख (obliquely upwards) बढ़ती है और प्रत्यक्षतः एक पत्री प्ररोह (leafy shoot) या नया पौधा उत्पन्न करती है। कभी-कभी यह कुछ दूर तक क्षैतिज वहिर्मुख बढ़ती है लेकिन जल्दी ही यह ऊपर को मुड़ जाती है। भूस्तारी हमेशा विरोहक से बहुत छोटी होती है। भूस्तारी अपने आधार से या मातृ पौधे से अलग होने से पहले या अलग होते ही जड़ें उत्पन्न करती है। यह पौधे के वर्धी प्रचारण या प्रजनन के लिये है। भूस्तारी के उदाहरण गुलदाउदी (*Chrysanthemum*), गुलाब, पुदीना; पिपरमेन्ट, यक्का (*Yucca*), इत्यादि हैं।

चित्र ८०—गुलदाउदी का भूस्तारी।

३. वायवीय रूपान्तर: रूपान्तरण (Aerial modifications: Metamorphoses)

वर्धी व पुष्प कलिकाएं जो सामान्यतः शाखाओं तथा पुष्पों में विकसित होती हैं, प्रायः कुछ पौधों में विशेष कार्य सम्पन्न करने के लिये यथेष्ट सीमा तक रूपान्तरित हो जाती हैं। परिवर्तित (रूपान्तरित) अंग आरोहण के लिये स्तम्भ तन्तु (stem tendril), रक्षा के लिये कंट (thorn), खाद्य निर्माण के लिये पर्ण कार्य स्तम्भ (phylloclade), और वर्धी प्रजनन के लिये पत्रकंद (bulbil) हैं।

चित्र ८१
स्तम्भ तन्तु। चित्र ८१—कुमकलता के तन्तु।

चित्र ८२
चित्र ८२—कौरव

और भूमि में दबा हुआ एक प्ररोह है और यह क्षैतिज बहिर्मुख (horizontally outwards) एक लम्बे या छोटे पतले भूमिगत शाखा के रूप में बढ़ती है। शाखाएं भिन्न-भिन्न दिशाओं में बढ़ती हैं और कुछ दूरी पर उनके सिरे (अग्रस्थ कलिकाएं) भूमि से बाहर निकल आते हैं और एक नये पौधे के रूप में विकसित हो जाते हैं। इस प्रकार की भूमिगत शाखा विरोहक कहलाती है। विरोहक भूप्रसारी से सब बातों में समान होती है, केवल यह भूमिगत है और भूप्रसारी अधःवायवीय है। विरोहक के उदाहरण कचालू, अरारूट, झुमकलता (passion-flower) कुछ प्रकार के बेला (jasmines) श्वेत रंगन (*Ixora*), ड्रेसीना (*Dracaena*) टिकोमा ग्रैन्डीफ्लोरा (*Tecoma grandiflora*) हैं।

चित्र ७९—पिस्टिया की भूस्तारिका।

(३) भूस्तारिका (Offset; चित्र ७९)—भूप्रसारी के समान यह छोटी और लगभग स्थूलित भूशायी शाखा है जो एक पत्ती के कक्ष में उत्पन्न होती है। यह चोटी पर ऊपर की ओर पत्तियों का गुच्छा और नीचे की ओर अस्थानिक मूलों को उत्पन्न करती है। भूस्तारिका प्रायः मातृ पौधे से अलग हो जाती है और तब अनुजात पौधा अपना जीवन अलग रूप से आरम्भ करता है, उदाहरणार्थ पिस्टिया (*Pistia*) और जल कुम्भी या आइसौरनिया (*Eichhornia*) में। भूस्तारिका भूप्रसारी से छोटा व स्थूल है और केवल गुलाववत् (rosette) प्रकार के पौधों में पाया जाता है।

(४) भूस्तारी (Sucker, चित्र ८०)—विरोहक के समान भूस्तारी स्तम्भ के भूमिगत भाग से विकसित पार्श्व शाखा है, लेकिन यह तिर्यक्‌रूपेण बहिर्मुख (obliquely upwards) बढ़ती है और प्रत्यक्षतः एक पत्री प्ररोह (leafy shoot) या नया पौधा उत्पन्न करती है। कभी-कभी यह कुछ दूर तक क्षैतिज बहिर्मुख बढ़ती है लेकिन जल्दी ही यह ऊपर को मुड़ जाती है। भूस्तारी हमेशा विरोहक से बहुत छोटी होती है। भूस्तारी अपने आधार से या मातृ पौधे से अलग होने से पहले या अलग होते ही जड़ें उत्पन्न करती है। यह पौधे के वर्धी प्रचारण या प्रजनन के लिये है। भूस्तारी के उदाहरण गुलदाउदी (*Chrysanthemum*), गुलाब, पुदीना; पिपरमेन्ट, यक्का (*Yucca*), इत्यादि हैं।

चित्र ८०—गुलदाउदी का भूस्तारी।

३. वायवीय रूपान्तर: रूपान्तरण (Aerial modifications: Metamorphoses)

वर्धी व पुष्प कलिकाएं जो सामान्यतः शाखाओं तथा पुष्पों में विकसित होती हैं, प्रायः कुछ पौधों में विशेष कार्य सम्पन्न करने के लिये यथेष्ट सीमा तक रूपान्तरित हो जाती हैं। परिवर्तित (रूपान्तरित) अंग आरोहण के लिये स्तम्भ तन्तु (stem tendril), रक्षा के लिये कंट (thorn), खाद्य निर्माण के लिये पर्ण कार्य स्तम्भ (phylloclade), और वर्धी प्रजनन के लिये पत्रकंद (bulbil) हैं।

चित्र ८१ चित्र ८२

स्तम्भ तन्तु। चित्र ८१—झुमकलता के तन्तु। चित्र ८२—कौरकुलम के तन्तु।

(१) स्तम्भ-तन्तु (Stem-tendril; चित्र ८१-८३)—यह पतली तार सदृश, पर्णहीन कुन्तल वलयित (spirally-curled) शाखा है जिसकी सहायता से आरोही पौधे पड़ोसी वस्तुओं के चारों ओर लिपट जाते हैं और उनके ऊपर चढ़ते हैं। स्तम्भ तन्तु अंगूर (*Vitis*), झुमकलता (*Passiflora*), इत्यादि में पाये जाते हैं। तन्तु हमेशा एक आरोही अंग होता है और इस लिये केवल आरोही पौधों में पाया जाता है। यह कभी-कभी छोटे शल्क पत्र भी धारण कर सकता है और बहुधा यह शाखी भी होता है।
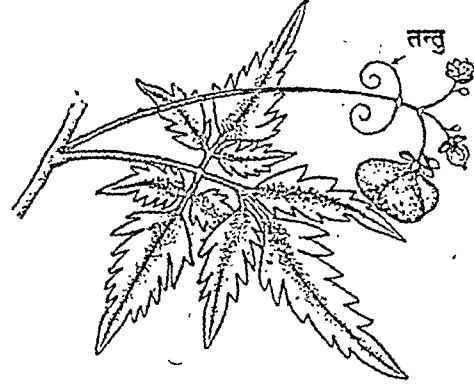
चित्र ८३—कार्डियोस्परमम के तन्तु।

क्योंकि स्तम्भ तन्तु पत्तियों के कक्ष या शाखा के अग्रक से उत्पन्न होता है, इसलिये

स्तम्भ तन्तु।　चित्र ८४—गौआनिया के तन्तु।

यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि तन्तु स्तम्भ या शाखा का रूपान्तर है। अतः झुमकलता (passion-flower) में कक्षस्थ कलिका तन्तु में रूपान्तरित है, और अंगूर में अग्रस्थ कलिका तन्तु में रूपान्तरित रहती है। कार्डियोस्पर्मम (*Cardiospermum*) और कोरकुलम (*Corculum*; चित्र ८२) में पुष्प कलिकाएं तन्तुओं में रूपान्तरित हो जाती हैं। गोआनिया (*Gouania*) में पौधे के आधार के लिये बहुत सी शाखाएं दृढ़ तन्तुओं में अन्त होती हैं (चित्र ८४)। कुछ तन्तुओं की आकारिकी स्पष्ट करना कठिन है, जैसे ककड़ी, सीताफल, लौकी, इत्यादि में। यह कहना कठिन है कि तन्तु कक्षस्थ बहिस्थ (extra-axillary) है या पर्ण विपरीत (leaf-opposed)। यह बात अभी विवादास्पद है कि इनको शाखाओं (कक्षस्थ कलिकाओं) का या विपरीत (opposite) पत्तियों का रूपान्तर माना जाय।
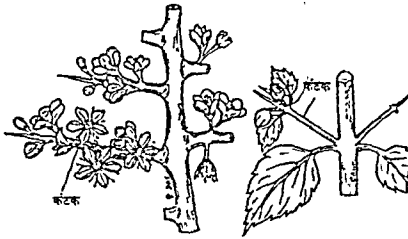
कंटक। चित्र ८५—प्रूनस के कंटक। चित्र ८६—नीलकाटा का कंटक।

(२) कंटक (Thorn चित्र ८५-८६)—कंटक एक कठोर प्रायः सीधी और नुकीली संरचना है। यह एक रूपान्तरित शाखा मानी जाती है क्योंकि यह एक पत्ती के कक्ष में और कभी-कभी एक शाखा के अग्रक में, जो कि कलिकाओं की सामान्य स्थिति है, उत्पन्न होती है, अतः नीलकाटा (*Duranta*) में कक्षस्थ कलिका कंटक में रूपान्तरित हो जाती है, और करौंदा (*Carissa*) में अग्रस्थ कलिका दो कंटकों में परिवर्तित हो जाती है। कंटक का रूपान्तरित स्वरूप इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि यह एक कलिका की जगह पर स्थित रहता है, और कभी-कभी यह पत्ती, पुष्प और फल भी धारण करता है, जैसे नीलकाटा (चित्र ८६) और प्रूनस (*Prunus*) में, और प्रायः यह शाखी भी हो जाता है जैसे पनिआला (*Flacourtia*) में। कंटक चर्म

से भी गहरी स्थित स्तरों से उत्पन्न होता है इसलिये यह आसानी से अलग नहीं किया जा सकता। अन्य सामान्य उदाहरण, बेल (*Aegle*), नीबू (lemon), अनार (pomegranate), मोइना (*Vangueria*), इत्यादि हैं। कंटक एक प्रतिरक्षी अंग है और जिन पौधों में ये पाये जाते हैं वे चरनेवाले जानवरों के आक्रमण से इनके द्वारा अपनी रक्षा करते हैं, जैसे बगनविलास या बोगेनवेलिया (*Bougainvillea*) में।

कंटक और शिताग्र में अन्तर (Differences between Thorns and Prickles)–कंटक और शिताग्र दोनों तेज और नुकीले होते हैं और मुख्यतः प्रतिरक्षी अंग हैं। वे कभी-कभी आरोही अंग का भी काम करते हैं। इनमें निम्नलिखित आकारिकीय (morphological) अन्तर हैं: कंटक कक्षस्थ कलिका का रूपान्तर है। यह प्रायः पत्ती, पुष्प, और फल धारण करता है और प्रायः शाखी (branched) होता है। शिताग्र केवल एक उद्वर्ध (outgrowth) है और कभी पर्ण, पुष्प तथा फल उत्पन्न नहीं करता और अशाखी होता है। कंटक की स्थिति कक्षस्थ होती है, लेकिन शिताग्र वंटन (distribution) में अनियमित होता है और स्तम्भ, शाखा या पत्ती के किसी भाग में पाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कंटक गम्भीर स्थित (deep-seated), लेकिन शिताग्र की उत्पत्ति धरातलीय (superficial) होती है। कंटक बेल, नीलकांटा में, और शिताग्र गुलाब और पाँगरा या मंदार (*Erythrina*) में पाया जाता है।

चित्र ८७ चित्र ८८ चित्र ८९
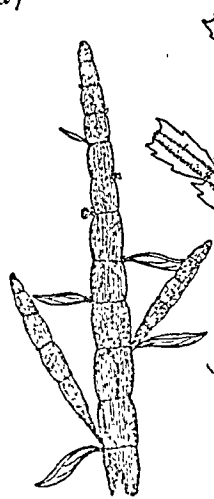
पर्ण कार्य स्तम्भ।
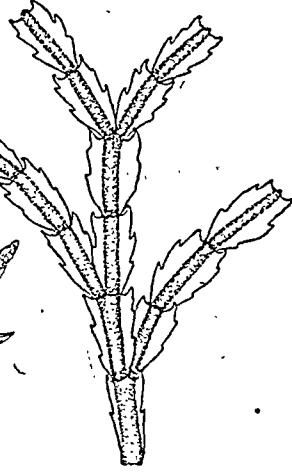
चित्र ८७—नागफनी। चित्र ८८—कोकोलोबा। चित्र ८९—एपिफ़िलम।

(३) पर्ण कार्य स्तम्भ (Phylloclade, चित्र ८७-८९) पर्ण कार्य स्तम्भ एक हरा चिपिटित (flattened) या गोलाकार स्तम्भ है। हरा होने के कारण यह पत्तियों का कार्य करता है जो कि या तो शल्क रूप में विकसित होती हैं या कंट (spine) में रूपान्तरित रहती हैं। इसके उदाहरण अनेक कैक्टाई (cacti), जैसे नागफनी (*Opuntia*), सीरियस (*Cereus*), फिलोकैक्टस (*Phyllocactus*) और एपिफिल्लम (*Epiphyllum*) में पाये जाते हैं। अन्य सामान्य उदाहरण कोकोलोबा (*Cocoloba*), जंगली सरो (*Casuarina*), यूफोर्बिया (*Euphorbia*) इत्यादि हैं। एक पर्व (internode) वाला पर्ण कार्य स्तम्भ पर्णांक पर्व (cladode) कहलाता है (चित्र ९०), जैसे सतावरी (*Asparagus*) में। लेम्ना (*Lemna*) पर्णांक पर्व का अन्य सामान्य उदाहरण है। कैक्टाई और अन्य मरुस्थलीय पौधों के पर्ण कार्य स्तम्भ मरुस्थल की दशाओं के लिये उपयोजन हैं। इन पौधों में मरुस्थल की अनिश्चित जल प्रदाय (water supply) के कारण वाष्पोत्सर्जनीय सतह न्यूनतम प्रकाशित कर दी जाती है। सतावरी का पर्णांक पर्व भी इसी प्रकार का उपयोजन है।

पर्णांक पर्व

चित्र ९०—सतावरी के पर्णांक पर्व।

(४) पत्रकंद (Bulbil),—पत्रकंद एक विशेष बहुकोशिक अंग है जो प्रधान रूप से पौधों के प्रजनन के लिये होता है। यह वर्धी कलिका या पुष्प कलिका का रूपान्तर हो सकता है। प्रत्येक दशा में यह मातृ पौध से अलग होकर एक स्वतन्त्र पौधे को जन्म देता है। रतालू (*Dioscorea;*) में पत्रकंद एक मांसल वक्षस्थ काय (body) है, लेकिन खट्टी बूटी (*Oxalis*) में बहुत छोटे पत्र कंद ग्रन्थिल मूल के सिरे पर पाये जाते हैं। ग्लोबा (*Globba*) अगेव (*Agave*) और प्याज में पत्र कंद पुष्पों के रूपान्तर हैं और पुष्पक्रम (inflorescence) में पाये जाते हैं।

शाखा-विन्यास (BRANCHING)

शाखाओं के स्तम्भ पर विन्यास (arrangement) की विधि को **शाखा-विन्यास** कहते हैं। शाखा विन्यास दो मुख्य प्रकार का होता है, अर्थात्, **पार्श्व** (lateral) और **युग्मभुजी** (dichotomous)

(क) **पार्श्व शाखा-विन्यास** (Lateral Branching)

जब शाखाएं पार्श्व से उत्पन्न होती हैं, अर्थात् मुख्य स्तम्भ के पार्श्व से, तो ऐसे शाखा विन्यास को **पार्श्व शाखा-विन्यास** कहते हैं। पार्श्व शाखा-विन्यास **एकवर्ध्यक्षीय** (racemose) या अनिश्चित (indefinite) या एकाक्षी (monopodial) और **बहुवर्ध्यक्षीय** (cymose) या निश्चित (definite) होती है।

(१) **एकवर्ध्यक्षीय प्रकार** (Racemose type)—इस प्रकार में मुख्य स्तम्भ की वृद्धि अनिश्चित है, अर्थात् यह अग्रस्थ कलिका द्वारा अपनी वृद्धि सतत रखता है और अग्राभिसारी अनुक्रम (acropetal succession) से पार्श्व में शाखाएं उत्पन्न करता है, अर्थात् निचली शाखाएं ऊपरी शाखाओं से पुरानी और लम्बी होती हैं। इस प्रकार के शाखा-विन्यास को **एकाक्षी** (monopodial) भी कहते हैं क्योंकि इसमें केवल एक ही सतत अक्ष होता है, जैसे जंगली सरो (*Casuarina*), अशोक (*Polyalthia*), इत्यादि में।

(२) **बहुवर्ध्यक्षीय प्रकार** (Cymose type)—इस प्रकार में प्रधान स्तम्भ की वृद्धि निश्चित होती है, अर्थात् अग्रस्थ कलिका वृद्धि सतत नहीं रखती, लेकिन निचले हिस्से में मुख्य स्तम्भ पार्श्व शाखाएं उत्पन्न करता है जो अग्र शाखाओं से अधिक तीव्र गति से वृद्धि करती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अग्रस्थ कलिका शीघ्र मर जाती है

या उसकी वृद्धि शीघ्र रुक जाती है और तब दो ओजस्वी पार्श्व शाखाएं निकलती हैं जो ऐसा प्रतीत होता है कि अग्रस्थ कलिका दो भागों में विभाजित हो गई है और तब यह

चित्र ९१ चित्र ९२ चित्र ९३ चित्र ९४

शाखा-विन्यास के प्रकार। चित्र ९१—एक वर्ध्यक्षीय प्रकार।
चित्र ९२—सत्य द्विशाखी बहुवर्ध्यक्ष। चित्र ९३—वाश्चिक बहुवर्ध्यक्ष।
चित्र ९४—कुण्डलाकार बहुवर्ध्यक्ष।
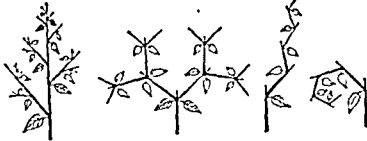
युग्म-शाखिता (dichotomy) जैसे दिखाई देती है। यह शाखा विन्यास कूट युग्म-शाखिता (false dichotomy) कहलाती है, जैसे गुल अब्बास (*Mirabilis*), करौंदा (*Carissa*), गुलाचिन (*Plumeria*)। बहुवर्ध्यक्षीय शाखा विन्यास निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं:

(१) एक शाखी या एकभुजी शाखा-विन्यास (Uniparous Branching or Monochasium)–बहुवर्ध्यक्ष रूप में यदि एक बार केवल एक पार्श्व शाखा उत्पन्न होती है तो उसको एक शाखी शाखा-विन्यास कहते हैं। एक शाखी शाखा-विन्यास को संयुक्ताक्षी (sympodial) भी कहते हैं, क्योंकि पौधे के विकास के दौरान में अनुजात अक्ष (daughter axes) उत्तरोत्तर एक दूसरे से सायुज्यित (fused) होती हैं (चित्र ९५-९६)। इसके दो विशिष्ट रूप हैं। (अ) कुंडलाकार या एकपार्श्वी बहुवर्ध्यक्ष (helicoid or one-sided cyme, चित्र ९४)–जब कि उत्तरोत्तर पार्श्व शाखाएं एक ही ओर से निकलती हैं और एक प्रकार का भ्रमिपथ (helix) बनाती हैं, जैसे सीता अशोक (*Saraca indica*) में, और (आ) वाश्चिक (scorpioid) या एकान्तरिक पार्श्वी बहुवर्ध्यक्ष (alternate-sided cyme, चित्र ९३), जब कि उत्तरोत्तर पार्श्व शाखाएं एकान्तरण दाहिने तथा बाईं ओर से निकलती हैं और एक प्रकार की सर्पाकार आकृति बनाती हैं, जैसे अंगूर (*Vitis vinifera*), हड़जोड़ (*Cissus quadrangularis*) और वाइटिस ट्राइफोलिया (*Vitis trifolia*), इत्यादि में। इनमें प्रत्यक्ष (apparent) या कूट (false) अक्ष (संयुक्ताक्ष sympodium) उत्तरोत्तर पार्श्व अक्षों से मिलकर बना है और तन्तु (tendrils) अग्रस्थ वर्धी कलिकाओं के रूपान्तर हैं (चित्र ९५-९६)।

(२) द्विशाखी शाखा-विन्यास (Biparous Branching or Dichasium)—यदि बहुवर्ध्यक्ष शाखा-विन्यास में एक साथ ही दो पार्श्व अक्ष उत्पन्न होते हैं तो उसको द्विशाखी कहते हैं (चित्र ९२)। इसके उदाहरण मिसलटो

चित्र ९५ चित्र ९६
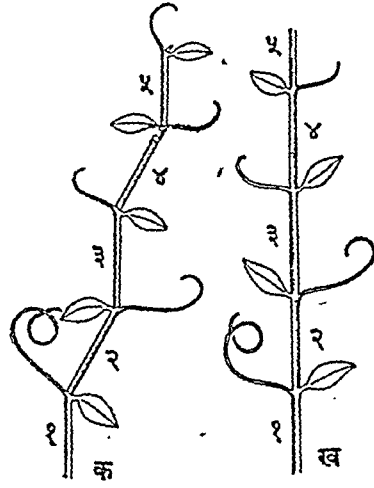
संयुक्ताक्षी शाखा-विन्यास। चित्र ९५—क, वार्च्छिक प्रकार जिसमें अग्रस्थ तन्तु और पार्श्व अक्ष दिखाये गये हैं। ख, वही वृद्धि के बाद सीधा हो गया है। १-५ संयुक्ताक्ष के अक्ष हैं। चित्र ९६—हरजोर का संयुक्ताक्षी शाखा-विन्यास।

(mistletoe), चाँदनी (*Ervatamia*), गुलअब्बास (*Mirabilis jalapa*) करौंदा (*Carissa*), गुलचिन (*Plumeria*) और स्टीलेरिया मीडिया (*Stellaria media*) हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अग्रस्थ कलिका अविकसित रह जाती है या शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, तब शाखा विन्यास युग्मशाखिता (dichotomy) के समान लगता है और इसको प्रायः कूट युग्मशाखिता (false dichotomy) कहते हैं।

(३) बहुशाखी शाखा-विन्यास (Multiparous Branching or Polychasium)—यदि एक बार में दो से अधिक पार्श्व शाखाएं विकसित होती हैं तो उसको बहुशाखी शाखा-विन्यास कहते हैं, जैसे क्रोटन स्पार्सीफ्लोरस (*Croton sparsiflorus*) और यूफोर्बिया (*Euphorbia*) की स्पीशीज में।

(ख) **युग्मभुजी** शाखा-विन्यास (Dichotomous Branching)—जब अग्रस्थ कलिका द्विशाखित हो जाती है, अर्थात् दो भागों में विभाजित हो जाती है दो शाखाएं द्विशाख रूप में उत्पन्न करती है तो शाखा-विन्यास को **युग्मभुजी** (dicho
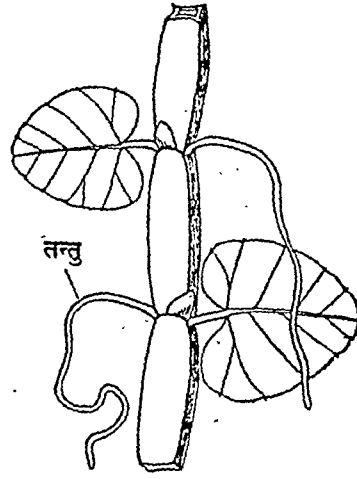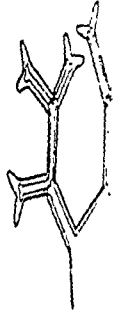
mous) कहते हैं। युग्मभुजी शाखा-विन्यास अपुष्पी पौधों (flowerless plants) में बहुधा पाया जाता है। यह निम्नलिखित प्रकार का हो सकता है :

(१) सत्य युग्मशाखिता (True Dichotomy)—जब अग्रस्थ कलिका दो में विभाजित हो जाती है और दो समान प्रबल शाखाएं बनाती है जो उसी प्रकार से फिर विभाजित होती हैं तो उसको सत्य युग्मशाखिता कहते हैं।
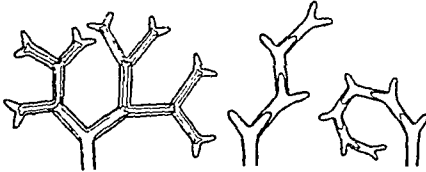
चित्र ९७ चित्र ९८ चित्र ९९
शाखा-विन्यास के प्रकार। चित्र ९७—सत्य युग्मशाखिता।
चित्र ९८—वाल्छिक युग्मशाखिता। चित्र ९९—कुण्डलाकार युग्मशाखिता।

सत्य युग्मशाखिता क्रिप्टोगम्स (cryptogams), जैसे रिक्सिया (*Riccia*), मार्केन्शिया (*Marchantia*), लाइकोपोडियम फ्लेग्मेरिया (*Lycopodium phlegmaria*) इत्यादि में पाये जाते हैं। पुष्पी पादपों में इसके उदाहरण हाइफेनी (*Hyphaene*) (एक प्रकार का ताड़), केवड़ा (*Pandanus*), कंसकोरा (*Canscora*), इत्यादि में मिलते हैं।

(२) संयुक्ताक्षी युग्मशाखिता (Sympodial Dichotomy)—जब युग्मभुजी शाखाएं उत्तरोत्तर एक ही पार्श्व में या एकान्तरिक पार्श्वों में विलोपित (suppressed) रहती हैं तो शाखा-विन्यास को संयुक्ताक्षी युग्मशाखिता कहते हैं। संयुक्ताक्षी बहुशाखी (sympodial cyme) के समान इसके भी दो रूप हैं (१) कुंडलाकार युग्मशाखिता और (२) वाल्छिक युग्मशाखिता पूर्वोक्त दशा में द्विशाख शाखाओं की एक भुजा हमेशा एक ही पार्श्व में विलोपित होती है, और उत्तरोक्त दशा में विलोपन एकान्तरण पार्श्वों में होता है।

स्तम्भ के कार्य (FUNCTIONS OF THE STEM)

(१) संवाहन (Conduction)—यह पानी और विलीन (dissolved) खनिज लवणों को मूल से पत्ती तक संवाहन करता है और पत्तियां द्वारा निर्मित खाद्य पदार्थों

को पर्ण से पौधे के शरीर के विभिन्न अंगों, विशेषकर संग्रह अंगों और वर्धमान प्रदेशों (growing regions) तक संवाहन करता है।

(२) आधार (Support)–मुख्य तना एक प्रकार के स्तम्भ का काम करता है और विभिन्न दिशाओं में फैली हुई शाखाओं को आधार प्रदान करता है।

(३) पत्तियाँ आदि को धारण करना (Bearing leaves, etc.)–स्तम्भ और शाखाएं पत्तियाँ धारण करते हैं और उनको सब दिशाओं में वंटन करते हैं ताकि सब को सूर्य के प्रकाश की अधिकतम मात्रा खाद्य पदार्थ के निर्माण के लिये मिल सके। वे पौधे के प्रजनन के लिय पुष्प भी धारण करते हैं।

(४) संग्रह (Storage)–स्तम्भ खाद्य पदार्थ के भांडागार का काम भी करता है। यह भूमिगत रूपान्तरित स्तम्भों (देखिये चित्र ७२-७६) में विशेषतः सत्य है जो कि खाद्य पदार्थों के संग्रह के लिये विशेष रूप से उपयोजित होते हैं, जैसे अदरक, आलू, प्याज, सूरन, ओल, इत्यादि। नागफनी और यूफोर्बिया (*Euphorbia*) के माँसल स्तम्भ हमेशा पानी की अधिक मात्रा संग्रह करते हैं।

(५) खाद्य निर्माण (Food manufacture)–तरुण प्ररोह जब हरे रहते हैं तो सूर्य के प्रकाश में उनके अन्दर स्थित हरिम कणक (chloroplasts) खाद्य पदार्थों के निर्माण में सहायता करते हैं।

ऊपर लिखे हुए उपयोगों के अतिरिक्त रूपान्तरित स्तम्भ कुछ विशेष कार्य भी करते हैं, उदाहरणार्थ तन्तु पौधे को आरोहण में सहायता करते हैं और कंटक इनको चरनेवाले जानवरों से बचाते हैं।

अध्याय ५

पर्ण या पत्ती (THE LEAF)

पर्ण स्तम्भ या शाखा का एक चिपिटित पार्श्व उद्वर्ध माना जा सकता है, जो गाँठ (node) से उत्पन्न होता है, और जिसके कक्ष में एक कलिका उपस्थित होती है। यह सामान्यतः हरे रंग का होता है और पौधे का सबसे महत्वपूर्ण वर्धी अंग माना जाता है क्योंकि इस में खाद्य पदार्थ निर्मित होता है। पत्तियों का विकास हमेशा अग्राभिसारी (acropetal) अनुक्रम के अनुसार होता है और इनकी उत्पत्ति बहिर्जात (exogenous) होती है।

पर्ण के भाग (Parts of a leaf, चित्र १००)

एक प्रारूपिक पर्ण में निम्नलिखित भाग होते हैं:

(१) पर्णाधार (Leaf-base)–यह पत्ती का स्तम्भ से संयोजित भाग होता है। कई पौधों में पर्णाधार एक छाद (sheath) में विस्तरित रहता है जो अंशतः या पूर्णतया स्तम्भ को जकड़े रहता है। एकबीजपत्री पौधों में यह छादक पर्णाधार प्रायः पाया जाता है और घासों में यथेष्ट विकसित रहता है। केले के पौधे में कथाकथित स्तम्भ (so-called stem) पर्णछादकों (leaf-sheaths) का बना होता है। इसके विपरीत द्विबीजपत्री पौधों में पर्णाधार प्रायः दो पार्श्व उद्धर्ध धारण करता है जिनको अनुपत्र (stipules) कहते हैं। कुछ पौधों, जैसे चना, मटर, इमली, छुईमुई (लज्जावती), गुल्मुहर, अपराजिता या गोकर्ण (*Clitoria*), इत्यादि के पर्णों में पर्णाधार विशेषरूप से फूला हुआ होता है और गद्दी सदृश एक रचना बनाता है जिसको स्थूलाधार (pulvinus) कहते हैं।

चित्र १००—एक पत्ती के भाग।

(२) पर्ण वृन्त (Petiole)–यह पर्ण का वृन्त है। जब पर्ण में वृन्त विद्यमान नहीं रहता है तो उसको अवृन्त (sessile) कहते हैं, और जब यह विद्यमान रहता है तो उसको सवृन्त (petiolate) कहते हैं। अवृन्त पर्ण में पत्रदल का आधार दो पालियों (lobes) में बँटा हो सकता है जो स्तम्भ को अंशतः या पूर्णतया समावृत (enclose) करते हैं।

(३) पत्रदल (Lamina)–यह पर्ण का हरा विस्तरित (expanded) भाग है। पत्रदल का अध्ययन निम्नलिखित विशेषताओं से किया जा सकता है: अग्रक या चोटी (apex) और तट या किनारे (margin) की प्रकृति; पर्ण का तल या सतह (surface), पर्ण का सामान्य आकार, शिराओं का वटन, संपूर्ण पर्ण की प्रकृति–अर्थात् सरल (simple) है या संयुक्त (compound) या उसका कोई रूपान्तर (modification) है। मध्य-शिरा (mid-rib) नाम से ज्ञात एक प्रबल शिरा पत्रदल के ठीक मध्यवर्ती रूप में इसके आधार से अग्रक तक जाती है। यह पार्श्व शिराएं (lateral veins) उत्पन्न करती है जो पुनः सूक्ष्म शिराएं (veinlets) उत्पन्न करती हैं।

जब पर्ण के आधार की पालियां स्तम्भ को अंशतः समावृत करते हैं तो पर्ण को कर्णभोय (auriculate) कहते हैं, जैसे मदार (*Calotropis*), सौंकम (*Sonchus*),

इत्यादि में; जब पूर्णतया समावृत करते हैं तो इसको स्तम्भवेष्टी (amplexicaul) कहते हैं, जैसे घास और गेहूं में; जब अपूर्णतया समावृत करते हैं तो उसको अर्ध परिस्तम्भ
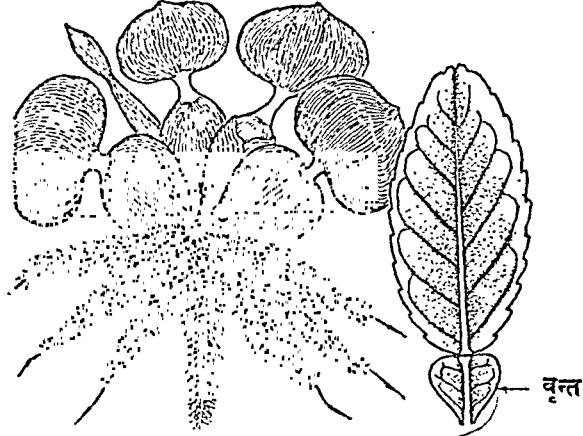
चित्र १०१ चित्र १०२

चित्र १०१—आइरिसरनिया के पर्ण का कन्दी पर्णवृन्त।
चित्र १०२—पूमेलो के पर्ण का पक्षवत पर्णवृन्त।

(semi-amplexicaul) कहते हैं, जैसे जलधनिया (buttercup) और ताड़ (palm), इत्यादि में; जब पालियाँ स्तम्भ के दूसरी ओर मिल जाते हैं और एक दूसरे से सायुज्यित हो जाते हैं जिससे स्तम्भ पत्रदल के मध्य से निकलता प्रतीत होता है तो पर्ण को वेष्टि पर्णाधार (perfoliate) कहते हैं, जैसे कंसकोरा परफोलिएटा (*Canscora perfoliata*), एलो परफोलिएटा (*Aloe perfoliata*), इत्यादि में। जब दो अवृन्त और विपरीत पर्ण स्तम्भ के दूसरी ओर एक दूसरे से मिलते हैं और सायुज्यित (fuse) हो जाते हैं तो उनको संयुक्त (connate) कहते हैं, जैसे दंकुनी (*Canscora diffusa*), और लोनीसेरा फ्लेवा (*Lonicera flava*)) में। कुछ दशाओं में जैसे लगेरा टिरोडोन्टा (*Laggera pterodonta*), कंसकोरा डीकरेन्स (*Canscora decurrens*), क्रोटालेरिया अलाटा (*Crotalaria alata*), और कुछ अन्य पौधों में पर्णाधार और पर्णवृन्त सपक्ष (winged) हो जाते हैं, और पक्ष स्तम्भ में नीचे तक चला जाता है, ताकि स्तम्भ भी सपक्ष लगने लगता है। इस प्रकार की पत्ती को अधोगामी (decurrent) कहते हैं।

अनुपत्र (STIPULES)

अनुपत्र (stipules) पर्ण के पार्श्व उपांग (appendages) हैं जो कि इनके

आधार पर स्थित रहते हैं। ये प्रायः हरे होते हैं, लेकिन कभी विशुष्क (withered) दिखाई देते हैं। कुछ अनुपत्र ऐसे होते हैं जो पत्रदल (lamina) के जीवनकाल भर जीवित रहते हैं (चिरलग्न, persistent), या वे पत्रदल के स्फुटित (unfolding) होने के बाद शीघ्र ही गिर जाते हैं (पर्णपाती, deciduous), और कभी-कभी ये पत्रदल के स्फुटन से पहले ही गिर जाते हैं (शीघ्रपाती, caducous)। इनका कार्य कलिका के अंतर्गत तरुण पत्ती की रक्षा करना है, और जब हरे रहते हैं तो ये पत्तियों के समान भोजन का निर्माण करते हैं। जब पत्ती में अनुपत्र विद्यमान रहते हैं तो पत्ती अनुपत्री (stipulate) कहलाती है, और जब इनका अभाव होता है तो पत्ती अननुपत्री (exstipulate) कहलाती है। कभी-कभी, जैसे अपराजिता (*Clitoria*) में, प्रत्येक पर्णक (leaflet) के आधार के समीप एक छोटा अनुपत्र रहता है। इस प्रकार के छोटे अनुपत्र को अनुपत्रक (stipel) कहते हैं।

चित्र १०३ चित्र १०४ चित्र १०५ चित्र १०६ चित्र १०७

अवृन्त पर्ण। चित्र १०३—लगेरा टिरोडोन्टा का अधोगामी पर्ण। चित्र १०४—मदार का कर्णाभीय पर्ण। चित्र १०५—इमिल्डा मीकीकोलिया का स्तम्भवेष्टी पर्ण। चित्र १०६—लोनीसेरा फ्लेवा का संयुक्त पर्ण। चित्र १०७—वेष्टी पर्णाधार पर्ण।

अनुपत्रों के प्रकार (Kinds of Stipules)–अपने आकार (shape), रंग, स्थिति और माप के अनुसार अनुपत्र निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :

(१) अलग्न पार्श्व अनुपत्र (Free Lateral Stipules; चित्र १००)–ये दो प्रायः छोटे, हरे मुक्त (अलग्न) अनुपत्र हैं जो पर्णाधार के दोनों पार्श्वों में स्थित रहते हैं, जैसे गुड़हल (China rose), कपास, इत्यादि में।

(२) शल्की अनुपत्र (Scaly Stipules)—ये दो प्रायः छोटे शुष्क शल्क हैं जो पर्णाधार के पार्श्वों में स्थित रहते हैं, जैसे बनचण्ड (Indian telegraph plant) में।

(३) लग्न अनुपत्र (Adnate Stipules; चित्र ११०) ये दो पार्श्व अनुपत्र हैं

जो वृन्त के साथ कुछ दूर तक बढ़ते हैं और उसके साथ जुड़ जाते हैं, जिससे पर्ण वृन्त सपक्ष दिखाई देने लगता है, जैसे गुलाब, मूंगफली, स्ट्रावेरी, और लूपिन (lupin) में।
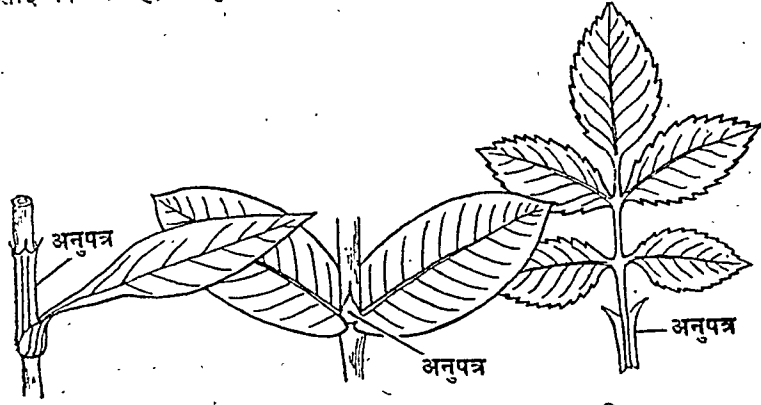
चित्र १०८ चित्र १०९ चित्र ११०

अनुपत्र के प्रकार। चित्र १०८—पौलीगोनम का परिवेष्टकीय अनुपत्र। चित्र १०९—इक्जोरा का वृन्तमध्यक अनुपत्र। चित्र ११०—गुलाब का लग्न अनुपत्र।

(४) **वृन्त मध्यक अनुपत्र** (Interpetiolar Stipules; चित्र १०९) ये दो अनुपत्र हैं जो अभिमुखीय या आवर्तरूप (whorled) पत्तियों के वृन्तों के बीच स्थित होते हैं और इस प्रकार पत्तियों के एकान्तर क्रम में होते हैं, जैसे गोतगन्धल (*Ixora*), कदम्ब (*Anthocephalus*); मोएना (*Vangueria*), इत्यादि में।

(५) **परिवेष्टकीय अनुपत्र** (Ochreate Stipules; चित्र १०८) ये एक खोखली नली बनाते हैं जो पर्णवृन्त के सामने स्तम्भ को गाँठ से पर्व की कुछ ऊँचाई तक बहुधा वेष्टित करते हैं, जैसी पौलीगोनम (*Polygonum*), खट्टा पालक (*Rumex*), इत्यादि में।

(६) **पत्रवत् अनुपत्र** (Foliaceous Stipules, चित्र १४३–१४४)—ये दो बड़े, हरे पर्ण सदृश संरचनाएं हैं, जैसे मटर, जंगली मटर (*Lathyrus*) और झुमकलता (passion-flower) के कुछ किस्मों में।

(७) **कलिका शल्क** (Bud-scales)—ये शल्की पत्र हैं जो कि पर्ण कलिकाओं को समावृत करते हैं और उनकी रक्षा करते हैं, और पत्तियों के खुलते ही गिर जाते हैं। ये बरगद, कटहल, मैगनोलिया (*Magnolia*), नागकेसर (*Mesua*), आदि में दिखाई देते हैं।

अनुपत्रों के रूपान्तरित रूप (Modified Forms of Stipules)

अनुपत्र कभी-कभी दो तीव्र नुकीले संरचनाओं में रूपान्तरित हो जाते हैं जिनको कंट (spines) कहते हैं और ये पर्णाधार के दोनों पार्श्वों में स्थित रहते हैं। ये पत्ती की

चरने वाले जानवरों के आक्रमण से रक्षा करते हैं। इस प्रकार के कंटमय अनुपत्र

चित्र १११—बेर का कंटमय अनुपत्र।
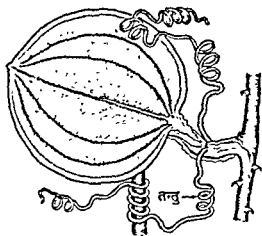
चित्र ११२—कुमारिका के तन्तुवत् अनुपत्र।

बबूल (*Acacia*), बेर (*Zizyphus*, चित्र १११), छुईमुई (*Mimosa*), हिंगुन या करील (*Capparis*), इत्यादि में पाये जाते हैं।

पत्र-दल (LEAF-BLADE)

पर्ण का अग्रक (Apex of the leaf ; चित्र ११३)–पर्ण के अग्रक को (१) गोल शीर्ष (obtuse) कहते हैं, जब कि यह गोल होता है, जैसे बरगद (*Ficus bengalensis*) में; (२) त्रिकोण (acute), जब कि यह न्यून कोण के समान नुकीला होता है, लेकिन स्तब्ध (stiff) नहीं होता, जैसे गुड़हल (China rose) में, (३) उदग्र (acuminate), जब कि यह लम्बे, पतले पुच्छ के समान निकला रहता है, जैसे पीपल और होल्मसकियोल्डिया (*Holmskioldia*) में, (४) नुकीला (cuspidate), जब कि अग्र भाग लम्बा कठोर तीव्र नोकयुक्त होता है, जैसे खजूर, केवड़ा और अनन्नास (pineapple) में, (५) छिन्नाग्र (truncate), जब कि अचानक ही इसका अन्त हो जाता है मानो सीधी रेखा में काट दिया गया हो, जैसे केरयोटा यूरेन्स (*Caryota urens*) में ; (६) गर्तकी (retuse), जब कि गोल शीर्षीय या छिन्नाग्र अग्रक में एक छिछला काप (notch) होता है, जैसे पिस्टिया (*Pistia*) में, (७) गर्ती (emarginate), जब कि अग्रक में एक गहरा काप हो, जैसे कचनार (*Bauhinia*) और खट्टी बूटी (*Oxalis*) में; (८) उपाग्री (mucronate), जब कि गोलाकार अग्रक एकदम से एक नन्हें नोंक में समाप्त होता है, जैसे गन्धराज (*Ixora*) में, और (९) सतन्तु (cirrhose),

जब यह एक धागे सदृश उपांग (appendage) या तन्तु (tendril) में अन्त होता है, जैसे इन्द्रपुष्पिका (*Gloriosa*) में।

चित्र ११३—पर्ण का अग्रक। क, गोलशीर्ष ; ख, निकोण ; ग, उदग्र : घ, नुकीला ; ङ, गर्तकी ; च, गर्ती ; छ, उग्रागी ; ज, संतन्तु।

पर्ण का तट (Margin of the leaf) – पत्ती का तट (१) **अभिन्न** (entire) अर्थात् सम और चिक्कण (smooth), जैसे आम, कटहल, बरगद, इत्यादि में; (२) **मंद तरंगित** (repand), अर्थात् मंदतः तरंगवत, जैसे आम में; (३) **दीर्घ तरंगी** (sinuate), अर्थात् गहन तरंगित, जैसे देवदारू या अशोक (*Polyalthia*) और क्रोटन की कुछ किस्मों (varieties) में; (४) **आरावत** (serrate), अर्थात् आरी के दाँत के समान कटे हुये और दाँत ऊपर की ओर मुंह किये हुए, जैसे गुड़हल में ; (५) **द्वि आरावत** (biserrate), अर्थात् प्रत्येक दाँत फिर से आरावत, (६) **सूक्ष्म आरावत** (serrulate), अर्थात् सूक्ष्म रूप से दन्तुर, (७) **दन्तुर** (dentate), अर्थात् दाँत बाहर की ओर किये हुए और पत्ती के किनारे से समकोण बनाते हुए, जैसे खरबूजा और जल कुमुदिनी (water lily) में, (८) **अधःपालि** (runcinate), अर्थात् दन्तुर, दाँत पीछे की ओर झुके हुए; (९) **दंदानेदार** (crenate), अर्थात् दाँत गोलाकार जैसे पथरचट्टा या ब्रायोफिलम (*Bryophyllum*) और ब्राह्मी (*Centella*) में, (१०) **झल्लरीवत** (fimbriate), अर्थात् झालरदार बारीक खण्डों सहित, (११) **पक्ष्मल** (ciliate), अर्थात् रोमों से झालरदार; और (१२) **कंटमय** (spinous), अर्थात् कंट सहित, जैसे भरभंडा या सत्यानाशी (*Argemone*) में।

शिरा विन्यास (VENATION)

शिराएं (veins) स्थूल, रेखाबद्ध (linear) संरचनाएं हैं जो पर्ण वृन्त और मध्य-शिरा से उत्पन्न होती हैं और भिन्न-भिन्न दिशाओं में पत्रदल में फैली रहती हैं। ये

वास्तव में वाहिनी शाखा प्रशाखाएं (vascular ramifications) हैं जोकि संवाहक (conducting) और यांत्रिक (mechanical) ऊतकों (tissues) की बनी होती हैं। संवाहक ऊतक जल तथा विलीन (dissolved) खनिज लवणों को पूरे पत्रदल में पहुंचाती है और वहां से निर्मित खाद्य पदार्थ अन्य भागों में पहुंचाती है; और यान्त्रिक ऊतक चिपटे पत्रदल को आवश्यक मात्रा में बल और दृढ़ता प्रदान करते हैं।

पत्रदल में शिरा तथा सूक्ष्मशिराओं (veinlets) के विन्यास को शिरा विन्यास (venation) कहते हैं। शिरा विन्यास दो मुख्य प्रकार का होता है :

(१) जालिकावत् (reticulate) शिराविन्यास, जब कि सूक्ष्मशिराएं अनियमित रूप से वटित रहती हैं और एक जाल का रूप धारण किये रहती हैं और (२) समानान्तर (parallel) शिरा विन्यास, जब कि एक दूसरे के समानान्तर
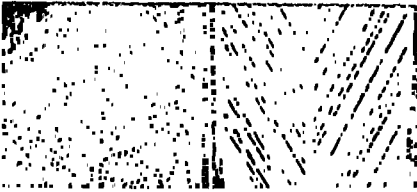
चित्र ११४ चित्र ११५

शिरा विन्यास। चित्र ११४—द्विबीजपत्री पर्ण में जालिकावत् शिरा विन्यास। चित्र ११५—एकबीजपत्री पर्ण में समानान्तर शिरा विन्यास।

दौड़ती हैं। जालिकावत् शिरा विन्यास द्विबीजपत्री पौधों का, और समानान्तर शिरा विन्यास एकबीजपत्री पौधों का सलक्षण हैं।

अपवाद (*Exceptions*)—एकबीजपत्री पौधों में कुमारिका (*Smilax*; चित्र ११७), सूरन कुल के पौधों (aroids), रतालू और गराड़ (*Dioscorea*), आदि में जालिकावत् शिरा विन्यास पाया जाता है; और द्विबीजपत्री पौधों में सुल्ताना चम्पा (*Calophyllum*, चित्र ११८) और कुछ अन्य पौधों में समानान्तर शिरा विन्यास पाया जाता है।

(१) जालिकावत् शिरा विन्यास (Reticulate Venation)

(क) पक्षवत् या एकशिरी प्रकार (Pinnate or Unicostate Type)

इस प्रकार के शिरा विन्यास में पत्रदल के बीच में एक स्थूल, मध्य शिरा (midrib or costa) होती है जिससे पार्श्व शिराएं निकलती हैं जो पत्ती के तट (margin)
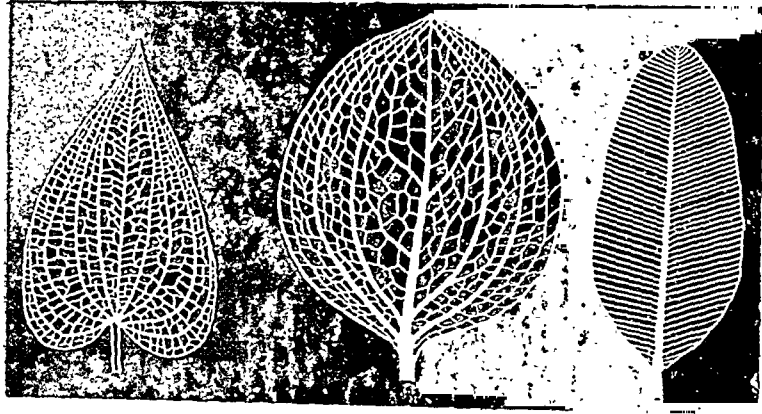
चित्र ११६ चित्र ११७ चित्र ११८

चित्र ११६—रतालू की पत्ती (एक एकबीजपत्री) जालिकावत् शिरा विन्यास सहित।
चित्र ११७—कुमारिका की पत्ती (एक एकबीजपत्री) जालिकावत् शिरा विन्यास सहित।
चित्र ११८—कैलोफिलम (एक द्विबीजपत्री) समानान्तर शिरा विन्यास सहित।

और अग्रक की ओर फैली होती हैं, जैसा कि चिड़िया के पर में बाल लगे होते हैं (चित्र ११९)। ये फिर लघुतर शिराओं द्वारा सम्बद्ध (connected) रहती हैं जो भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाती हैं और एक जाल बनाती हैं, जैसे पीपल, आम, अमरूद, आदि में।

(ख) पाणिवत् या बहुशिरी प्रकार (Palmate or Multicostate Type)—इस प्रकार के शिरा विन्यास में कई लगभग समान स्थूल शिराएं होती हैं जो पत्रवृन्त के सिरे से निकल कर बाहर या ऊपर की ओर फैली होती हैं। इसके दो रूप हैं: (१) एक में पत्ती में कई स्थूल शिराएं होती हैं जो पत्रदल के आधार से निकलती हैं और तब एक दूसरे से अपसरण (diverge) करके अलग होकर पत्ती के तट (margin) की ओर बढ़ती हैं, जैसे हथेली से अंगुलियाँ [अपसारी रूप, (divergent type) चित्र १२०]। ये इसके बाद लघुतर शिराओं के एक जाल से सम्बद्ध रहती हैं, जैसे पपीता, ककड़ी, एरंड, गुड़हल, इत्यादि में; (२) दूसरे में शिराएं एक दूसरे से अपसरित होने के बजाय पत्रदल के आधार से अग्रक की ओर वक्र रूप में जाती हैं (अभिबिन्दु रूप; convergent type, चित्र १२१)। इस दशा में पत्ती को वक्रशिरावत् (curve-veined) कहते हैं।
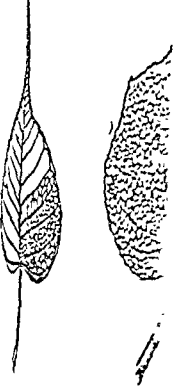
इनके उदाहरण बेर, दालचीनी या दारचीनी (cinnamon), कपूर (camphor), तेजपात (bay leaf), कुचला (nux-vomica), इत्यादि में पाये जाते हैं।

चित्र ११९ चित्र १२० चित्र १२१

जालिकावत् शिरा विन्यास के प्रकार। चित्र ११९—पीपल की पत्ती में पक्षवत् प्रकार।
चित्र १२०—ककड़ी की पत्ती में पाणिवत् (अभिसारी) प्रकार।
चित्र १२१—तेजपात की पत्ती में पाणिवत् (अभिबिन्दु) प्रकार।

(२) समानान्तर शिरा विन्यास (Parallel Venation)

(क) पक्षवत् या एकशिरी (Pinnate or Unicostate) प्रकार (चित्र १२२)
इस प्रकार के शिरा विन्यास में पत्ती में एक विशिष्ट मध्य-शिरा होती है और इसके दोनों

चित्र १२२ चित्र १२३ चित्र १२४
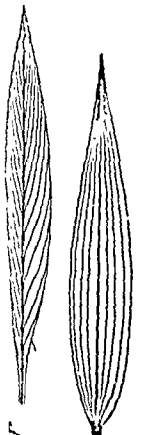
समानान्तर शिरा विन्यास के प्रकार। चित्र १२२—कैना की पत्ती में पक्षवत् प्रकार।
चित्र १२३—घास की पत्ती में पाणिवत् (अभिबिन्दु) प्रकार।
चित्र १२४—ताड़ की पत्ती में पाणिवत् (अपसारी) प्रकार।

ओर अन्य शिराएं निकली होती हैं जो कि एक दूसरे के समानान्तर पत्रदल के तट और अग्रक की ओर जाती हैं, जैसे केला, अदरक, कैना (*Canna*), हल्दी (turmeric), इत्यादि में।

(ख) पाणिवत् प्रकार (Palmate Type) – इसके भी दो रूप पाये जाते हैं। (१) अग्रक की ओर जाने के बजाय शिराएं एक दूसरे से अपसरण (diverge) कर पत्रदल के परिधि की ओर जाती हैं (अपबिन्दु या अपसारी प्रकार, divergent type; चित्र १२४) जैसे पंख पत्री ताडों (fan palms) में, (२) पत्रदल के आधार से अनेक न्यूनाधिक सबल शिराएं लगभग समानान्तर सी दिशा में अग्रक तक जाती हैं। [अभिबिन्दु या अभिसारी प्रकार (convergent type), चित्र १२३], जैसे जलकुंभी (water hyacinth), घासें (grasses), धान (rice), बांस (bamboo), इत्यादि में।

शिराओं के कार्य (Functions of Veins)

(१) शिराएं पत्रदल का कंकाल (skeleton) बनाती हैं और उसको अनाम्यता (rigidity) देती हैं, ताकि तेज हवा चलने पर वह फट या टूट न जाय।

(२) शिराएं पत्रदल को चपटा रखने में सहायता देती है ताकि वे समान रूप से सूर्य का प्रकाश पा सके।

(३) शिराएं स्तम्भ से प्राप्त जल तथा खनिज लवणों को पूरे पत्रदल में वितरित करती हैं और पत्रदल से निर्मित खाद्य पदार्थ एकत्रित करके स्तम्भ में भेजती हैं जहाँ से वह भोजन संग्रह अंगों (storage organs) और वर्धमान प्रदेशों (growing regions) में पहुंच जाता है।

पत्ती का आकार (SHAPE OF THE LEAF)

(क) रेखावत् या रेखाकार (linear)—जब पत्ती लम्बी तथा सँकरी (narrow) होती है, जैसे, गेहूं, धान और घासों में।

(ख) भालवत् या छुरिकाकार (lanceolate)—जब कि पत्ती का आकार भाले के समान हो, जैसे बाँस, कनेर (*Nerium*), इत्यादि में।

(ग) वर्तुल या मंडलाकार (rotund or orbicular)—जब पत्रदल की रूपरेखा वृत्ताकार (circular) हो, जैसे कमल (lotus), गार्डेन नैस्टरशियम (garden nasturtium) इत्यादि में।

(घ) दीर्घवृत्ताकार या अण्डाकार (elliptical or oval)—जब कि पत्ती का आकार लगभग दीर्घवृत्त (ellipse) के समान हो, जैसे अमरूद, बड़हल, जामुन, इत्यादि में।

(ङ) अण्डवत् (ovate)—जब कि पत्रदल अंडे के आकार का हो अर्थात् आधार में अग्रक से जरा सा अधिक चौड़ा, जैसे बरगद में। जब कि पत्ती विलोम रूप से अण्डाकार हो तो उसको अभ्यण्डवत् (obovate) कहते हैं, जैसे देशी बादाम (country almond) में।

(च) चमसपर्णवत् (spathulate)—जब कि पत्ती का आकार एक चपटे चम्मच या सँबुला के समान हो, अर्थात् सिरे पर चौड़ा और गोल और आधार की ओर सकीर्ण, जैसे ड्रोसेरा (*Drosera*) और कैलेन्डुला (*Calendula*) इत्यादि में।

(छ) तिर्यक या तिरछा (oblique)—जब कि पत्ती के मध्य नाड़ी के इधर उधर स्थित दोनों अर्धभाग असमान हों, जैसे बीगोनिया (*Begonia*) में। नीम (margosa) और आकाश नीम (Indian cork tree) में पत्रक तिर्यक होते हैं।

(ज) दीर्घवत् (oblong)—जब कि पत्रदल चौड़ा तथा लम्बा हो और ऊपरी तथा निचला सिरा दोनों गोल हो, जैसे, केले की पत्ती में।

(झ) वृक्काकार (reniform)—जब कि पत्ती वृक्क या गुर्दे (kidney) के आकार की हो, जैसे ब्राह्मी (Indian pennywort) में।

(ञ) हृदयाकार या पानाकार (cordate)—जब कि पत्रदल हृदय के आकार का होता है, जैसे पान में। जब पत्रदल विलोमरूप से हृदयाकार हो तो उसको प्रतिहृदयाकार (obcordate) कहते हैं, जैसे खट्टी बूटी (*Oxalis*) में।

(ट) बाणवत् (sagittate)—जब कि पत्रदल का आकार बाण (arrow) के समान हो, जैसे सेजीटेरिया (*Sagittaria*) और सूरन कुल के पौधों (aroids) में।

(ठ) कुन्ताभ या भालाभ (hastate)—जब कि बाणवत् पत्ती के दोनों फंक

वहिमुख (directed outwards) रहते हैं, जैसे कलमी साक (water bindweed) और घेंटकाचू (*Typhonium*) में।

(ड) वीणावत् (lyrate) – जब पत्रदल का आकार वीणा (lyre) के समान हो, अर्थात् एक अग्रस्थ बड़ी पाली के साथ कुछ पार्श्व छोटी पालियाँ होती हैं, जैसे मूली, सरसों, इत्यादि में।
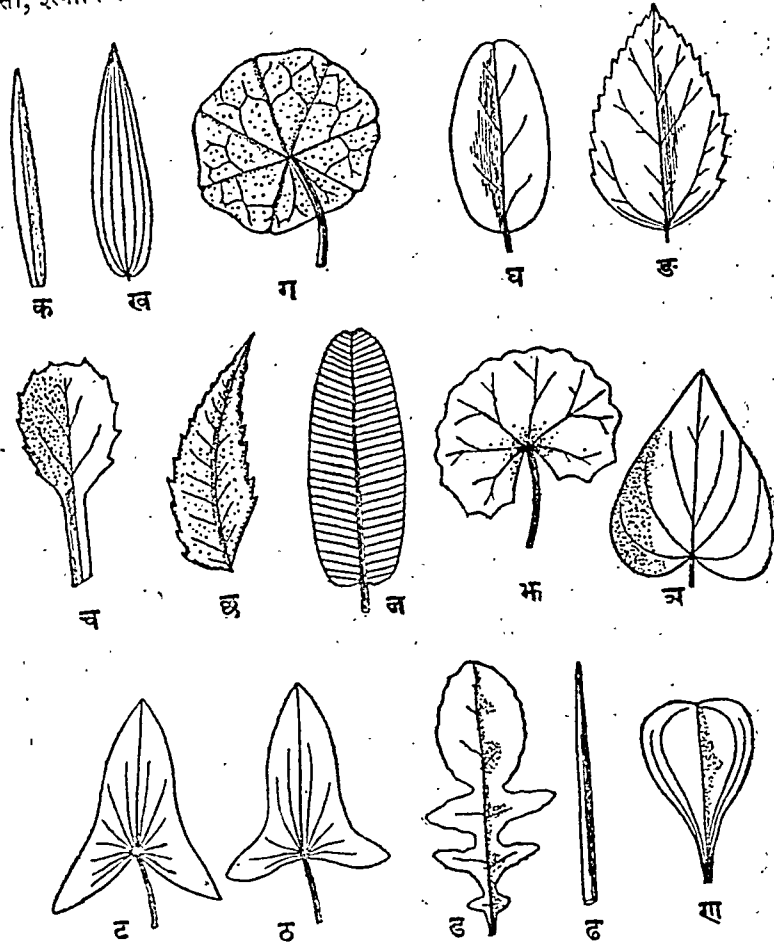
चित्र १२५—पत्ती का आकार। क, रेखाकार ; ख, प्रासवत् ; ग, वर्तुल ; घ, दीर्घवृत्ताकार या अण्डाकार ; ङ, अण्डवत् ; च, पृथुपर्णवत् ; छ, तिर्यक ; ज, दीर्घवत् ; झ, वृक्काकार ; ञ, हृदयाकार ; ट, वाणवत् ; ठ, कुन्ताभ ; ड, वीणावत् ; ढ, सूच्याकार ; ण, फानाकार।

(ड) सूच्याकार (acicular)—जब पत्ती लम्बी, संकीर्ण तथा रम्भाकार (cylindrical) होती हैं, अर्थात् सुई के आकार की, जैसे चीड़ (pine) में।

(ण) फानाकार (cuneate)—जब कि पत्ती पच्चड़ या स्फान (wedge) के आकार की हो, जैसे पिस्टिया (*Pistia*) में।

(त) दात्राकार (falcate), जब कि पत्ती हंसुआकार (sickle-shaped) हो, जैसे यूकेलिप्टस ग्लोबुलस (*Eucalyptus globulus*) अरुन्डीनेरिया फल्केटा (*Arundinaria falcata*) में। आस्ट्रेलियन अकेसिया (Australian *Acacia*) में पर्णायित वृन्त (phyllode) हंसुआकार होता है।

जब पर्ण के फंक या पालियाँ विषम (unequal) आकार के होते हैं, अग्रक फंक पार्श्व फंकों से बड़ा होता है जो क्रमशः आधार की ओर पतले होते जाते हैं तो उस पर्ण को वीणाकार (lyrate) कहते हैं (चित्र १२६), जैसे, सरसों, मूली, इत्यादि में। जब पर्ण कई फंकों में विभाजित रहता है जो पक्षी के पंजे की तरह फैले रहते हैं और केवल आधार में ही सम्बद्ध रहते हैं तो उस पर्ण को पजाकार (pedate) कहते हैं (चित्र १२७), जैसे गोललता (*Vitis pedata*)।
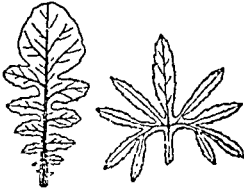
चित्र १२६ चित्र १२७

चित्र १२६—मूली का वीणाकार पर्ण।

चित्र १२७—गोललता का पजाकार पर्ण।

संयुक्त पर्ण : पक्षवत् और पाणिवत्
(COMPOUND LEAVES: PINNATE AND PALMATE)

सरल पर्ण और संयुक्त पर्ण (Simple Leaf and Compound Leaf)

सरल पर्ण वह पर्ण है जिसमें एक ही पत्रदल होता है, जो अछिन्न या अभेदित हो या किनारियों में कुछ सीमा तक छिन्न या कटा (incised) हो (इसलिये फंकीय lobed), लेकिन मध्य-शिरा या पर्णवृन्त तक न कटा हुआ हो। संयुक्त पर्ण उस पत्ती को कहते हैं, जब कि पत्रदल के कटाव या भेदन मध्य-शिरा (प्राक्ष, rachis) तक हो गये हों, ताकि पर्ण अनेक खण्डों (segments) में विभक्त हो जाता है जिनको पर्णक या पत्रक (leaflets) कहते हैं। पर्णक एक दूसरे से मुक्त (free) रहते हैं, अर्थात् वे पत्रदल द्वारा सम्बद्ध नहीं रहते और अपने आधार पर लगभग स्पष्ट संधियुक्त या

संधिमान (articulated) रहते हैं। सरल पर्ण या संयुक्त पर्ण के कक्ष में एक कलिका (कक्षस्थ कलिका) उपस्थित रहती है, लेकिन संयुक्त पर्ण के पर्णक के कक्ष में कलिका कभी उपस्थित नहीं रहती। संयुक्त पर्ण दो प्रकार के होते हैं: अर्थात् **पक्षवत्** (pinnate) और **पाणिवत्** (palmate)।
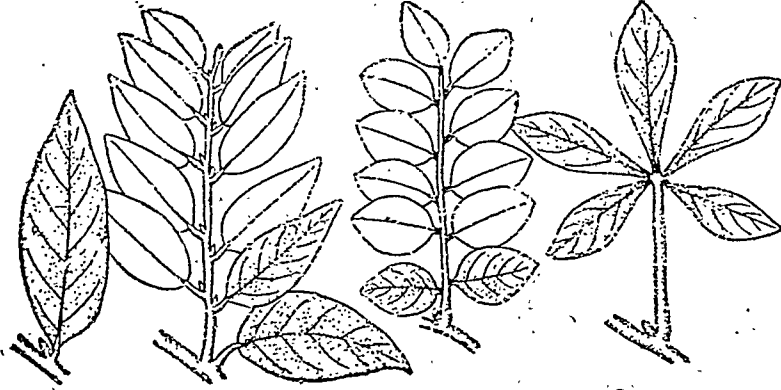
चित्र १२८ चित्र १२९ चित्र १३० चित्र १३१

चित्र १२८—एक सरल पर्ण। चित्र १२९—एक शाखा। चित्र १३०—एक पक्षवत् संयुक्त पर्ण जिसमें पर्णक मध्य-शिरा से जुड़े हैं। चित्र १३१—पाणिवत् संयुक्त पर्ण जिसमें पर्णक पर्णवृन्त से जुड़े हैं। प्रत्येक दशा में कलिका की स्थिति को देखो।

संयुक्त पर्ण और शाखा (Compound Leaf and Branch)—संयुक्त पर्ण शाखा से निम्नलिखित भेदों से पहचाना जा सकता है: (१) संयुक्त पर्ण में अग्रस्थ कलिका (terminal bud) नहीं होती लेकिन शाखा में यह सदा होती है; (२) सरल पर्ण के समान संयुक्त पर्ण के कक्ष में सदा एक कलिका उपस्थित रहती है (कक्षस्थ कलिका, axillary bud), लेकिन यह (पत्ती) स्वयं किसी दूसरे पर्ण के कक्ष में उत्पन्न नहीं होती। इसके विपरीत शाखा के कक्ष में कक्षस्थ कलिका नहीं होती, लेकिन यह (शाखा) हमेशा किसी सरल या संयुक्त पर्ण के कक्ष में उपस्थित रहती है और कक्षस्थ कलिका से ही उत्पन्न होती है; (३) संयुक्त पर्ण के पर्णकों के कक्ष में कोई कक्षस्थ कलिका नहीं होती, जब कि शाखा के प्रत्येक पर्ण (सरल) के कक्ष में एक कलिका होती है; और (४) शाखा में सदैव पर्व और गाँठें होते हैं, लेकिन संयुक्त पर्ण के प्राक्ष (rachis) में इनका सर्वथा अभाव होता है।

१. पक्षवत् संयुक्त पर्ण (Pinnately Compound Leaf)—पक्षवत् संयुक्त पर्ण उस पर्ण को कहते हैं, जिसमें मध्य-शिरा (mid-rib), जिसको प्राक्ष (rachis) कहते हैं, के पार्श्व भाग में अनेक पर्णक, एकान्तर क्रम से या विपरीत (opposite)

प्रकार से विन्यस्त रहते हैं, जैसे इमली, चना, गुलमुहर, छुईमुई, बबूल (*Acacia*) अमलतास (*Cassia fistula*), इत्यादि में। यह निम्न प्रकार के हो सकते हैं:

(१) एकपक्षवत् (Unipinnate)—जब पक्षवत् संयुक्त पर्ण के मध्य-शिरा के दोनों ओर पर्णक सीधे उसी में लगे होते हैं तो उसको एकपक्षवत् कहते हैं, जैसे नीम (margosa) में। जब पर्णकों की संख्या सम होती है तो पर्ण को समपक्षवत् (paripinnate, चित्र १३३) कहते हैं, जैसे इमली, गुलमुहर, छुईमुई, अमलतास इत्यादि में, और यदि पर्णकों की संख्या विषम हो, तब पर्ण को असमपक्षवत् (imparipinnate, चित्र १३४) कहते हैं, जैसे गुलाब, नीम, कामिनी (*Murraya*) अपराजिता (*Clitoria*) में।

चित्र १३२—भेकल या द्विपर्णक पर्ण।

यदि पक्षवत् पर्ण में केवल एक पर्णक होता है तो पर्ण को एकपर्णक (unifoliate) कहते हैं, जैसे शालिपर्णी (*Desmodium gangeticum*) में, जब दो पर्णक होते हैं तो द्विपर्णक (bifoliate), जैसे हिंगुल (*Balanites*) और भेकल (*Prinsepia*), और कभी-कभी गुलाब में; जब तीन पर्णक होते हैं तो उसे त्रिपर्णक (trifoliate or ternate) कहते हैं, जैसे सेम, पांगरा (*Erythrina*), अमलबेल (*Vitis trifolia*) में। इसी प्रकार पर्ण चतुष्पर्णक (quadrifoliate), पंचपर्णक (pentafoliate) या बहुपर्णक (multifoliate) हो सकते हैं, जब इनमें क्रमशः चार, पाँच या अधिक पर्णक होते हैं।

एक ही पौधे में पर्णकों की संख्या विभिन्न हो सकती है अर्थात् वन चन्दल (Indian telegraph plant) में पर्णकों की संख्या एक से तीन होती है, गुलाब में एक से सात तक और पत्थरचटा (sprout leaf plant) में एक से पाँच होते हैं।

(२) द्विपक्षवत् (Bipinnate, चित्र १३५)—जब संयुक्त पर्ण दोहरा पक्षवत् हो, अर्थात् मध्य-शिरा द्वितीय (secondary) अक्ष उत्पन्न करती हो जिसमें उपपर्णक लगे रहते हों, तो उसको द्विपक्षवत् कहते हैं, जैसे बबूल, (*Acacia*), छुईमुई (*Mimosa*) बकैन (Persian lilac), आकाश नीम (Indian cork tree) एवं सिरिस (*Albizzia*) में।

(३) त्रिपक्षवत् (Tripinnate, चित्र १३६)–जब पर्ण त्रिपक्षवत् हो, अर्थात्

चित्र १३३ चित्र १३४ चित्र १३५ चित्र १३६
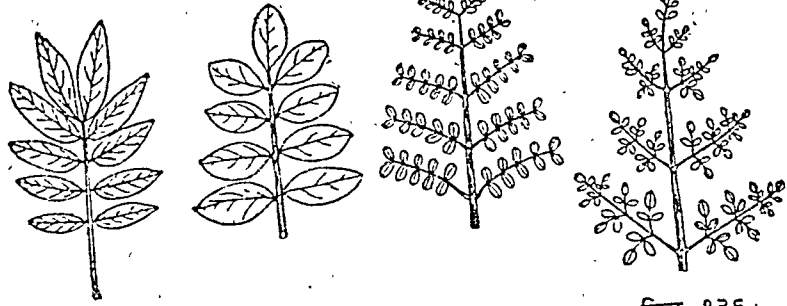
पक्षवत् पर्ण। चित्र १३३—एकपक्षवत् (समपक्षवत्)। चित्र १३४—एकपक्षवत् (असमपक्षवत्)। चित्र १३५—द्विपक्षवत्। १३६—त्रिपक्षवत्।

द्वितीय अक्ष (secondary axes) तृतीय अक्ष (tertiary axes) उत्पन्न करते हों, जिनमें उपपर्णक लगे रहते हों तो उसको त्रिपक्षवत् कहते हैं; जैसे सहिजन (drumstick), और अरलू (*Oroxylon*) में।

(४) बहुसंयुक्त (Decompound, चित्र १३७)–जब कि पर्ण तीन बार से अधिक पक्षवत् हो तो उसको बहुसंयुक्त कहते है जैसे, गाजर, धनिया, कौसमौस (*Cosmos*) इत्यादि में।
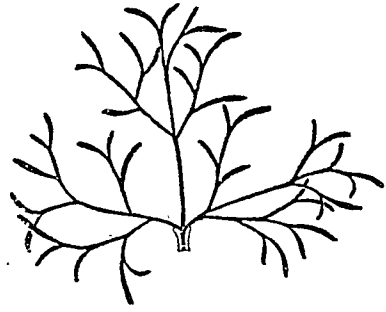
चित्र १३७—धनिया का बहुसंयुक्त पर्ण।

२. पाणिवत् संयुक्त पर्ण (Palmately Compound Leaf)–पाणिवत् संयुक्त पर्ण उस पर्ण को कहते हैं जिसमें पर्णवृन्त के ऊपरी सिरे पर उससे जुड़े हुए कई पर्णक लगे रहते हैं, जो एक सार्व या सामान्य (common) विन्दु से चारों ओर निकले हुए से लगते हैं, जैसे हथेली से उंगलियाँ, जैसे सेमल (silk cotton tree), ल्यूपिन (lupin), भांग (*Cannabis*), हुरहुर (*Gynandropsis*) और हुलहुल (*Polanisia*) में।

पर्णकों की संख्या के अनुसार यह एकपर्णक (unifoliate) हो सकता है, जब कि एक पर्णक पर्ण वृन्त पर सन्निमान रहता है, जैसे नीबू, नारंगी, चकोतरा, इत्यादि में। नारंगी और चकोतरा में कभी-कभी, विशेषकर उनकी प्रारम्भिक अवस्था में तीन पर्णक
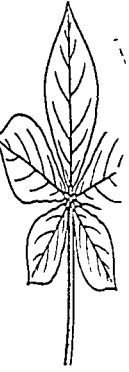
पाये जाते हैं। इससे पर्ण के पाणिवत् स्वरूप का पता चलता है। यदि दो पर्णक जुड़े हों तो पर्ण को द्विपर्णक (bifoliate), और यदि तीन पर्णक जुड़े हों तो उसको
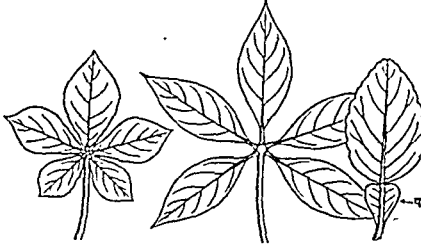
चित्र १३८ चित्र १३९ चित्र १४०

पाणिवत् संयुक्त पर्ण। चित्र १३८—हुरहुर का अंगुल्याकार पर्ण। चित्र १३९—सेमल का अंगुल्याकार पर्ण। चित्र १४०—चकोतरा का एक पर्णक संयुक्त पर्ण। प, सपक्ष पर्णवृन्त

त्रिपर्णक (trifoliate) कहते हैं, जैसे कैथ (wood-apple), खट्टी बूटी (wood sorrel) में; जब चार हों तो चतुष्पर्णक (quadrifoliate) जैसे मार्सीलिया (*Marsilea*) में; बहुपर्णक (multifoliate or digitate; चित्र १३८–१३९), जब पाँच या अधिक पर्णक इस प्रकार से जुड़े हों जैसे हथेली पर अंगुलियाँ तो उसको बहुपर्णक कहते हैं, जैसे सेमल (silk cotton tree), ल्युपिन, हुरहुर (*Gynandropsis*) और पांगर (*Aesculus indica*) इत्यादि में।

नोट—त्रिपर्णक पर्ण—(Trifoliate Leaves)—पक्षवत् प्रकार के त्रिपर्णक पर्ण को पाणिवत् प्रकार के त्रिपर्णक पर्ण से निम्न तथ्यों द्वारा विभेदन कर सकते हैं: पूर्वोक्त (former) में जो मंदार (coral tree) और देशी सेम (*Dolichos lablab*) में देखा जाता है, पर्णवृन्त प्रवर्द्धित होकर एक मध्य-शिरा (या प्राक्ष) रूप में बना होता है और अग्रक पर्णक इसकी चोटी में सन्धिमान (articulated) रहता है, इसके विपरीत उत्तरोक्त (latter) में तीनों पर्णक पर्णवृन्त की चोटी पर सीधे जुड़े रहते हैं, जैसे बेल, और शालपर्णी (*Desmodium*) में।

पत्ती की कालावधि (Duration of the Leaf)—पत्ती की कालावधि विभिन्न होती है। यदि उत्पन्न होने के थोड़े समय बाद ही पत्ती शाखा से झड़ जाय तो उसको (१) शीघ्रपाती (caducous) कहते हैं। जब पत्ती एक ऋतु तक जीवित रहती

है, और साधारणतः हेमन्त ऋतु (जाड़े) में झड़ती है तो उसको (२) **पर्णपाती** (deciduous) या वार्षिक (annual) कहते हैं। जब पत्ती एक वर्ष या मौसम
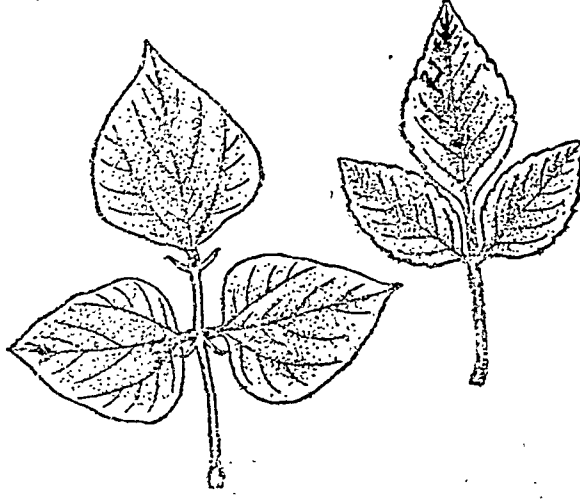
चित्र १४१ चित्र १४२

त्रिपर्णक पर्ण। चित्र १४१—पक्षवत् त्रिपर्णक पर्ण।
चित्र १४२—पाणिवत् त्रिपर्णक पर्ण।

से अधिक, साधारणतः कुछ वर्षों तक, जीवित रहती है तो उसको (३) **चिरलग्न** (persistent) या सदाबहार (evergreen) कहते हैं।

कुछ वर्णनात्मक शब्द

(१) **छत्राकार पर्ण** (Peltate Leaf)—पर्णवृन्त और पत्रदल साधारणतः एक ही और समान धरातल पर खड़े रहते हैं; किन्तु कुछ दशाओं जैसे कमल, जल नलिनी (water lily) और गार्डन नैस्टरशियम, इत्यादि में पर्णवृन्त पत्रदल के केन्द्र से समकोण बनाते हुये आबद्ध रहता है। इस प्रकार की पत्ती को छत्राकार पर्ण कहते हैं।

(२) **पृष्ठ प्रति पृष्ठीय पर्ण** (Dorsiventral Leaf)—जब पत्ती चपटी हो और पत्रदल क्षैतिज या अनुप्रस्थ (horizontal) स्थिति में हो और ऊपरी और निचली सतह दिखाई दे तो उसको पृष्ठ प्रति पृष्ठीय पर्ण कहते हैं। पृष्ठ प्रति पृष्ठीय पत्ती की ऊपरी सतह निचली सतह की अपेक्षा अधिक दीपित या द्योतित (illuminated) रहती है, इसलिये इसकी ऊपरी सतह निचले सतह से अधिक गहरी हरी होती है। दोनों सतहों में आन्तर रचना में भी यथेष्ठ अन्तर होता है।

(३) **समद्विपार्श्व पर्ण** (Isobilateral Leaf)—जब पत्ती उदग्रोन्मुख

(directed vertically) सीधे खड़ी रहती हैं, जैसे कई एकबीजपत्री पौधों में तो उनको समद्विपार्श्व कहते हैं। समद्विपार्श्व पर्ण दोनों सतहों पर बराबर दीप्त रहता है, इसलिये इसका रंग दोनों सतहों पर बराबर हरा रहता है और आन्तर रचना में भी दोनों सतहों में कोई अन्तर नहीं होता।

(४) केन्द्री पर्ण (Centric Leaf)–जब पत्ती लगभग बेलनाकार (cylindrical) और उपरोन्मुख (directed upwards) या अधोन्मुख (directed downwards) हो, जैसे चीड़ (pine), प्याज, इत्यादि में, तो पर्ण को केन्द्री कहते हैं। केन्द्री पत्ती चारों ओर एकसमान दीप्त होती है। इसलिये यह सब ओर एक सी हरी होती है।

(५) स्तम्भीय पर्ण (Cauline Leaf)–साधारणतः पत्तियाँ स्तम्भ और शाखाओं के वायवीय (aerial) भागों में लगी रहती हैं। ऐसी पत्तियों को स्तम्भीय पर्ण कहते हैं।

(६) मूलपर्ण (Radical Leaf)—कुछ पौधों, जैसे अनन्नास (pine-apple), घृतकुमारी (Indian aloe), अमेरिकन घृतकुमारी या कटीला (*Agave americana*), अनेक कुमुदिनियों (lilies), इत्यादि में, सूक्ष्म भूमिगत (underground) स्तम्भ से पत्तियों का एक गुच्छा पैदा होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि ये मूल से निकल रहे हों। इन पर्णों को मूलपर्ण कहते हैं। ये अधिकतर एकबीजपत्री पौधों में पाये जाते हैं। एक ही पौधे पर मूलपर्ण और स्तम्भीय पर्ण दोनों पाये जा सकते हैं, जैसे मूली, सरसों, इत्यादि में।

पर्णों के रूपान्तर (MODIFICATIONS OF LEAVES)

बहुत से पौधों की पत्तियाँ अनेक संरचनाओं में परिवर्तित या रूपान्तरित रहती हैं और विशेषित कार्य सम्पादित करती हैं। ये निम्नलिखित हैं :

(१) पर्ण-तन्तु (Leaf-tendrils, चित्र १४३–१४६)–कुछ पौधों में पत्तियाँ पतले, तार सदृश प्रायः निकट कुंडलित (closely coiled) संरचनाओं में रूपान्तरित होती हैं, इन्हें तन्तु (tendrils) कहते हैं। तन्तु हमेशा आरोही अंग होते हैं और किसी भी बाह्य वस्तु के लिये संस्पर्शी या स्पर्श संवेदक (sensitive to contact) होते हैं। अतः जब यह किसी बाहरी वस्तु के सम्पर्क में आते हैं तो उसके चारों ओर कुंडलित (लिपट) हो जाते हैं और पौधे को आरोहण में सहायता करते हैं, पर्ण पूर्णतया या अंशतः रूपान्तरित हो सकते हैं। उदाहरणार्थ मटर (चित्र १४३) में केवल ऊपर की ओर के पर्णक ही तन्तुओं में रूपान्तरित रहते हैं। दामलबटी या नरबेलिया (*Naravelia*, चित्र १४६) और बिगनोनिया विनस्टा (*Bignonia venusta*) (जो एक सौन्दर्यपूर्ण लता है जिसमें नारंगी रंग के फूलों के गुच्छे लगते हैं)–

में अग्रस्थ पर्णक (terminal leaflet) तन्तुमें रूपान्तरित रहते हैं। इन्द्र पुष्पिका (*Gloriosa*, चित्र १४५) में पर्ण अग्रक (leaf-apex) निकट कुंडलित तन्तु में रूपान्तरित रहती है। घटपर्णी (pitcher plant or *Nepenthes*, चित्र

चित्र १४३ चित्र १४४ चित्र १४५

रूपान्तरित पत्तियां: पर्ण तन्तु। चित्र १४३—मटर की पत्ती जिसके ऊपरी पर्णक तन्तुओं में रूपान्तरित हो गये हैं। चित्र १४४—जंगली मटर के स्तम्भ का एक भाग। चित्र १४५—ग्लोरिओसा के स्तम्भ का एक भाग, पर्ण अग्रक तन्तु में रूपान्तरित हो गया है।

१५१–१५२) में पर्णवृन्त प्रायः तन्तु का काम करता है और कलश (pitcher) को ऊर्ध्व (upright) दिशा में रखता है। कुमारिका (*Smilax*, चित्र ११२) में पर्णवृन्त आवार के समीप छिटक जाता है और दोनों पार्श्वों में दो तन्तु उत्पन्न करता है। उपर्युक्त सभी अपूर्ण रूपान्तरों के उदाहरण हैं। जंगली मटर (*Lathyrus aphaca*, चित्र १४४) में सम्पूर्ण पर्ण तन्तु में रूपान्तरित हो जाता है और दो पर्ण सदृश अनुपत्र (stipules) पत्तियों का कार्य करते हैं।

हुक या अंकुश (Hooks)–बिगनोनिया अंगुसकेटाइ (*Bignonia unguis-cati*; चित्र १४७) में अग्रस्थ पर्णक तीन बहुत तेज सरल और वक्र हुकों में रूपान्तरित हो जाते हैं, जो बिल्ली के नाखूनों से मिलते-जुलते हैं। ये हुक पेड़ की छाल में अटक जाते हैं और आरोहण के लिये आवारक अंग का काम करते हैं। इस प्रकार पौधा ऊंची चोटी वाले पेड़ों पर भी आसानी से चढ़ जाता है।

(२) पर्ण कंट (Leaf-spines, चित्र १४८-१४९) कुछ पौधों की पत्तियाँ प्रतिरक्षा कार्य के लिये तेज नुकीले संरचनाओं में रूपान्तरित हो जाती हैं। इनको कंट

(spines) कहते हैं। कंट पत्तियों के रूपान्तर हैं यह इस बात से सिद्ध होता है कि जो स्थिति शाखा पर पत्तियों की होती है, वही इन कंटों की भी होती है, और प्रायः इनके कक्ष में एक कलिका भी होती है, जैसे बारबेरी (barberry, चित्र १४८)
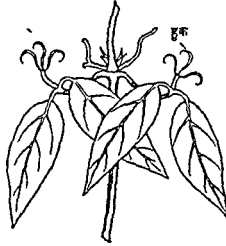
चित्र १४६ चित्र १४७

रूपान्तरित पर्ण। चित्र १४६—नरवेलिया की पत्ती-अग्रक पर्णक तन्तु में रूपान्तरित। चित्र १४७—बिगनोनिया अंगुसकेटाइ—अग्रक पर्णक हुक में रूपान्तरित।

के पुष्पी प्ररोह (flowering shoot) में, नागफनी (prickly pear; चित्र ८७) में साधारण पत्तियाँ अल्प विकसित रहती हैं और तुरन्त गिर जाती हैं, लेकिन कक्षस्थ कलिका की सूक्ष्म पत्तियाँ कंटों में रूपान्तरित रहती हैं। इसके विपरीत बारबेरी (barberry; चित्र १४८) में पर्ण स्वयं एक कंट में रूपान्तरित हो जाता है, लेकिन, कक्षस्थ कलिका की पत्तियाँ सामान्य होती हैं। कंट पत्ती की चोटी में भी विकसित हो सकते हैं, जैसे खजूर में; या पत्रदल के किनारे पर, जैसे भरभंडा (*Argemone*; चित्र १४९) में, अथवा चोटी और किनारे दोनों पर, जैसे घृतकुमारी (Indian aloe) और कांटला या अगेव (*Agave*) में।

(३) शल्कपत्र (Scale-leaves)—ये प्रारूपिकतया (typically) पतले, शुष्क, अवृन्त झिल्लीमय (membranous) सरचनाएं हैं, जो सामान्यतः भूरे रंग की या कभी रंगहीन होती हैं। इनका कार्य कक्षस्थ कलिका की रक्षा करना है, जो इनके कक्ष में स्थित रहती हैं। कभी-कभी शल्क पत्र मांसल तथा मोटे होते हैं, जैसे प्याज में, तब उनका कार्य पानी तथा खाद्य पदार्थ का संग्रह करना है। शल्कपत्र भूमिगत स्तम्भों, जैसे प्रकन्द (rhizome), कंद (tuber) बल्ब और घनकन्दों (corms) में साधारणतः पाये जाते हैं। ये बहुत से पौधों के वायवीय भागों में भी पाये जाते हैं।

पूर्ण पराश्रयी पौधों, जैसे आकाशबेल (dodder), गंठवा (broomrape) और जटामांसा या बेलेनोफोरा (*Balanophora*) (देखिये चित्र ६५, ६७-६८), इत्यादि में वे हरे वर्धी पत्तियों (vegetative leaves) की भी जगह ले लेते हैं। बरगद, पीपल, रबर का पौधा, इत्यादि में कलिका शल्क (bud-scales) कलिका के तरुण पत्तियों की रक्षा करते हैं। शरद ऋतु की कलिकाओं में वाह्यपर्ण (शल्क पत्र) पतले, शुष्क तथा झिल्लीमय होते हैं। पर्ण कार्य स्तम्भ (phylloclades-देखिये चित्र ८७-८९) और पर्णक पर्ण (cladodes, देखिये चित्र ९०) में पत्तियाँ प्रायः-

चित्र १४८

चित्र १४८—बारबेरी, प्राथमिक पत्तियाँ कंटों में रूपान्तरित।

चित्र १४९

चित्र १४९—भरभंडा का पर्ण जिसमें कंट दिखाये गये है।

अनुपस्थित या अल्प विकसित रहती हैं। लेकिन प्रायः वे सूक्ष्म, शुष्क शल्क पत्रों में रूपान्तरित हो जाती हैं, जैसे शतावरी (*Asparagus*) में। इक्वीसीटम (*Equisetum*) और कैजुआरीना (*Casuarina*) में शल्क पत्र प्रत्येक गाँठ पर आवर्त (whorl) में रहते है। वन झाऊ (*Tamarix*) में सूक्ष्मछादक शल्क पत्र स्तम्भ को जकड़े रहते हैं।

(४) **पर्णायित वृन्त** (Phyllode ; चित्र १५०)—आस्ट्रेलियन अकेसिया या बबूल (Australian *Acacia*) में पर्णवृन्त या प्राक्ष (rachis) का कोई सा भाग चिपिटित (flattened) या सपक्ष होकर पत्ती की आकृति ग्रहण कर लेता है तथा उसका रंग भी हरा हो जाता है। यह चिपिटित या सपक्ष पर्णवृन्त या प्राक्ष पर्णायित वृन्त कहलाता है। आस्ट्रेलियन बबूल की सामान्य पत्ती जो पक्षवत् संयुक्त होती है

नवोद्भिज (seedling) अवस्था में दिखाई देती हैं, या कुछ स्पीशीज में तरुण अवस्था में भी, किन्तु शीघ्र ही गिर जाती हैं। तब पर्णायित वृन्त ही पत्ती के
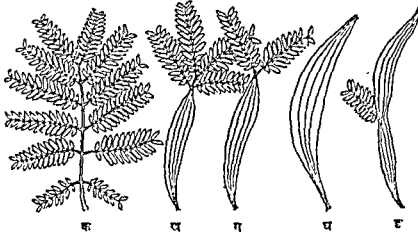
चित्र १५०—आस्ट्रेलियन अकेसिया में पर्णायित वृन्त का विकासन। क—घ, पर्णवृन्त पर्णायित वृन्त में रूपान्तरित; ङ, पर्णवृन्त और प्राक्ष पर्णायित वृन्त में रूपान्तरित।

समस्त कार्य सम्पादित करता है, पर्णायित वृन्त का पक्ष (wing) साधारणतः उदग्र (vertical) दिशा में विकसित होता है, ताकि सूर्य का प्रकाश उसकी सतह पर न पड़ सके, इससे जल का वाष्पन (evaporation) कम हो जाता है। आस्ट्रेलियन बबूल की लगभग ३०० स्पीशीज हैं, और सब में पर्णायित वृन्त पाया जाता है।

(५) घट या कलश (Pitcher; चित्र १५१-१५२)-घटपर्णी (pitcher plant or *Nepenthes*) में पत्ती घट या कलश में रूपान्तरित हो जाती है। इसमें एक पतला वृन्त होता है जो तन्तु के समान कुंडलित रहता है और कलश को उदग्र दिशा में रखता है, और इसका आधारीय (basal) भाग पत्ती के समान चिपिटित रहता है। कलश में एक ढक्कन होता है जो तरुण अवस्था में कलश के मुख को ढके रहता है। कलश का कार्य कीड़ों को पकड़ना और पचाना है। घटपर्णी के पत्ती का आकारिकीय स्वरूप यह है कि घट या कलश स्वयं पत्रदल का रूपान्तर है। कलश का आन्तर भाग पत्ती के ऊपरी सतह के अनुरूप है और ढक्कन पत्र अग्रक (leaf-apex) के उद्वर्ध (outgrowth) रूप में उत्पन्न होता है। पतला वृन्त जो तन्तु के समान कुंडलित रहता है, पत्र वृन्त है, दल सदृश संरचना जो पत्रदल सा दिखाई देता है तथा उसी की भांति व्यवहार करता है, पर्णाधार से विकसित होता है।

पत्ती का कलश में एक आश्चर्यजनक रूपान्तर एक आरोही उपरिरोही (climbing epiphyte) डिस्चिडिया रैफ्लीसियाना (*Dischidia rafflesiana* चित्र १५३) में मिलता है जो आसाम में सामान्यतः पाया जाता है। कलश का परिमाण २ से २½ इंच तक लम्बा तथा $\frac{3}{4}$ से १ इंच तक चौड़ा होता है। किन्तु इसकी प्रकृति मांसाहारी नहीं होती। नेपेन्थीस (*Nepenthes*) के समान इसमें एक आवारीय छिद्र होता है लेकिन इसमें ढक्कन नहीं होता, लेकिन ढक्कन की जगह उसमें एक प्रकार की जिह्वा होती है जो अन्दर की ओर निकली होती है। कलश के विवर या गुहा (cavity) में एक मूल या जड़ प्रवेश करता है और बहुत शाखी (branched) हो जाता है। वर्षा की बौछार के बाद कलश में पानी भर जाता है। इसके पहले ही उसमें चींटियाँ कूड़ा इकट्ठा कर देती हैं। तब जड़ इन सबको अवशोषण (absorb) कर लेती है।
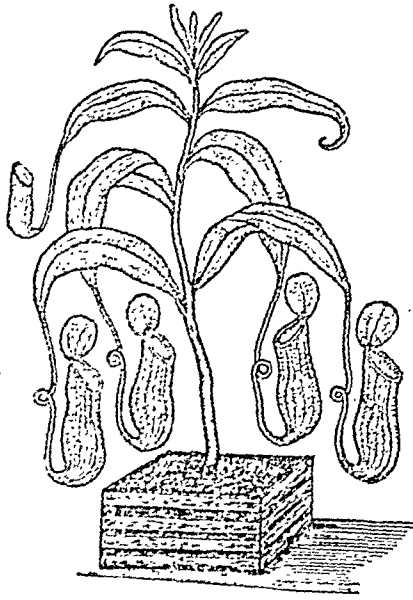
चित्र १५१

चित्र १५१—नेपेन्थीस का पौधा।
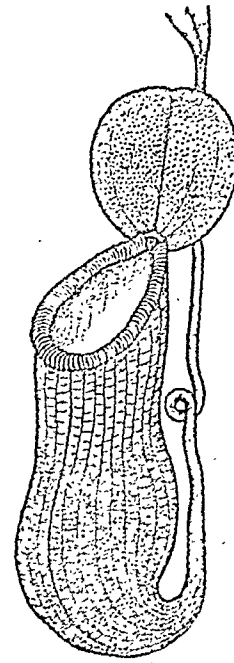
चित्र १५२

चित्र १५२—एक कलश।

(६) आशय (Bladder; चित्र १५४) - यूट्रीकुलेरिया (*Utricularia*) में, जो एक प्लावी घासपात (floating weed) है और तालाबों में पाया जाता है,
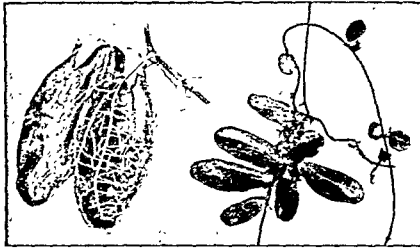
चित्र १५३—डिस्चिडिया रेफ्लीसियाना; बाईं ओर एक कलश खुला हुआ।

पत्ती बहुत अधिक विभाजित या खंडित रहती है। इनमें से कुछ खंड रूपान्तरित होकर ब्लैडर या आशय के समान सरचना बनाते हैं। इसके प्रवेश स्थान में पाशबंधक
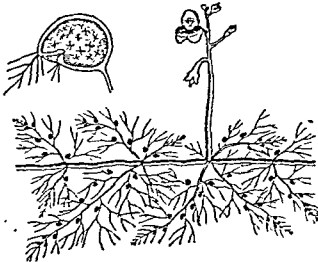
चित्र १५४—ब्लैडरवर्ट—कई छोटे आशयों सहित;
ऊपर एक आशय काट में।

द्वार (trap door) होता है जिसमें होकर नन्हें-नन्हें जलीय क्षुद्र जन्तु अन्दर ही प्रवेश कर सकते हैं, लेकिन बाहर नहीं आ सकते।

कलिका पर्ण विन्यास (PREFOLIATION)

कलिका में पत्तियाँ जिस विधि से विन्यस्त रहती हैं, उसे **कलिका पर्ण विन्यास** कहते हैं। इसका विचार दो दृष्टिकोणों से किया जाता है, अर्थात्, प्रथम, प्रत्येक व्यक्तिगत पत्ती कलिका में किस प्रकार से भंजित या तहबंद (folded) या वेल्लित (लिपटी) रहती है (वलना, ptyxis) ; तथा दूसरा **पत्र पारस्पर्य** (vernation), अर्थात् कलिका में पत्तियाँ एक दूसरे के प्रति किस प्रकार विन्यस्त रहती हैं। पर्ण कलिका में सत्य पत्रों का और पुष्प कलिका में पुष्प पत्रों का विन्यास लगभग समान होता है। और इसलिये दोनों दशाओं में सर्वसम (identical) प्ररूपों को समझाने के लिय एक से पारिभाषिक शब्द प्रयोग किये जाते हैं।

(क) **वलना** (Ptyxis)

(१) **अवनत** (Reclinate), जब पत्रदल का ऊपरी अर्धभाग निचले अर्धभाग पर झुका रहता है, जैसे लोकाट (loquat) में।

(२) **मध्य-शिरा वलित** (Conduplicate), जब पत्ती मध्य-शिरा पर लम्बान में भंजित या मुड़ी रहती है, जैसे अमरूद, कचनार (*Bauhinia*), शकरकन्द इत्यादि में।

(३) **वेष्टित** (Plicate or plaited), जब पत्ती शिराओं पर बार-बार लम्बान मे गोमूत्राकार (zigzag) रूप में मुड़ी रहती है, जैसे पंखपत्र ताड़ (palmyra-palm) में।

(४) **कुंडलाकार** (Circinate), जब पत्ती चोटी से आधार की ओर वेल्लित (लिपटी) रहती है, जैसे पर्णांग या फर्न (fern) में।
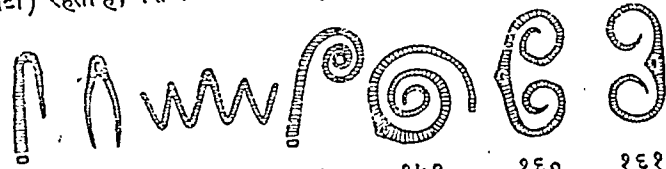
१५५ १५६ १५७ १५८ १५९ १६० १६१

वलना। चित्र १५५—अवनत। चित्र १५६–मध्य-शिरा वलयित। चित्र १५७—वेष्टित। चित्र १५८—कुण्डलाकार। चित्र १५९—संवलित। चित्र १६०—आन्तर्वलित। चित्र १६१—वहिर्वलित।

(५) **संवलित** (Convolute), जब पत्ती एक तट से दूसरे तट तक वेल्लित (लिपटी) रहती हैं, जैसे केला, ब्राह्मी और सूरन कुल के पौधों (aroids) में।

(६) **आन्तर्वलित** (Involute), जब पत्ती के दोनों तट मध्य-शिरा या केन्द्र की ओर ऊपरी सतह पर वेल्लित (लिपटे) रहते हैं, जैसे जलनलिनी (water lily), कमल, चित्रक (*Plumbago*), इत्यादि में।

(७) बहिर्वलित (Revolute), जब पत्ती आन्तर्वलित की भांति निचली सतह पर वेल्लित रहती है, जैसे कनेर (oleander) और देसी बादाम में।

(८) अतिवलित (Crumpled), जब पत्ती अनियमित रूप से वेल्लित रहती है जैसे पात गोभी या बंद गोभी (cabbage) में।

चित्र १६२ चित्र १६३ चित्र १६४ चित्र १६५

पत्र पारस्पर्य। चित्र १६२—धारास्पर्शी; चित्र १६३—व्यावृत; चित्र १६४—अनियमछादी; चित्र १६५—उपरिस्थ।

(ख) पत्र पारस्पर्य (Vernation)

पत्तियों का पत्र पारस्पर्य, जैसे कलिका के अनुप्रस्थ काट में दिखाई देता है, निम्न प्रकार का हो सकता है:

(१) धारास्पर्शी (Valvate), जब कि कलिका की पत्तियां एक दूसरे को केवल अपने तट से स्पर्श करती हैं लेकिन अतिछादन (overlap) नहीं करती।

(२) व्यावृत (Contorted or twisted), जब कि पत्तियां एक तट में अतिछादित (overlapped) रहती हैं, और वे दूसरे तट से अगली पत्ती को अतिछादित करती है।

(३) अनियमछादी (Imbricate), जब कि कुछ पत्तियां दूसरों को अपने किनारों से अतिछादित करती हैं और कुछ आन्तर या व्यावृत (twisted) रहती हैं।

(४) उपरिस्थ (Equitant), जब कि पत्तियां अगली विपरीत पत्तियों को दोनों तटों से अतिछादित करती हैं, जैसे वैन्डा (*Vanda*), बाक (*Acorus calamus*) में।

पर्णन्यास या पर्णरचना (PHYLLOTAXY)

पर्णन्यास या पर्णरचना का अभिप्राय उन विभिन्न विधियों से है, जिनके अनुसार वे स्तम्भ तथा शाखा पर विन्यस्त रहती हैं। इस विन्यास का ध्येय यह है कि एक पत्ती की दूसरी पत्ती पर छाया न पड़े, और पत्तियों को खाद्य निर्माण के लिये प्रकाश की अधिकतम मात्रा मिल सके।

पौधों में तीन प्रमुख प्रकार की पर्ण रचना दिखाई पड़ती है :

(१) एकान्तर या सर्पिल (Alternate or Spiral; चित्र १६६) जब कि प्रत्येक गाँठ पर एक ही पत्ती उत्पन्न होती है, जैसे तम्बाकू, गुड़हल, सरसों, सूर्यमुखी, इत्यादि में।

(२) विपरीत या विरुद्ध (Opposite; चित्र १६७), जब कि प्रत्येक गाँठ पर दो पर्ण निकलते हैं और वे एक दूसरे के विपरीत रहते हैं। विपरीत पर्ण रचना
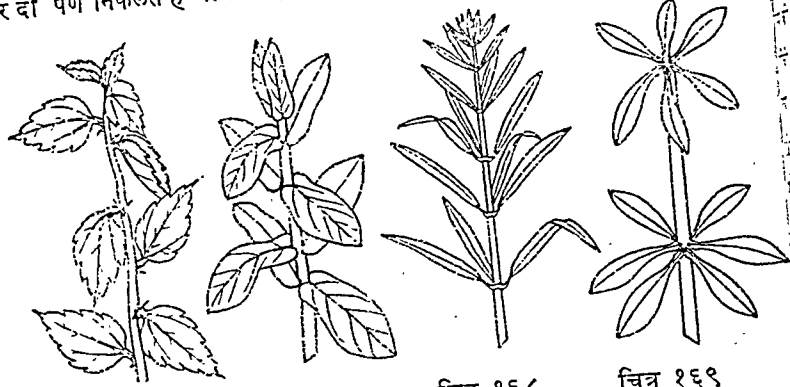
चित्र १६६ चित्र १६७ चित्र १६८ चित्र १६९

पर्ण रचना के प्रकार। चित्र १६६–गुड़हल की एकान्तर पर्ण रचना। चित्र १६७–मदार की विपरीत पर्ण रचना। चित्र १६८–कनेर की आवर्तरूप पर्ण रचना। चित्र १६९–चेतियन की आवर्त रूप पर्ण रचना।

में सामान्यतः पत्तियों का एक युगल या युग्म (pair) उसके ऊपर के और नीचे के युग्म से समकोण बनाता है। इस प्रकार के पर्ण रचना को विपरीत चतुष्क (opposite decussate) या केवल चतुष्क (decussate) कहते हैं। यह तुलसी (*Ocimum*) आक या मदार (*Calotropis*), अमरूद, इत्यादि में दिखाई देता है। फिर भी, कभी कभी पत्तियों का एक युग्म (pair) उससे निचले युग्म के ठीक ऊपर और उसी तल में स्थित रहता है। इस प्रकार के पर्ण रचना को आच्छादित (superposed) कहते हैं, जैसे मालती (*Quisqualis*) में। अनुप्रस्थ या क्षैतिज दिशा में वृद्धि करने वाली शाखाएं, जैसे अमरूद, रंगन (*Ixora*), इत्यादि में, साधारणतः आच्छादित पत्तियाँ धारण करती हैं। अक्सर एक ही पौधे में एकान्तर और विपरीत दोनों प्रकार के पर्ण रचना दिखाई देते हैं।

(३) आवर्तरूप (Whorled; चित्र १६८–१६९), जब कि एक गाँठ में दो से अधिक पत्तियाँ होती हैं और वे एक आवर्त या वृत में विन्यस्त रहती हैं, जैसे सप्तपर्णी या चेतियन (*Alstonia*), कनेर (*Nerium*), आलामंडा (*Allamanda*),

मेंगा (*Vangueria*), इत्यादि में। कभी-कभी आवर्तरूप और विपरीत दोनों प्रकार की पर्ण रचना एक ही पौधे में दिखाई देती है।

एकान्तर पर्ण रचना (Alternate Phyllotaxy)—इस दशा में पत्तियाँ स्तम्भ (तने) के चारों ओर सर्पिलतः विन्यस्त (spirally arranged) रहती हैं। यदि …ब एक काल्पनिक सर्पिल रेखा किसी एक विशेष पत्ती के आधार से खींची जाय और …स रेखा स्तम्भ के चारों ओर क्रमिक (successive) पत्तियों के आधार से होती हुई जाय तो यह देखा जाता है कि सर्पिल रेखा अन्त में एक ऐसी पत्ती के पास पहुंचती है जो प्रारम्भ की पत्ती के ठीक उदग्रतया (vertically) ऊपर रहती है। इस प्रकार से खींची गई काल्पनिक रेखा को विकास कुन्तल (genetic spiral) कहते हैं, और उदग्र (vertical) रेखा, अर्थात् पत्तियों की उदग्र पंक्ति को उदग्र पंक्ति (orthostichy) कहते हैं।

(१) पर्ण रचना १/२ या द्विपंक्तिक (Phyllotaxy 1/2 or 2-ranked or distichous; चित्र १७१)—घासों (grasses), पटेर या टाइफा (*Typha*), …र पाम या रेवीनेला (*Ravenala*; चित्र १७०), अदरक, दुग्गल चम्पा (butterfly-lily), रसना (*Vanda*), बेलमकैन्डा (*Belamcanda*) आइरिस (*Iris*), इत्यादि में, तीसरी पत्ती पहली पत्ती के ठीक ऊपर स्थित होती है और विकास कुन्तल (genetic spiral) उस पत्ती तक आने में एक पूरा परिक्रमण या चक्कर (revolution) करता है और उसमें दो पत्तियाँ बीच में आती हैं (पहली या तीसरी पत्ती का ख्याल न करते हुये)। चौथी पत्ती दूसरी के ऊपर, पांचवी पत्ती पहली और तीसरी के ऊपर, और अन्य पत्तियां इसी क्रम के अनुसार होती हैं। इस प्रकार केवल दो उदग्र पंक्तियाँ (orthostichies) होती हैं, अर्थात् पत्तियाँ दो पंक्तियों में विन्यस्त रहती हैं। इस प्रकार पर्ण रचना द्विपंक्तिक (distichous) हुई। अब यदि पत्तियों की स्थिति वृत्त या भ्रमिपथ (helix) में अंकित की जाय तो वे वृत्त के आधी दूरी पर स्थित रहती हैं और पत्तियाँ एक दूसरे से समदूरस्थ (equidistant) रहती हैं। ऐसी पर्ण रचना आधी कहलाती है तथा १/२

चित्र १७०—रेवीनेला मेडागास्करेन्सिस।

भिन्न (fraction) द्वारा प्रतिरूपित (represented) की जाती है। अंश (numerator) विकास कुन्तल के घुमावों की संख्या को निर्देशित करता है और हर (denominator) मध्यवर्ती (intervening) पत्तियों की संख्या को।

इस स्थिति में विकास कुन्तल एक पूरा घुमाव करता है तथा वृत के केन्द्र पर ३६०° का कोण बनाता है और उसके मार्ग में दो पत्तियाँ आती हैं, इसलिये **कोणीय अपसरण** (angular divergence), अर्थात् किन्हीं दो क्रमागत (consecutive) पत्तियों के बीच कोणीय दूरी (angular distance) ३६०° का १/२, अर्थात् १८०° हुआ।

(२) **पर्ण रचना १/३ या त्रिपंक्तिक** (Phyllotaxy 1/3 or 3-ranked or tristichous; चित्र १७२)—मुस्ताओं (sedges) में चौथी पत्ती पहली पत्ती के उदग्रतया ऊपर रहती है और विकास कुन्तल उस पत्ती तक पहुँचने में एक पूरा चक्कर लगाता है और उसके मार्ग में तीन पत्तियाँ आती हैं। पाँचवी पत्ती दूसरी के ऊपर, छटी पत्ती तीसरी के ऊपर और सातवीं पत्ती चौथी तथा पहली के ऊपर रहती है। इस प्रकार तीन उदग्र पंक्तियाँ हुई अर्थात् पत्तियाँ तीन पंक्तियों में विन्यस्त रहती हैं। अब यदि उनकी स्थिति वृत या भ्रमिपथ (helix) पर अंकित की जाय तो वे वृत के
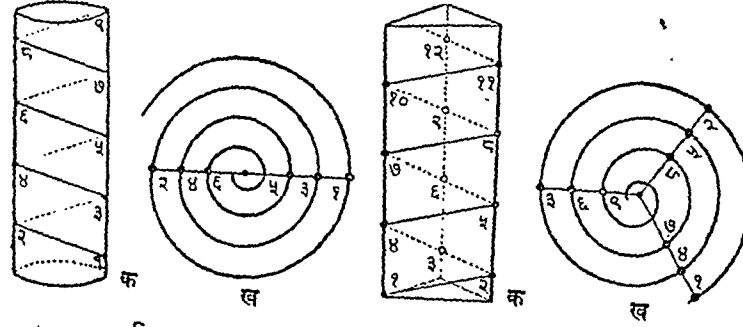
चित्र १७१

चित्र १७२

पर्ण रचना और कोणीय अपसरण। चित्र १७१—क, पर्ण रचना १/२; ख, कोणीय अपसरण १८०°। चित्र १७२—क, पर्ण रचना १/३; ख, कोणीय अपसरण १२०°।

एक तिहाई दूरी पर स्थित रहती हैं। इसलिये पर्ण रचना १/३ या त्रिपंक्तिक (tristichous) हुई। **कोणीय अपसरण** ३६०° का १/३, अर्थात् १२०° हुआ।

(३) **पर्ण रचना २/५ या पंच-पंक्तिक** (Phyllotaxy 2/5 or 5-ranked or pentastichous; चित्र १७३)—गुड़हल में छटी पत्ती पहली पत्ती के ऊपर स्थित रहती है और विकास कुन्तल उस विशेष पत्ती तक पहुंचने में दो चक्कर पूरा करता है। सातवीं पत्ती दूसरी के ऊपर, आठवीं पत्ती तीसरी के ऊपर, नवीं चौथी के ऊपर, दसवीं पत्ती पाँचवीं के ऊपर तथा ग्यारहवीं पत्ती छटी तथा पहली के ऊपर होती है।

इस प्रकार पाँच उदग्र पंक्तियाँ हुईं, अर्थात् पत्तियाँ पाँच पंक्तियों में विन्यस्त रहती हैं, और चूंकि विकास कुन्तल के दो घुमावों के मार्ग में पाँच पत्तियाँ आती हैं, तो पत्तियाँ
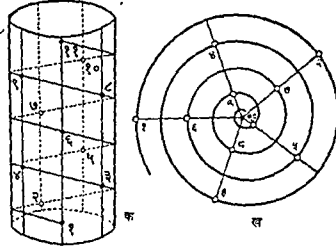
चित्र १७३—क, पर्ण रचना २/५; ख, कोणीय अपसरण १४४°।

वृत्त के २/५ दूरी पर स्थित रहती हैं। अतः पर्ण रचना २/५ या पंचपंक्तिक (2/5 or 5-ranked or pentastichous) हुई। पौधों में यह सबसे सामान्य प्रकार की एकान्तरिक पर्ण रचना है। इस दशा में कोणीय अपसरण ३६०° का २/५, अर्थात् १४४° है।

(पहले दोनों उदाहरणों के अंश (numerator) तथा हर (denominator) को अलग-अलग जोड़ने से भी यही भिन्न (fraction) प्राप्त किया जा सकता है, उदाहरणार्थ $\frac{१+१}{२+३} = \frac{२}{५}$। अगले उदाहरण में यह भिन्न $\frac{१+२}{३+५} = \frac{३}{८}$ होगा तथा यथाक्रम और भी उदाहरण निकाले जा सकते हैं। ३/८ से अधिक के भिन्न पौधों में सामान्यतया नहीं मिलते।)

पर्ण-कुट्टिम (Leaf Mosaic)

अनेक मन्दिरों तथा सुन्दर भवनों के फ़र्श, दीवारों और छतों पर हम विभिन्न प्रकार के रंगीन शीशे तथा पत्थर एक विशेष बूटे के रूप में देखते हैं। इस प्रकार के नमूने को कुट्टिम (mosaic) कहते हैं। इसी प्रकार पौधों में पत्तियाँ एक विशेष प्रकार से सजी हुई तथा वटित रहती हैं। पत्तियों के वटन या वितरण के इस ढंग को पर्ण-कुट्टिम (leaf mosaic) कहते हैं। पत्तियों को भोजन निर्माण के लिये सूर्य के प्रकाश की विशेष आवश्यकता होती है, इसलिये वे अपने को इस प्रकार स्थित कर
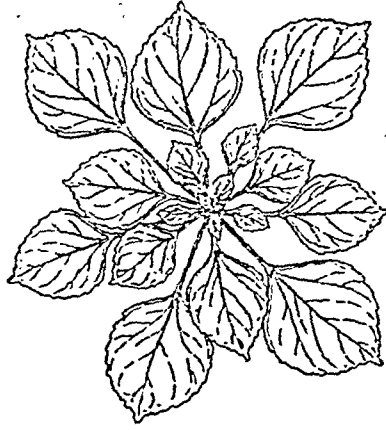
चित्र १७४—ऐकेलाइफा (कुप्पी) का पर्ण-कुट्टिम।

लेती हैं कि वे पास की पत्तियों को कम से कम ढकें। इस प्रकार यह देखा जाता है कि कम से कम अतिछादन (overlapping) होता है। गार्डन नैस्टरशियम, कुप्पी (*Acalypha*), बीगोनिया और आरोही पौधे, जिनमें पत्तियों का घना पुंज होता है, का निरीक्षण करने से यह विदित होता है कि पत्तियाँ इस प्रकार से स्थित रहती हैं जैसे खपरैल के मकान में खपरैल लगे होते हैं। वे पौधे जिनमें मूल पत्तियाँ (radical leaves) गुलाबवत् (rosette) रूप होती हैं, या जिनमें छोटे पर्व तथा चौड़ी पत्तियाँ होती हैं, या जिनमें आवर्तरूप पर्ण रचना होती हैं, ऊपरी पत्तियाँ निचली पत्तियों से एकान्तरित रहती हैं। जब पत्तियाँ बहुत घनी होती हैं तो वे इस प्रकार से वंटित हो जाती हैं, जैसे कुट्टिम में काँच के टुकड़े जड़े होते हैं और बड़ी पत्तियों के बीच के रिक्त स्थान में छोटी पत्तियाँ जड़ी हुई मालूम देती हैं। भूशायी पौधों, जैसे खट्टी बूटी (*Oxalis*), की पत्तियाँ भी लगभग ठीक कुट्टिम बनाती हैं। क्षैतिज फैलने वाली शाखाएं, जैसे कंटेली चम्पा (*Artabotrys*) में पत्तियाँ द्वि-पंक्तिक हो जाती हैं, अर्थात् वे मुड़कर अपने को इस प्रकार घुमा लेती हैं कि वे अपनी चपटी ऊपरी सतह सूर्य के प्रकाश के सम्मुख कर देती हैं।

पर्ण के कार्य (Functions of the Leaf)

हरे सत्य पत्र के तीन सामान्य कार्य होते हैं: (१) खाद्य पदार्थ का निर्माण; (२) वायुमंडल तथा पौधे के शरीर के बीच गैसों का व्यतिहार या अदल-बदल (interchange of gases), और (३) पत्ती के द्वारा अतिरिक्त जल का वाष्पन (evaporation)। इसके अतिरिक्त माँसल पत्तियाँ भोजन तथा जल संग्रह करने के काम आती हैं। कुछ दशाओं में पत्ती वर्धी प्रजनन (vegetative reproduction) के लिये कलिकाएं उत्पन्न करती हैं। पत्ती कक्षस्थ कलिका को आवश्यक रक्षा भी प्रदान करती है। रूपान्तरित पत्ती विशेषित कार्य भी करती है (देखिये पृष्ठ ८७-९३)।

(१) खाद्य का निर्माण (Manufacture of Food)—पत्ती का प्राथमिक कार्य खाद्य पदार्थों, विशेषकर शर्करा (sugar) और स्टार्च, का निर्माण करना है। यह कार्य वे केवल दिन में करती हैं, अर्थात् सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में, जो कि पौधे के लिये ऊर्जा (energy) का स्रोत है। यह कार्य पत्ती हरिम कणकों

(chloroplasts), जो कि उसमें मौजूद रहते हैं, तथा पानी और कार्बन-डाइऑक्साइड, जो क्रमशः पृथ्वी तथा वायु से प्राप्त होते हैं, की मदद से करती हैं। पत्ती का ऊपरी तल अधिक हरिम कणकों के कारण ज्यादा गहरा हरा होता है और सूर्य का प्रकाश भी इसी सतह पर सीधा पड़ता है, इसलिये खाद्य निर्माण सामान्यतः इसी प्रदेश में होता है।

(२) गैसों का व्यतिहार (Interchange of Gases)—पत्तियों द्वारा पौधे के शरीर और वायुमंडल में गैसों का व्यतिहार होता है। इस व्यतिहार को सुगम बनाने के लिये प्रायः पत्ती की निचली सतह पर अनेक बहुत सूक्ष्म छिद्र होते हैं जिनको रन्ध्र (stomata) कहते हैं। ये अधिकतर पौधों में केवल दिन में ही खुले रहते हैं। जिन गैसों का व्यतिहार होता है वे ऑक्सीजन और कार्बन-डाइऑक्साइड हैं। गैसों का यह व्यतिहार विशेष रूप से जीवित कोशिकाओं के श्वसन क्रिया के लिये होता है जो कि ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और कार्बन-डाइऑक्साइड बाहर निकालते हैं और साथ ही हरी कोशिकाओं द्वारा ही खाद्य निर्माण के लिये वे कार्बन-डाइऑक्साइड ग्रहण करते हैं और ऑक्सीजन बाहर निकालते हैं।

(३) जल का वाष्पन (Evaporation of Water)—मूल रोम निरन्तर पृथ्वी से पानी अवशोषण करते हैं जो पौध की आवश्यकता से कहीं अधिक होता है। यह अतिरिक्त जल पत्तियों के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। यह अतिरिक्त जल दिन में पत्तियों की सतह से वाष्पन होता है। वाष्पन की गति निचली सतह से ऊपरी सतह के बजाय बहुत अधिक होती है, यद्यपि सूर्य का प्रकाश ऊपरी सतह पर सीधा पड़ता है। यह इस कारण होता है कि रन्ध्र निचली सतह पर स्थित रहते हैं और दिन के समय खुले रहते हैं। जब कि बाह्यचर्म (cuticle), जो ऊपर की सतह पर स्थित रहता है, वाष्पन को रोकता है। रात में अतिरिक्त जल द्रव रूप में शिराओं के अग्रक भागों से बाहर आता है।

(४) खाद्य पदार्थ का संग्रह (Storage of Food)—घृतकुमारी (Indian aloe), कुलफा या लुनक (*Portulaca oleracea*) और प्याज के मांसल शल्क (fleshy scales) जल और खाद्य पदार्थ भविष्य के उपयोग के लिये संग्रह करते हैं। मरुस्थलीय पौधों के मांसल और सरस पत्तियाँ हमेशा ही अधिक मात्रा में पानी, श्लेष्म (mucilage) और खाद्य संग्रह करती हैं।

(५) वर्धी प्रचारण (Vegetative Propagation)—ब्रायोफिलम (*Bryophyllum*; चित्र ३४), बीगोनिया (*Begonia*; चित्र ३५) और हैजा (*Kalanchoe*) वर्धी प्रचारण के लिये कलिका उत्पन्न करते हैं। एडिएन्टम कौडेटम (*Adiantum caudatum*) और पौलीपोडियम फ्लैजेलीफेरम (*Polypodium flagelliferum*) अपनी पत्तियों के अग्र भाग से वर्धी प्रजनन करते हैं। पत्तियाँ पृथ्वी की ओर झुक जाती हैं और उनके अग्र (tips) जमीन छूने पर जड़ें [illegible]

करती हैं और एक कलिका उत्पन्न करती हैं, जो एक नये पौधे में विकसित हो जाती है।

विषम पर्णता या असम पर्णता (Heterophylly)—अनेक पौधों में एक ही पेड़ पर विभिन्न प्रकार की पत्तियाँ लगी होती हैं। इस दशा को असम पर्णता कहते हैं। असम पर्णता अनेक जलीय पौधों में पायी जाती है, और विशेषकर उनमें जो बहते हुए जल में उगते हैं। इनमें प्लावी (floating) पत्तियाँ और जल निमग्न (submerged) पत्तियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। पूर्वोक्त (former) प्रायः चौड़ी, लगभग विस्तृत (expanded) और अविभाजित या जरा सा फंकीय (lobed) होती हैं, और उत्तरोक्त संकीर्ण (narrow), पट्टिकावत् (ribbon-shaped), रेखाकार (linear) या अति विभाजित होती हैं। जलीय पौधों में असम पर्णता उनके वातावरण की दो विभिन्न दशाओं के लिये उपयोजन (adaptation) माना जाता है। जमीन पर उगने वाले कुछ पौधों में भी असम पर्णता पाई जाती है लेकिन यहाँ पर पत्तियों के आकार की भिन्नता को समझाना कठिन है। जलीय पौधों में रैनन-

चित्र १७५ चित्र १७६ चित्र १७७

विषम पर्णता। चित्र १७५–कार्डेनयेरा। चित्र १७६–चपलाश। चित्र १७७–हेमीफ्रैग्मा हेटरोफिलम।

कुलस ऐक्वाटिलिस (*Ranunculus aquatilis*), और कार्डेनयेरा ट्राइफ्लोरा (*Cardenthera triflora*; चित्र १७५) इत्यादि में असम पर्णता पाई जाती है। इनकी निमग्न पत्तियाँ बहुत खंडित होती हैं और तैरनेवाली (या वायवीय) पत्तियाँ सम्पूर्ण या जरा सी खंडित होती हैं। एलिस्मा प्लैंटेगो (*Alisma plantago*) और सेजीटेरिया (*Sagittaria*; चित्र १७८) में निमग्न पत्तियाँ कभी-कभी संकीर्ण और पट्टिकावत होती हैं; लेकिन ऊपर निकली हुई पत्तियाँ सम्पूर्ण या विस्तृत खंडित (broadly lobed) होती हैं। लिम्नोफिला हेटरोफिला (*Limnophila heterophylla*)

में पत्तियों के सारे क्रमिक रूपान्तरों (transitions) के नमूने मिलते हैं। जमीन में उगने वाले पौधों, जैसे स्टरकूलिया अलाटा (*Sterculia alata*), चपलाश (*Artocarpus chaplasha*; चित्र १७६), फाइकस हेटरोफिला (*Ficus heterophylla*), इत्यादि में सम्पूर्ण पत्तियों से लेकर विभिन्न नमूनों के खंडित पत्तियाँ पाई जाती हैं। दार्जिलिंग, शिलौंग और खासी पर्वत श्रेणियों पर पाये जाने वाले एक शाक (herb) जिसे हेमीफ्रैग्मा हेटरोफिलम (*Hemiphragma heterophyllum*) चित्र १७७) कहते हैं, में दो प्रकार की पत्तियाँ पाई जाती हैं। इसमें मुख्य स्तम्भ में पाई जाने वाली पत्तियाँ अण्डवत् और सम्पूर्ण होती है और छोटी कक्षस्थ शाखाओं में पत्तियाँ सूच्याकार (needle-shaped) होती हैं।

समजातता (Homology) और समवृत्तिता (Analogy)—समजातता रूपान्तरित अंगों का उनके उदगम् (origin) के दृष्टिकोण से आकारिकीय अध्ययन है; तथा समवृत्तिता सर्वसम संरचना (identical structure) और कार्य के दृष्टिकोण से अंगों का अध्ययन है; या, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जो अंग अपने उद्भव (origin) में एक दूसरे के समान होते है और इसलिये आकारिकीय दृष्टि से समान है, चाहे उनकी कोई सरचना या कार्य हो, तो उनको एक दूसरे के प्रति समजात (homologous) कहते हैं। वे अंग जो संरचना में एक के सदृश्य हों और सर्वसम कार्य करने के लिये उपयोजित होते हैं, यद्यपि उनके उद्भव भिन्न हैं, तो उनको एक दूसरे के प्रति समवृत्ति (analogous) कहते हैं। इसलिये सब तन्तु (tendril) चाहे उनकी जो भी स्थिति हो, एक दूसरे के समवृत्ति हैं, क्योंकि उनकी सरचना समान है और वे समान कार्य करते हैं। लेकिन झुमकलता (passion-flower; चित्र ८१) के तन्तु कक्षस्थ कलिकाओं के समजात हैं, अर्थात् कलिकाओं के रूपान्तर हैं। मटर के तन्तु पर्णकों के समजात हैं। इसी प्रकार झुमकलता के तन्तु और नीलकाँटा (*Duranta*; चित्र ८६) के कंटक समजात सरचनाएं हैं, क्योंकि दोनों का उद्भव पत्तियों के कक्ष में है और दोनों कक्षस्थ कलिकाओं के रूपान्तर हैं। इसी प्रकार प्रकंद (rhizome), कंद (tuber), तर्कुरूप मूल

चित्र १७८—सेजीटेरिया मे विषम पर्णता।

(fusiform root), कुम्भी रूप मूल (napiform root) इत्यादि समवृत्ति संरचनाएं हैं, क्योंकि वे सर्वसम कार्य करने के लिये उपयोजित हैं, अर्थात् भोजन का संग्रह; लेकिन यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रकंद और कंद स्तम्भ के समजात हैं, क्योंकि उसके य रूपान्तर हैं, जब कि तर्कुरुप मूल और कुम्भी रूपमूल मूल के समजात हैं क्योंकि ये उसके रूपान्तर है। फिर हम देखते हैं कि नागफनी का पर्ण कार्य स्तम्भ (phylloclade) स्तम्भ का रूपान्तर होने के कारण उसका समजात है, लेकिन वे पत्तियों के समवृत्ति हैं क्योंकि वे पत्तियों का कार्य करने के लिये उपयोजित हैं।

अध्याय ६

पौधों में प्रतिरक्षी रचनाएं या विधियां

(DEFENSIVE MECHANISMS IN PLANTS)

सारा जन्तु जगत प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः वनस्पति जगत पर पराश्रयी है। इसलिये पौधे या तो तरह-तरह के जन्तुओं के शिकार बन जाते हैं (विशेषकर शाकाहारी जन्तुओं के जो केवल वनस्पति भोजन पर ही निर्वाह करते हैं); या फिर उनमें ऐसे विशेष अंग या प्रतिरक्षा के अंग, या उनके पास कुछ विशेष युक्तियां होनी चाहियें जिससे वे अपने को शत्रुओं के आक्रमण से बचा सकें। धरती पर स्थिर होने के कारण वे शत्रुओं के आक्रमण से बचने के लिये भाग नहीं सकते और न कोई चतुराई से प्रवन्ध ही कर सकते हैं।

१. रक्षा सामग्री (Armature)

(१) कंटक (Thorns), कंट (Spines), शिताग्र (Prickles) और दृढ़लोम (Bristles)—ये सब तेज नुकीले, कठोर (दृढ़) संरचनाएं हैं जो शाकाहारी जन्तुओं से बचाव के लिये विकसित होते हैं। छोटे कंटमय (spinious) पौधे जिन्हें थिसिल्स (thistles) कहते हैं, उदाहरणार्थ कांटला (*Echinops echinatus*), के शरीर में अनेक कंट और शिताग्र होते हैं, जिससे जानवर उनके निकट जाने का साहस नहीं करते।

(क) कंटक (देखिये पृष्ठ ६१)—ये शाखाओं के रूपान्तर हैं और पौधों के शरीर के आन्तर स्थित ऊतकों (tissues) से उत्पन्न होते हैं। ये सीधे और कठोर होते हैं जिससे मोटी खाल वाले जन्तुओं के शरीर में भी प्रवेश कर जाते हैं। कैथ (wood-apple) मोएना (*Vangueria*), नीबू, अनार, नीलकांटा (*Duranta*), पनिआला

(*Flacourtia*), करौंदा (*Carissa*) और कई अन्य पौधों में ये कंटक आत्म रक्षा के लिये विशेष रूप से विकसित रहते हैं।

(ग) कंट (Spines; देखिये पृष्ठ ८८) पत्तियों या पत्तियों के भागों के रूपान्तर हैं और आत्मरक्षा का कार्य सम्पन्न करते हैं। यह अनन्नास (pineapple), खजूर (date-palm), भरभंडा (*Argemone*; देखिये चित्र १४९), बबूल, अगेव या अमेरिकन घृतकुमारी (*Agave*), यक्का (*Yucca*) इत्यादि में पाये जाते हैं, यक्का (*Yucca*; चित्र १७४) में पत्ती का अग्र भाग तेज व नुकीले कंट में अन्त होता है और बाहर की ओर मुड़ा होता है। प्रत्येक पत्ती कृपाण के समान होती हैं और वैसा ही व्यवहार भी करती हैं। इस प्रकार ये पौधे चरने वाले जानवरों से सुरक्षित रहते हैं। अगेव (*Agave*) और कुछ अन्य पौधों में जब ये तरुण और छोटे होते हैं, कंट ऊर्ध्वमुख (directed upwards) रहते हैं। बाद में जब वे बढ़ते हैं तो कंट क्षैतिज या अनुप्रस्थ बहिर्मुख हो जाते हैं, और अन्त में कंट अधःमुख हो जाते हैं। इस प्रकार जीवन की समस्त अवस्थाओं में पौधे जानवरों के आक्रमण से बचे रहते हैं।

चित्र १७९—यक्का (*Yucca*)।

(ग) शिताग्र (Prickles; देखिये पृष्ठ ४४) भी कंटकों के समान कठोर व नुकीले होते हैं, लेकिन वे प्रायः वक्र (curved) होते हैं और इनका धरातलीय उद्गम (superficial origin) होता है। इसके अतिरिक्त वे स्तम्भ, शाखा या पत्तियों में अनियमित रूप से वटित रहते हैं। शिताग्र सामान्यतः गुलाब, (देखिये चित्र ५८) मदार (*Erythrina*), सेमल (*Bombax*), शोमी (*Prosopis*), इत्यादि में पाये जाते हैं। बेंत (*Calamus*, देखिये चित्र ५७), और बाघ अकरा (*Pisonia*), जो बड़े आरोही क्षुप हैं, में बहुत से शिताग्र और कंट आत्मरक्षा के लिये पाये जाते हैं। ये

(६) कटु स्वाद (Bitter Taste) और दुर्गन्ध (Repulsive Smell)—ये भी पशुओं को दूर करने के अच्छे उपाय हैं। गन्धेली (*Paederia foetida*) में से दुर्गन्ध निकलती हैं, इसलिये कोई जानवर इसके निकट जाना पसन्द नहीं करता। तुलसी, पोदीना (mint), ककरौंदा (*Blumea lacera*), हुलहुल (*Gynandropsis*), इत्यादि पौधों में भी तीव्र अरुचिकर गन्ध निकलती है। सूरन या जमीकन्द (*Amorphophallus* के पुष्पक्रम (inflorescence) की दुर्गन्ध भी बहुत बदबूदार व वमनकारी होती है। नीम (margosa) करेला (bitter gourd), किरयात या महातीत (*Andrographis paniculata*) का स्वाद कड़ुवा होता है इसलिये जानवर इनको हानि नहीं पहुंचाते।

(७) वर्ज्य पदार्थ (Waste Products)—आक्षीर (latex), एलकालायड, इत्यादि के अतिरिक्त कुछ अन्य पदार्थ, जैसे टैनिन, सर्जास (resin), गंध तेल (essential oils), सूचिस्फट (raphides) और सिलिका भी पौधों को जीवों के आक्रमण से सुरक्षित रखते हैं।

(८) अनुकृति (Mimicry)—चरने वाले जानवरों से बचने के लिये बहुत से पौधे दूसरे ऐसे पौधों या जीवों के साधारण रूप, रंग, और आकार का अनुकरण करते
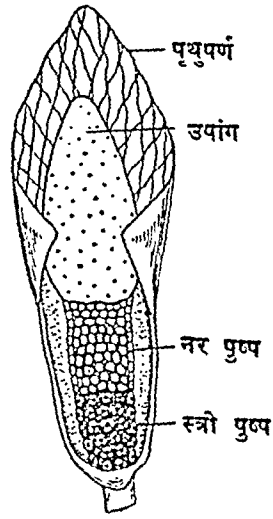
चित्र १८१–एमोर्फोफेलस बल्बीफर का पुष्पक्रम।
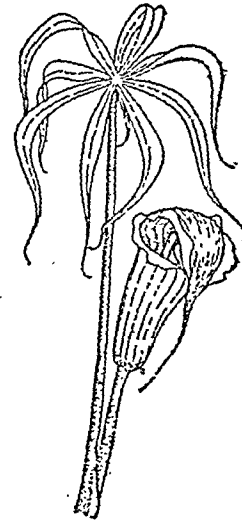
चित्र १८२–एरीसीमा।

हैं जिनमें प्रतिरक्षा के लिये विशेष अस्त्र होते हैं। उदाहरणार्थ सूरन कुल के कुछ ऐसे पौधे हैं [जैसे कैलेडियम (*Caladium*) की किस्में] जो रंग विरंगे

और विभिन्न प्रकार के धब्बों युक्त साँपों में अनुकरण करते हैं। मारुल (*Sansevieria*) की कई स्पीशीज में पत्तियां भी चितकबरी और पट्टित (striped) होती हैं। घासाहारी पशु इनको सर्प या अन्य कोई घातक जन्तु समझ कर इनसे दूर ही रहते हैं। वनमूरन (*Amorphophallus bulbifer*; चित्र १८१) के पुष्पक्रम धरती के ऊपर साँपों के फनों की तरह उठे रहते हैं, और दूर से फन का धोखा देते हैं। एक अन्य सूरन कुल के पौधे, जिसे सर्प पादप (*Arisaema*; चित्र १८२) कहते हैं, में पृथुपर्ण (spathe) हरा नीलारुण (greenish purple) होता है और यह स्थूल मंजरी (spadix) के ऊपर शेषनाग के फन के समान फैला रहता है। इस तरह किसी पौधे में जन्तु के रूप, रंग, या कोई विशेष आकृति के अनुकरण करने की क्रिया को अनुकृति (mimicry) कहते हैं।

पौधों को अनेक पराश्रयी कवकों (parasitic fungi) और कुतरने वाले कीड़ों अथवा सूर्य की तेज जलाने वाली किरणों से भी रक्षा करना पड़ता है। इनसे वे काग (cork) और छाल (bark) उत्पन्न करके अपनी रक्षा करते हैं।

अध्याय ७

पुष्पक्रम (THE INFLORESCENCE)

बहुत सी दशाओं में यह देखा जाता है कि वर्धी अक्ष (vegetative axis) केवल एक पुष्प (एकाकी या एकल पुष्प; solitary flower) धारण करता है जो या तो अग्रक पर स्थित होता है (अग्रस्थ पुष्प; terminal flower) या पर्ण के कक्ष में (कक्षस्थ पुष्प; axillary flower)। दूसरी दशाओं में यह देखा जाता है कि पुष्पी प्रदेश (floral region) वर्धी प्रदेश (vegetative region) से बिल्कुल पृथक होता है। पुष्पों का समुच्चय युक्त पुष्पी प्रदेश **पुष्पक्रम** (inflorescence) कहलाता है। पुष्पक्रम अग्रस्थ या कक्षस्थ हो सकता है और नाना प्रकार से शाखी भी हो सकता है। शाखा विन्यास (branching) के अनुसार नाना प्रकार के पुष्पक्रम होते हैं और ये मुख्यतः दो विशिष्ट वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं, अर्थात् **एकवर्ध्यक्षीय** या **अनिश्चित** (racemose or indefinite) और **बहुवर्ध्यक्षीय** या **निश्चित** (cymose or definite)

१. एकवर्ध्यक्षीय पुष्पक्रम (Racemose Inflorescences)

इस प्रकार के पुष्पक्रम में मुख्य अक्ष का अन्त कभी भी पुष्प रूप में नहीं होता, लेकिन यह वृद्धि सतत रखता है और पार्श्व में (laterally) पुष्प अग्राभिवर्धी अनुक्रम (acropetal succession) में उत्पन्न करता है, अर्थात् निचले या बाह्य पुष्प ऊपरी

या भीतरी पुष्पों से पुराने होते हैं, या दूसरे शब्दों में पुष्पों के खुलने का क्रम अभिकेन्द्र (centripetal) होता है। एकवर्ध्यक्षीय पुष्पक्रम के विभिन्न रूपों का वर्णन तीन शीर्षकों (heads) में किया जा सकता है: प्रथम, वे जिनमें मुख्य अक्ष दीर्घित (elongated) होता है; दूसरा, वे जिनमें मुख्य अक्ष ह्रस्वित (shortened) होता है; तीसरा, वे जिनमें मुख्य अक्ष चिपिटित (flattened), अवतल (concave) या उत्तल (convex) होता है।

(अ) जिनमें मुख्य अक्ष दीर्घित होता है (with the main axis elongated)

(१) एकवर्ध्यक्ष (Raceme; चित्र १८३)—इस दशा में मुख्य अक्ष दीर्घित (elongated) होता है, और यह पार्श्व में कई पुष्प उत्पन्न करता है, जो सब वृन्ती (stalked) होते हैं। अवरस्थ या पुराने पुष्पों में ऊर्ध्वस्थ या तरुण पुष्पों से लम्बे वृन्त होते हैं, जैसे मूली, सरसों, छोटा गुलमोहर, करंज (fever nut),
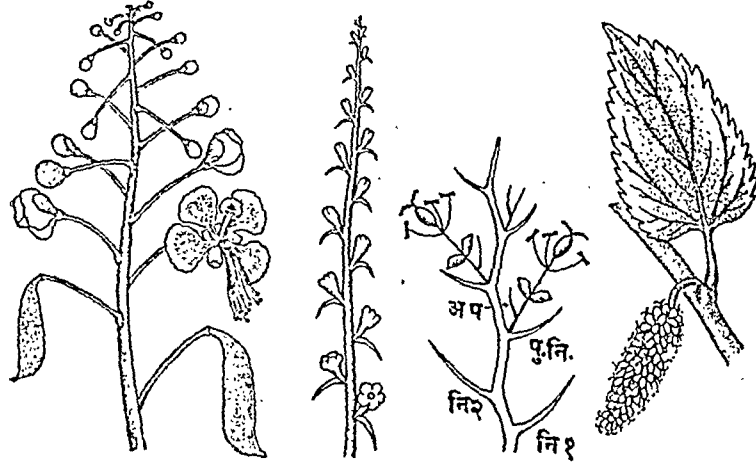
चित्र १८३ चित्र १८४ चित्र १८५ चित्र १८६

एकवर्ध्यक्षीय पुष्पक्रम। चित्र १८३–छोटा गुलमोहर का एकवर्ध्यक्ष; चित्र १८४–शूकी (आरेखीय)। चित्र १८५–घास की अनुशूकी (आरेखीय); नि$_1$, प्रथम अपुष्प तुष निपत्र; नि$_2$, द्वितीय अपुष्प तुष निपत्र; पु. नि., पुष्प तुष निपत्र; और अप, अवपत्र। चित्र १८६–शहतूत की मादा मंजरी।

इत्यादि में। जब एकवर्ध्यक्ष का मुख्य अक्ष शाखी होता है और पार्श्व शाखाएं पुष्प धारण करती हैं, तो पुष्पक्रम को संयुक्त एकवर्ध्यक्ष (compound raceme) या पुष्प-गुच्छ (panicle) कहते हैं (देखिये चित्र १९५), जैसे गुलमोहर में।

(२) शूकी (Spike, चित्र १८४)—इसमें भी मुख्य अक्ष दीर्घित होता है और

अधरस्य पुष्प पुराने होते हैं और ऊर्ध्वस्य पुष्पों से जल्दी खुलते हैं, जैसे एकवर्ध्यक्ष (raceme) में, लेकिन पुष्प अवृन्त (sessile) होते हैं। इसके उदाहरण अडूसा या वमक (*Adhatoda*), चौलाई (*Amaranthus*), लटजीरा (*Achyranthes*), इत्यादि में मिलते हैं।

(३) अनुशूकी (Spikelets; चित्र १८५)—ये बहुत छोटी शूकियां हैं जिनमें छोटा अक्ष होता है और एक या कुछ फूल लगे होते हैं, शुकिकाएं, शूकी, एकवर्ध्यक्ष या संयुक्त एकवर्ध्यक्ष रूप में विन्यस्त रहती हैं। ये मुख्य पुष्पक्रम पर अवृन्त या सवृन्त हो सकते हैं। प्रत्येक अनुशूकी अपने आधार पर तीन शल्क या निपत्र (bracts) धारण करती है, जिनको तुष-निपत्र (glumes) कहते हैं, और ये एक दूसरे से कुछ ऊपर स्थित रहती हैं। इनमें से सबसे नीचे के दो तुष-निपत्र (glumes) वन्ध्य (sterile) होते हैं, अर्थात् उनके कक्ष में कोई पुष्प नहीं होता, और उनको अपुष्प तुष निपत्र (empty glumes) कहते हैं, लेकिन तीसरा अपने कक्ष में एक पुष्प धारण करता है और पुष्पी तुष-निपत्र या विपत्रक (flowering glume or lemma) कहलाता है। पुष्पी तुष-निपत्र या विपत्रक के विपरीत एक छोटी दो शिराओं वाली निपत्रिका (bracteole) स्थित रहती है जिसको अवपत्र (palea) कहते हैं। पुष्प, विपत्रक (lemma) और अवपत्र (palea) से समावृत रहता है। उत्तरवर्ती पुष्प इस प्रकार ही अवपत्र और विपत्रक के अन्दर रहते हैं। पुष्प और तुष-निपत्र अनुशूकी पर दो विपरीत पंक्तियों में विन्यस्त रहते हैं। अनुशूकियां घास कुल के सलक्षण हैं, उदाहरणार्थ घासें, धान, गेहूं, गन्ना (ईख), बांस इत्यादि में।
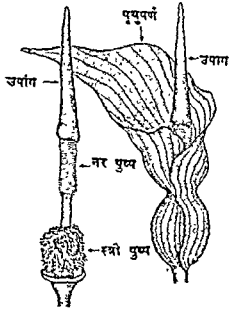
(४) मंजरी (Catkin; चित्र १८६)—यह लम्बे तथा लोलकीय या निलम्बी (pendulous) अक्ष वाली शूकी है जो केवल एकलिंगी पुष्प (unisexual flowers) धारण करती है, उदाहरणार्थ, शहतूत (*Morus*), बलूत (*Betula*), बांज (*Quercus*) इत्यादि में।

(५) स्थूल मंजरी (Spadix; चित्र १८७)—यह भी एक मांसल अक्ष वाली शूकी है, जो कि एक या अधिक, बड़े, प्राय: दीप्त रंग

पृथुपर्ण
उपांग
उपांग
नर पुष्प
स्त्री पुष्प

चित्र १८७—टाइफोनियम की स्थूल मंजरी।

(brightly coloured) निपत्रों द्वारा समावृत (enclosed) रहती है, जिसको पृथुपर्ण (spathe) कहते हैं, जैसे सूरन कुल के पौधों, केला और ताड़ों (palms) में। स्थूल मंजरी केवल एकबीजपत्री पौधों में पाई जाती है।

(आ) जिनमें मुख्य अक्ष ह्रस्वित होता है (with the main axis shortened)

(६) समशिख (Corymb; चित्र १८८)—इसमें मुख्य अक्ष अपेक्षाकृत छोटा होता है और अधरस्थ पुष्पों (lower flowers) के पुष्प वृन्त ऊर्ध्वस्थ पुष्पों (upper flowers) के वृन्त से बहुत लम्बे होते हैं, इसलिये सब पुष्प लगभग एक ही तल पर आ जाते हैं, जैसे कैन्डीटफ्ट (*Iberis*) और वाल-फ्लावर (wall-flower) में।

(७) छत्रक (Umbel; चित्र १८९-९०)—इसमें प्राथमिक अक्ष छोटा या ह्रस्वित होता है और यह शीर्ष पर फूलों का एक समूह धारण करता है जिनके पुष्प वृन्त लगभग एक ही ऊंचाई के होते हैं। इसलिये पुष्प एक सामान्य बिन्दु (common point) से फैले हुए दिखाई देते हैं। छत्रक में हमेशा निपत्रों का आवर्त (whorl) होता है
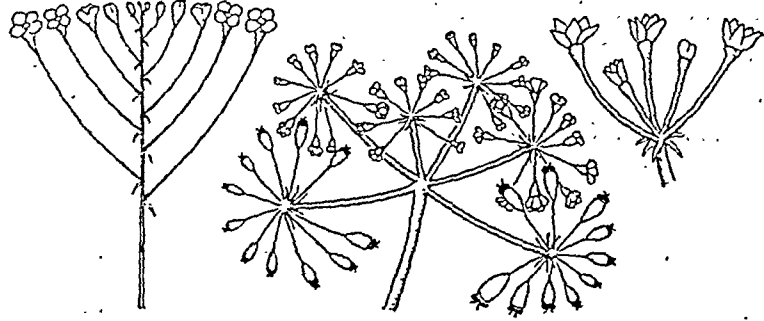
चित्र १८८ चित्र १८९ चित्र १९०

चित्र १८८–समशिख (आरेखीय), छत्रक। चित्र १८९–एक संयुक्त छत्रक। चित्र १९०–एक सामान्य छत्रक।

जो एक निचक्र (involucre) बनाता है और प्रत्येक निपत्र के कक्ष में एक पुष्प विकसित होता है। सामान्यतः छत्रक शाखी होता है (संयुक्त छत्रक; compound umbel) और शाखाएं पुष्प धारण करते हैं, जैसे सौंफ (fennel), धनिया (coriander), सफेद जीरा (cumin) गाजर, इत्यादि में। कभी यह साधारण या अशाखी होता है (साधारण छत्रक; simple umbel), और मुख्य अक्ष सीधे पुष्प धारण करता है, जैसे ब्राह्मी (pennywort) और जंगली धनिया (*Eryngium*) में। छत्रक, धनिया कुल या अम्बेलीफेरी (*Umbelliferae*) का संलक्षण है।

(इ) जिनमें मुख्य अक्ष चिपिटित रहता है (with the main axis flattened)

(८) मुण्डक (Head or Capitulum; चित्र १९१)— इसमें मुख्य अक्ष या आशय (receptacle) विलोपित (suppressed) रहता है, और लगभग चपटा हो जाता है, तथा पुष्प (जिन्हें यहां पुष्पक [florets] कहते हैं) भी अवृन्ती होते हैं ताकि वे आशय के चपटे धरातल पर समूह में रहते हैं। इसमें वाह्य पुष्प अन्दरी पुष्पों से पुराने होते हैं और अन्दरी पुष्पों की अपेक्षा जल्दी खुलते हैं। यद्यपि संपूर्ण पुष्पक्रम एक पुष्प के समान प्रतीत होता है, लेकिन वास्तव में ये सूक्ष्म, अवृन्ती पुष्पों (पुष्पकों) के समूह हैं। इसमें पुष्प दो प्रकार के होते हैं : रश्मि पुष्पक (ray florets), जो सीमातटीय पट्टाकार (strap-shaped) होते हैं, और बिम्ब पुष्पक (disc florets) जो केन्द्रीय नलिकाकार (tubular) पुष्पक होते हैं। मुण्डक में एक ही प्रकार के पुष्पक हो सकते हैं। पुष्पक्रम प्रायः आधार में एक या अधिक निपत्रों के आवर्तों से परिवारित (surrounded) रहता है जो निचक्र (involucre) बनाते हैं (देखिये पृष्ठ १२५)। मुण्डक पुष्पक्रम सूर्यमुखी-कुल या कम्पोजिटी (*Compositae*) का संलक्षण है (उदाहरणार्थ, सूर्यमुखी, गेंदा (marigold), कुसुम (safflower), जिनिया (*Zinnia*), कॉसमॉस (*Cosmos*), ट्राईडैक्स (*Tridax*), इत्यादि के फूलों में)। यह बबूल, छुईमुई, कदम्ब (*Anthocephalus*), इत्यादि में भी पाया जाता है।

चित्र १९१–मुण्डक। क, एक मुण्डक (निचक्र को दिखाने के लिए कुछ रश्मि पुष्पक हटा दिये गये हैं); ख, एक मुण्डक अनुदैर्घ्य काट में।

मुण्डक सबसे परिपूर्ण (perfect) प्रकार का पुष्पक्रम माना जाता है। व्यक्तिगत पुष्प अपेक्षाकृत बहुत छोटे होते हैं, लेकिन मुण्डक में एकत्रित होने के कारण ये काफी स्पष्ट और उत्कृष्ट हो जाते हैं, और साथ ही दल पुंज और पुष्पों की अन्य भागों की रचना में पदार्थ की यथेष्ट बचत करते हैं। दूसरी बात यह भी है कि केवल एक ही कीड़ा थोड़े समय में ही, बिना एक फूल से दूसरे फूल पर उड़े, बहुत से फूलों का परागण कर सकता है।

२. बहुवर्ध्यक्षीय पुष्पक्रम (Cymose Inflorescences)

इसमें मुख्य अक्ष की वृद्धि एक पुष्प के अग्रक में विकसित होने के कारण शीघ्र ही रुक जाती है, और पार्श्व अक्ष (lateral axis) भी, जो अग्रस्थ पुष्प के नीचे विकसित होते हैं, एक पुष्प में अन्त होते हैं, इसलिये उनकी वृद्धि भी रुक जाती है। पुष्प में वृन्त हो सकता है या वे अवृन्ती हो सकते हैं। बहुवर्ध्यक्षीय पुष्पक्रम में पुष्प तलाभिसारी अनुक्रम (basipetal succession) से विकसित होते हैं, अर्थात् अग्रस्थ पुष्प सबसे वृद्ध या पुराना होता है और पार्श्व पुष्प तरुण या छोटे होते हैं, या दूसरे शब्दों में पुष्पों के खिलने का क्रम अपकेन्द्र (centrifugal) होता है। बहुवर्ध्यक्षीय पुष्पक्रम एकभुजी (uniparous), द्विभुजी (biparous) या बहुसृद् (multiparous) हो सकता है।

(१) एकभुजी (Uniparous or Monochasial)

बहुवर्ध्यक्ष—इस प्रकार के पुष्पक्रम में मुख्य अक्ष का अन्त एक पुष्प में हो जाता है और यह एक बार में केवल एक ही पार्श्व अक्ष उत्पन्न करता है जो स्वयं एक पुष्प में अन्त हो जाता है। पार्श्व और उत्तरवर्ती अक्ष भी एक बार में, प्राथमिक अक्ष के समान, केवल एक ही अक्ष उत्पन्न करते हैं। एकभुजी बहुवर्ध्यक्ष दो प्रकार के हो सकते हैं —कुंडलाकार और वृश्चिकाभ—(क) जब अनुजात अक्ष (daughter axes)
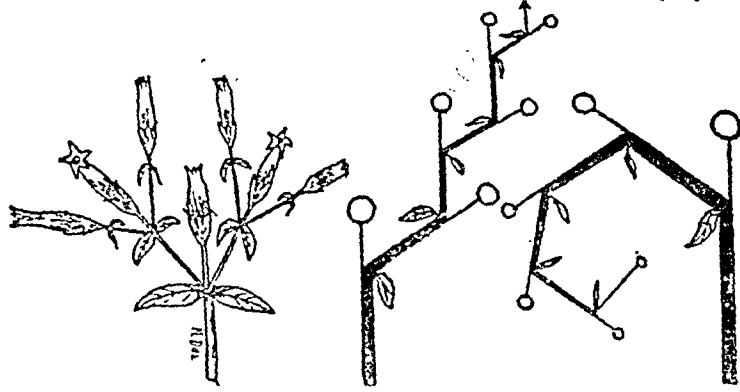
चित्र १९२ चित्र १९३ चित्र १९४

बहुवर्ध्यक्षीय पुष्पक्रम। चित्र १९२–द्विभुजी बहुवर्ध्यक्ष। चित्र १९३–वृश्चिकाभ बहुवर्ध्यक्ष। चित्र १९४–कुंडलाभ बहुवर्ध्यक्ष।

उत्तरोत्तर उसी पार्श्व में उत्पन्न होते हैं और स्पष्ट रूप से एक प्रकार का कुंडल (helix) बनाते हैं तो उसको कुंडलाभ या एकांगीय (helicoid or one-sided) बहुवर्ध्यक्ष कहते हैं (चित्र १९४)। इसके उदाहरण बीगोनिया (*Begonia*)

हेमीलिया (*Hamelia*), जन्कस (*Juncus*), सोलेनेसी (*Solanaceae*) कुल के कुछ पौधों में, और हिमीरोकालिस (*Hemerocallis*), इत्यादि में मिलते हैं। (ख) जब अनुजात अक्ष एकान्तर पार्श्वों में विकसित होते हैं और स्पष्ट रूप से टेढ़ा-मेढ़ा (zigzag) आकार बनाते हैं तो इस प्रकार के बहुवर्ध्यक्षीय पुष्पक्रम को वृश्चिकाभ या एकान्तर-पार्श्वी बहुवर्ध्यक्ष (scorpoid or alternate-sided cyme) (चित्र १९३) कहते हैं। इसके उदाहरण कपास, ड्रोसेरा (*Drosera*), हस्तिशुण्डी (heliotrope), फ्रीसिया (*Freesia*), इत्यादि में मिलते हैं।

एकशाखी बहुवर्ध्यक्ष (monochasial cyme) में उत्तरवर्ती अक्ष (successive axes) पहले टेढ़े-मेढ़े या वक्र होते हैं लेकिन तत्पश्चात वे तीव्र गति से वृद्धि के कारण सीधे हो जाते हैं और इस तरह एक केन्द्रीय या कूट अक्ष (pseudo-axis) बनाते हैं। इस प्रकार के पुष्पक्रम को संयुक्ताक्षी बहुवर्ध्यक्ष (sympodial cyme) कहते हैं। यह एकवर्ध्यक्षीय रूप से फूल से निपत्र की आपेक्षिक स्थिति को देखकर पहचाना जा सकता है। संयुक्ताक्षी बहुवर्ध्यक्ष में निपत्र पुष्प के विपरीत उत्पन्न होता है, लेकिन एकवर्ध्यक्षीय रूप में निपत्र पुष्प के आधार पर स्थित रहता है।

(२) **द्विभुजी या द्विशाखीय बहुवर्ध्यक्ष** (Biparous or Dichasial Cyme)—इस प्रकार के पुष्पक्रम में मुख्य अक्ष एक पुष्प में अन्त होता है और दो पार्श्व अक्ष उत्पन्न करता है। पार्श्व और उत्तरवर्ती शाखाएं भी इसी प्रकार व्यवहार करती हैं (चित्र १९२)। इसके उदाहरण पिंक (pink), हरसिंगार, चमेली, जूही, गोलगंधल, काला सबला (*Saponaria*), इत्यादि में मिलते हैं।

(३) **बहुभुजी या बहुशाखीय बहुवर्ध्यक्ष** (Multiparous or Polychasial Cyme) — इस प्रकार के बहुवर्ध्यक्ष पुष्पक्रम में भी मुख्य अक्ष एक पुष्प में अन्त होता है और अनुजात अक्षों (daughter axes) का एक आवर्त (दो से अधिक) उत्पन्न करता है जो फिर उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं, कई पार्श्व पुष्प के लगभग एक ही साथ विकसित हो जाने के कारण सम्पूर्ण पुष्पक्रम छत्रक के समान दीखता है। किन्तु इसे हम छत्रक से शीघ्र ही पहचान सकते हैं, क्योंकि बहुशाखीय बहुवर्ध्यक्ष पुष्पक्रम में केन्द्रीय पुष्प सबसे पहले खिलता है। यह मदार और हेमीलिया पेटेंस (*Hamelia patens*) में दिखाई देता है।
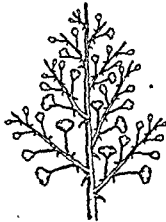
चित्र १९५—एक पुष्प-गुच्छ।

३. विशेष प्रकार (Special Types)

(१) कटोरिया (Cyathium; चित्र १९६)—यह एक विशेष प्रकार का पुष्पक्रम है जो यूफोर्बिया (*Euphorbia*) की स्पीशीज [उदाहरणार्थ लालपाता (poinsettia), स्पिज (spurges) इत्यादि में] और नागदमन (*Pedilanthus*) में पाया जाता है। कटोरिया में एक प्याले के आकार का निचक्र (involucre) होता है जिसमें प्रायः मकरन्द-स्रावक ग्रन्थियां (nectar-secreting glands) होती हैं। निचक्र केन्द्र में एक स्त्री पुष्प (female flower) को समावृत (enclose) करता है जो अपेक्षाकृत लम्बे वृन्त में स्थित रहता है, और इसके चारों ओर अनेक नर पुष्प (male flowers) छोटे वृन्तों (stalks) में स्थित रहते हैं। यह अवलोकनीय है कि स्त्री पुष्प केवल स्त्री-केसर (pistil) में प्रह्रासित (reduced) हो गया है और पुष्प में सहायक आवर्त (accessory whorls) नहीं होते, और नर पुष्प एक पुंकेसर (stamen) में प्रह्रासित हो गया है, या दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि केन्द्रीय स्त्री-केसर (pistil) एक स्त्री पुष्प का निरूपण करता है और प्रत्येक समावरक (surrounding) पुंकेसर एक व्यक्तिगत नर पुष्प का निरूपण करता है। प्रत्येक पुंकेसर एक नर पुष्प है, यह इस बात से प्रमाणित होता है कि यह एक वृन्त (stalk) से सन्धियोजित (articulated) रहता है और इसके आधार पर एक शल्की निपत्र (scaly bract) रहता है। इस प्रकार के पुष्पक्रम में पुष्प अपकेन्द्र (centrifugal) या बहुवर्ध्यक्ष (cymose) क्रम में विकसित होते हैं, केन्द्र में स्थित स्त्री पुष्प पहले परिपक्व होता है, और उसके बाद वे पुंकेसर (नर पुष्प) जो स्त्री पुष्प के चारों ओर स्थित होते हैं और अन्त में सीमातटीय (marginal) पुष्प परिपक्व होते हैं।

चित्र १९६–लाल पाता की कटोरिया। क, कटोरिया; ख, कटोरिया अनुदैर्घ्य काट में। निचक्र का आलोकन करो।

(२) भ्रमि युग्म (Verticillaster; चित्र १९७)—यह द्विशाखीय बहुवर्ध्यक्ष (dichasial cyme) का संघनित (condensed) रूप है, और इसमें अवृन्ती या लगभग अवृन्ती पुष्पों का पर्ण के कक्ष में एक समूह रहता है, जिससे गांठ में एक कूट आवर्त (false whorl) बन जाता है। प्रथम अक्ष दो पार्श्व शाखाएं

उत्पन्न करता है और ये शाखाएं और उत्तरवर्ती शाखाएं (succeeding branches) एकांतरित पार्श्वों में केवल एक-एक शाखा धारण करती हैं। इस प्रकार का पुष्पक्रम तुलसी कुल या लैबिएटी (*Labiatae*) के कई पौधों में पाया जाता है। इस कुल में पत्तियां विपरीत होती हैं, इसलिये गांठ पर पुष्पों के दो समूह एक दूसरे के विपरीत पाये जाते हैं। इसके उदाहरण

चित्र १९७–कोलियस का भ्रमि युग्म।
क. भ्रमि युग्म; ख, भ्रमि युग्म का रेखा चित्र।

पाथरचूर (*Coleus*), पोदीना (*Mentha*), हलकुश (*Leonurus*), छोटा हलकुश (*Leucas*), इत्यादि में पाये जाते हैं। तुलसी में भ्रमि युग्म एक द्विशाखीय बहुवर्ध्यक्ष (dichasial cyme) में प्रह्रासित रहता है क्यों कि उत्तरवर्ती (succeeding) शाखाएं अविकसित रहती हैं।

चित्र १९८–अंजीर का हाईपैन्थोडियम।
क, नर पुष्प; ख, स्त्री पुष्प।

(३) हाइपैन्थोडियम (Hypanthodium; चित्र १९८)—जब आशय (receptacle) एक सुषिर या खोखला विवर या गुहा (cavity) बनाता है, जिसमें शल्कों से सुरक्षित अग्रस्थ मुख (apical opening) हो और पुष्प गुहा की आन्तर भित्ति (inner wall) में स्थित हों तो पुष्पक्रम को हाइपैन्थोडियम कहते हैं, जैसे फाइकस (*Ficus*) में (उदाहरणार्थ, वरगद, पीपल, इत्यादि)। इसमें स्त्री पुष्प गुहा के आधार पर और नर पुष्प ऊपर अग्रस्थ द्वार के पास विकसित होते हैं।
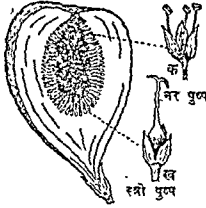
पुष्पक्रम (Inflorescences)

एकवर्ध्यक्षीय

- एकवर्ध्यक्ष, जैसे मूली में
- शूकी, जैसे चौलाई में
- अनुशूकी, जैसे घासों में
- मंजरी, जैसे बांज में
- स्थूल मंजरी, जैसे केला में
- समशिख, जैसे कैन्डीटफ्ट में
- छत्रक, जैसे धनिया में
- मुण्डक, जैसे सूर्यमुखी में

बहुवर्ध्यक्षीय

- एकभुजी (एकशाखी)
  - कुंडलाकार, जैसे बीगोनिया में
  - वृश्चिकाभ, जैसे हेलिओट्रोप में
- द्विभुजी (द्विशाखी) जैसे चमेली में
- बहुभुजी (बहुशाखी) जैसे, मदार में

विशेष प्रकार

- कटोरिया, जैसे यूफोर्विया में
- भ्रमि युग्म, जैसे हलकुश में
- हाइपैन्थोडियम, जैसे अंजीर में
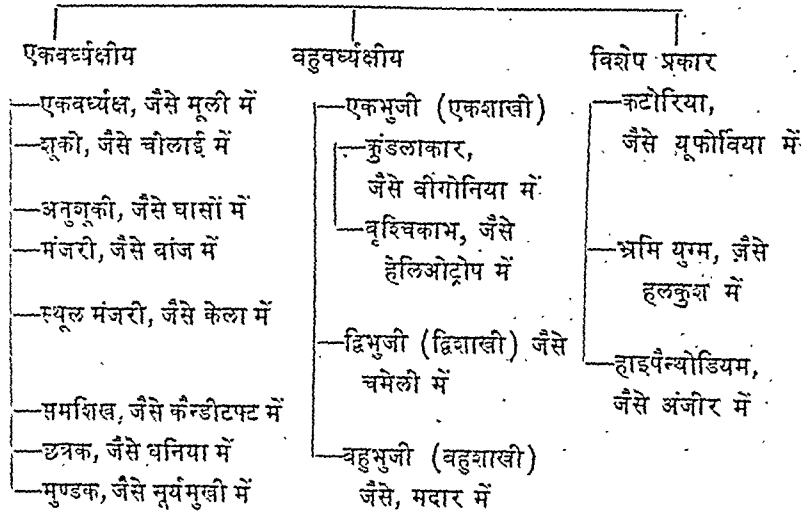
अध्याय ८

पुष्प या फूल (THE FLOWER)

पुष्प एक रूपान्तरित प्ररोह (shoot) है जो मुख्य रूप से पौधों के प्रजनन के काम आता है। यह बीजाणु पर्णों (sporophylls) या बीजाणु जनक पत्तियों (spore-

चित्र १९९ चित्र २००
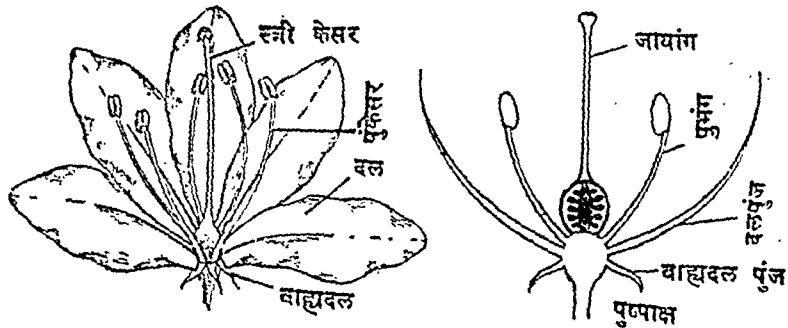
चित्र १९९–एक पुष्प के भाग। चित्र २००–एक पुष्प अनुदैर्घ्य काट में जिसमें पुष्पाक्ष में आवर्तों की स्थिति दिखाई गई है।

bearing leaves) का एक

चित्र २०१–

bearing leaves) का एक समुच्चय या पुंज (collection) है जो कभी कुछ अन्य अतिरिक्त भागों (accessory parts) सहित होता है और कभी अतिरिक्त भागों रहित। बीजाणु-पर्ण दो प्रकार के होते हैं—लघु बीजाणु-पर्ण (microsporophyll) या पुंकेसर (stamens) और गुरु बीजाणु-पर्ण (megasporophyll) या स्त्री-केसर (carpel)। एक पुष्प में दोनों प्रकार के बीजाणु पर्ण पाये जा सकते हैं, किन्तु कुछ पुष्पों में केवल एक ही प्रकार के पाये जाते हैं।

चित्र २०१—विच्छेदित गुल मोहर का पुष्प।

पुष्प के भाग (Parts of a Flower; चित्र १९९-२०१)।

पुष्प सामान्यत एक छोटे या लम्बे अक्ष पर स्थित रहता है। अक्ष स्वयं दो प्रदेशों का बना होता है, अर्थात् पुष्प वृन्त (pedicel) जो कि पुष्प का वृन्त है, और पुष्पाक्ष (thalamus), जो कि अक्ष का फूला हुआ भाग है जिस पर पुष्प पर्ण निविष्ट (inserted) रहते हैं। पुष्प वृन्त छोटा या लम्बा हो सकता है या अनुपस्थित भी हो सकता है। एक प्रारूपिक (typical) पुष्प, पुष्प पर्णों (floral leaves) के
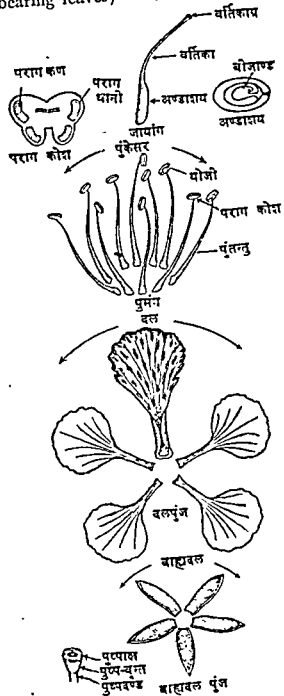
आवर्तों या चक्रों का बना होता है जो कि पुष्पाक्ष पर एक विशेष क्रम से विन्यस्त रहते हैं।

(१) वाह्यदल पुंज (Calyx)—यह पुष्प का प्रथम या अधरतम (सबसे निचला) आवर्त है और वाह्यदल (sepals) नाम से ज्ञात अनेक हरी **पर्णाभ** वाह्यदलों (leafy sepals) से निर्मित होता है।

(२) दल पुंज (Corolla)—यह पुष्प का दूसरा या अगला ऊपरी आवर्त है और प्रायः चमकीले रंग की अनेक दलों या **पंखुड़ियों** (petals) से बना होता है।

(३) **पुमंग** (Androecium)—यह तीसरा या नर (पुं) आवर्त (male whorl) है। इसके घटक (component) भाग **पुंकेसर** (stamens) या लघु बीजाणु-पर्ण (microsporophylls) कहलाते हैं, जो पुष्प के पुंअंग या नर अंग माने जाते हैं। प्रत्येक पुंकेसर तीन भागों का बना होता है—**पुंतन्तु** (filament), **पराग कोश** (anther) और **योजी या मेलक** (connective)। पराग कोश में चार कक्ष या प्रकोष्ठ (chambers) होते हैं जिनको **पराग धानियाँ** (pollen-sacs) कहते हैं। प्रत्येक पराग धानी **पराग कण** (pollen grains) या लघु बीजाणु (microspores) नाम से ज्ञात छोटे (नर) बीजाणुओं (spores) के दानेदार पुंज (granular mass) से भरा रहता है।

(४) **जायांग** (Gynoecium) या **स्त्री-केसर** (pistil)—यह चौथा या स्त्री आवर्त है और इसके घटक भाग **अण्डप** (carpels) या गुरु बीजाणु-पर्ण कहलाते हैं, जो पुष्प के स्त्री अंग माने जाते हैं। स्त्री-केसर तीन भागों का बना होता है—**अण्डाशय** (ovary), **वर्तिका** (style) और **वर्तिकाग्र** (stigma)। अण्डाशय कुछ छोटे अंडे सदृश रचनाएं या काय (bodies) धारण करती है जिनको **बीजाण्ड** (ovules) कहते हैं। प्रत्येक बीजाण्ड एक बड़ी अंडाकार कोशिका को समावृत या परिवृत (enclose) करता है जिसको **भ्रूण-कोष** (embryo-sac) कहते हैं जो स्त्री बीजाणु (female spore) या गुरु बीजाणु (megaspore) है (देखिये चित्र २८५)।

वाह्यदल पुंज और दल पुंज पुष्प के अतिरिक्त या सहायक आवर्त (accessory whorls) बनाते हैं और पुमंग तथा जायांग परमावश्यक या प्रजनन आवर्त (essential or reproductive whorls) बनाते हैं, क्योंकि ये दो ही पौधे के प्रजनन के प्रक्रम (process) में प्रत्यक्ष संबंधित रहते हैं।

हम फूल को उस समय **पूर्ण** (complete) कहते हैं जब उसमें चारों आवर्त उपस्थित रहते हैं और उस समय **अपूर्ण** (incomplete) कहते हैं जब उनमें से कोई एक आवर्त अनुपस्थित होता है। जब पुष्प में पुंकेसर और स्त्री-केसर दोनों रहते हैं तो पुष्प को **द्विलिंगी** (bisexual or hermaphrodite) कहते हैं,

और जब इन दोनों में से कोई
sexual) कहते हैं। एकलि
नर (male) या पुंपुष्पी (
केसर ही रहते हैं तो उसको
है। जब पुष्प में पुंकेसर औ
(neuter) कहते हैं। जब
पुष्प पाये जाते हैं तो उस
पोलीगोनम (Polygonum)
वाह्यदलपुंज और दल पुंज के
को संयुक्त रूप में पुष्प का
लहसुन, केला, ताड़, इत्यादि
दलाभ (sepaloid)
का रहता है तो उसको
मुक्त (free) या युक्त
पृथक परिदलीय (pol
कहते हैं।
जब किसी पुष्प में वा
(circles) या आवर्तों
कहते हैं, जैसा कि अधि
रूप में विन्यस्त रहते हैं
नलिनी, दुली चम्पा
सर्पिल चक्रिक (
अन्य अचक्रिक रहते
पुष्पाक्ष को
चित्र ३००) जिसको
है, पुष्प अक्ष के
वाह्यदल, दल, पुंकेसर
हीं छोटा होता है,
पर्व व गांठें दिखाई
दल वृन्त (anth
और पुमंगवृन्त (

और जब इन दोनों में से कोई एक अनुपस्थित रहता है तो पुष्प को एकलिंगी (unisexual) कहते हैं। एकलिंगी पुष्प में जब केवल पुंकेसर उपस्थित रहते हैं तो वह नर (male) या पुंपुष्पी (staminate) कहलाता है और जब उसमें केवल स्त्री-केसर ही रहते हैं तो उसको स्त्री (female) या स्त्री-केसरी (pistillate) कहते हैं। जब पुष्प में पुंकेसर और स्त्री-केसर दोनों ही नहीं रहते तो उसको अलिंगी (neuter) कहते हैं। जब एक ही पौधे में द्विलिंगी, एकलिंगी और कभी-कभी अलिंगी पुष्प पाये जाते हैं तो उस पौधे को बहुलिंगी (polygamous) कहते हैं। जैसे पोलीगोनम (*Polygonum*), आम, और केंदू (mangosteen), इत्यादि में। जब बाह्यदल पुंज और दल पुंज के आकार और रंग में विशेष अन्तर नहीं होता तो उन दोनों को संयुक्त रूप में पुष्प का परिदल पुंज (perianth) कहते हैं, जैसे लिली, प्याज, लहसुन, केला, ताड़, इत्यादि में। जब परिदल पुंज का रंग हरा होता है तो उसको बाह्यदलाभ (sepaloid) कहते हैं और जब दल या पंखुड़ियों के समान अन्य रंगों का रहता है तो उसको दलाभ (petaloid) कहते हैं; परिदल पुंज की पत्तियां मुक्त (free) या युक्त (united) हो सकती हैं और तदनुसार परिदल पुंज को पृथक परिदलीय (polyphyllous) या युक्त परिदलीय (gamophyllous) कहते हैं।

जब किसी पुष्प में बाह्यदल, दल, पुंकेसर और स्त्री-केसर पुष्पाक्ष के चारों ओर वृत्त (circles) या आवर्तों (whorls) में विन्यस्त रहते हैं तो उसको चक्रिक (cyclic) कहते हैं, जैसा कि अधिकांश पुष्पों में देखने को मिलता है और जब यही सब अंग सर्पिल रूप में विन्यस्त रहते हैं तो उस पुष्प को अचक्रिक (acyclic) कहते हैं, जैसे जल नलिनी, दूली चम्पा (*Magnolia*), चम्पा (*Michelia*), इत्यादि में। पुष्प सर्पिल चक्रिक (hemicyclic) भी हो सकता है, जब कि कुछ भाग चक्रिक और अन्य अचक्रिक रहते हैं, जैसे गुलाब में।

पुष्पाक्ष (THALAMUS)

पुष्पाक्ष की प्रकृति (Nature of the Thalamus)—पुष्पाक्ष (देखिये चित्र २००) जिसको पुष्पधर (torus) या पुष्पासन (receptacle) भी कहते हैं, पुष्प अक्ष के विलोपित रूप का फूला हुआ सिरा है जिस पर पुष्प पत्र, अर्थात् बाह्यदल, दल, पुंकेसर और स्त्री-केसर लगे होते हैं। अधिकतर फूलों में पुष्पाक्ष बहुत ही छोटा होता है, लेकिन कुछ फूलों में यह काफी लम्बा हो जाता है और तब उसमें स्पष्ट पर्व व गांठें दिखाई देती हैं। बाह्यदल पुंज और दल पुंज के बीच के पर्व को दल वृन्त (anthophore) कहते हैं। हुरहुर (*Gynandropsis*; चित्र २०२) और झुमकलता (passion-flower; में दल पुंज और पुमंग के बीच का पर्व

काफी दीर्घित रहता है और पुमंग वृन्त (androphore) कहलाता है। करील (*Capparis*; चित्र २०५), हुरहुर (चित्र २०२) और कनक चम्पा (*Pterospermum*; चित्र २०४) में पुमंग और जायांग के बीज का अक्ष दीर्घित रहता है
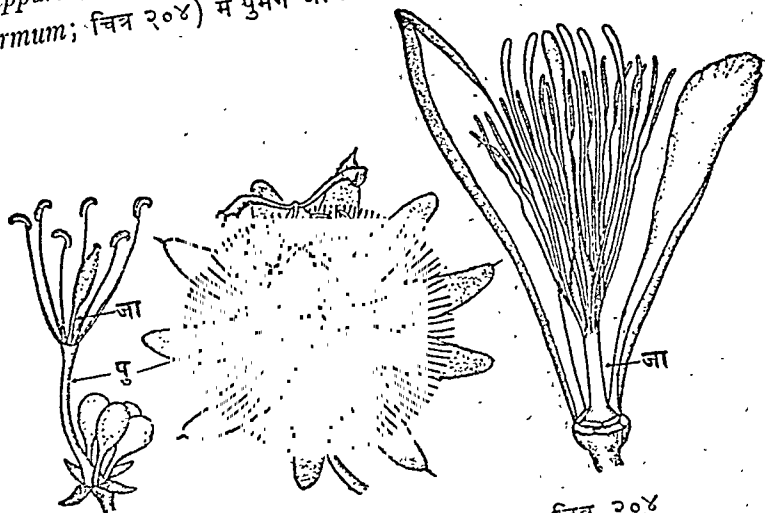
चित्र २०२ चित्र २०३ चित्र २०४

पुष्पाक्ष–चित्र २०२–गाइनैनड्रोप्सिस का पुष्प; पु, पुमंग वृन्त; जा, जायांग भर। चित्र २०३–झुमकलता का पुष्प। चित्र २०४–टीरोस्पर्मम का पुष्प; जा, जायांग वृन्त (पुंकेसरीय नलिका जायांग वृन्त से लग्न)।

जायांग वृन्त (gynophore) कहलाता है। जब पुमंग वृन्त और जायांग वृन्त दोनों विकसित रहते हैं तो उन दोनों को एक साथ पुंजायांग वृन्त (androgyno-

चित्र २०५ चित्र २०६ चित्र २०७
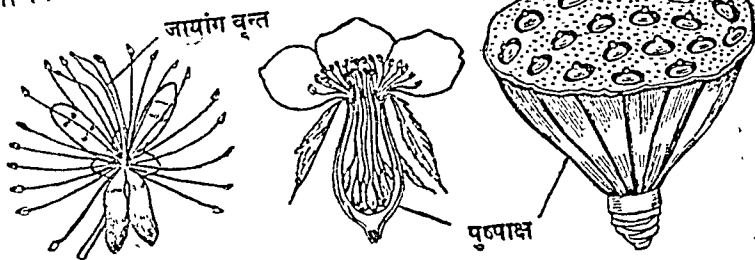
पुष्पाक्ष। चित्र २०५–कैपेरिस का पुष्प। चित्र २०६–गुलाव का पुष्प (काट में)। चित्र २०७–कमल।

phore) कहते हैं, जैसे हु...
मासल दीर्घित होता है और
गुलाव (चित्र २०६) में ..
होता है। कमल (lotu...
होता है (चित्र २०७)।
(prolonged upw...
(attached) रहते हैं
तो उसको (अक्ष) फलतंत्
सौंफ (चित्र २०८),
जिरेनियम (Geraniu...
पुष्पाक्ष पर पुष्प पत्रों
Leaves on ...
पुष्प के विभिन्न
के प्रति आपेक्षिक
में यथेष्ट वि...
सम्बन्ध तीन
(hypogyny);
ऊर्ध्वस्थता (...)
(१)
पुष्पाक्ष शंक्वाकार
अण्डाशय पुष्पाक्ष
दल और ...
रहते हैं। ऐसी ...
पुष्प पत्रों को ...
बैंगन, गुड़हल, ...
(२) परि...
(margin) ...
नलिका (calyx ...
लेकिन उससे मुक्त
साथ ले जाता है;
रहते हैं। कुछ ...
sunken) रहता ...

phore) कहते हैं, जैसे हुरहुर में। मैग्नोलिया (*Magnolia*) और चम्पा में पुष्पाक्ष मांसल दीर्घित होता है और इसके चारों ओर पुष्प पत्र सर्पिल रूप में लगे होते हैं। गुलाब (चित्र २०६) में यह अवतल (concave) और नासपाती के आकार का होता है। कमल (lotus) का पुष्पाक्ष स्पंजी और लट्टूवाकार (top-shaped) होता है (चित्र २०७)। जब पुष्पाक्ष एक संकरे अक्ष रूप में ऊर्ध्ववर्ती दीर्घित (prolonged upwards) रहता है और स्त्री-केसर उस पर पहले संयोजित (attached) रहते हैं और परिपक्व (mature) होने पर पृथक हो जाती हैं तो उसको (अक्ष) फलतंतु (carpophore) कहते हैं, जैसे गुलमेंहदी (*Impatiens*), सौंफ (चित्र २०८), धनिया, सफ़ेद जीरा (cumin), जिरेनियम (*Geranium*), इत्यादि में।

फलतंतु

चित्र २०८—
सौंफ का फल।

पुष्पाक्ष पर पुष्प पत्रों की स्थिति (Position of Floral Leaves on the Thalamus)

पुष्प के विभिन्न आवर्तों की उनके अण्डाशय (ovary) के प्रति आपेक्षिक स्थिति (relative position) में यथेष्ट विभिन्नता (variation) होती है। यह सम्बन्ध तीन प्रकार का होता है: अधोजायता (hypogyny); परिजायता (perigyny) और ऊर्ध्वस्थता (epigyny)।

(१) अधोजायता (Hypogyny)—अधोजाय (hypogynous) पुष्प में पुष्पाक्ष शंक्वाकार (conical) उत्तल, चपटा या थोड़ा अवतल होता है और अण्डाशय पुष्पाक्ष में उच्चतम स्थिति धारण करता है; इसके साथ ही पुकेसर, दल और बाह्यदल पृथक-पृथक और अनुक्रमिक रूप में निविष्ट (inserted) रहते हैं। ऐसी दशा में अण्डाशय को उत्तरीय (superior) तथा अवशिष्ट या बाक़ी पुष्प पत्रों को अधोवर्ती या निम्न (inferior) कहते हैं, इसके उदाहरण, सरसों, बैंगन, गुड़हल, मैग्नोलिया, इत्यादि में देखे जाते हैं।

(२) परिजायता (Perigyny)—परिजाय पुष्प में पुष्पाक्ष का तट या सीमा (margin) ऊपर वृद्धि कर एक प्यालानुमा सरचना बनाता है जिसको बाह्यदल नलिका (calyx tube) कहते हैं, जो अण्डाशय को समावृत (enclose) करता है लेकिन उससे मुक्त (free) रहता है और यह बाह्यदल, दल और पुकेसर को अपने साथ ले जाता है। ऐसी दशा में अण्डाशय को अर्ध अधोवर्ती (half inferior) कहते हैं। कुछ परिजाय पुष्पों में अण्डाशय पुष्पाक्ष में अंशतः निमग्न (partially sunken) रहता है। उसके उदाहरण गुलाब, प्रिमरोज (primrose), आड़ू

काफी दीर्घित रहता है और पुमंग वृन्त (androphore) कहलाता है। करील (*Capparis*; चित्र २०५), हुरहुर (चित्र २०२) और कनक चम्पा (*Pterospermum*; चित्र २०४) में पुमंग और जायांग के बीज का अक्ष दीर्घित रहता है

चित्र २०२ चित्र २०३ चित्र २०४

पुष्पाक्ष–चित्र २०२–गाइनैनड्रौप्सिस का पुष्प; पु, पुमंग वृन्त; जा, जायांग भर। चित्र २०३–झुमकलता का पुष्प। चित्र २०४–टेरोस्पर्मम का पुष्प; जा, जायांग वृन्त (पुंकेसरीय नलिका जायांग वृन्त से लग्न)।

और जायांग वृन्त (gynophore) कहलाता है। जब पुमंग वृन्त और जायांग वृन्त दोनों विकसित रहते हैं तो उन दोनों को एक साथ पुंजायांग वृन्त (androgyno-

चित्र २०५ चित्र २०६ चित्र २०७
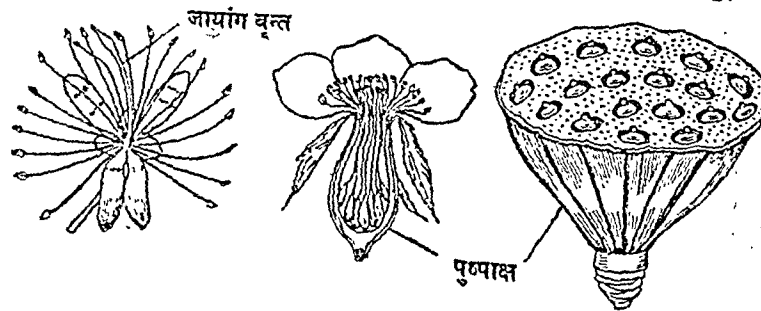
पुष्पाक्ष। चित्र २०५–कैपेरिस का पुष्प। चित्र २०६–गुलाब का पुष्प (काट में)। चित्र २०७–कमल।

phore) कहते हैं, जैसे हुरहुर में। मैग्नोलिया (*Magnolia*) और चम्पा में पुष्पाक्ष मांसल दीर्घित होता है और इसके चारों ओर पुष्प पत्र सर्पिल रूप में लगे होते हैं। गुलाब (चित्र २०६) में यह अवतल (concave) और नासपाती के आकार का होता है। कमल (lotus) का पुष्पाक्ष स्पंजी और लट्टूवाकार (top-shaped) होता है (चित्र २०७)। जब पुष्पाक्ष एक संकरे अक्ष रूप में ऊर्ध्ववर्ती दीर्घित (prolonged upwards) रहता है और स्त्री-केसर उस पर पहले संयोजित (attached) रहते हैं और परिपक्व (mature) होने पर पृथक हो जाती हैं तो उसको (अक्ष) फलतंतु (carpophore) कहते हैं, जैसे गुलमेंहदी (*Impatiens*), सौंफ (चित्र २०८), धनिया, सफ़ेद जीरा (cumin), जिरेनियम (*Geranium*), इत्यादि में।

फलतंतु

चित्र २०८—सौंफ का फल।

पुष्पाक्ष पर पुष्प पत्रों की स्थिति (Position of Floral Leaves on the Thalamus)

पुष्प के विभिन्न आवर्तों की उनके अण्डाशय (ovary) के प्रति आपेक्षिक स्थिति (relative position) में यथेष्ट विभिन्नता (variation) होती है। यह सम्बन्ध तीन प्रकार का होता है : अधोजायता (hypogyny); परिजायता (perigyny) और ऊर्ध्वस्थता (epigyny)।

(१) अधोजायता (Hypogyny)—अधोजाय (hypogynous) पुष्प में पुष्पाक्ष शंक्वाकार (conical) उत्तल, चपटा या थोड़ा अवतल होता है और अण्डाशय पुष्पाक्ष में उच्चतम स्थिति धारण करता है; इसके साथ ही पुंकेसर, दल और बाह्यदल पृथक-पृथक और अनुक्रमिक रूप में निविष्ट (inserted) रहते हैं। ऐसी दशा में अण्डाशय को उत्तरीय (superior) तथा अवशिष्ट या बाकी पुष्प पत्रों को अधोवर्ती या निम्न (inferior) कहते हैं, इसके उदाहरण, सरसों, बैंगन, गुड़हल, मैग्नोलिया, इत्यादि में देखे जाते हैं।

(२) परिजायता (Perigyny)—परिजाय पुष्प में पुष्पाक्ष का तट या सीमा (margin) ऊपर वृद्धि कर एक प्यालानुमा सरचना बनाता है जिसको बाह्यदल नलिका (calyx tube) कहते हैं, जो अण्डाशय को समावृत (enclose) करता है लेकिन उससे मुक्त (free) रहता है और यह बाह्यदल, दल और पुंकेसर को अपने साथ ले जाता है। ऐसी दशा में अण्डाशय को अर्ध अधोवर्ती (half inferior) कहते हैं। कुछ परिजाय पुष्पों में अण्डाशय पुष्पाक्ष में अंशतः निमग्न (partially sunken) रहता है। उसके उदाहरण गुलाब, प्रिमरोज (primrose), आड़,

(peach,) प्रून (prune) और कभी-कभी लेग्यूमिनोसी (*Leguminosae*) के पौधे (उदाहरणार्थ मटर, सेम, गुल मोहर, इत्यादि) हैं।
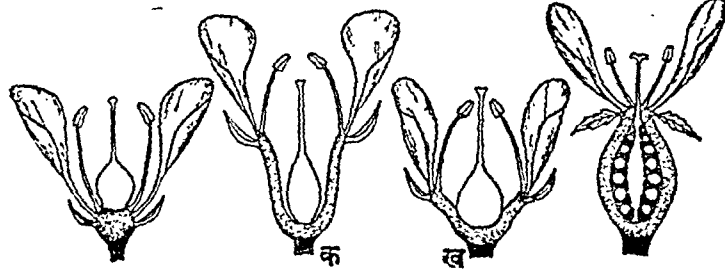
चित्र २०९ चित्र २१० चित्र २११

पुष्पाक्ष में पुष्प पर्णों की स्थिति। चित्र २०९–अधोजायता। चित्र २१०–परिजायता (दो प्रकार की–क और ख)। चित्र २११–ऊर्ध्वस्थता।

(३) ऊर्ध्वस्थता (Epigyny)—ऊर्ध्वस्थ पुष्प में पुष्पाक्ष का तट (सीमा) और अधिक ऊर्ध्ववर्ती वृद्धि करता है और यह अण्डाशय को पूर्णतया समावृत कर देता है, तथा उसके साथ सायुज्यित या समेकित (fused) हो जाता है और अण्डाशय के ऊपर वाह्यदल, दल और पुंकेसर को धारण करता है। इस दशा में अण्डाशय को अधोवर्ती या निम्न (inferior) और पुष्प के अवशिष्ट भागों को उत्तरीय (superior) कहते हैं। इसके उदाहरण सूर्यमुखी, अमरूद, लौकी खीरा, सेब, नाशपाती, इत्यादि में मिलते हैं।

निपत्र (BRACTS)

निपत्र विशेष प्रकार की पत्तियां हैं जिनके कक्ष में एकाकी फूल (solitary flower) या फूलों का गुच्छ उत्पन्न होता है। जब एक क्षुद्र पर्ण सदृश या शल्की संरचना पुष्प वृन्त पर किसी भी भाग में उपस्थित रहती है तो उसको निपत्रिका (bracteole) कहते हैं। निपत्रों के आकार, रंग और अवधि में विभिन्नता होती है। इनका प्राथमिक कार्य पुष्प कलिका की धूप और वर्षा से रक्षा करना है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये कभी-कभी उनका आकार बहुत बड़ा हो जाता है और वे पूरे फूलों के गुच्छे को समावृत कर देते हैं। जब वे हरे रहते हैं तो साधारण हरी पत्तियों के समान वे खाद्य पदार्थ का निर्माण करते हैं। कभी-कभी उनका रंग चमकीला और आकर्षक हो जाता है और तब वे परागण के लिये कीड़ों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

निपत्रों के प्रकार—आकार, रंग तथा विन्यास के अनुसार निपत्रों को विशेष नाम दिये गये हैं।

(१) पत्राभ या पत्र सदृश निपत्र (Leafy Bracts)—जब वे हरे, चपटे और रूप में पत्र सदृश होते हैं, जैसे कुप्पी (*Acalypha*), अडूसा (*Adhatoda*), हुरहुर, इत्यादि में।

(२) शल्की निपत्र (Scaly Bracts)—जब निपत्र शल्की प्रकृति के, अर्थात् छोटे और पतले होते हैं, जैसे सूर्यमुखी के केन्द्रीय पुष्पक के निपत्र।

(३) पृथुपर्ण (Spathe; देखिये चित्र १८७)—जब निपत्र बड़ा होता है और एक पुष्प या अधिकतर पुष्पों के गुच्छे को पूर्णतया परिवारित (surrounds) करता है, और उनकी तरुणावस्था में रक्षा करता है, जैसे सूरन कुल के पौधे, केला, ताड़, मक्का, इत्यादि में। पृथुपर्ण प्रायः चटकीले रंगीन होते हैं और तब वे परागण के लिये कीड़ों को आकर्षित करते हैं।

(४) दलाभ निपत्र (Petaloid Bracts; चित्र २१२)—जब निपत्र रंगीन व प्रदर्शनीय होते हैं, जैसे बोगनविलिया और लाल पाता (poinsettia) में।

(५) निचक्र (Involucre; चित्र २१३)—जब एक पुष्प के चारों ओर एक या अधिक निपत्रों के आवर्त हों जैसे इन्डियन स्ट्राबेरी (*Fragaria*), या फूलों के समूह के चारों ओर आवर्त हों, जैसे सूर्यमुखी, गेंदा, इत्यादि में। निचक्र के निपत्र एक या अधिक आवर्तों में युक्त (united) हो सकते हैं या वे मुक्त रहते हैं;

चित्र २१२ चित्र २१३
निपत्र के प्रकार। चित्र २१२–बोगेनविलिया या के दलाभ निपत्र। चित्र २१३–सूर्यमुखी का निचक्र।

(६) अनुबाह्यदल (Epicalyx)—जब कि बाह्यदल पुंज के आधार पर एक या अधिक निपत्रिकाओं के आवर्त रहते हैं; जैसे गुड़हल, कपास, इत्यादि में।

(७) तुष निपत्र (Glumes)—ये विशेष प्रकार के निपत्र हैं जो छोटे, और शुष्क होते हैं और घास कुल (देखिये चित्र १८५) और मुस्ताओं (sedges) में पाये जाते हैं।

पुष्प एक रूपान्तरित प्ररोह है
(FLOWER IS A MODIFIED SHOOT)

निम्नलिखित तथ्यों से हम सिद्ध कर सकते हैं कि पुष्पाक्ष एक रूपान्तरित शाखा है ; वाह्यदल, दल, पुंकेसर, और स्त्री-केसर रूपान्तरित वर्धी पर्ण (vegetative leaves) हैं, और सम्पूर्ण पुष्प एक रूपान्तरित वर्धी कलिका (vegetative bud) है।

(१) पुष्पाक्ष उन पुष्प आवर्तों के अक्ष का निरूपण करता है जिसके नीचे के पर्व सामान्यतः अविकसित और वृद्धिरुद्ध (suppressed) रहते हैं, लेकिन कुछ पुष्पों में पुष्पाक्ष दीर्घित रहता है और तब शाखा की भांति उसमें पर्व व गांठें स्पष्ट दिखाई देते हैं (देखिये चित्र २०२-४), जैसे हुरहुर, झुमकलता, कनक चम्पा (*Pterospermum*), करील (*Capparis aphylla*), इत्यादि में। इसलिये पुष्पाक्ष एक रूपान्तरित शाखा मानी जा सकती है।

(२) पुष्पाक्ष कभी-कभी अत्यरूप (monstrous) विकास दिखलाता है, अर्थात् पुष्प के विभिन्न अंगों को धारण करने के बाद यह ऊर्ध्व मुख दीर्घित होता है और साधारण हरी पत्तियां धारण करता है। इस प्रकार पुष्पाक्ष एक शाखा के समान व्यवहार करता है। इसके उदाहरण कभी-कभी गुलाब (चित्र २१४), लार्कस्पर (larkspur) और नाशपाती में मिलते हैं।

चित्र २१४– गुलाब जिसमें पुष्पाक्ष का अत्यरूप विकास दिखलाया गया है।

(३) वर्धी कलिका की भांति पुष्प कलिका, स्थिति में अग्रस्थ या कक्षस्थ होती है।

(४) पुष्पाक्ष में वाह्यदल, दल, इत्यादि का वैसा ही विन्यास होता है जैसा पत्तियों का स्तम्भ या शाखा में होता है जो आवर्तरूप (whorled), एकान्तरित (सर्पिल) या विपरीत हो सकता है। यद्यपि अधिकांश पुष्प आवर्तरूप पर्ण रचना (phyllotaxy) दिखलाते हैं तथापि जल नलिनी (water lily), कैक्टस और मैग्नोलिया इत्यादि में एकान्तरित या सर्पिल विन्यास पाया जाता है।

(५) वाह्यदल और दल का एक दूसरे के प्रति विन्यास (पुष्पदल विन्यास; aestivation) भी वही होता है जो सत्य पत्रों का (कलिका पर्ण विन्यास; prefoliation)।

(६) वाह्यदल और दल की पर्ण स्वरूप प्रकृति, पत्तियों से उनकी रचना, आकार और शिरा विन्यास की दृष्टि से, समरूपता द्वारा विदित होती है। वास्तव में बेबीना (*Mussaenda*; चित्र २१५) में एक वाह्यदल स्पष्ट रूप से सफ़ेद या

रंगीन पत्ती में रूपान्तरित होती हैं। हरे गुलाब में दल रचना में पत्र सदृश होते हैं और हरे होते हैं, परन्तु पुंकेसर और स्त्री-केसर पत्तियों से हर प्रकार से असमान होते हैं। पत्तियों से उनकी समजातिता (homology)

चित्र २१५ चित्र २१६

चित्र २१५–वेबीना का फूल जिसमें एक वाह्यदल पत्ती में रूपान्तरित हो गयी है। चित्र २१६–जल नलिनी का फूल जिसमें पुष्प भागों का सक्रमण दिखलाया गया है।

कुछ फूलोंसे ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार जल नलिनी (चित्र २१६-२१७) में वाह्यदल से दल रूप में और दल से पुंकेसर रूप में क्रमशः सक्रमण (transition) दिखाई देता है। कृष्ट (cultivated) गुलाब में अनेक वाह्यदल होते हैं जब कि जंगली या वन्य (wild) गुलाब में केवल पांच वाह्यदल होते हैं; इसकी व्याख्या यह है कि अनेक पुंकेसर क्रमश दलों में रूपान्तरित हो गये हैं। इसी प्रकार गुड़हल और गुल अजायब (*Hibiscus mutabilis*) में कुछ या अधिकतर पुंकेसर दलों में रूपान्तरित हो गये हैं। कभी-कभी जिनिया (*Zinnia*) में कुछ पुंकेसर और स्त्री-केसर दलों में रूपान्तरित हो जाते हैं। कैना (*Canna*) में पुंकेसर और वर्तिका दलाभ हो जाते हैं।

(७) पुष्पक्रम अक्ष सामान्यत. पुष्प धारण करता है। कभी-कभी कुछ पुष्प कलिकाए वर्धी प्रजनन के लिये वर्धी कलिकाओं में रूपान्तरित हो जाती है, जिनको पत्रकंद (bulbil) कहते हैं, जैसे अगेव (*Agave*) में। अनन्नास में भी पुष्पक्रम अक्ष वर्धी प्रजनन के लिये एक या अधिक वर्धी कलिकाए (पत्रकन्द) उत्पन्न करता है। ऐसे पत्रकद इस प्रकार उन पैतृक (ancestral) रूपों से प्रतिवर्तन (reversion) दिखलाते हैं जिनसे वे व्युत्पन्न (derived) हुए हैं।

पुष्प एक रूपान्तरित प्ररोह है
(FLOWER IS A MODIFIED SHOOT)

निम्नलिखित तथ्यों से हम सिद्ध कर सकते हैं कि पुष्पाक्ष एक रूपान्तरित शाखा है ; वाह्यदल, दल, पुंकेसर, और स्त्री-केसर रूपान्तरित वर्धी पर्ण (vegetative leaves) हैं, और सम्पूर्ण पुष्प एक रूपान्तरित वर्धी कलिका (vegetative bud) है।

(१) पुष्पाक्ष उन पुष्प आवर्तों के अक्ष का निरूपण करता है जिसके नीचे के पर्व सामान्यत: अविकसित और वृद्धिरुद्ध (suppressed) रहते हैं, लेकिन कुछ पुष्पों में पुष्पाक्ष दीर्घित रहता है और तव शाखा की भांति उसमें पर्व व गांठें स्पष्ट दिखाई देते हैं (देखिये चित्र २०२-४), जैसे हुरहुर, झुमकलता, कनक चम्पा (*Pterospermum*); करील (*Capparis aphylla*), इत्यादि में। इसलिये पुष्पाक्ष एक रूपान्तरित शाखा मानी जा सकती है।

(२) पुष्पाक्ष कभी-कभी अत्यरूप (monstrous) विकास दिखलाता है, अर्थात् पुष्प के विभिन्न अगों को धारण करने के वाद यह ऊर्ध्व मुख दीर्घित होता है और साधारण हरी पत्तियां धारण करता है। इस प्रकार पुष्पाक्ष एक शाखा के समान व्यवहार करता है। इसके उदाहरण कभी-कभी गुलाव (चित्र २१४), लार्कस्पर (larkspur) और नाशपाती में मिलते हैं।

चित्र २१४—गुलाव जिसमें पुष्पाक्ष का अत्यरूप विकास दिखलाया गया है।

(३) वर्धी कलिका की भांति पुष्प कलिका, स्थिति में अग्रस्थ या कक्षस्थ होती है।

(४) पुष्पाक्ष में वाह्यदल, दल, इत्यादि का वैसा ही विन्यास होता है जैसा पत्तियों का स्तम्भ या शाखा में होता है जो आवर्तरूप (whorled), एकान्तरित (सर्पिल) या विपरीत हो सकता है। यद्यपि अधिकांश पुष्प आवर्तरूप पर्ण रचना (phyllotaxy) दिखलाते हैं तथापि जल नलिनी (water lily), कैक्टस और मैग्नोलिया इत्यादि में एकान्तरित या सर्पिल विन्यास पाया जाता है।

(५) वाह्यदल और दल का एक दूसरे के प्रति विन्यास (पुष्पदल विन्यास; aestivation) भी वही होता है जो सत्य पत्रों का (कलिका पर्ण विन्यास; prefoliation)।

(६) वाह्यदल और दल की पर्ण स्वरूप प्रकृति, पत्तियों से उनकी रचना, आकार और शिरा विन्यास की दृष्टि से, समरूपता द्वारा विदित होती है। वास्तव में वेवीना (*Mussaenda*; चित्र २१५) में एक वाह्यदल स्पष्ट रूप से सफ़ेद या

रंगीन पत्ती में रूपान्तरित होती है। हरे गुलाब में दल रचना में पत्र सदृश होते हैं और हरे होते हैं, परन्तु पुंकेसर और स्त्री-केसर पत्तियों से हर प्रकार से असमान होते हैं। पत्तियों से उनकी समजातिता (homology)

चित्र २१५ चित्र २१६

चित्र २१५–वेर्बीना का फूल जिसमें एक वाह्यदल पत्ती में रूपान्तरित हो गयी है। चित्र २१६–जल नलिनी का फूल जिसमें पुष्प भागों का संक्रमण दिखलाया गया है।

कुछ फूलोंसे ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार जल नलिनी (चित्र २१६-२१७) में वाह्यदल से दल रूप में और दल से पुंकेसर रूप में क्रमश. संक्रमण (transition) दिखाई देता है। कृष्ट (cultivated) गुलाब में अनेक वाह्यदल होते हैं जब कि जंगली या वन्य (wild) गुलाब में केवल पाच वाह्यदल होते हैं; इसकी व्याख्या यह है कि अनेक पुंकेसर क्रमश. दलों में रूपान्तरित हो गये हैं। इसी प्रकार गुड़हल और गुल अजायब (*Hibiscus mutabilis*) में कुछ या अधिकतर पुंकेसर दलों में रूपान्तरित हो गये हैं। कभी-कभी जिनिया (*Zinnia*) में कुछ पुंकेसर और स्त्री-केसर दलों में रूपान्तरित हो जाते हैं। कैना (*Canna*) में पुंकेसर और वर्तिका दलाभ हो जाते हैं।

(७) पुष्पक्रम अक्ष सामान्यतः पुष्प धारण करता है। कभी-कभी कुछ पुष्प कलिकाएं वर्धी प्रजनन के लिये वर्धी कलिकाओं में रूपान्तरित हो जाती हैं, जिनको पत्रकंद (bulbil) कहते हैं, जैसे अगेव (*Agave*) में। अनन्नास में भी पुष्पक्रम अक्ष वर्धी प्रजनन के लिये एक या अधिक वर्धी कलिकाएं (पत्रकन्द) उत्पन्न करता है। ऐसे पत्रकंद इस प्रकार उन पैतृक (ancestral) रूपों से प्रतिवर्तन (reversion) दिखलाते हैं जिनसे वे व्युत्पन्न (derived) हुए हैं।

फूल की सममिति (Symmetry of the Flower)–फूल को सममित (symmetrical) उस समय कहते हैं जब केन्द्र से होकर जाने वाले किसी भी
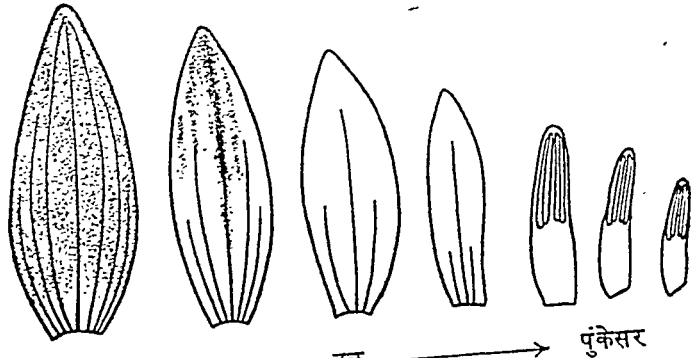
चित्र २१७–जल नलिनी में पुष्प भागों का संक्रमण।

उदग्र काट (vertical section) द्वारा वह दो विलकुल वरावर हिस्सों में वंट सकता है। इस प्रकार के फूल को **सम्मित** (regular) या **बहुयुग्म** (actinomorphic) भी कहते हैं। इसके उदाहरण सरसों, धतूरा, वैंगन, मिर्च, इत्यादि के फूलों में मिलते हैं। जब फूल केवल एक उदग्र काट द्वारा दो समान भागों में विभाजित किया जा सके तो उसको **एक युग्म** (zygomorphic) या **एकसम्मित** (monosymmetrical) कहते हैं, जैसे मटर, सेम, झुनझुनिया, गुल मोहर, अमलतास (*Cassia fistula*), इत्यादि में मिलते हैं। जब फूल किसी भी उदग्र तल (vertical plane) द्वारा दो समान भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता तो उसको असम्मित (irregular या asymmetrical) कहते हैं।

फूल को सम्मित तब भी कहते हैं जब कि सब आवर्तों में वरावर संख्या के भाग हों या जब कि एक आवर्त भागों की संख्या दूसरे के गुणज या अपवर्त्य (multiple) हों। इस प्रकार के सम्मित पुष्प को **सम संख्यक** (isomerous) कहते हैं। एक सम संख्यक पुष्प में क्रमानुसार प्रत्येक आवर्त के अवयवों की संख्या दो, तीन, चार, पांच या इनके कोई भी अपवर्त्य होने पर उनको द्वयी (bimerous), त्रयी (trimerous), चतुष्टयी (tetramerous) या पंचतयी (pentamerous) कहते हैं। त्रयी पुष्प एकबीजपत्री पौधों में और पंचतयी पुष्प द्विबीजपत्री पौधों में सामान्यतः पाये जाते हैं। जब सब आवर्तों में अवयवों की संख्या न तो समान हो और न उनके कोई अपवर्त्य हो तो पुष्प को विषमतयी (heteromerous) कहते हैं।

(१) बाह्यदल पुंज (CALYX)

बाह्यदल पुंज पुष्प का अधरतम और बाह्यतम (outermost) आवर्त है। यह बहुत से बाह्यदलों (sepals) से मिलकर बनता है। यह प्रायः हरा (बाह्य दलाभ), परन्तु कभी-कभी यह रंगीन (दलाभ) होता है, जैसे गुलमोहर, गुलटर्रा और गार्डन नैस्टरशियम में। यह रूप आकार व रंग में विभिन्न होता है। यह सम्मित या असम्मित हो सकता है। बाह्यदल एक दूसरे से पृथक या एक दूसरे से युक्त भी हो सकते हैं। जब वे पृथक होते हैं तो बाह्यदल पुंज को पृथक बाह्यदली (polysepalous) कहते हैं, जैसे सरसों, मूली, इत्यादि में; और जब वे एक दूसरे से युक्त होते हैं तो उसको युक्त बाह्यदली (gamosepalous) कहते हैं, जैसे बैंगन, मिर्च, गुड़हल, इत्यादि में। कभी-कभी बाह्यदल पुंज फूल में बिलकुल ही अनुपस्थित होता है, या यह शल्कों में रूपान्तरित हो जाता है, जैसे सूर्यमुखी, गेंदा, इत्यादि में, या बाह्यदल रोम (pappus) में रूपान्तरित हो जाता है, जैसे कम्पोजिटी (*Compositae*) कुल के बहुत से पौधों में। बेबीना (*Mussaenda*; चित्र २१५) में एक बाह्यदल बड़ा, पर्ण सदृश और बिलकुल सफेद या चमकीले रंग का हो जाता है।

कार्य (Functions)—(१) संरक्षी (Protective)—बाह्यदल का मुख्य कार्य फूल को कलिका अवस्था में समावृत (enclose) करना और धूप और वर्षा से रक्षा करना है। चित्रक (*Plumbago*) में बाह्यदल में संलागी ग्रन्थियां (sticky glands) होती हैं और इस प्रकार यह शाकाहारी जानवरों से फूल की रक्षा करता है। (२) स्वांगीकारक (Assimilatory)—जब बाह्यदल पुंज हरा होता है तो साधारण पत्तियों के समान यह वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड लेकर शर्करा (sugar) और स्टार्च का निर्माण करता है। (३) आकर्षण (Attractive)—जब यह रंगीन व भड़कीला होता है तो परागण की क्रिया के लिये कीड़ों को आकर्षित करता है। (४) विशेष कार्य (Special function)—कम्पोजिटी कुल के कई फूलों में बाह्यदल पुंज एक रोमों के आवर्त में रूपान्तरित हो जाता है, जिसको बाह्यदल रोम कहते हैं। यह फल में चिरलग्न रहता है और फल को वायु द्वारा वितरण में सहायता करता है।

अवधि (Duration)—यदि बाह्यदल पुंज पुष्प कलिका के खुलने के तुरन्त बाद ही गिर जाता है तो उसे शीघ्रपाती (caducous) कहते हैं, जैसे पोस्त (poppy) में। यदि बाह्यदल पुंज पुष्प के मुरझा जाने पर गिरता है तो उसको पर्णपाती (deciduous) कहते हैं। परन्तु कभी-कभी यह फल में चिपका रहता है, तब उसको चिरलग्न (persistent) कहते हैं। चिरलग्न बाह्यदल पुंज मुरझाया रूप भी

धारण कर सकता है, जैसे कपास में; या यह वृद्धि जारी रख सकता है और मांसल हो सकता है, जैसे चलता (*Dillenia indica*) में।

(२) दल पुंज (COROLLA)

दल पुंज दूसरा सहायक आवर्त है और कई दलों से मिल कर बना होता है। दल प्रायः चटकीले रंगीन होते हैं और कभी-कभी सुगन्धित भी होते हैं और तब उनका कार्य परागण के लिये कीड़ों को आकर्षित करना होता है। वे विरले ही वाह्यदलाभ होते हैं। पुष्प की कलिका अवस्था में वे आवश्यक अंगों, अर्थात् पुंकेसर और स्त्री-केसर, को समावृत करते हैं और उनकी वाह्य ऊष्मा (heat) और वर्षा से रक्षा करते हैं।

वाह्यदल पुंज के समान दल पुंज भी सब दलों के समरूप या विषमरूप होने के अनुसार **सम्मित** (regular) या **असम्मित** (irregular) हो सकते हैं। इसी प्रकार वाह्यदल पुंज के समान दल पुंज दलों के पृथक या युक्त होने के अनुसार **युक्तदली** (gamopetalous) या **पृथकदली** (polypetalous) हो सकते हैं; युक्तदली अवस्था में दल अंशतः या पूर्णतया युक्त हो सकते हैं। पृथकदली दल पुंज में प्रत्येक दल कभी-कभी नीचे की ओर संकीर्ण हो जाता है और एक प्रकार का वृन्त बनाता है जिसको नखर या पंजा (claw) हैं, और यह ऊपर की ओर विस्तारित रहता है। विस्तारित भाग को वाहु या पाद (limb) कहते हैं। नखर पर्णवृन्त का तदनुरूपी (corresponding) और वाहु पत्रदल का तदनुरूपी होता है। युक्तदली दल पुंज में निचला नलिकाकार भाग नली (tube) और ऊपरी भाग वाहु (limb) कहलाता है। वाहु में दलों की संख्या के अनुसार कई खण्ड या पालियां (lobes) हो सकते हैं। नली के उस भाग को जो वाहु में खुलता है कंठ (throat) कहलाता है।
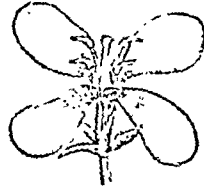
चित्र २१८
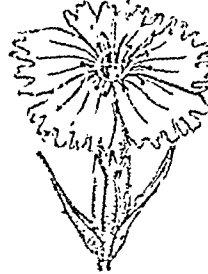
चित्र २१९
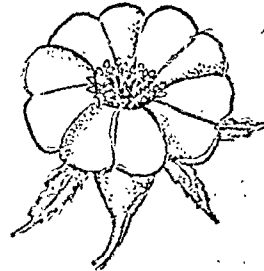
चित्र २२०

दल पुंजों के प्रकार। चित्र २१८—स्वस्तिकाकार। चित्र २१९—गूढ़पंचनखर। चित्र २२०—पाटलीय या गुलाबाकार।

दल पुंजों के प्रकार (Forms of Corollas)—दल पुंजों के प्रकार उनके सम्मित या असम्मित, युक्तदली या पृथकदली, दलों के रूप और आकार, और पुष्प में उनके विन्यास पर निर्भर हैं। नाना प्रकारों का अध्ययन निम्न चार मुख्य शीर्षकों में हो सकता है।

१. नियमित पृथकदली दल पुंज (Regular Polypetalous Corollas)

(१) स्वस्तिकाकार (Cruciform; चित्र २१८)—स्वस्तिकाकार दल पुंज चार पृथक दलों का बना होता है और प्रत्येक दल में एक नखर होता है। दल एक स्वस्तिक के समान विन्यस्त रहते हैं, जैसे सरसों कुल या क्रूसीफेरी (*Cruciferae*) के पौधों में, उदाहरणार्थ सरसों, मूली, इत्यादि।

(२) गुहपंचनखर (Caryophyllaceous; चित्र २१९)—इस प्रकार के दल पुंज में पांच दल होते हैं, जिनमें नखर (claws) अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं और दलों के बाहु नखर से समकोण बनाते हैं, जैसे डाइऐन्थस (*Dianthus*) में।

(३) पाटलीय या गुलाबाकार (Rosaceous; चित्र २२०)—इसमें पहले की तरह पांच दल होते हैं, लेकिन इनके नखर छोटे होते हैं या बिलकुल ही नहीं होते, और इनके बाहु नियमित रूप से बाहर की ओर फैले रहते हैं, जैसे गुलाब, चाय, नासपाती, इत्यादि में।

२. नियमित युक्तदली दल पुंज (Regular Gamopetalous Corollas)

(१) घंटाकार (Campanulate or Bell-shaped; चित्र २२१)—जब दल पुंज का रूप घंटे सदृश होता है, तो उसको घंटाकार कहते हैं, जैसे रसभरी (gooseberry), कैम्पैनुला (*Campanula*), केंदू या गाब (mangosteen) इत्यादि में।
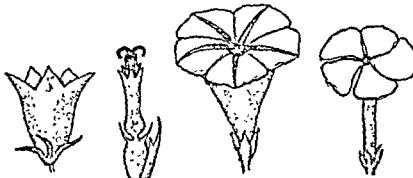
चित्र २२१ चित्र २२२ चित्र २२३ चित्र २२४

दल पुंजों के प्रकार। चित्र २२१—घंटाकार। २२२—नलिकाकार। चित्र २२३—धतूराकार। चित्र २२४—चक्राकार।

(२) नलिकाकार (Tubular; चित्र २२२)—जब दल पुंज बेलनाकार या नलिका सदृश होता है अर्थात् आधार से शीर्ष तक लगभग समान विस्तृत रहता है तो उसको नलिकाकार कहते हैं, जैसे सूर्यमुखी के केन्द्रीय पुष्पकों (central florets) में।

(३) धतूराकार (Infundibuliform or Funnel-shaped; चित्र २२३)—जब दल पुंज कीप के रूप का होता है, अर्थात् संकीर्ण आधार क्रमशः बाहर की ओर फैलता है तो उसको धतूराकार कहते हैं, जैसे धतूरा (*Datura*), कलमी साग (water bindweed), रेलवे क्रीपर (railway creeper), मार्निंग ग्लोरी (morning glory), पीला कनेर (yellow oleander) में।

(४) चक्राकार (Rotate or Wheel-shaped; चित्र २२४)—जब दल पुंज की नली छोटी होती है और बाहु उसके समकोण पर रहता है तथा दल पुंज की आकृति लगभग चक्र के समान होती है तो उसको चक्राकार कहते हैं, जैसे हरसिंगार, सदाबहार (periwinkle), इत्यादि में।

३. असम्मित पृथकदली दल पुंज (Irregular Polypetalous Corolla)

(१) आगस्तिक (Papilionaceous or Butterfly-like; चित्र २२५)—इसकी साधारण आकृति तितली के समान होती है। यह पांच दलों का बना होता है, जिसमें सबसे बाहरी दल सबसे बड़ा होता है और ध्वजक (standard or vexillum) कहलाता है; पार्श्व के दो दलों को पक्षक (alae or wings) कहते हैं; और सबसे अन्दर के दो दलों को जो सबसे छोटे होते हैं नौतल (keel or carina) कहते हैं। आभासतः ये दो युक्त होकर नाव के आकार की गुहा या विवर (cavity) बनाते हैं; इसके उदाहरण मटर कुल या पैपिलिओनेसी (*Papilionaceae*) में मिलते हैं, उदाहरणार्थ मटर (चित्र २२५-२२७), सेम, चना, अपराजिता (*Clitoria*), झुनझुनिया (*Crotalaria*) इत्यादि में।
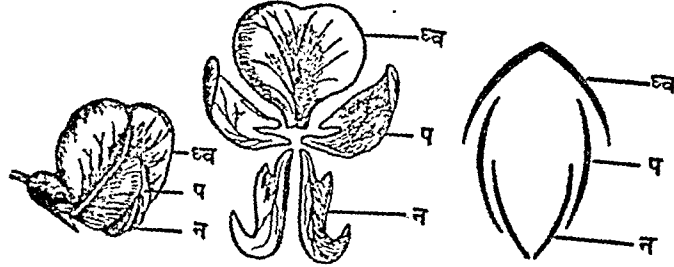
चित्र २२५ चित्र २२६ चित्र २२७

चित्र २२५—मटर का आगस्तिक पुष्प। चित्र २२६—मटर के पुष्प के दल खुले हुयें। चित्र २२७—आगस्तिक दल पुंज का ध्वजकीय पुष्पदल विन्यास। न, नौतल; प, पक्षक; ध्व, ध्वजक।

४. असम्मित युक्तदली दल पुंज (Irregular Gamopetalous Corollas)

(१) द्वयोष्ठी (Bilabiate or Two-lipped; चित्र २२८)—इस प्रकार के दल पुंज में दल पुंज का बाहु दो भागों या ओष्ठों (lips) में विभाजित रहता है—ऊपरी और निचला और बीच में चौड़ी खुले मुंह की दरार होती है, इसके उदाहरण तुलसी (*Ocimum*), हलकुसा (*Leonurus*), गोमा (*Leucas*), गोकुल कांटा (*Hygrophila*), अडूसा (*Adhatoda*), इत्यादि में मिलते हैं।

चित्र २२८ चित्र २२९ चित्र २३०

दल पुंजों के प्रकार। चित्र २२८—द्वयोष्ठी। चित्र २२९—मुहबन्द। चित्र २३०—पट्टाकार।

(२) मुंहबन्द (Personate or Masked; चित्र २२९)—यह भी पहले के समान द्वयोष्ठी होता है लेकिन इसमें ओष्ठ एक दूसरे से इतने समीप रहते हैं कि दल पुंज का मुंह बन्द हो जाता है, निचले ओष्ठ का प्रक्षेप (projection) जो कि दल पुंज के मुंह को बंद करता है तालू (palate) कहलाता है, जैसे स्नैपड्रैगन और लिंडनबर्जिया (*Lindenbergia*) इत्यादि में।

(३) पट्टाकार (Ligulate or Strap-shaped; चित्र २३०)—जब दल पुंज नीचे की ओर एक सकीर्ण छोटी नलिका बनाता है, लेकिन ऊपर की ओर पट्टक या फीते के समान चिपिटित हो जाता है तो ऐसे दल पुंज को पट्टाकार कहते हैं, जैसे सूर्यमुखी के बाह्य पुष्पकों (outer florets) में।

दल पुंज के प्रकार

- सम्मित
  - पृथकदली
    - स्वस्तिकाकार, जैसे सरसों
    - गूढ़पंचनखर, जैसे पिंक
    - पाटलीय, जैसे गुलाब
  - युक्तदली
    - घंटाकार, जैसे कैम्पैनुला
    - नलिकाकार, जैसे सूर्यमुखी के बिम्ब पुष्पक
    - धतूराकार, जैसे धतूरा
    - चक्राकार, जैसे हरसिंगार
- असम्मित
  - पृथकदली
    - आगस्तिक, जैसे मटर, सेम, झुनझुनिया, इत्यादि
  - युक्तदली
    - द्वयोष्ठी, जैसे तुलसी
    - मुंहबन्द, जैसे ऐंटिराइनम
    - पट्टाकार, जैसे सूर्यमुखी के रश्मि पुष्पक
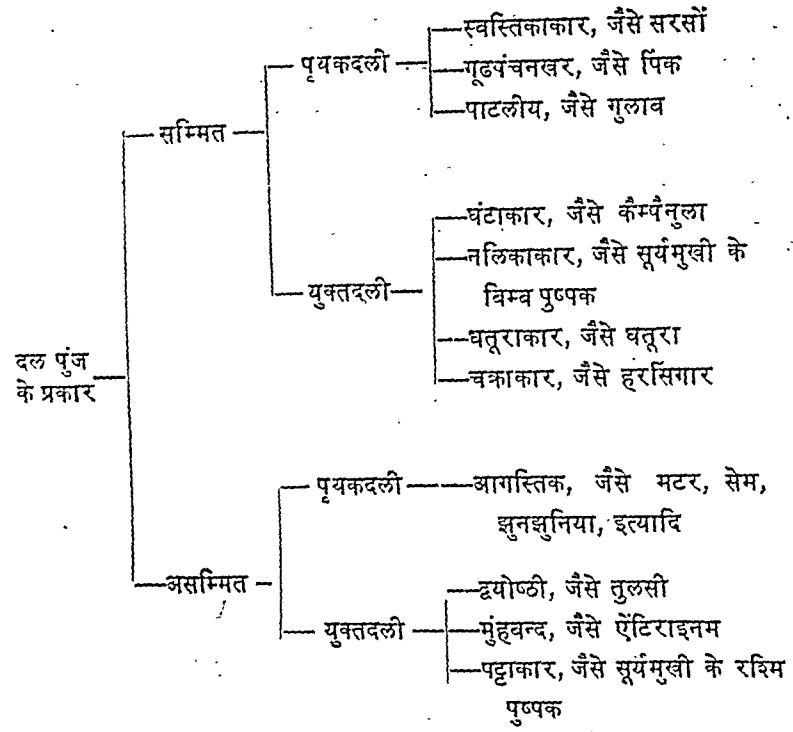
दल पुंज के उपांग (Appendages of the Corolla)—दल पुंज या परिदल पुंज (perianth) में कभी-कभी नाना प्रकार के उद्वर्ध (outgrowths) या उपांग (appendages) पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ स्नैपड्रैगन में दल पुंज की नली धानी
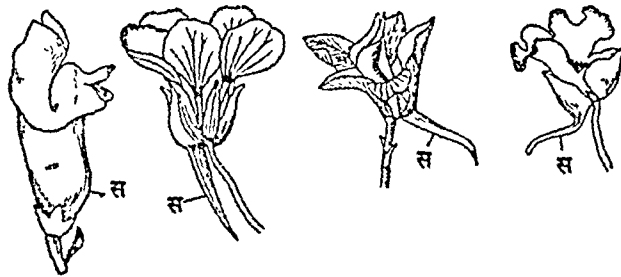
चित्र २३१ चित्र २३२ चित्र २३३ चित्र २३४
परिदल पुंज के उपांग। चित्र २३१–स्नैपड्रैगन का पुटाकार दल पुंज। चित्र २३२–गार्डन नैस्टरशियम का पुष्प। चित्र २३३–लार्कस्पर का पुष्प। चित्र २३४–बालसम का पुष्प। स, स्पर।

(pouch) या पुट (sac) के समान एक ओर कुछ फूली रहती हैं। इस प्रकार के दल पुंज को पुटाकार (saccate) या विस्फीत (gibbous) कहते हैं (चित्र २३१)। कुछ दशाओं में, जैसे बालसम (balsam), गार्डन नैस्टरशियम, लार्कस्पर, इत्यादि में परिदल पुंज एक नलिका में दीर्घित रहता है जिसको लांगुलिका (spur) कहते हैं (चित्र २३२-२३४) और तब परिदल पुंज को स्परपुट-युक्त (spurred) कहते हैं। कुछ फूलों में एक विशेष प्रकार का पुट, जिसे मकरन्द कोश (nectary) कहते हैं, विकसित होता है, इस के अन्दर मकरन्द (nectar) रहता है।

कभी-कभी दल पुंज के अनुप्रस्थ विपाटन (transverse splitting) के कारण इसके कंठ (throat) पर एक अतिरिक्त आवर्त (additional whorl) बन जाता है। यह अतिरिक्त आवर्त फंकों (शल्कों), शल्कों, या रोमों का बना होता है जो पृथक या युक्त हो सकते हैं। इस आवर्त को मुकुट (corona) कहते हैं। मुकुट
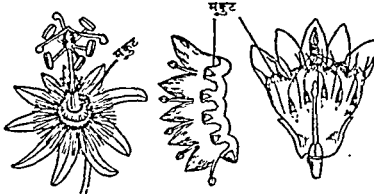
चित्र २३५ चित्र २३६ चित्र २३७

दल पुंज के उपांग: मुकुट। चित्र २३५—झुमकलता। चित्र २३६—अमरबेल का पुष्प। चित्र २३७—कनेर का पुष्प।

झुमकलता (passion-flower; चित्र २३५), अमरबेल (चित्र २३६), कनेर (*Nerium*; चित्र २३७), इत्यादि में दिखाई देता है। नरगिस (*Narcissus*) में एक सुन्दर प्यालानुमा मुकुट दिखाई देता है। मुकुट से फूल की सुन्दरता अधिक बढ़ जाती है और इस प्रकार यह कीड़ों को परागण के लिये आकर्षित करने के लिये एक अनुकूलन (adaptation) है।

पुष्पदल विन्यास (Aestivation)—एक पुष्प में उसी आवर्त के अंगों के प्रति बाह्यदलों और दलों की विन्यास विधि को पुष्पदल विन्यास कहते हैं। पौधों के वर्गीकरण के दृष्टिकोण से पुष्पदल विन्यास एक महत्वपूर्ण लक्षण है, और यह निम्न प्रकार का हो सकता है।

(१) धारास्पर्शी (Valvate; चित्र २३८)—जब वाह्यदल या दल एक दूसरे से तट द्वारा सम्पर्क में रहते हैं, या जब वे एक दूसरे के बहुत समीप रहते हैं लेकिन एक दूसरे को अतिछादित (overlap) नहीं करते, जैसे शरीफा (custard-apple), रामफल (bullock's heart), मदार, कंटेली चम्पा (*Artabotrys*), इत्यादि में।

चित्र २३८ चित्र २३९ चित्र २४० चित्र २४१

दल पुंज के पुष्पदल विन्यास। चित्र २३८—धारास्पर्शी। चित्र २३९—व्यावृत। चित्र २४०—अनियमछादी। चित्र २४१—ध्वजक अनियमछादी।

(२) व्यावृत (Contorted or Twisted; चित्र २३९)—जब वाह्यदल या दल का एक तट (margin) अगले वाले वाह्यदल या दल के तट को अतिछादित करता है और उसका दूसरा किनारा स्वयं एक तीसरे वाह्यदल या दल के तट द्वारा अतिछादित रहता है, जैसे गुड़हल, कपास, इत्यादि में।

(३) अनियमछादी (Imbricate; चित्र २४०)—जब एक वाह्यदल या दल अन्दर की ओर रहता है और दोनों तटों पर अतिछादित रहता है, और एक वाहर की ओर रहता है तथा अवशिष्ट में से प्रत्येक एक तट पर अतिछादित रहता और यह अगले को दूसरे तट से अतिछादित करता है, उदाहरणार्थ अमलतास (*Cassia*), गुल मोहर, छोटा गुल मोहर, इत्यादि में।

(४) ध्वजक अनियमछादी (Vexillary; चित्र २४१)—जब किसी फूल में पांच दल होते हैं, जिनमें पश्च (posterior) सबसे बड़ा होता है और दो पार्श्व दलों को ढके रहता है। ये दोनों पार्श्व दल दो अग्र (anterior) दलों को जो सबसे छोटे होते हैं, ढके रहते हैं। ध्वजक अनियमछादी पुष्पदल विन्यास सब आगस्तिक (papilionaceous) दल पुंजों में पाया जाता है (देखिये चित्र २२५-२२७), जैसे मटर कुल या पैपिलिओनेसी में, उदाहरणार्थ मटर, सेम, अपराजिता, सुनसुनिया, इत्यादि में।

(३) पुमंग (ANDROECIUM)

पुमंग फूल का तीसरा या नर प्रजनन आवर्त है और बहुत से पुंकेसरों से मिलकर बना होता है। पुंकेसर नर बीजाणुओं (male spores) या लघु बीजाणुओं

(microspores) या पराग कणों (pollen grains) को धारण करने के लिये रूपान्तरित पर्ण हैं। इन लघु बीजाणु धारण करने वाले पर्णों को लघु बीजाणु पर्ण (microsporophyll) भी कहते हैं। प्रत्येक पुंकेसर पुंतन्तु (filament), पराग कोश (anther) और योजी (connective) से मिलकर बना होता है (चित्र २४२)। पुंतन्तु पुंकेसर का पतला वृन्त है और पराग कोश विस्तृत (expanded) शीर्ष है जो कि पुंतन्तु के सिरे पर लगा रहता है। प्रत्येक पराग कोश सामान्यतः दो फंकों या पालियों (lobes) का बना होता है। प्रत्येक फंक या पालि में दो विवर या कोष्ठ होते हैं जिनको पराग धानियां (pollen-sacs) या लघु बीजाणु धानियां (microsporangia) कहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक पराग कोश (anther) में कुल मिलाकर चार विवर या कोष्ठ होते हैं (चित्र २४३)। किन्तु बहुत से पराग कोशों में केवल दो ही होते हैं, और कभी-कभी, जैसे गुड़हल, भिंडी, कपास, इत्यादि में केवल एक ही होता है। प्रत्येक पराग धानी में बारीक चूर्ण या कणिकावत कोशिकाओं का पुंज होता है, जिनको पराग कण या लघु बीजाणु (microspores) कहते हैं। पराग कण बहुत अधिक मात्रा में पराग धानियों में उत्पन्न होते हैं और प्राय वायु द्वारा धूल के कणों के समान विकिरित होते हैं, जैसे चीड़ (pine), ताड़, केवड़ा (screwpine), मक्का, इत्यादि में। कभी-कभी, जैसे पाइलिया (*Pilea*), और अर्टिका (*Urtica*) में पराग कोश विस्फोटित (explode) होते हैं और पराग कणों के फुल्ल उनमें झटके के साथ निकलते दिखाई देते हैं। दो पराग फंक या पालियां आपस में एक प्रकार के मध्य-शिरा से सम्बन्धित रहते हैं, जिसे योजी (connective) कहते हैं। पुंतन्तु पत्ती के पर्ण वृन्त का तदनुरूपि अंग है। पराग कोश पत्रदल का तदनुरूपी अंग है और योजी मध्य-शिरा का तदनुरूपी अंग है। पराग कोश का वह पार्श्व जिस पर कि योजी संयोजित (attached) रहता है पृष्ठ (back) और दूसरा पार्श्व मुख (face) कहलाता है। मुख में एक अनुदैर्घ्य दरार होती है। जब मुख फूल के मध्य की ओर मुड़ा रहता है तो पराग कोश को अन्तर्मुख (introrse) कहते हैं, और जब मुख बाहर की ओर रहता है तो उसको बहिर्मुख (extrorse) कहते हैं। जब पुंकेसर में पराग कोश
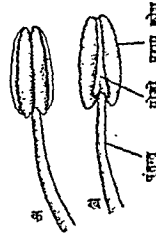
चित्र २४२—दो पुंकेसर। क, पराग कोश का मुख जिसमें चार पराग धानियां दिखाई गई हैं; ख, पराग कोश का पृष्ठ जिसमें योजी दिखाया है।

चित्र २४३—एक पराग कोश अनुप्रस्थ काट में जिसमें चार विवर और पराग कण चतुष्टक में दिखाये गये हैं। प्रत्येक चतुष्टक चार पराग कणों में पृथक होता है।

करता तो उपस्थित नहीं होता या अल्प विकसित होता है और पराग कण धारण नहीं करता तो पुंकेसर को वन्ध्य (sterile) कहते हैं। इस प्रकार के पुंकेसर को वन्ध्य पुंकेसर (staminode) भी कहते हैं, जैसे पिंक (pink), दुपहरिया (*Pentapetes*), कनक चम्पा (*Pterospermum*; चित्र २०४), इत्यादि में, और जब पुंतन्तु अनुपस्थित रहता है तो पराग कोश को अवृन्त (sessile) कहते हैं।

पराग (The Pollen)—पराग कण (pollen grain ... या लघु बीजा... ...es)

चित्र ... कण ... नाभि...
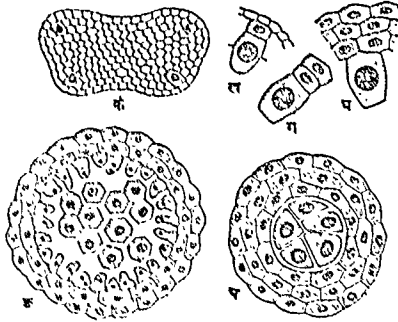
फूल के नर जननेंद्रिय भाग (reproductive bodies) हैं और पराग

चित्र २४६—क-च—पराग कोश का विकास; छ-ड, पराग कण का विकास। क, शिशु पराग कोश अनुप्रस्थ काट में जिसमें चार अधस्त्वचीय कोशिकाएं दिखाई गई हैं; ख, ऊपरी (पार्श्विक कोशिका) और निचली (बीजाणुजन कोशिका); ग-घ, पार्श्विक कोशिकाओं का भाजन; च, पार्श्विक स्तर, पोषक स्तर सहित केन्द्रीय बीजाणुजन ऊतक को घेरे हुए; ङ, पार्श्विक स्तर, पोषक स्तर और पराग मातृ कोशिकाएं; छ, एक पराग मातृ कोशिका; ज-झ, नाभिकीय भाजन; ञ, कोशिका द्रव्य का चतुष्फलकीय विधि से भाजन; ट, पराग मातृ कोशिका की भित्ति का लोपन और पराग कणों का चतुष्फलकीय विन्यास; ठ, पराग कण चतुष्टक में, प्रत्येक में बाह्यचोल और आन्तर चोल का निर्माण।

चित्र २४३—एक पराग कोश अनुप्रस्थ काट में जिसमें चार विवर और पराग कण चतुष्टक में दिखाये गये हैं। प्रत्येक चतुष्टक चार पराग कणों में पृथक होता है।

उपस्थित नहीं होता या अल्प विकसित होता है और पराग कण धारण नहीं करता तो पुंकेसर को वन्ध्य (sterile) कहते हैं। इस प्रकार के पुंकेसर को वन्ध्य पुंकेसर (staminode) भी कहते हैं, जैसे पिंक (pink), दुपहरिया (*Pentapetes*), कनक चम्पा (*Pterospermum*; चित्र २०४), इत्यादि में, और जब पुंतन्तु अनुपस्थित रहता है तो पराग कोश को अवृन्त (sessile) कहते हैं।

चित्र २४४

चित्र २४५

चित्र २४४—पराग कण। क, संपूर्ण कण; ख, एक पराग कण काट में जिसमें नलिका नाभिक (बड़ा) और जनन नाभिक (छोटा) दिखाया गया है। चित्र २४५—पराग नलिका की वृद्धि।

पराग (The Pollen)—पराग कण (pollen grains) या लघु बीजाणु (microspores)

फूल के नर जननेंद्रिय काय (reproductive bodies) हैं और पराग

चित्र २४६—क-च—पराग कोश का विकास; छ-ठ, पराग कण का विकास। क, शिशु पराग कोश अनुप्रस्थ काट में जिसमें चार अधस्त्वचीय कोशिकाए दिखाई गई हैं; ख, ऊपरी (पार्श्विक कोशिका) और निचली (बीजाणुजन कोशिका); ग-घ, पार्श्विक कोशिकाओं का भाजन; च, पार्श्विक स्तर, पोषक स्तर सहित केन्द्रीय बीजाणुजन ऊतक को घेरे हुए; ङ, पार्श्विक स्तर, पोषक स्तर और पराग मातृ कोशकाए; छ, एक पराग मातृ कोशिका; ज-झ, नाभिकीय भाजन; ञ, कोशिका द्रव्य का चतुष्फलकीय विधि से भाजन; ट, पराग मातृ कोशिका की भित्ति का लोपन और पराग कणों का चतुष्फलकीय विन्यास; ठ, पराग कण चतुष्टक में, प्रत्येक में बाह्यचोल और आन्तर चोल का निर्माण।

धानियों या लघु बीजाणु धानियों (microsporangia) में पाये जाते हैं। उनका आकार बहुत छोटा, ०·०१ मिमी० (१० माइक्रोन) से ०·२ मिमी० (२०० माइक्रोन) तक होता है और ये धूलि कणों के समान होते हैं। प्रत्येक पराग कण में एक सूक्ष्मदर्शीय कोशिका (microscopic cell) होती है, और इसके दो आवरण होते हैं: **बाह्यचोल** (exine) और **आन्तर चोल** (intine)। बाह्यचोल एक दृढ़ उच्चर्मीयित (cutinized) स्तर है जिसमें प्रायः कंटमय (spinous) उद्वर्ध, या विभिन्न नमूनों के जालिकीय रूप होते हैं; कभी-कभी यह चिकना भी होता है। आन्तरचोल पतला, मुलायम, सैलूलोज स्तर है जो बाह्यचोल के अन्दर स्थित होता है। चीड़ (pine) के पराग कण में दो स्पष्ट पक्ष या पंख (wings) होते हैं। जब पराग कणों को अंकुरित होना होता है तो बाह्यचोल में विद्यमान जनित्र रन्ध्र (germ pores; चित्र २४४) नाम से ज्ञात कुछ पतले तथा दुर्बल रन्ध्रों द्वारा आन्तरचोल एक नलिका के रूप में वृद्धि करता है जिसको **पराग-नलिका** (pollen-tube; चित्र २४५) कहते हैं। कभी-कभी रन्ध्र एक स्पष्ट ढक्कन से ढका रहता है जो कि आन्तरचोल की वृद्धि से खुल जाता है। पहले पराग कण में केवल एक नाभिक (nucleus) होता है। यह विभाजित होकर दो नाभिक बनाता है, जिसमें से बड़े को **नलिका-नाभिक** (tube-nucleus) या वर्धी नाभिक (vegetative nucleus) और छोटे को **जनन नाभिक** (generative nucleus) कहते हैं। जब पराग नलिका वृद्धि करती है तो यह अपने साथ अग्रक भाग में नलिका-नाभिक और जनन नाभिक को ले जाती है। जनन नाभिक तुरन्त विभाजित होती है और दो नर प्रजनन इकाइयां (male reproductive units) बन जाती हैं जिनको **नर युग्मक** (male gametes) कहते हैं। नलिका-नाभिक तब विसंघटित (disorganized) हो जाती है।

चित्र २४७–मदार का पराग पुंज।

मदार और ऑर्किड में प्रत्येक पराग कोश के पराग कोशिकाएं एक पुंज रूप में संयुक्त रहती है जिसे **पराग पुंज** (pollinium) कहते हैं (चित्र २४७)।

पुंतन्तु का पराग कोश से संयोजन (Attachment of the Filament to the Anther; चित्र २४८-२५२)—पुंतन्तु पराग कोश से चार मुख्य प्रकार से संयोजित रहता है (१) जब पुंतन्तु पराग कोश के आधार पर संयोजित रहता है तो पराग कोश को अधःस्थित या आधारलग्न (basifixed or innate) कहते हैं, जैसे सरसों, मूली, मुस्ता (sedge), जल नलिनी (water lily) इत्यादि में;

(२) जब पुंतन्तु पराग कोश के आधार से शिखर तक पूरी लम्बाई में संयोजित रहता है तो उसको आलग्न (adnate) कहते हैं, जैसे चम्पा (*Michelia*) और मैग्नोलिया (*Magnolia*), इत्यादि में; (३) जब पुंतन्तु पराग कोश के पृष्ठ

चित्र २४८ चित्र २४९ चित्र २५० चित्र २५१ चित्र २५२
पुंतन्तु का पराग कोश से संयोजना। चित्र २४८—आधारलग्न। चित्र २४९—आलग्न। चित्र २५०—पृष्ठलग्न। चित्र २५१—मध्यदोली। चित्र २५२—सैल्विया का दीर्घित योजी जो दो पालियों को पृथक करता है (ऊपर का पालि अवन्ध्य और निचली वन्ध्य)।

पर लगा होता है तो उसको पृष्ठलग्न (dorsifixed) कहते हैं जैसे कृष्णकमल (passion-flower) में; और (४) जब पुंतन्तु पराग कोश के पृष्ठ पर केवल एक बिन्दु पर संयोजित रहता है ताकि पराग कोश हवा में स्वतन्त्रतापूर्वक झूल सके तो उसको मध्यदोली (versatile) कहते हैं, जैसे [illegible] (*Pancratium*), इत्यादि में। सैल्विया (*Salvia*: चित्र २५२) में पुंतन्तु दीर्घित योजी (connective) से संयोजित रहता है। यह योजी पराग कोश के दो पालियों को पृथक करता है। ऊपर की पालि अवन्ध्य (fertile) और निचली पालि वन्ध्य (sterile) होती है। योजी पुंतन्तु पर स्वतन्त्रतापूर्वक घूम सकता है। जब कोई कीड़ा फूल के अन्दर प्रवेश करता है और निचली पालि को ढकेलता है तो योजी घूमने लगता है जिससे ऊपर की अवन्ध्य पालि कीड़े की पीठ पर टकरा जाती है और उस पर पराग कणों को छिड़क देती है।

संलाग और अभिलाग (Cohesion and Adhesion)—अभिलाग (adhesion), लग्न (adnate) और अभिलग्न (adherent) शब्दों को फूल के विभिन्न आवर्तों के सदस्यों (जैसे दलों का पुंकेसरों के साथ या पुंकेसरों का स्त्री-केसरों के साथ) के सम्मिलन (union) को स्पष्ट करने के लिये प्रयोग किये जाते हैं। और संलाग (cohesion), संयुक्त (connate) या संलग्न (coherent) शब्दों को फूल के एक ही आवर्त के सदस्यों के सम्मिलन को स्पष्ट करने के लिये प्रयोग किये जाते हैं, जैसे पुंकेसरों का आपस में सम्मिलन या स्त्री-केसरों का आपस में सम्मिलन।

पुंकेसरों का संलाग (Cohesion of Stamens)—पुंकेसर या तो मुक्त हो सकते हैं या वे युक्त या संलग्न हो सकते हैं। पुंकेसरों का संलाग विभिन्न मात्रा में हो सकता है और इनको निम्न नामों से पुकारते हैं। (क) संलाग (adelphous) दशा—जब पुंकेसर केवल अपने पुंतन्तुओं द्वारा जुड़े रहते हैं और पराग कोश मुक्त रहते हैं; (ख) संपराग (syngenesious) दशा—जब पुंकेसर केवल अपने पराग कोशों द्वारा युक्त रहते हैं और पुंतन्तु मुक्त रहते हैं; (ग) संपुंकेसर (synandrous) दशा—जब पुंकेसर दोनों पुंतन्तुओं और पराग कोशों द्वारा युक्त रहते हैं। अतः इनके निम्न रूप पाये जाते हैं :

(१) एक संलाग पुंकेसर (Monadelphous Stamens)—जब सब पुंतन्तु युक्त होकर एक बंडल बनावें, लेकिन पराग कोश मुक्त रहें, तो पुंकेसरों को एक संलाग कहते हैं (चित्र २५३), जैसे गुड़हल कुल या मालवेसी (*Malvaceae*) में, उदाहरणार्थ गुड़हल, भिंडी, कपास, इत्यादि में। इनमें पुंतन्तु एक नलिकाकार संरचना में युक्त रहते हैं जिसको पुंकेसरीय नली (staminal tube) कहते हैं जो कि मुक्त पराग कोशों में अन्त होती है।
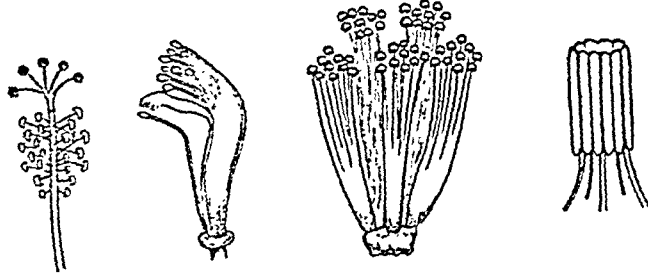
चित्र २५३

चित्र २५४

चित्र २५५

चित्र २५६

पुंकेसरों का संलाग। चित्र २५३—एक संलाग। चित्र २५४—द्विसंलाग। चित्र २५५—बहुसंलाग। चित्र २५६—संपराग।

(२) द्विसंलाग पुंकेसर (Diadelphous Stamens)—जब पुंतन्तु दो बंडलों में युक्त रहते हैं और पराग कोश मुक्त रहते हैं तो पुंकेसर को द्विसंलाग कहते हैं (चित्र २५४), जैसे मटर कुल या पैपिलिओनेसी (*Papilionaceae*) में, उदाहरणार्थ मटर, सेम, चना, झुनझुनिया, मंदार (coral tree), इत्यादि में। इनमें कुल दस पुंकेसर होते हैं, जिनमें से नौ एक बंडल में युक्त रहते हैं और दसवां मुक्त रहता है।

(३) बहुसंलाग पुंकेसर (Polyadelphous Stamens)—जब पुंतन्तु अनेक, दो से अधिक, बंडलों में युक्त रहते हैं लेकिन पराग कोश मुक्त

छोटे पुंकेसरों में एक निश्चित सम्बन्ध होता है। इस प्रकार तुलसी कुल या लेबिएटी (*Labiatae*) में, उदाहरणार्थ तुलसी (*Ocimum*), हलकुश (*Leonurus*) और गोमा (*Leucas aspera*), इत्यादि में चार पुंकेसर होते हैं, जिनमें दो लम्बे और दो छोटे होते हैं। ऐसे पुंकेसर (१) **द्विदीर्घक** (didynamous) कहे जाते हैं। क्रूसीफेरी (*Cruciferae*) में, उदाहरणार्थ सरसों, मूली, शलजम, राई, इत्यादि में छः पुंकेसर होते हैं, जिनमें चार लम्बे और दो छोटे होते हैं। ऐसे पुंकेसर (२) **चतुर्दीर्घक** (tetradynamous) कहलाते हैं। कभी-कभी एक ही पौधे के फूलों में से कुछ में लम्बे और कुछ में छोटे पुंकेसर होते हैं (द्विरूपी पुंकेसर, dimorphic stamens)। दल पुंज से सम्बन्धित पुंकेसरों की सापेक्ष (relative) लम्बाई भी दो प्रकार की हो सकती है: (१) पुंकेसर दलपुंज की नली से छोटे हो सकते हैं और उसके अन्दर ही स्थित रहते हैं। ऐसे पुंकेसरों को **निविष्ट** (inserted) कहते हैं; (२) और जब पुंकेसर दल पुंज नली से लम्बे होते हैं और नली के बाहर निकले रहते हैं तो उनको उत्क्षिप्त (exserted) कहते हैं।

चित्र २५९ चित्र २६०
पुंकेसरों की लम्बाई। चित्र २५९—द्विदीर्घक। चित्र २६०—चतुर्दीर्घक।

पराग कोश का स्फुटन (Dehiscence of the Anther)—जब परागकण परिपक्व (mature) हो जाते हैं तो वे अन्दर से पराग कोश की भित्ति पर दबाव डालते हैं। भित्ति स्फुटित हो जाती है और पराग कण बाहर निकल आते हैं। पराग कोश का स्फुटन चार विभिन्न विधियों से होता है: (१) **अनुदैर्घ्य** (longitudinal) **स्फुटन**—जब पराग कोश की पालियां अनुदैर्घ्य दिशा में स्फुटित होते हैं, जैसे धतूरा, शरीफा, सूर्यमुखी, गुड़हल, कपास, इत्यादि में; (२) **अनुप्रस्थ स्फुटन** (transverse dehiscence)—जब पराग कोश की पालियां चौड़ाई में स्फुटित होती हैं, जैसे लेबिएटी कुल के कुछ पौधों में; (३) **छिद्रिल स्फुटन** (porous dehiscence)—जब स्फुटन एक या अधिक अग्रस्थ छिद्रों द्वारा होता है, जैसे आलू, बैंगन, इत्यादि में, और (४) **कपाटीय स्फुटन** (valvular dehiscence)—जब स्फुटन एक या अधिक कपाटों द्वारा होता है, जो कि खिड़की के संवारकों (shutters) के समान केवल बाहर की ओर ही खुलते हैं, जैसे दारचीनी (cinnamon), कपूर, तेजपात (bay leaf) और बार्बेरी (barberry) में।
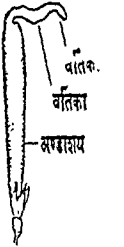
(४) जायांग या स्त्री-केसर (GYNOECIUM OR PISTIL)

जायांग या स्त्री-केसर फूल का चौथा या मादा जननेन्द्रिय आवर्त है और एक या अधिक स्त्री-केसरों का बना होता है। स्त्री-केसर रूपान्तरित पत्तियां हैं जिनका काम
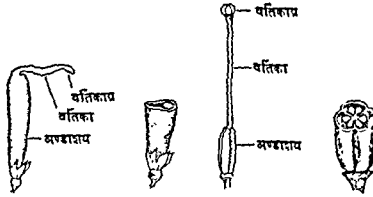
चित्र २६१ चित्र २६२ चित्र २६३ चित्र २६४

जायांग। चित्र २६१—मटर का एकि जायांग। चित्र २६२—एकि जायांग का एककोष्ठीय अण्डाशय। चित्र २६३—युक्ताण्डप जायांग। चित्र २६४—युक्ताण्डप जायांग का त्रिकोष्ठीय अण्डाशय। अण्डपों का आलोकन करो।

मादा बीजाणुओं या गुरु बीजाणुओं (megaspores) या भ्रूण-कोष (embryo-sac) को धारण करना है। गुरु बीजाणु धारण करने वाली ऐसी पत्तियों को गुरु बीजाणु पर्ण (megasporophyll) भी कहते हैं। जब स्त्री-केसर केवल एक अण्डप (carpel) का बना होता है तो उसको एकि (simple) या एकाण्डपी (mono-carpellary) कहते हैं (चित्र २६१-२६२), जैसे सेम, मटर, गुल मोहर, छुईमुई, इत्यादि में; जब यह दो या अधिक अण्डपों का बना होता है तो स्त्री-केसर को संयुक्त (compound) या बहुअण्डपी (polycarpellary) कहते हैं। संयुक्त स्त्री-केसर में अण्डप अलग्न या मुक्त (free) हो सकते हैं, जैसे गुलाब, कमल, सीडम (*Sedum*), चम्पक, मैग्नोलिया, कटीली चम्पा, यूनोना (*Unona*), इत्यादि में। ऐसे स्त्री-केसर को पृथक्-अण्डप या वियुक्ताण्डप (apocarpous; चित्र २६५-२६८) कहते हैं या जब सब अण्डप आपस में युक्त रहते हैं, जैसा कि सामान्यत देखा जाता है, तो स्त्री-केसर को युक्ताण्डप (syncarpous) कहते हैं (चित्र २६३-२६४)। प्रत्येक स्त्री-केसर के तीन भाग होते हैं—वर्तिकाग्र (stigma), वर्तिका (style) और अण्डाशय (ovary; चित्र २६३)। स्त्री-केसर के सूक्ष्म गोलाकार सिरे को वर्तिकाग्र कहते हैं; पतला वृन्त जो वर्तिकाग्र को सहारा देता है वर्तिका (style) कहलाता है; और स्त्री-केसर का फूला हुआ आधार का भाग अण्डाशय (ovary) कहलाता है। अण्डाशय में एक या

छोटे, गोलाकार अंडों के सदृश्य काय (bodies) होते हैं जो कि बीजों के अल्पविकसित रूप हैं और बीजाण्ड (ovules) कहलाते हैं। प्रत्येक बीजाण्ड में एक बड़ी अंडाकार

चित्र २६५ चित्र २६६ चित्र २६७ चित्र २६८
पृथक्-अण्डप जायांग। चित्र २६५—कमल। चित्र २६६—चम्पा।
चित्र २६७—गुलाब। चित्र २६८—सीडम। स्त्री, स्त्री-केसर।

कोशिका होती है जिसको भ्रूण-कोष (embryo-sac) कहते हैं (देखिये चित्र २८५)। अण्डाशय से फल और बीजाण्डों से बीज बनते हैं। पृथक्-अण्डप स्त्री-केसर से अनेक फल बनते हैं, उतने ही फल जितने उसमें मुक्त अण्डप होते हैं; लेकिन युक्ताण्डप स्त्री-केसर से केवल एक फल उत्पन्न होता है क्योंकि इस दशा में सब अण्डप मिलकर केवल एक अण्डाशय ही बनाते हैं। जब किसी स्त्री-केसर में वर्तिकाग्र अनुपस्थित रहता है या असामान्य रहता है, या अण्डाशय बीजाण्ड धारण नहीं करता या बीजाण्ड में भ्रूण-कोष या अंड कोशिका नहीं होती, तो स्त्री-केसर को वन्ध्य (sterile) कहते हैं। ऐसे स्त्री-केसर को वन्ध्य स्त्री-केसर (pistillode) भी कहते हैं।

युक्ताण्डप स्त्री-केसर में अण्डप (Carpels in Syncarpous Pistil)—युक्ताण्डप स्त्री-केसर में अण्डपों की संख्या को ज्ञात करना प्रायः कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को सरल करने के लिये निम्नलिखित बातें देखनी चाहिये। (१) वर्तिकाग्रों या वर्तिकाग्र पिंडकों की संख्या; (२) वर्तिकाओं की संख्या; (३) अण्डाशय के पिंडकों की संख्या; (४) अण्डाशय के विवरों या कोष्ठों (loculi) की संख्या; (५) अण्डाशय में जरायुओं (placentae) की संख्या; (६) अण्डाशय में बीजाण्डों के समूहों की संख्या। यह देखा जाता है कि अधिकतर दशाओं में ऊपर लिखे हुए विभिन्न भागों की संख्या युक्ताण्डप स्त्री-केसर के अण्डपों की संख्या की तदनुरूपी (corresponding) होती है।

अण्डाशय (The Ovary)—अण्डप एक रूपान्तरित पत्ती है। मटर, सेम, चना, आदि के फूलों से, जिनमें केवल एक ही अण्डप रहता है, हम अण्डप की पर्ण प्रकृति सिद्ध कर सकते हैं। ऐसे उदाहरणों में अण्डप या फली (pod) की तुलना एक ऐसी पत्ती

से की जा सकती है, जो कि मध्य-शिरा पर वलित (folded) हो। वलित अण्डप में जब दो तट आपस में मिलकर सायुज्यित हो जाते हैं तो एक विवर या कोष्ठ बन जाता है। अण्डप के सायुज्यित तटों की सन्धि को अक्षीय संधि (ventral suture) और मध्य-शिरा को जिस पर कि अण्डप वलित रहता है, पृष्ठ संधि

चित्र २६९ चित्र २७० चित्र २७१ चित्र २७२

अण्डाशय का विकास। चित्र २६९—क, सीमा पर बीजाण्डों सहित एक खुला हुआ स्त्री-केसर; ख, पृष्ठ संधि पर बीजाण्डों सहित स्त्री-केसर के वलित होने से बना हुआ एककोष्ठी अण्डाशय। चित्र २७०—क, एक पृथक्-अण्डप जायांग के पांच असलग्न स्त्री-केसरों से बना हुआ एककोष्ठी अण्डाशय; ख, पांच अण्डाशयों में से एक। चित्र २७१—युक्ताण्डप जायांग के तीन स्त्री-केसरों के तटों पर जुड़ने से बना हुआ एककोष्ठी अण्डाशय। चित्र २७२—तीन स्त्री-केसरों के अन्दर की ओर वलित होने और उनके तटों के केन्द्र पर मिलने से बना हुआ एक त्रिकोष्ठी अण्डाशय।

(dorsal suture) कहते हैं। अक्षीय संधि पर उतक का एक कूटक (ridge) विकसित होता है, जिसको जरायु (placenta) कहते हैं। यह अण्डप के दो तटों की तदनुरूपी (corresponding) दो पंक्तियों में बीजाण्डों को धारण करता है। अण्डप के वलित होने से जो बंद कोष्ठ बनता है और जो बीजाण्डों को समावृत करता है, अण्डाशय कहलाता है। जब अण्डप बंद होता है तो अग्रस्थ वृद्धि (apical growth) के कारण एक प्रक्षेप (projection) बन जाता है जो वर्तिकाग्र (stigma) और वर्तिका (style) में विभिन्न हो जाता है। पृथक्-अण्डप स्त्री-केसर में, जैसे रैननकुलस (*Ranunculus*) में, अण्डाशय ऊपर लिखी विधि से बनता है। लेकिन युक्ताण्डप स्त्री-केसर में अण्डप अपने तटों द्वारा युक्त रह सकते हैं और एककोष्ठी

छोटे, गोलाकार अंडों के सदृश्य काय (bodies) होते हैं जो कि बीजों के अल्पविकसित रूप हैं और बीजाण्ड (ovules) कहलाते हैं। प्रत्येक बीजाण्ड में एक बड़ी अंडाकार

चित्र २६५ चित्र २६६ चित्र २६७ चित्र २६८
पृथक्-अण्डप जायांग। चित्र २६५—कमल। चित्र २६६—चम्पा।
चित्र २६७—गुलाब। चित्र २६८—सीडम। स्त्री, स्त्री-केसर।

कोशिका होती है जिसको भ्रूण-कोष (embryo-sac) कहते हैं (देखिये चित्र २८५)। अण्डाशय से फल और बीजाण्डों से बीज बनते हैं। पृथक्-अण्डप स्त्री-केसर से अनेक फल बनते हैं, उतने ही फल जितने उसमें मुक्त अण्डप होते हैं; लेकिन युक्ताण्डप स्त्री-केसर से केवल एक फल उत्पन्न होता है क्योंकि इस दशा में सब अण्डप मिलकर केवल एक अण्डाशय ही बनाते हैं। जब किसी स्त्री-केसर में वर्तिकाग्र अनुपस्थित रहता है या असामान्य रहता है, या अण्डाशय बीजाण्ड धारण नहीं करता या बीजाण्ड में भ्रूण-कोष या अंड कोशिका नहीं होती, तो स्त्री-केसर को वन्ध्य (sterile) कहते हैं। ऐसे स्त्री-केसर को **वन्ध्य स्त्री-केसर** (pistillode) भी कहते हैं।

युक्ताण्डप स्त्री-केसर में अण्डप (Carpels in Syncarpous Pistil)—युक्ताण्डप स्त्री-केसर में अण्डपों की संख्या को ज्ञात करना प्रायः कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को सरल करने के लिये निम्नलिखित बातें देखनी चाहिये। (१) वर्तिकाग्रों या वर्तिकाग्र पिंडकों की संख्या; (२) वर्तिकाओं की संख्या; (३) अण्डाशय के पिंडकों की संख्या; (४) अण्डाशय के विवरों या कोष्ठों (loculi) की संख्या; (५) अण्डाशय में जरायुओं (placentae) की संख्या; (६) अण्डाशय में बीजाण्डों के समूहों की संख्या। यह देखा जाता है कि अधिकतर दशाओं में ऊपर लिखे हुए विभिन्न भागों की संख्या युक्ताण्डप स्त्री-केसर के अण्डपों की संख्या की तदनुरूपी (corresponding) होती है।

अण्डाशय (The Ovary)—अण्डप एक रूपान्तरित पत्ती है। मटर, सेम, चना, आदि के फूलों से, जिनमें केवल एक ही अण्डप रहता है, हम अण्डप की पर्ण प्रकृति सिद्ध कर सकते हैं। ऐसे उदाहरणों में अण्डप या फली (pod) की तुलना एक ऐसी पत्ती

से की जा सकती है, जो कि मध्य-शिरा पर वलित (folded) हो। वलित अण्डप में जब दो तट आपस में मिलकर सायुज्यित हो जाते हैं तो एक विवर या कोष्ठ बन जाता है। अण्डप के सायुज्यित तटों की सन्धि को अक्षीय संधि (ventral suture) और मध्य-शिरा को जिस पर कि अण्डप वलित रहता है, पृष्ठ संधि

चित्र २६९ चित्र २७० चित्र २७१ चित्र २७२

अण्डाशय का विकास। चित्र २६९—क, सीमा पर बीजाण्डों सहित एक खुला हुआ स्त्री-केसर; ख, पृष्ठ संधि पर बीजाण्डों सहित स्त्री-केसर के वलित होने से बना हुआ एककोष्ठी अण्डाशय। चित्र २७०—क, एक पृथक्-अण्डप जायांग के पांच अलग्न स्त्री-केसरों से बना हुआ एककोष्ठी अण्डाशय; ख, पांच अण्डाशयों में से एक। चित्र २७१—युक्ताण्डप जायांग के तीन स्त्री-केसरों के तटों पर जुड़ने से बना हुआ एककोष्ठी अण्डाशय। चित्र २७२—तीन स्त्री-केसरों के अन्दर की ओर वलित होने और उनके तटों के केन्द्र पर मिलने से बना हुआ एक त्रिकोष्ठी अण्डाशय।

(dorsal suture) कहते हैं। अक्षीय संधि पर ऊतक का एक कूटक (ridge) विकसित होता है, जिसको जरायु (placenta) कहते हैं। यह अण्डप के दो तटों की तदनुरूपी (corresponding) दो पंक्तियों में बीजाण्डों को धारण करता है। अण्डप के वलित होने से जो बंद कोष्ठ बनता है और जो बीजाण्डों को समावृत करता है, अण्डाशय कहलाता है। जब अण्डप बंद होता है तो अग्रस्थ वृद्धि (apical growth) के कारण एक प्रक्षेप (projection) बन जाता है जो वर्तिकाग्र (stigma) और वर्तिका (style) में विभिन्न हो जाता है। पृथक्-अण्डप स्त्री-केसर में, जैसे रैननकुलस (*Ranunculus*) में, अण्डाशय ऊपर लिखी विधि से बनता है। लेकिन युक्ताण्डप स्त्री-केसर में अण्डप अपने तटों द्वारा युक्त रह सकते हैं और एककोष्ठी

(one-chambered) अण्डाशय बनाते हैं, जैसे ऑर्किड (orchids) में, या अण्डप अन्दर की ओर वलित रहते हैं और उनके तट केन्द्र पर मिलते हैं। इस प्रकार एक बहुकोष्ठी अण्डाशय बन जाता है जिसके मध्य में एक अक्ष होता है, जैसे गुड़हल में। कभी-कभी कूट विभाजन भित्तियों (false partition walls) के कारण अण्डाशय में अण्डपों की संख्या से अधिक विवर बन जाते हैं, जैसे धतूरा में। जिम्नोस्पर्म्स (gymnosperms) में अण्डप अण्डाशय बनाने के लिये बन्द नहीं होते और, इसलिये उनमें वर्तिकाग्र, वर्तिका और अण्डाशय नहीं होते। उनमें बीजाण्ड खुले अण्डप के तटों पर नग्न रहते हैं।

वर्तिका (The Style)—वर्तिका अण्डाशय की पतली प्रक्षेप (projection) है जो प्रायः उसके शिखर से निकलती है (चित्र २६३)। जब कि वर्तिका अण्डाशय की सीध में रहती है, जैसा कि साधारणतः पाया जाता है, तो उसको **अग्रस्थ** (terminal or apical) कहते हैं। फिर भी कभी-कभी, जैसे स्ट्राबेरी में, अण्डाशय का अग्रक (apex) एक ओर को मुड़ जाता है और वर्तिका अण्डाशय के एक पार्श्व से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है, तब उसको **पार्श्व** (lateral) कहते हैं। तुलसी कुल या लैबिएटी (*Labiatae*) और हिलियोट्रोपियम (*Heliotropium*) में अण्डाशय चार पालियों का बना होता है, और वर्तिका अण्डाशय के मध्य में स्थित दबे हुए भाग से उत्पन्न होती है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह अण्डाशय के आधार या सीधे पुष्पाक्ष से उत्पन्न हुई हो। इस प्रकार की वर्तिका को **जायाँग आधारिक** (gynobasic) कहते हैं (चित्र २७३)।
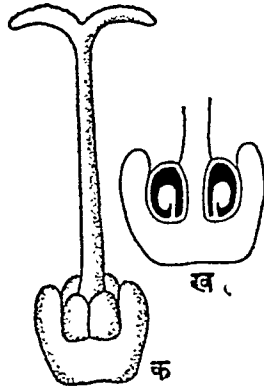
चित्र २७३—तुलसी का जायांग आधारिक वर्तिका। क, पुष्पाक्ष पर सम्पूर्ण जायांग। ख, उसी का अनुदैर्घ्य काट। विम्ब का आलोकन करो।

वर्तिकाग्र (The Stigma)—वर्तिकाग्र सामान्यतः वर्तिका के अग्र भाग पर होता है और आकार में मुण्डाकार (knob-like) या कभी-कभी जरा सा नुकीला होता है। यह चिपिटित (flattened) या दीर्घित (elongated) भी हो सकता है। संयुक्त स्त्री-केसर में यह सामान्यतः पिंडकीय होता है और इन पिण्डकों की संख्या अण्डपों की संख्या के तदनुरूप होती है। प्रायः यह विकिरक किरणों (radiating rays) के समान विभाजित होता हुआ प्रतीत होता है। वर्तिकाग्र का तल चिक्कण या खुरदरा हो सकता है, लेकिन जब यह परिपक्व होता है तो चिपचिपा हो जाता है और पराग कण इस पर चिपक जाते हैं। कई दशाओं में

पक्षरोमल या पिच्छवत् होता है जिससे हवा में उड़ते हुए पराग कणों को आसानी से पकड़ लेता है।

अण्डपों का संलाग (Cohesion of Carpels-syncarpy)—अण्डप या तो अपनी पूरी लम्बाई में संयुक्त रहते हैं, जैसे कि अधिकांश युक्ताण्डप स्त्री-केसरों में या ये केवल अण्डाशय के प्रदेश में ही संयुक्त रहते हैं और वर्तिका और वर्तिकाग्र मुक्त रहते हैं, जैसे डाइएन्थस (*Dianthus*), अलसी (*Linum*) और भिण्डी में; या अण्डप केवल अण्डाशय और वर्तिका के प्रदेश में युक्त रहते हैं और वर्तिकाग्र अलग्न रहते हैं, जैसे कपास और गुड़हल में; या अण्डप केवल वर्तिका और वर्तिकाग्र के प्रदेश में युक्त रहते हैं और अण्डाशय मुक्त रहते हैं, जैसे विंका (*Vinca*), कनेर (*Nerium*) में; या कभी-कभी अण्डप केवल वर्तिकाग्र के प्रदेश में ही युक्त रहते हैं, जैसे मदार (*Calotropis*) में।
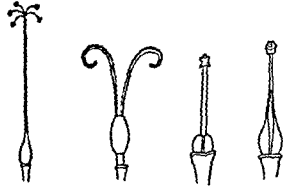
चित्र २७४ चित्र २७५ चित्र २७६ चित्र २७७

अण्डपों का संलाग। चित्र २७४—गुड़हल का स्त्री-केसर अलग्न वर्तिकाग्रों सहित। चित्र २७५—डाइएन्थस का स्त्री-केसर अलग्न वर्तिकाओं सहित। चित्र २७६—कनेर का स्त्री-केसर अलग्न अण्डाशयों सहित। चित्र २७७—मदार का स्त्री-केसर अलग्न अण्डाशयों और वर्तिकाओं सहित।

जरायुन्यास (PLACENTATION)

जरायु (placenta) अण्डाशय में ऊतक का एक कूटक (ridge) है—एक मृदूतकीय उद्वर्ध (parenchymatous outgrowth)—जिस पर बीजाण्ड (ovules) लगे रहते हैं। जरायु प्रायः अण्डपों के तटों पर विकसित होते हैं, या तो उनके संयुक्ति रेखा की पूरे भाग पर जिसको संधि (suture) कहते हैं, या उनके आधार या शिखर पर। जिस क्रम में जरायु अण्डाशय के विवर में वटित रहते हैं उस विधि को जरायुन्यास (placentation) कहते हैं। नियमानुसार बीजाण्ड या बीजाण्डों के समूह का उद्भव (origin) जरायु की स्थिति निश्चित करता है।

जरायुन्यास के प्रकार (Types of Placentations; चित्र २७८-२८४)—एकि अण्डाशय (एक अण्डप का) में एक सामान्य प्रकार का जरायुन्यास पाया जाता है जिसे सीमान्त (marginal) जरायुन्यास कहते हैं, और संयुक्त अण्डाशय (दो या दो से अधिक अण्डपों के युक्त होने से) में जरायुन्यास अक्षवर्ती (axile), भित्तिलग्न (parietal), आधारीय (basal), अलग्न केन्द्रीय (free-central), केन्द्रीय (central), और धरातलीय (superficial) होते हैं।

(१) सीमान्त (Marginal)—सीमान्त जरायुन्यास (चित्र २७८) में अण्डाशय में एक कोष्ठ या वेश्म होता है और जरायु अण्डप के दोनों सीमाओं के सन्धि-स्थान

चित्र २७८ चित्र २७९ चित्र २८०

क ख
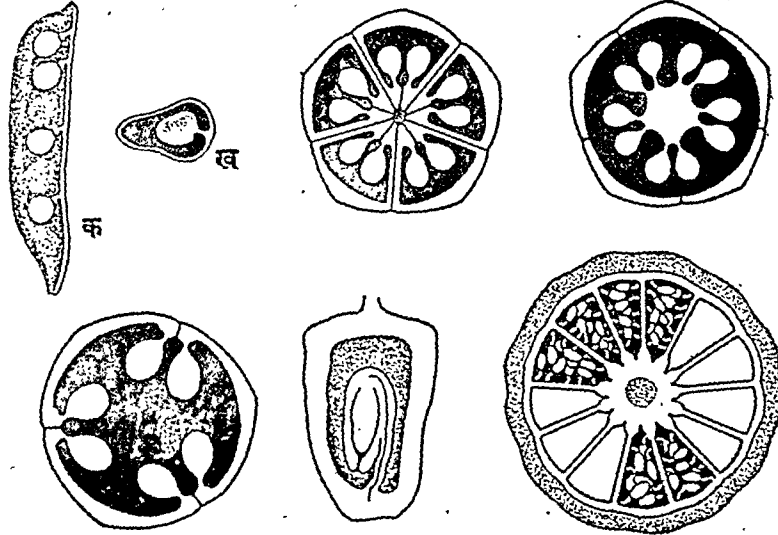
चित्र २८१ चित्र २८२ चित्र २८३

जरायुन्यास के प्रकार। चित्र २७८—सीमान्त; क, अनुदैर्घ्य काट; ख, अनुप्रस्थ काट। चित्र २७९—अक्षवर्ती। चित्र २८०—केन्द्रीय। चित्र २८१—भित्तिलग्न। चित्र २८२—आधारीय। चित्र २८३—धरातलीय।

से निकलता है जिसको अक्षीय संधि (ventral suture) कहते हैं। यह लेग्युमीनोसी (*Leguminosae*) कुल के पौधों, जैसे मटर, चना, गुल मोहर, अमलतास (*Cassia*), छुईमुई, इत्यादि में पाया जाता है। वह रेखा या संधि जो अण्डप की मध्य-शिरा के तदनुरूप होती है पृष्ठ संधि (dorsal suture) कहलाती है और यहां पर जरायु विकसित नहीं होता।

(२) अक्षवर्ती (Axile)—अक्षवर्ती जरायुन्यास में (चित्र २७९) अण्डाशय बहुकोष्ठी (many-chambered) होता है और प्रायः उतने ही कोष्ठ होते हैं जितने अण्डप। जरायु जिस पर बीजाण्ड लगे रहते हैं केन्द्रीय अक्ष से निकलता है जो अण्डपों की संगमीय (confluent) सीमाओं के तदनुरूपी है और इसी कारण इसका नाम अक्षवर्ती पड़ गया है, जैसे नींबू, संतरा, गुड़हल, टमाटर, आलू, इत्यादि में।

(३) केन्द्रीय (Central)—केन्द्रीय जरायुन्यास (चित्र २८०) में पट (septa) या विभाजक भित्तियां (partition walls) तरुण अण्डाशय में ही टूट जाती हैं और इस प्रकार अण्डाशय एककोष्ठी (unilocular) हो जाता है और जरायु जिन पर बीजाण्ड लगे रहते हैं केन्द्रीय अक्ष के चारों ओर विकसित होते हैं, जैसे कैरियोफिलेसी (*Caryophyllaceae*) कुल के पौधों में, उदाहरणार्थ डायन्थस (*Dianthus*), पोलीकार्पोन (*Polycarpon*), सैपोनेरिया (*Saponaria*) स्टेलेरिया (*Stellaria*) इत्यादि में। परिपक्व अण्डाशय में विभाजक भित्तियों के अवशेष प्रायः देखे जा सकते हैं।

(४) अलग्न-केन्द्रीय (Free-central)—अलग्न केन्द्रीय जरायुन्यास में (चित्र २८४) जरायु अण्डाशय के आधार से उत्पन्न होता है और अण्डाशय के विवर में एक फूले हुये केन्द्रीय अक्ष के रूप में बढ़ जाता है और अपने तल पर चारों ओर बीजाण्ड धारण करता है। क्योंकि जरायु अण्डाशय के एक कोष्ठ में अलग्न रहता है, इसलिये इस जरायुन्यास को अलग्न-केन्द्रीय कहते हैं। यह प्रिमुला (*Primula*) में दिखाई देता है।

चित्र २८४—प्रिमरोज़ या अलग्न केन्द्रीय जरायुन्यास।

(५) भित्तिलग्न (Parietal)–भित्तिलग्न जरायुन्यास में (चित्र २८१) अण्डाशय एककोष्ठी होता है और बीजाण्डों को धारण किये हुए जरायु अण्डाशय के अन्दर की भित्ति पर विकसित होते हैं। उनकी स्थिति अण्डपों की संगमीय सीमाओं (confluent margins) के तदनुरूपी है और उनकी संख्या अण्डपों की संख्या के तदनुरूपी है, जैसे पपीता, पोस्त, सत्यानाशी (prickly poppy), सरसों, अंजीर, इत्यादि में।

(६) आधारीय (Basal)—आधारीय जरायुन्यास में (चित्र २८२) अण्डाशय एककोष्ठी होता है और जरायु सीधे पुष्पाक्ष पर विकसित होता है और अण्डाशय के आधार पर केवल एक बीजाण्ड धारण करता है। यह सूर्यमुखी कुल या कम्पोज़िटी के पौधों, जैसे सूर्यमुखी, गेंदा, इत्यादि में मिलता है।

(७) धरातलीय (Superficial)—धरातलीय जरायुन्यास में (चित्र २८३) अण्डाशय बहुकोष्ठी होता है और अक्षवर्ती जरायुन्यास के समान इसमें भी अनेक
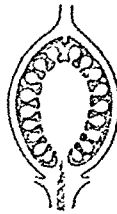
अण्डप होते हैं; लेकिन इस दशा में जरायु विभाजन भित्तियों के आन्तर तल के चारों ओर विकसित होते हैं, जैसे जल नलिनी में।

बीजाण्ड (THE OVULE)

बीजाण्ड की संरचना (Structure of the Ovule)—प्रत्येक बीजाण्ड (चित्र २८५) जरायु से एक पतले वृन्त से संयोजित (attached) रहता है, जिसको (१) बीजाण्ड वृन्तिका (funicle) कहते हैं। वह विन्दु, जिस पर बीजाण्ड का काय (body) अपने वृन्त या बीजाण्ड वृन्तिका से संयोजित रहता है (२) वृंतक (hilum) कहलाता है। विपर्यस्य (inverted) बीजाण्ड में, जैसे चित्र २८५ में दिखलाया गया है, बीजाण्ड वृन्तिका बीजाण्ड के शरीर के एक तरफ वृन्तक से आगे जाता है और एक कूटक (ridge) बनाता है। इस कूटक को (३) संधिरेखा (raphe) कहते हैं। बीजाण्ड का मुख्य भाग (४) प्रदेश (nucellus) कहलाता है और यह दो आवरणों
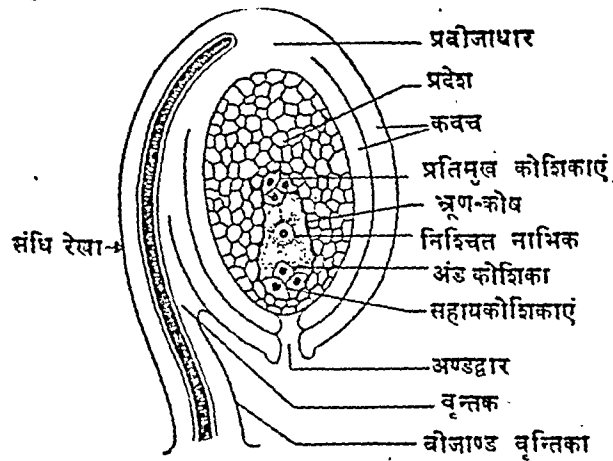
चित्र २८५—बीजाण्ड अनुदैर्घ्य काट में।

से आवरित रहता है, जिनको (५) कवच या आवरण (integuments) कहते हैं। जिम्नोस्पर्म्स (gymnosperms), कम्पोजिटी (*Compositae*) और युक्तदली दलपुंज वाले कुछ अन्य कुलों (families) में केवल एक आवरण होता है। कुछ पराश्रयी पौधों, जैसे चन्दन (*Santalum*) और लोरेन्थस (*Loranthus*) में आवरण नहीं होता। आवरण के शिखर पर एक छोटा सा छिद्र रह जाता है, जिसको (६) अण्डद्वार (micropyle) कहते हैं। प्रदेश का आधार जहां से आवरण निकलता है (७) प्रबीजाधार (chalaza) कहलाता है। अन्त में प्रदेश में न्याविष्ट (embedded) एक अण्डाकार कोशिका, अण्डद्वार वाले
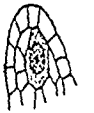
किनारे की ओर होती है, (८) इसे भ्रूण-कोष (embryo-sac) कहते हैं, अर्थात् वह कोष जो भ्रूण को धारण करता है। यह बीजाण्ड का सबसे महत्वपूर्ण भाग है।

भ्रूण-कोष का विकास और संरचना (Development and Structure of the Embryo-sac)—भ्रूण-कोष (चित्र २८५) निम्नलिखित विधि से विकसित होता है (चित्र २८६)। अण्डाशय के विवर (cavity) में बीजाण्ड पहले पहल एक छोटे प्रोद्वर्ध (protuberance) के रूप में जरायु से निकलता है (क)। उसमें प्रारम्भिक अवस्था में ही एक कोशिका—भ्रूण-कोष की मातृ कोशिका (mother-cell)—प्रदेश में स्पष्ट हो जाती है (ख)। मातृ कोशिका आकार
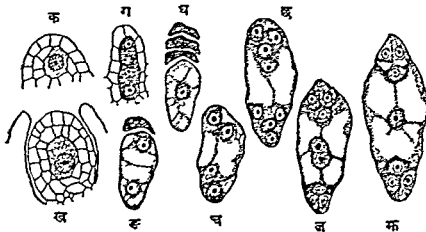
चित्र २८६—भ्रूण-कोष का विकास। क-ज, विकास की अवस्थाएं; झ, पूर्ण विकसित भ्रूण-कोष।

में बढ़ती है और दो बार विभाजित होकर चार गुरु बीजाणुओं (megaspores) की एक पंक्ति बनाती है, जिनको रेखाकार चतुष्टक (linear tetrad) कहते हैं (ग)। यह अवलोकन करने योग्य बात है कि मातृ कोशिका के दो क्रमिक कोशिका भाजन में से एक ह्रास विभाजन (reduction division) होता है। इस प्रकार बनी हुई चार कोशिकाओं में, जिनमें प्रत्येक में सामान्य गुण सूत्रों की संख्या (२n) की अर्ध संख्या (n) रह जाती है, ऊपर की तीन कोशिकाएं ऊपकर्ष (degenerate) हो जाती हैं और काली टोपियों के समान दिखती हैं, लेकिन सबसे नीचे वाली कोशिका कार्य करती है (घ)। इस कोशिका के नाभिक का विभाजन होता है और दो अनुजात नाभिक (daughter nuclei) दो ध्रुवों (poles) की ओर चले जाते हैं (ङ)। ये फिर विभाजित होते हैं और इस प्रकार इनकी संख्या बढ़ कर चार हो जाती है (च)। इनमें से प्रत्येक नाभिक फिर से विभाजित होता है और

इस प्रकार भ्रूण-कोप में आठ नाभिक वन जाते हैं, जिनमें से चार-चार नाभिक दोनों सिरों पर होते हैं (छ)। भ्रूण-कोप आकार में वृद्धि करता है। दोनों सिरों में से एक-एक नाभिक अन्दर की ओर वढ़ता है और दो ध्रुवीय नाभिक आपस में सायुज्जित हो जाते हैं और निश्चित नाभिक (definitive nucleus) वनाते हैं (ज)। अण्डद्वार की ओर स्थित तीन अवशेपी नाभिक, जिनमें से प्रत्येक एक पतली भित्ति द्वारा घिरा रहता है, अण्ड समुच्चय या अण्ड साकल्य (egg-apparatus) वनाते हैं। अन्य तीन नाभिक जो विपरीत किनारे या प्रवीजाधार वाले सिरे पर होते हैं और एक समूह में या कभी-कभी एक पंक्ति में रहते हैं तथा प्रायः बहुत पतली भित्तियों से परिवारित रहते हैं, मिलकर **प्रतिमुख कोशिकाएं** (antipodal cells) वनाते हैं (झ)।

उन तीन कोशिकाओं में जो अण्ड समुच्चय वनाते हैं, एक स्त्री युग्मक (female gamete) होती है और **अण्ड कोशिका** (egg-cell) या अण्ड गोल (oosphere or ovum) कहलाती है, और अन्य दो **सहायकोशिकाएं** (synergids) कहलाती हैं। सहायकोशिकाएं नाशपातीनुमा होती हैं और अण्ड कोशिका जो वड़ी होती हैं उनके नीचे स्थित होती हैं। अण्ड कोशिका निषेचन या गर्भाधान (fertilization) के पश्चात भ्रूण वनाती है और सहायकोशिकाएं पराग नलिका का पथ प्रदर्शन करके गर्भाधान की क्रिया में सहायता करती हैं। जैसे ही उनका कार्य समाप्त हो जाता है वे विघटित (disorganized) हो जाती हैं। **प्रतिमुख कोशिकाओं** का कोई काम नहीं होता इसलिये अन्त में वे भी विघटित हो जाती हैं। **निश्चित नाभिक** निषेचन के पश्चात (अव इसको भ्रूण-पोप नाभिक कहते हैं) भ्रूण-पोप वनाता है।
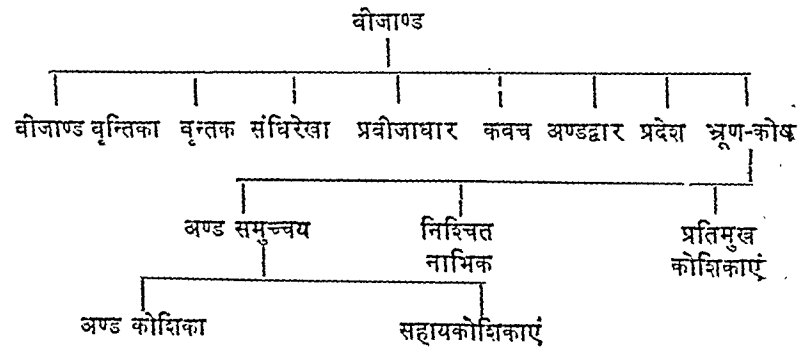
बीजाण्डों के प्रकार (Forms of Ovules)—बीजाण्ड निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं।

(१) ऊर्ध्वमुख (Orthotropous)—जव बीजाण्ड ऊर्ध्व या सीधा रहता है ताकि वीजाण्ड वृन्तिका, प्रवीजाधार और अण्डद्वार एक ही उदग्र रेखा में रहते हैं, जैसे
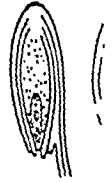
पौलीगोनेसी (*Polygonaceae*) के पौधों में, उदाहरणार्थ पौलीगोनम (*Polygonum*), खट्टा पालक (*Rumex*) इत्यादि, और पाइपरेसी (*Piperaceae*) के पौधों में, उदाहरणार्थ पान, चाव (*Piper chaba*), पिपली (*Piper longum*) काली मिर्च (*Piper nigrum*), इत्यादि में।

(२) अधोमुख (Anatropous or Inverted)—जब बीजाण्ड बीजाण्ड वृन्तिका पर मुड़ जाता है, जिससे अण्डद्वार वृन्तक के समीप रहता है ; अण्डद्वार और प्रबीजाधार एक ही सीधी रेखा में रहते हैं लेकिन बीजाण्ड वृन्तिका उनके सीध में नहीं रहता। यह सबसे सामान्य बीजाण्ड है।

चित्र २८७
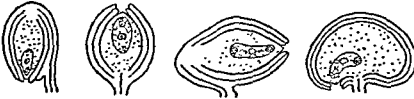
चित्र २८८

चित्र २८९

चित्र २९०

बीजाण्डों के प्रकार। चित्र २८७–अधोमुख। चित्र २८८–ऊर्ध्वमुख। चित्र २८९—तिर्यक् मुख। चित्र २९०–वक्रावर्त।

(३) तिर्यक् मुख या अनुप्रस्थ (Amphitropous or Transverse)–जब बीजाण्ड अनुप्रस्थ रूप से बीजाण्डवृन्तिका के समकोण पर स्थित रहता है, जैसे लेम्ना (*Lemna*) में।

(४) वक्रावर्त (Campylotropous or Curved)–जब अनुप्रस्थ बीजाण्ड नाल के समान मुड़ा रहता है ताकि अण्डद्वार और प्रबीजाधार एक ही सीधी रेखा में नहीं रहते हैं, जैसे चना, सेम, करील या कैपेरिस (*Capparis*), क्रूसीफेरी या सरसों कुल के पौधों, गुलअब्बास (*Mirabilis*) और पौलीकार्पोन (*Polycarpon*), इत्यादि में।

अध्याय ९

परागण (POLLINATION)

पराग कणों के पराग कोश से वर्तिकाग्र तक स्थानान्तरण (transference) की क्रिया को परागण कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है, अर्थात् (१) स्वयं-परागण (self-pollination or autogamy) और (२) पर-परागण (cross-pollination or allogamy)। स्वयं-परागण में एक फूल के पराग कण उसी फूल के वर्तिकाग्र पर सीधे गिरते हैं और पर-परागण में एक फूल के पराग कण दूसरे फूल के

वर्तिकाग्र तक ले जाये जाते हैं। परागण के पश्चात पुंकेसर और दल (पखुंड़िया) गिर जाते हैं। वाह्यदल पुंज भी उसी प्रकार गिर सकता है या यह फल में चिरलग्न रह सकता है।

१. स्वयं-परागण (Self-pollination or Autogamy)

यह केवल द्विलिंगी फूलों में ही हो सकता है। द्विलिंगी फूलों में भी प्रायः कुछ ऐसी उपकरण विधियां (mechanisms) होती हैं जो स्वयं-परागण को पूर्णतः रोक देती हैं। पर-परागण प्रकृति में नियम है और स्वयं-परागण अधिकांश दशाओं में न्यूनाधिकतः घटनाक्रमजन्य (incidental) होता है। कुछ विशेष उदाहरणों को छोड़कर स्वयं-परागण उसी समय होता है जब पर-परागण असफल हो जाता है। स्वयं-परागण को सफल बनाने के लिये फूलों में निम्नलिखित कुछ अनुकूलन पाये जाते हैं। हर दशा में फूल का द्विलिंगी (bisexual) होना आवश्यक है।

(१) सहविध पुष्पता (Homogamy)–यह वह दशा है जब द्विलिंगी पुष्प में पराग कोश और वर्तिकाग्र एक ही समय परिपक्व होते हैं। (क) इस दशा में कुछ पराग कणों का कीड़ों और वायु की सहायता से उसी फूल के वर्तिकाग्र तक पहुंचना सम्भव है और इस प्रकार स्वयं-परागण हो जाता है। (ख) कभी-कभी, जैसे गुलअब्बास में, जब पराग कोश परिपक्व होते हैं पुंतन्तु प्रतिकुंडलित होकर पराग कोश को वर्तिकाग्र के समीप लाते हैं। तब पराग कोश फटते हैं और अपने पराग कणों को वर्तिकाग्र के धरातल पर गिरा देते हैं, और इस प्रकार स्वयं-परागण हो जाता है। कुछ दशाओं में इसके विपरीत भी होता है, अर्थात् वर्तिकाग्र बढ़ कर पुंकेसरों को छूता है और इस प्रकार स्वयं-परागण हो जाता है, जैसे कभी-कभी सूर्यमुखी कुल या कम्पोज़िटी (*Compositae*), और गुड़हल कुल या मालवेसी (*Malvaceae*) में देखा जाता है। (ग) कुछ लटके हुये फूलों में यह देखा जाता है कि वर्तिका पुंतन्तु से लम्बी होती है और कुछ ऊर्ध्व (erect) फूलों में पुंतन्तु वर्तिका से लम्बा होता है और इस प्रकार दो दशाओं में स्वयं-परागण आसानी से हो जाता है। (घ) गोतगंधल (*Ixora*), गंधराज (*Gardenia*), सदाबहार (*Vinca*), इत्यादि में पराग कोश संकीर्ण दल पुंज नलिका (corolla tube) के मुंह पर स्थित रहता है और जैसे ही वर्तिकाग्र नलिका से बाहर निकलता है पराग कोश फटते हैं और वर्तिकाग्र पर पराग कणों को गिरा देते हैं।
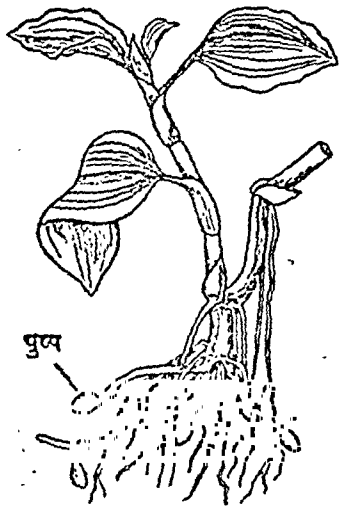
चित्र २९१—कनकोआ के भूमिगत पुष्प।

(२) अस्पष्ट पुष्पता (Cleistogamy)—कुछ ऐसे द्विलिंगी पुष्प होते हैं जो कभी नहीं खुलते। ऐसे फूलों को अस्पष्ट पुष्पी पुष्प कहते हैं। ऐसे फूलों में या तो पराग कोश वर्तिकाग्र के बहुत समीप रहते हैं, या एक दूसरे के ऊपर कुंडलित रहते हैं और इस प्रकार जैसे ही पराग कोश फटते हैं पराग कण उसी फूल के वर्तिकाग्र पर गिर जाते हैं। अस्पष्ट पुष्पता कनकौआ (*Commelina bengalensis*; चित्र २९१) के भूमिगत पुष्पों में देखने को मिलती है। ऐसे पुष्प बहुत ही छोटे और अनभिदृश्य (inconspicuous) होते हैं। वे कभी रंगीन नहीं होते और मकरन्द भी स्रवण नहीं करते, और न ही इनमें कोई गन्ध होती है। अस्पष्ट पुष्पता वायोला (*Viola*), बालसम (*Impatiens*), ड्रोसेरा (*Drosera*), खट्टी बूटी (*Oxalis*) इत्यादि की कुछ स्पीशीज में देखी जाती है।

२. पर-परागण (Cross-pollination or Allogamy)

पर-परागण की विधियां (Modes of Cross-pollination)—पर-परागण बाह्य अभिकर्ताओं (agents) द्वारा होता है जो एक फूल के पराग कणों को ले जाकर दूसरे फूल के वर्तिकाग्र पर जमा कर देते हैं। यह अभिकर्ता कीड़े (कीट) (मधुमक्खी, मक्खियां, पतंगें, इत्यादि), जन्तु (चिड़ियां, घोंघे, इत्यादि), वायु, और जल हैं। एकलिंगी फूलों में पर-परागण नियम है; और द्विलिंगी फूलों में यह सामान्यतः घटित पाया जाता है।

(१) कीट परागिता (Entomophily)—पौधों में कीड़ों द्वारा परागण बहुत सामान्यतः पाया जाता है। कीट परागित या कीट प्रिय फूलों में नाना प्रकार के अनुकूलन पाये जाते हैं जिनके द्वारा वे परागण के लिये कीटों को आकर्षित करते हैं। मुख्य उपयोजन रंग, मकरन्द (nectar) और सुगन्ध है। कुछ फूलों में विशेष अनुकूलन भी पाये जाते हैं।

रंग (Colour)—सबसे मुख्य अनुकूलन दलों का रंग है। इस रूप में फूल जितने ही चटकीले रंग का होता है और उसका आकार जितना ही अनियमित होता है उतना ही कीट उसकी ओर अधिक आकर्षित होते हैं। कभी-कभी जब कि फूल स्वयं अभिदृश्य (conspicuous) नहीं होता तो कीटों को आकर्षित करने के लिये अन्य भाग रंगीन और शोभनीय (showy) हो जाते हैं। जैसे बेबीना (*Mussaenda*; देखिये चित्र २१५) में एक बाह्यदल एक बड़े सफेद या रंगीन पर्ण सदृश संरचना में रूपान्तरित हो जाता है और कीटों को आकर्षित करने के लिये विज्ञापन के झण्डे का काम करता है। बगन विलास (*Bougainvillea*; चित्र २१२), पनसटिया (*Euphorbia pulcherrima*) में निपत्र बहुत चटकीले ग के होते हैं और इस प्रकार पुष्प को आकर्षक और अभिदृश्य बनाते हैं। केला और सूरन कुल

के पौधों (aroids), उदाहरणार्थ कचालू (*Colocasia*), मनकन्द (*Alocasia*), जमीकन्द (*Amorphophallus*), इत्यादि में, इसी काम के लिये पृथुपर्ण (spathe) चमकीले रंगीन होते हैं।

मकरन्द (Nectar)—दूसरा मुख्य अनुकूलन **मकरन्द** है। लगभग सभी युक्तदली दल मकरन्द स्रावण करते हैं जो कीटों, विशेषकर मधुमक्खियों, के लिये एक आकर्षण होता है। मकरन्द एक विशेष ग्रन्थि के अन्दर रहता है जिसको मकरन्द कोष (nectary) कहते हैं, और कभी-कभी एक विशेष संरचना के अन्दर होता है जिसे स्पर (spur) कहते हैं (देखिये पृष्ठ १३५)। मकरन्द कोष किसी पुष्प आवर्त के आधार पर स्थित रहता है और जब मधुमक्खियां मकरन्द कोष या स्पर से मकरन्द एकत्रित करती हैं तो वे प्रसंगवश परागण भी कर देती हैं।

मधुमक्खियां बहुत चतुर कीट हैं। वे केवल उन्हीं फूलों पर जाती हैं जो मकरन्द स्रावण करते हैं। इस बात में साधारण मक्खियां मूर्ख होती हैं। से सर्वदा फूलों के रंग से आकर्षित होती हैं और जहां तक मकरन्द का प्रश्न है धोखा खाती हैं। मधुमक्खियां अपने कार्य में बहुत चपल होती हैं। सर जॉन ल्यूबक ने बहुत सावधानी से आलोकन करके मालूम किया कि एक ही मधुमक्खी कुछ मिनटों के पश्चात् फूल पर फिर आती है। वह मकरन्द एकत्रित करती है, छत्ते में लौटकर जाती है, उसे वहां जमा कर देती है और अपने साथियों को लेकर कुछ मिनटों में वापस लौट आती है। इस प्रकार अकेली मक्खी एक दिन में सौ से अधिक फूलों को परागित कर सकती है। मधुमक्खियों के समूह को फूलों से लदे हुए क्षुपों या पेड़ों, जैसे संतरा पर भनभनाते हुए देखना सामान्य दृश्य है।

चित्र २९२—जमीकन्द का स्थूल मंजरी।

सुगन्ध (Scent)—तीसरा मुख्य अनुकूलन सुगन्ध है। अनेक कीट परागित पुष्प एक मोहक सुगन्ध देते हैं जिससे दूर से ही वह कीटों को आकर्षित कर लेते हैं। रात में जब कि रंग नहीं दिखाई देते तो सुगन्ध के द्वारा कीट पुष्प की ओर विशेष रूप से पहुंच जाते हैं। इस प्रकार रात्रि के पुष्प नियमित रूप से मीठी सुगन्ध वाले होते हैं, उदाहरणार्थ हर सिंगार
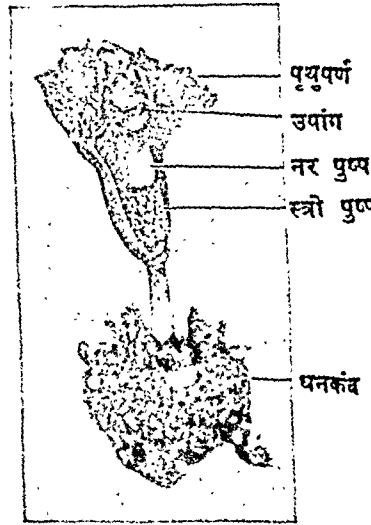
(*Nyctanthes*), रात की रानी (*Cestrum*), चमेली, लाल मालती (*Quisqualis*) इत्यादि। कभी-कभी जो सुगन्ध मनुष्य को असह्य होती हैं, उसे कुछ छोटे कीड़े बहुत अधिक पसन्द करते हैं, जैसे सूरन के पुष्पक्रम का अनुबंध (appendix) एक दुर्गन्ध निकालता है जो कि सड़े हुए मांस से भी अधिक बदबूदार होता है और शवभोजी मक्खियों (carrion-flies) का समूह इसकी ओर आकर्षित होता है तथा उनके द्वारा इसका परागण होता है।

कीट परागित पुष्पों के पराग कण या तो चिपचिपे होते हैं या उनमें कंटीले उद्वर्ध होते हैं। इनका वर्तिकाग्र भी चिपचिपा होता है। बहुत से कीटों के लिये पराग कण उत्तम भोजन का कार्य भी करते हैं। पुष्प कीटों को अपने रंग, मकरन्द या सुगन्ध से आकर्षित करते हैं। कभी-कभी कीट फूलों के पास भोजन की खोज में, या वर्षा व धूप से बचने के लिये आते हैं। जब वे फूलों पर आते हैं और खाद्य पदार्थ (मकरन्द और पराग कण) खाते हैं तो उनके शरीर पर पराग कण झड़ जाते हैं और जब वे उड़ कर दूसरे फूल पर जाते हैं और उनमें प्रवेश करते हैं तो वे वर्तिकाग्र से रगड़ खाते हैं जो कि चिपचिपा होने के कारण तुरन्त पराग कणों को उनके शरीर से ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार पर-परागण हो जाता है।

विशेष अनुकूलन (Special Adaptations)

सूर्यमुखी, गेंदा, कदम्ब (*Anthocephalus*), बबूल, छुईमुई (*Mimosa*), इत्यादि में, जिनके अकेले फूल छोटे और अनभिदृश्य होते हैं फूल घने पुष्पक्रमों में एकत्रित रहते हैं, और इस प्रकार कीटों को पर-परागण के लिये आकर्षित करने के लिये अच्छी तरह अनुकूलित रहते हैं। घने पुष्पक्रम का एक दूसरा लाभ भी है। फूल इकट्ठे और एक दूसरे के निकट रहने के कारण उनमें परागण के लिये पूर्ण अवसर है (देखिये पृष्ठ ११३)।
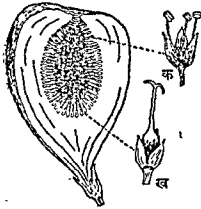
चित्र २९३—फाइकस लम्बाई में कटा हुआ। आलोकन करो कि अग्रस्थ छिद्र शल्कों से सुरक्षित हैं। क, नरपुष्प; ख, मादा पुष्प।

फाइकस (*Ficus*) की अनेक स्पीशीज, जैसे बरगद, पीपल, अंजीर, इत्यादि में कीड़े पुष्पक्रम के कोष्ठ में अग्रस्थ छिद्र द्वारा प्रवेश करते हैं और जैसे ही वे कोष्ठ में स्थित एकलिंगी फूलों पर रेंगते हैं, परागण भी कर देते हैं (चित्र २९३)। नर पुष्प छिद्र

के निकट स्थित होते हैं और स्त्री पुष्प विवर (cavity) के आधार पर। वे विभिन्न समय पर परिपक्व होते हैं जिससे पराग कण दूसरे पुष्पक्रमों से लाना पड़ता है।

फूल प्रायः किसी विशेष प्रकार के कीटों द्वारा परागण के लिये अनुकूलित रहते हैं और इस कार्य के लिये अन्य कीट व्यर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ स्नैपड्रैगन (snapdragon; देखिये चित्र २२९) और अन्य फूल जिनमें द्वयोष्ठी संवृत (bilabiate personate) दल पुंज होता है एक निश्चित आकार और भार के कीटों द्वारा ही दल पुंज का मुंह खुलता है; और लम्बी नली युक्त फूलों में परागण केवल लम्बी जिह्वा (जीभ) वाले कीटों द्वारा ही हो सकता है।

सैल्विया (*Salvia*; चित्र २९४) में कीटों द्वारा पर-परागण का एक रोचक नमूना है। इसमें दो पुंकेसर होते हैं और प्रत्येक पुंकेसर की दोनों परागकोश पालियां (anther lobes) एक लम्बे वक्र योजी (connective) द्वारा विस्तृत रूप में पृथक किये रहते हैं जो स्वतंत्र रूप से योजी पर झूलते हैं। ऊपरी खंड अवन्ध्य (fertile) होता है और निचला खंड वन्ध्य (sterile) रहता है। प्राकृतिक स्थिति में योजी सीधा रहता है, जब मधुमक्खी दल पुंज नली में प्रवेश करती है तो प्रत्येक पुंकेसर के निचले वन्ध्य खंड को धक्का देती है। योजी चक्रवत रूप में झूलने लगता है और ऊपरी अवन्ध्य खंड नीचे आता है और

चित्र २९४—सैल्विया। क, सम्पूर्ण पुष्प; ख, दीर्घित योजी दिखाया गया है।

मधुमक्खी के पीठ पर टकराता है और उस पर पराग कणों को झाड़ देता है इसमें पुष्प पूर्व पुंपक्व (protandrous) होता है और जब वर्तिकाग्र परिपक्व हो जाता है तो वह नीचे की ओर मुड़ जाता है और मधुमक्खी की पीठ को छूता है और उस पर से पराग कणों को ग्रहण करता है। इस प्रकार परागण हो जाता है। यह पर-परागण की एक विशेष उपकरण विधि है।

(२) वायुपरागिता (Anemophily)—कुछ दशाओं में वायु द्वारा परागण होता है। वायुपरागित पुष्प सूक्ष्म और अनभिदृश्य होते हैं। वे कभी रंगीन व भड़कीले नहीं होते। वे कोई सुगन्ध भी नहीं देते और न मकरन्द ही स्रावण करते हैं। पराग कोश बहुत अधिक मात्रा में पराग कण उत्पन्न करते हैं क्योंकि वायु द्वारा उड़कर जाने के कारण इसकी अधिक मात्रा एक पुष्प से दूसरे पुष्प में जाने में व्यर्थ हो जाती है। यह आसानी से मक्का में देखा जा सकता है (चित्र २९५)। इस

पौधे में बहुत अधिक नर पुष्प अग्रस्थ पुष्प गुच्छ (panicle) में रहते हैं और नीचे की ओर इस में पृथुपर्णों (spathes) द्वारा परिवारित कुछ स्त्री स्थूल मंजरियां (spadices) होती हैं, जिनमें प्रत्येक एक पर्ण के कक्ष में स्थित होती है। पतले लम्बे रेशमी धागों के गुच्छ समान वर्तिकाग्र प्रत्येक स्थूल मंजरी को घेरे हुए पृथुपर्णों से निकलते हुए दिखाई देते हैं और ये हवा में स्वतन्त्रता से लटकते रहते हैं। जब पराग कोश फटता है तब धूल के समान पराग कणों का बादल पौधे के चारों ओर वायु में तैरता दिखाई देता है। इनमें से कुछ तैरते हुये पराग कण बाहर निकले हुये वर्तिकाग्रों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं और इस प्रकार परागण हो जाता है, लेकिन पराग कणों की अधिकांश मात्रा व्यर्थ हो जाती है। पाइलिया (*Pilea*) में जब पराग कोश फटता है तो पराग कणों को झोंके में बाहर फेंकता है, और ये वायु द्वारा स्त्री पुष्पों तक ले जाये जाते हैं। वायुपरागित पुष्पों में पराग कण हल्के व सूखे होते हैं, और कभी-कभी, जैसे चीड़ में, ये सपक्ष (winged) होते हैं जिससे वायु द्वारा इनके वितरण में सुविधा होती है। वर्तिकाग्र अपेक्षाकृत बड़े और बाहर निकले हुए होते हैं और कभी-कभी शाखीय और प्रायः सपक्ष होते हैं। अविकसित वायु परागण वृत्ति जिम्नोस्पर्म्स में व्यापक रूप से पायी जाती है लेकिन ऐन्जियोस्पर्म्स में यह केवल आदि रूपों (primitive types) में सीमित है। इसके उदाहरण घासों, बास, धान्यों (cereals), ज्वार, बाजरा (millets), ईख, मुस्ताओं (sedges), चीड़ और विभिन्न ताड़ों, आदि में मिलते हैं।

चित्र २९५—मक्का का पौधा जिसमें ऊपर नरपुष्प पुष्प गुच्छ में और नीचे मादा पुष्प स्थूल मंजरी में दिखाये गये हैं। वर्तिकाओं को हवा में लटकते हुये आलोकन करो।

(३) जलपरागिता (Hydrophily)—कुछ दशाओं में जल द्वारा भी परागण होता है। अधिकांश जलीय पौधों में जल बहुत अधिक मात्रा में परागण में सहायता पहुंचाता है यद्यपि यह इस क्रिया के लिये प्रत्यक्षरूपेण (directly) उत्तरदायी नहीं है, जैसे पानी की दो सामान्य घासपात (weeds), वैलिसनेरिया (*Vallisneria*) और हाइड्रिला (*Hydrilla*) में। वैलिसनेरिया पौधा द्विक्षयक (dioecious)

होता है। कई सूक्ष्म नर फूल एक पौधे पर एक छोटे सूक्ष्म वृन्ती स्थूल मंजरी पर लगे रहते हैं जो कि पृथुपर्ण द्वारा परिवारित रहता है। स्त्री पुष्प एकल (solitary) होते हैं और मादा पेड़ पर एक लम्बे पतले वृन्त पर लगे रहते हैं। पृथुपर्ण फटता है और नर पुष्प स्थूल मंजरी से बन्द अवस्था में ही अलग हो जाते
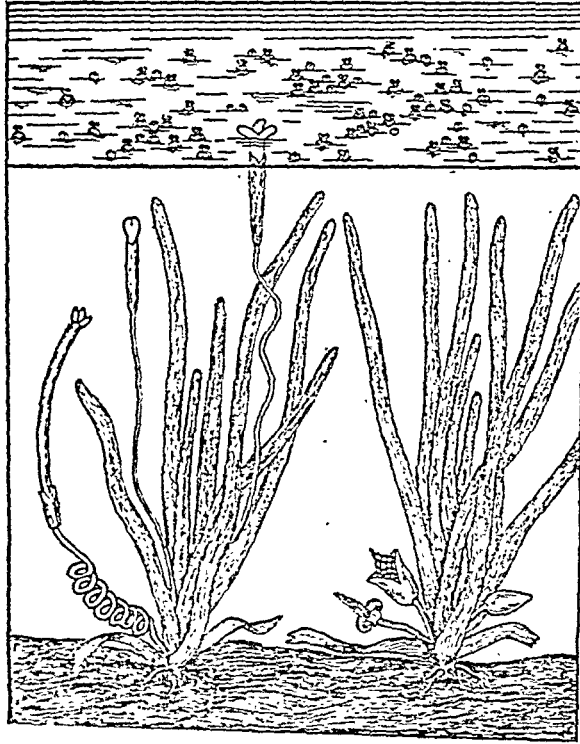
चित्र २९६–वैलिसनेरिया। बायें, एक मादा पौधा एक प्लावी स्त्री पुष्प, एक निमग्न पुष्प और एक फल (१५ सेंटिमीटर लम्बा) सहित। फल परागण के पश्चात् जलके नीचे परिपक्व हो रहा है। दायें, एक नर पौधा दो स्थूल मंजरियों सहित, प्रत्येक मंजरी में अनेक सूक्ष्म नर पुष्प पृथुपर्ण से ढके हुये, और एक पुरानी मंजरी जिसमें नर पुष्प अलग हो गये हैं। नर पुष्पों (आकार में बहुत अधिक परिवर्धित) को पानी में तैरते हुये आलोकन करो।

हैं और पानी के तल पर तैरते हैं। परिदल पुंज फैल जाता है और उनके तैरने में मदद देता है। स्त्री पुष्प का वृन्त तेजी से दीर्घित होता है और फूल को पानी के धरातल तक पहुंचा देता है। कुछ तैरते हुये नर पुष्प स्त्री पुष्प के सम्पर्क में आते हैं। पराग

कोश फट जाते हैं और कुछ चिपचिपे पराग कण वर्तिकाग्र के किनारे पर चिपक जाते हैं। परागण के उपरान्त स्त्री पुष्प का वृन्त सर्पिल रूप में कुडलित होता है और स्त्री पुष्प को पानी के अन्दर खींच लेता है। फल पानी के अन्दर नीचे के तल से जरा ऊपर विकसित होता है और परिपक्व होता है। जलीय पौधों में, जिनमें अभिदृश्य प्लावी (floating) या वायवीय पुष्प होते हैं, कीटों द्वारा परागण होता है। जल परागित पुष्प नियमित रूप से सूक्ष्म और अनभिदृश्य होते हैं। बहुत कम दशाओं में जल प्रत्यक्ष रूप से परागण के लिये उत्तरदायी होता है। इसका एक उदाहरण नैयास (*Naias*) है। यह निमग्न (submerged) जलीय घास पात है और इसमें एकलिंगी पुष्प पाये जाते हैं। इस पौधे में परागण पानी के अन्दर होता है।

(४) प्राणिपरागिता (Zoophily)—चिड़िया, गिलहरी, चमगादड, घोंघे, इत्यादि भी परागण के अच्छे साधन हैं। उदाहरणार्थ चिड़िया और गिलहरी पागरा (*Erythrina*), और सेमल (*Bombax*) में परागण करते हैं। चमगादड़ कदम्ब में, घोंघे सूरनों के बड़े किस्मों और एरीसीमा (*Arisaema*; देखिये चित्र १८२) में परागण करते हैं (कीट भी इनमें परागण कर सकते हैं)। सूरन कुल के पौधों (aroids) में पुष्पक्रम स्थूलमजरी होता है, स्त्री पुष्प स्थूल मजरी के आधार पर और नर पुष्प ऊपर की ओर स्थित रहते हैं। इन फूलों में वर्तिकाग्र पहले परिपक्व हो जाते हैं, जिससे कि पराग कणों को दूसरे पुष्पक्रमों से आना पड़ता है।

स्वयं-परागण और पर-परागण से लाभ और हानि (Advantages and Disadvantages of Self-pollination and Cross-pollination)—स्वय-परागण से यह लाभ है कि यदि पुकेसर और अण्डप दोनों एक ही समय में परिपक्व हो तो द्विलिंगी पुष्पों में परागण निश्चित होता है। परन्तु स्वय-परागण से यह हानि है कि इसके द्वारा उत्पन्न हुई सतति (progeny) दुर्बल होती है। पर-परागण के निम्न लाभ हैं: (क) इसके द्वारा हमेशा स्वस्थ सन्तान उत्पन्न होती है जो जीवन सग्राम के लिये अच्छी अनुकूलित रहती है; (ख) इस क्रिया के द्वारा अधिक बीज उत्पन्न होते हैं; और (ग) पर-परागण की क्रिया द्वारा नई किस्में (varieties) भी पैदा की जा सकती हैं। पर-परागण में यह असुविधा है कि यह बाहरी साधनों, जैसे कीटों, वायु, इत्यादि पर निर्भर होता है और इस कारण यह अनिश्चित और कम मितव्ययी है क्योंकि परागण के अभिकर्ताओं को आकर्षित करने के लिये विभिन्न साधन अनुकूलित करने पडते हैं।

पर-परागण के लिये प्रयुक्तियां (Contrivances for Cross-pollination)—फूलों में स्वयं-परागण को रोकने और पर-परागण की सहायता देने के लिये अनेक व विभिन्न प्रयुक्तिया पाई जाती हैं। ये निम्नलिखित हैं:

(१) **एकलिंगता** (Unisexuality or Dicliny)—एकलिंगी फूलों में पुंकेसर और अण्डप अलग-अलग फूलों में पाये जाते हैं। इसलिये ऐसे फूलों में स्वयं-परागण का प्रश्न ही नहीं उठता। इन फूलों में बीजों की उत्पत्ति के लिये पर-परागण अत्यावश्यक है। एकलिंगता के दो रूप होते हैं: (क) जब नर और स्त्री पुष्प एक ही पौधे पर लगे होते हैं तो उस पौधे को **एकक्षयक** (monoecious) कहते हैं, जैसे लौकी, खीरा, कद्दू, एरंड, मक्का, इत्यादि में, और (ख) जब नर व स्त्री पुष्प दो विभिन्न पौधों पर लगे होते हैं, अर्थात् जब एक पौधे में केवल नर फूल और दूसरे में केवल मादा फूल लगते हैं, तो पौधे को **द्विक्षयक** (dioecious) कहते हैं, जैसे पपीता, कुछ ताड़, शहतूत (*Morus*), इत्यादि।

(२) **स्वयं-वन्ध्यता** (Self-sterility)—यह वह दशा है जब कि एक फूल का निषेचन या गर्भाधान उसके ही पराग कणों द्वारा नहीं हो सकता। कभी-कभी जैसे कुछ ऑर्किडों में एक फूल के पराग का उसी फूल के वर्तिकाग्र पर हानिकर प्रभाव होता है; वर्तिकाग्र सूख कर झड़ जाता है। चाय के फूल, झुमकलता की कुछ स्पीशीज और माल्वा (*Malva*) की कुछ स्पीशीज भी स्वयं-वन्ध्य होती हैं। इन दशाओं में दूसरी स्पीशीज के पराग लगाने से ही प्रभाव होता है।

(३) **पृथक् पक्वता** (Dichogamy)—कई द्विलिंगी फूलों में पराग कोश और वर्तिकाग्र विभिन्न समय में परिपक्व होते हैं। इस दशा को पृथक पक्वता कहते हैं। चूंकि पुंकेसर और वर्तिकाग्र विभिन्न समय में परिपक्व होते हैं, इसलिये स्वयं-परागण पर रोक लग जाती है। पृथक पक्वता की दो दशाएं हैं: (क) **पूर्व स्त्रीपक्वता** (protogyny), जब अण्डप पहले परिपक्व होते हैं, अर्थात् वर्तिकाग्र पराग कणों को ग्रहण करने के लिये तैयार हो जाते हैं, इसके पहले कि उस फूल के पुंकेसर स्फुटित हों और अपने पराग को झाड़ दें, जैसे मैग्नोलिया, चम्पा, शरीफा, (*Anona*), अशोक (*Polyalthia*), चम्पा कुछ ताड़, इत्यादि में; और (ख) **पूर्व पुंपक्वता**

चित्र २९७—क्लेरोडेंड्रॉन के पूर्व पुंपक्व पुष्प; क, पुंकेसर पहले पक्व हो रहे हैं; ख, वर्तिकाग्र बाद में पक्व हो रहा है।

(protandry)—जब कि
ाते पराग कणों को
र्तिकाग्र उस समय परिपक्व
ना आवश्यक हो जाता
(Carum), इत्यादि में।
ाती है।

(४) असमवर्तिकात्व (
हे फूल होते हैं, एक प्रका
प्रकार के फूल में छोटा पुंके
(dimorphic heter

चित्र २९८
प्रिमरोज

चित्र २९८–एक
चित्र २९९–एक

परागण हो जाता है
नहीं होते। द्विरूप
wheat), खट्टी
जाती है, त्रिरूप
पाई जाती है।

(५) रुद्ध पर
पुष्पों में दोनों पुं
मों स्वयं-पराग
स्वयं-परागण
सहायता करते
सकते हैं; पर

(protandry)—जब कि एक फूल के पुकेसर पहले परिपक्व (स्फुटित होकर अपने पराग कणों को बाहर निकाल देते हैं) होते हैं अर्थात् जब उसी फूल का वर्तिकाग्र उस समय परिपक्व नहीं होता, इसलिये पराग कणों का दूसरे फूल पर जाना आवश्यक हो जाता है, जैसे मालवेसी, कम्पोजिटी, धनिया, अजवाइन (*Carum*), इत्यादि में। पूर्व पुपक्वता पूर्व स्त्रीपक्वता की अपेक्षा अधिक पायी जाती है।

(४) असमवर्तिकात्व (Heterostyly)—कुछ ऐसे पौधे हैं जिनमें दो प्रकार के फूल होते हैं, एक प्रकार के फूल में लम्बे पुकेसर और छोटी वर्तिका और दूसरे प्रकार के फूल में छोटा पुकेसर और लम्बी वर्तिका होती है। इसे द्विरूप असमवर्तिकात्व (dimorphic heterostyly) कहते हैं। इसी प्रकार त्रिरूप असमवर्तिकात्व के भी उदाहरण हो सकते हैं; अर्थात् तीन विभिन्न लम्बाई के पुकेसर और वर्तिकाए तीन विभिन्न रूप के फूलों पर लगते हैं। इन सब दशाओं मे विभिन्न फूलों में समान लम्बाई वाले पुकेसरों और वर्तिकाओं में पर-परागण आसानी से हो जाता है। कभी-कभी जब पर-परागण असफल हो जाता है तो एक ही फूल के विभिन्न लम्बाइयों के पुकेसर और वर्तिका मे स्वय-परागण हो जाता है। लाल अलसी मे स्वय-परागण द्वारा बिल्कुल भी बीज उत्पन्न नही होते। द्विरूप असमवर्तिकात्व प्रिमुला (*Primula*), कोटू या ओगल (buck-wheat), खट्टी बूटी, अलसी, धातकी या धवई (*Woodfordia*) में पाई जाती है, त्रिरूप असमवर्तिकात्व खट्टी बूटी और लाइनम की कुछ स्पीशीज मे पाई जाती है।

चित्र २९८ चित्र २९९

प्रिमरोज के द्विरूप पुष्प।

चित्र २९८—एक पुष्प लम्बा वर्तिका सहित।

चित्र २९९—एक पुष्प छोटी वर्तिका सहित।

(५) रुद्ध परागणता या अनात्मपरागणता (Herkogamy)—कुछ सविश पुष्पी पुष्पों में दोनों पुकेसर तथा स्त्रीकेसर एक ही समय पर परिपक्व होते हैं किन्तु फिर भी स्वयं-परागण नही होने पाता, क्योंकि पुष्पी भागो मे कुछ अनुकूलन होते हैं जो कि स्वय-परागण में रुकावट पैदा करते हैं और इस प्रकार कीटों द्वारा पर-परागण मे सहायता करते हैं। फूल के दोनों अग एक दूसरे से कुछ दूरी पर स्थित हो सकते हैं; पराग कोश दल नली के अन्दर निविष्ट (inserted) और वर्तिका

(१) **एकलिंगता** (Unisexuality or Dicliny)—एकलिंगी फूलों में पुंकेसर और अण्डप अलग-अलग फूलों में पाये जाते हैं। इसलिये ऐसे फूलों में स्वयं-परागण का प्रश्न ही नहीं उठता। इन फूलों में बीजों की उत्पत्ति के लिये पर-परागण अत्यावश्यक है। एकलिंगता के दो रूप होते हैं: (क) जब नर और स्त्री पुष्प एक ही पौधे पर लगे होते हैं तो उस पौधे को **एकक्षयक** (monoecious) कहते हैं, जैसे लौकी, खीरा, कद्दू, एरंड, मक्का, इत्यादि में, और (ख) जब नर व स्त्री पुष्प दो विभिन्न पौधों पर लगे होते हैं, अर्थात् जब एक पौधे में केवल नर फूल और दूसरे में केवल मादा फूल लगते हैं, तो पौधे को **द्विक्षयक** (dioecious) कहते हैं, जैसे पपीता, कुछ ताड़, शहतूत (*Morus*), इत्यादि।

(२) **स्वयं-वन्ध्यता** (Self-sterility)—यह वह दशा है जब कि एक फूल का निषेचन या गर्भाधान उसके ही पराग कणों द्वारा नहीं हो सकता। कभी-कभी जैसे कुछ ऑर्किडों में एक फूल के पराग का उसी फूल के वर्तिकाग्र पर हानिकर प्रभाव होता है; वर्तिकाग्र सूख कर झड़ जाता है। चाय के फूल, झुमकलता की कुछ स्पीशीज और माल्वा (*Malva*) की कुछ स्पीशीज भी स्वयं-वन्ध्य होती हैं। इन दशाओं में दूसरी स्पीशीज के पराग लगाने से ही प्रभाव होता है।

(३) **पृथक् पक्वता** (Dichogamy)—कई द्विलिंगी फूलों में पराग कोश और वर्तिकाग्र विभिन्न समय में परिपक्व होते हैं। इस दशा को पृथक पक्वता कहते हैं। चूंकि पुंकेसर और वर्तिकाग्र विभिन्न समय में परिपक्व होते हैं, इसलिये स्वयं-परागण पर रोक लग जाती है। पृथक पक्वता की दो दशाएं हैं: (क) पूर्व स्त्रीपक्वता (protogyny), जब अण्डप पहले परिपक्व होते हैं, अर्थात् वर्तिकाग्र पराग कणों को ग्रहण करने के लिये तैयार हो जाते हैं, इसके पहले कि उस फूल के पुंकेसर स्फुटित हों और अपने पराग को झाड़ दें, जैसे मैग्नोलिया, चम्पा, शरीफा, (*Anona*), अशोक (*Polyalthia*), चम्पा कुछ ताड़, इत्यादि में; और (ख) पूर्व पुंपक्वता

चित्र २९७—क्लेरोडेंड्रॉन के पूर्व पुंपक्व पुष्प; क, पुंकेसर पहले पक्व हो रहे हैं; ख, वर्तिकाग्र बाद में पक्व हो रहा है।

(protandry)—जब कि एक फूल के पुंकेसर पहले परिपक्व (स्फुटित होकर अपने पराग कणों को बाहर निकाल देते हैं) होते हैं अर्थात् जब उसी फूल का वर्तिकाग्र उस समय परिपक्व नहीं होता, इसलिये पराग कणों का दूसरे फूल पर जाना आवश्यक हो जाता हैं, जैसे मालवेसी, कम्पोजिटी, धनिया, अजवाइन (*Carum*), इत्यादि में। पूर्व पुंपक्वता पूर्व स्त्रीपक्वता की अपेक्षा अधिक पायी जाती है।

(४) असमवर्तिकात्व (Heterostyly)—कुछ ऐसे पौधे हैं जिनमें दो प्रकार के फूल होते हैं, एक प्रकार के फूल में लम्बे पुंकेसर और छोटी वर्तिका और दूसरे प्रकार के फूल में छोटा पुंकेसर और लम्बी वर्तिका होती हैं। इसे द्विरूप असमवर्तिकात्व (dimorphic heterostyly) कहते हैं। इसी प्रकार त्रिरूप असमवर्तिकात्व के भी उदाहरण हो सकते हैं; अर्थात् तीन विभिन्न लम्बाई के पुंकेसर और वर्तिकाएं तीन विभिन्न रूप के फूलों पर लगते हैं। इन सब दशाओं में विभिन्न फूलों में समान लम्बाई वाले पुंकेसरों और वर्तिकाओं में पर-परागण आसानी से हो जाता है। कभी-कभी जब पर-परागण असफल हो जाता है तो एक ही फूल के विभिन्न लम्बाइयों के पुंकेसर और वर्तिका में स्वय-परागण हो जाता हैं। लाल अलसी में स्वय-परागण द्वारा बिल्कुल भी बीज उत्पन्न नहीं होते। द्विरूप असमवर्तिकात्व प्रिमुला (*Primula*), कोटू या ओगल (buck-wheat), खट्टी बूटी, अलसी, धातकी या धवई (*Woodfordia*) में पाई जाती है, त्रिरूप असमवर्तिकात्व खट्टी बूटी और लाइनम की कुछ स्पीशीज में पाई जाती है।

चित्र २९८ चित्र २९९

प्रिमरोज के द्विरूप पुष्प।

चित्र २९८—एक पुष्प लम्बा वर्तिका सहित।

चित्र २९९—एक पुष्प छोटी वर्तिका सहित।

(५) रुद्ध परागणता या अनात्मपरागणता (Herkogamy)—कुछ सविध पुष्पी पुष्पों में दोनों पुंकेसर तथा स्त्रीकेसर एक ही समय पर परिपक्व होते हैं किन्तु फिर भी स्वय-परागण नहीं होने पाता, क्योंकि पुष्पी भागों में कुछ अनुकूलन होते हैं जो कि स्वयं-परागण में रुकावट पैदा करते हैं और इस प्रकार कीटों द्वारा पर-परागण में सहायता करते हैं। फूल के दोनों अंग एक दूसरे से कुछ दूरी पर स्थित हो सकते हैं; पराग कोश दल नली के अन्दर निविष्ट (inserted) और वर्तिका

उत्क्षिप्त (exserted) रह सकते हैं; या पराग कोश उत्क्षिप्त और वर्तिका निविष्ट हो सकते हैं; या पराग कोश बाहर की ओर मुंह किये रह सकते हैं; या ये दलों तथा दलाभ वर्तिका द्वारा ढके हो सकते हैं, जैसे आइरिस (*Iris*) में, या पराग कोश और वर्तिकाग्र की आपेक्षिक स्थिति (relative position) इस प्रकार की हो सकती है जो स्वयं-परागण के लिये बाधाजनक हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि ऑर्किड्स (orchids) और मदार (*Calotropis*) के पराग पुंज (pollinia) ऐसी स्थिति में विकसित होते हैं, जहां से वे स्वयं वर्तिकाग्र तक नहीं पहुंच सकते। इसके अतिरिक्त वे अपने अभिलागी बिम्बों (adhesive discs) द्वारा अपनी जगह पर चिपके से रहते हैं और केवल कीटों द्वारा ही ले जाये जा सकते हैं। सैल्विया (*Salvia*) में पुंकेसर और स्त्रीकेसर का पर-परागण के लिये विशेष प्रकार का विन्यास पहले ही वर्णन किया जा चुका है।

अध्याय १०

निषेचन या गर्भाधान (FERTILIZATION)

दो असमरूप (dissimilar) लिंगी प्रजनन इकाइयों (sexual reproductive units), जिनको युग्मक (gametes) कहते हैं, के सायुज्यन (fusion) को गर्भाधान या निषेचन कहते हैं। पुष्पी पादपों में निषेचन की क्रिया, जिसका अन्वेषण १८७५ में हुआ था, निम्नलिखित है (चित्र ३००)। परागण, अर्थात् पराग कण के वर्तिकाग्र तक पहुंचने, के उपरान्त पराग कण का आन्तर चोल (intine) वाह्य चोल (exine) के कुछ पतले या दुर्बल स्थानों, जिनको जनित्र छिद्र (germ pore) कहते हैं, को तोड़कर एक नलिका के रूप में वृद्धि करता है, जिसको पराग नलिका (pollen-tube; चित्र २४५) कहते हैं। वर्तिकाग्र से स्रावित कुछ शर्करा युक्त पदार्थों से पराग नलिका की वृद्धि उत्तेजित होती है। पराग नलिका वर्तिकाग्र का भेदन करती है और वर्तिका में से होकर आगे बढ़ती है और अण्डाशय की भित्ति से होती हुई आगे पहुंच जाती है। यह अपने साथ नलिका नाभिक (tube-nucleus और जनन नाभिक (generative nucleus) को भी ले जाती है। जनन नाभिक विभाजित होकर दो नर युग्मक (male gametes) बनाता है और नलिका नाभिक शीघ्र ही या बाद में विघटित हो जाती है। कभी-कभी जनन नाभिक परागण से पहले ही विभाजित हो जाती है। पराग नलिका के अग्रक भाग पर कोशिका द्रव्य (cytoplasm) का पुंज एकत्रित हो जाता है और नाभिक

इसमें न्याविष्ट (embedded) रहते हैं। पराग नलिका अण्डाशय की भित्ति से होते हुए अन्त में अण्डद्वार की ओर मुड़ती है, चाहे उसकी स्थिति अण्डाशय के विवर में
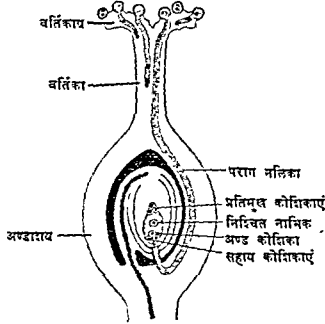
चित्र ३००—अण्डाशय अनुदैर्घ्य काट में, जिसमें निषेचन का प्रक्रम दिखाया गया है। पराग नलिका के सिरे पर दो नर युग्मकों को आलोकन करो।

कुछ भी हो। पराग नलिका फिर अण्डद्वार से होते हुए अन्त में भ्रूण-कोष (embryo-sac) तक पहुंच जाती है। यह अण्डद्वार प्रवेशी निषेचन (porogamic fertilization) कहलाता है। कभी-कभी कैजुआरीना (*Casuarina*), और कुछ अन्य पौधों में पराग नलिका भ्रूण-कोष में बीजाण्ड के आधार या प्रबीजाधार की ओर से प्रवेश करती है, या कभी-कभी कवच या आवरण को बेधन करती है। इसको प्रबीजाधार प्रवेशी निषेचन (chalazogamic fertilization) कहते हैं और इसका सर्व प्रथम अन्वेषण १८९१ में हुआ। पराग नलिका के भ्रूण-कोष में प्रवेश करने के उपरान्त उसका अग्र भाग विलीन हो जाता है, और नर युग्मक मुक्त हो जाते हैं, इन दो नर युग्मकों में से एक तो अण्ड कोशिका से सायुज्जित हो जाता है और दूसरा भ्रूण-कोष में आगे बढ़ कर दो ध्रुवीय नाभिकों, या उनके सायुज्जित रूप, जिसको निश्चित नाभिक (definitive nucleus) कहते हैं, से सायुज्जित होता है। इस प्रकार निषेचन क्रिया समाप्त हो जाती है। नर युग्मक के दो ध्रुवीय नाभिकों से सायुज्य को त्रिधा समेकन (triple fusion) कहते हैं। निषेचन की क्रिया में यह माना

जाता है कि सहायकोशिकाएं नर युग्मकों को अण्ड कोशिका की ओर संचालित करती हैं, और निषेचन के तुरन्त बाद ही वे विघटित हो जाती हैं। प्रतिमुख कोशिकाओं का कोई विशेष कार्य नहीं होता और इसलिये वे निषेचन के पहले ही लुप्त हो जाती हैं[1]। निषेचन के उपरान्त अण्ड कोशिका एक कोशिका भित्ति से समावृत हो जाती है और तब यह शुक्राण्ड या शुक्तिांड (oospore) कहलाती है। शुक्राण्ड से भ्रूण, बीजाण्ड से बीज और सम्पूर्ण अण्डाशयसे फल बनता है, और निश्चित नाभिक (definitive nucleus), जिसको अब भ्रूणपोष नाभिक (endosperm nucleus) कहते हैं, से भ्रूणपोष बनता है। यदि किसी कारण से निषेचन नहीं हो पाता तो अण्डाशय सूख कर गिर जाता है। केला, पपीता, संतरा, अंगूर, सेब, अनन्नास, इत्यादि के कुछ कृष्ट किस्मों में अण्डाशय बिना निषेचन किया के ही फल में परिवर्तित हो जाता है। बिना निषेचन क्रिया के फल के विकसित होने की क्रिया को **अनिषेक फलता** (parthenocarpy) कहते हैं। अनिषेक फलित फलों में प्रायः बीज नहीं पाये जाते।

द्वैध निषेचन (Double Fertilization)—पूर्व लिखित वर्णन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ऐन्जियोस्पर्म्स में दो बार निषेचन होता है: (क) पराग नलिका के दो नर युग्मकों में से एक भ्रूण-कोष के अण्ड कोशिका से सायुज्यित होता है; (ख) और दूसरा युग्मक निश्चित नाभिक, या द्वितीय नाभिक से जो कि भ्रूण-कोष के विकास के समय दो ध्रुवीय नाभिकों के सायुज्जन का परिणाम है। यह क्रिया द्वैध निषेचन कहलाती है। इस क्रिया को सर्वप्रथम १८९८ में नावासिन ने लिलियम (*Lilium*) और फ्रीटीलेरिया (*Fritillaria*) में अन्वेषित किया था। उस समय इस अपूर्व अन्वेषण ने अत्यधिक ध्यान आकर्षित किया और उसके बाद अनेक अन्वेषकों ने सिद्ध कर दिया है कि यह ऐन्जियोस्पर्म्स में सर्व व्यापक है।

[1] सहायकोशिकाएं और प्रतिमुख कोशिकाएं प्रायः अवशेष अंग (vestigial organs) मानी जाती हैं और वे क्रमशः अण्डधानी (archegonium) और सूकायक (prothallus) के अवशेष हैं।

अध्याय ११

बीज (THE SEED)

बीज का विकास (Development of the Seed)—निषेचन के उपरान्त बीजाण्ड में क्रम से अनेक परिवर्तन होते हैं और इसके फलस्वरूप बीज बनता है। निषेचित अण्ड कोशिका वृद्धि करती है और भ्रूण बनाती है, और भ्रूणपोष नामिक भ्रूणपोष बनाता है; तथा बीजाण्ड में अन्य परिवर्तन भी होते हैं।

(१) **भ्रूण का विकास (Development of the Embryo; चित्र ३०१)**—
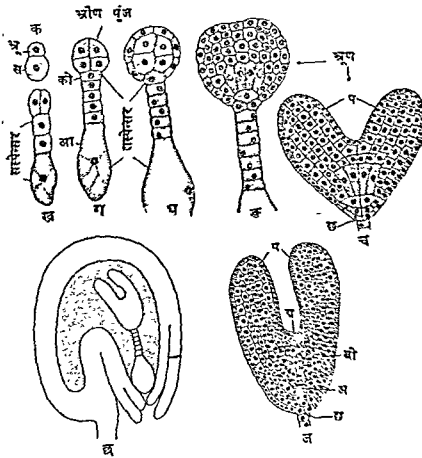
चित्र ३०१—क-ठ, द्विबीजपत्रीय भ्रूण का विकास। भ्रू, भ्रूणीय कोशिका; स, सस्पेन्सर कोशिका; को, अधोलम्ब कोशिका, आ, सस्पेन्सर की आधारीय कोशिका; प, बीजपत्र; छ, मूलछद, अ, मूल अग्रक; बी, बीजोपर; ग्र, स्तम्भ-अग्रक। छ, बीज के अन्दर भ्रूण।

निषेचन के पश्चात अण्ड कोशिका अपने चारों ओर एक सैलूलोज की भित्ति स्रावण करती है और शुक्राण्ड (oospore) के रूप में बदल जाता है। शुक्राण्ड दो कोशिकाओं में विभाजित हो जाता है—पहली ऊपरी कोशिका और दूसरी निचली कोशिका। ऊपरी कोशिका जो अण्डद्वार की ओर स्थित रहती है स्वयं फिर एक दिशा में विभाजित होती है और कोशिकाओं की एक पंक्ति बनाती है जिसको भ्रूण-बन्धनी या सस्पेन्सर (suspensor) कहते हैं। जैसे-जैसे सस्पेन्सर दीर्घित होता है यह विकसित भ्रूण को भ्रूण-कोष में भीतर ढकेलता जाता है और भ्रूण के निर्माण होने के समय यह उसके भोजन खिलाने वाले अंग का काम भी करता है। इस कार्य के लिये सस्पेन्सर की अग्रस्थ कोशिका प्रायः वर्धित हो जाती है और अवशोषक अंग का कार्य करती है। जब मूलांकुर बन जाता है तो सस्पेन्सर विघटित हो जाता है। सस्पेन्सर की आधारीय कोशिका, जिसको अधोलम्ब (hypophysis) कहते हैं, विभाजित होती है और मूलांकुर का अग्रक बनाती है। शुक्राण्ड की निचली कोशिका, जिसको भ्रौण कोशिका (embryonal cell) कहते हैं, वर्धित होती है और एक दूसरे पर समकोण बनाती हुई तीन भित्तियों द्वारा विभाजित होकर आठ कोशिकाएं या अष्टक (octants) बनाती है। चार कोशिकाएं जो सस्पेन्सर की ओर स्थित हैं पश्च अष्टक (posterior octant) और अन्य चार जो उससे दूर स्थित हैं अग्र अष्टक (anterior octants) कहलाते हैं। इस प्रकार बने हुए ऊतक के पुंज को भ्रौण पुंज (embryonal mass) कहते हैं। इस पुंज की कोशिकाएं पहले पूर्ण वेष्टित भित्तियों (periclinal walls) द्वारा विभाजित होती है और कुछ अंश तक भ्रूणीय त्वचा या डर्मेटोजन (dermatogen), भ्रूणीय नित्वक् या पेरिब्लम और भ्रूणीय रम्भ या प्लेरोम की सीमा निर्धारित करती है। भ्रौण पुंज की कोशिकाओं के और विभाजनों से भ्रूण के विभिन्न भागों का पृथक्करण हो जाता है। अतः यह देखा जाता है कि अग्र अष्टकों से प्रांकुर और दो बीजपत्र, और पश्च अष्टकों से मूलांकुर का मुख्य भाग और बीजोधर बनते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है मूलांकुर का अग्रक अधोलम्ब कोशिका से बनता है।

द्विबीजपत्री भ्रूण में दो बीजपत्र बनते हैं जो कि पार्श्व में स्थित रहते हैं और भ्रूणाग्र अग्रस्थ रहता है। इसके विपरीत एकबीजपत्री भ्रूण में केवल एक ही बीजपत्र बनता है जो कि अग्रस्थ स्थित रहता है और भ्रूणाग्र पार्श्विक होता है। नवीन अनुसन्धानों से यह ज्ञात हुआ है कि यह विशिष्टता निरपेक्ष नहीं है।

(२) भ्रूणपोष का विकास (Development of the Endosperm)—एक नर युग्मक और निश्चित नाभिक के सायुज्यन (अर्थात् त्रिधा समेकन) से भ्रूणपोष नाभिक बनता है और वह वृद्धि करने लगता है, यह विभाजित होता है और कई सूक्ष्म

नाभिकों को जन्म देता है (देखिये चित्र ३८८)। प्रत्येक नाभिक के चारों ओर जीवद्रव्य एकत्रित होता है और अन्त में उनके बीच में कोशिका भित्तियां बनती हैं। मुक्त-कोशिका-निर्माण (free cell formation) की रीति से एक ऊतक बन जाता है जिसको भ्रूणपोष (endosperm or albumen) कहते हैं। यह प्रदेश (nucellus) को व्यय करके, अर्थात् प्रदेश में स्थित खाद्य पदार्थ को अवशोषित करके, वृद्धि करने लगता है। इस प्रकार यह विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों द्वारा भरपूर हो जाता है जो भ्रूणके अंकुरण काल में उपयुक्त होने के लिये अभीष्ट होता है। वास्तव में भ्रूणपोष भ्रूण के लिये अनेक खाद्य पदार्थों का भाण्डागार माना जाता है। अनेक बीजों में परिपक्व अवस्था में भ्रूणपोष नहीं रहता, यद्यपि यह भ्रूण के विकास की अवस्था में सदा निर्मित होता है। यह इस प्रकार समझाया जा सकता है कि भ्रूण अपने विकास की अवस्था में भ्रूणपोष से खाद्य पदार्थ अवशोषण करता है और उसको पूर्णत. समाप्त कर देता है। इस प्रकार जब बीज में कुछ भी भ्रूणपोष शेष नहीं रहता तो बीज को अभ्रूणपोषी कहते हैं। फिर भी, कुछ दशाओं में भ्रूणपोष तीव्र गति से बढ़ता है जिससे कि भ्रूण उसे पूर्णत: व्यय नहीं कर सकता। ऐसे बीज को तब भ्रूणपोषी कहते हैं। अधिकतर दशाओं में जब भ्रूणपोष वृद्धि करता है तो यह प्रदेश क्षेत्र को पूर्णत: भर देता है जिससे बीज में प्रदेश बिलकुल नहीं रहता, लेकिन कुछ दशाओं में, जैसे जल नलिनी, अदरक कुल, गुल अब्बास और वगन-विलास में प्रदेश चिरलग्न रहता है और एक खाद्य संग्रह ऊतक में परिवर्तित हो जाता है जिसको परिपोष (perisperm) कहते हैं।

(३) **बीजाण्ड में अन्य परिवर्तन** (Other Changes in the Ovule)—बीजाण्ड में कुछ अन्य परिवर्तन भी होते हैं। दो कवच या आवरण दो **बीजावरणों** में परिवर्तित हो जाते हैं, जिनमें से बाह्य आवरण को बीजकवच और अन्दर वाले आवरण को अन्त:कवच कहते हैं। कुछ बीजों में बीजाण्ड में केवल एक आवरण होता है और कुछ पराश्रयी पौधों में कोई आवरण नहीं होता। कुछ बीजों, जैसे नीलोफर, जायफल (nutmeg), केट्टू (mangosteen), इत्यादि में, बीजाण्डवृन्तिका का एक उद्वर्ध होता है जो कि बीजाण्ड के चारों ओर वृद्धि करता है और लगभग बीज को ढक देता है। इस प्रकार के उद्वर्ध को **बीजोपांग** (aril) कहते हैं। जायफल का गदाधारी भाग बीजोपांग होता है। इसी प्रकार लीची और लटको (*Baccaurea*) का गूदा भी बीजोपांग है। पिथिकोलोबियम डल्से (*Pithecolobium dulce*) में भी बीजोपांग मांसल और भक्ष्य (edible) होता है। कुछ बीजों में अण्डद्वार के पास भी एक छोटा सा उद्वर्ध होता है जिसको **बीजचोल** (caruncle, देखिये चित्र ५ क) कहते हैं, जैसे एरण्ड और यूफोर्बिएसी कुल के अन्य पौधों में पाया जाता है। बीज के एक ओर एक छोटा सा चिह्न दिखाई देता है जिसको वृतक कहते

हैं। यह उस विन्दु को अंकित करता है जहां पर बीज या बीजाण्ड, वृंत या बीजाण्ड-वृन्तिका से संयोजित रहता है। अब बीजाण्ड और बीज में मिलने वाले विभिन्न भागों की तुलना की जा सकती है।

बीजाण्ड		बीज
बीजाण्डवृन्तिका	..	वृंत
वृंतक	..	वृंतक
प्रदेश	..	परिपोष
आवरण (कवच)	..	बीजावरण
अण्डद्वार	..	अण्डद्वार
भ्रूण-कोष		
(क) अंड समुच्चय		
(१) सहायकोशिकाएं	..	विघटित हो जाते हैं
(२) अंड-कोशिका	..	भ्रूण
(ख) निश्चित नाभिक	..	भ्रूणपोष
(ग) प्रतिमुख कोशिकाएं	..	विघटित हो जाते हैं।

अध्याय १२

फल (THE FRUIT)

फल का विकास (Development of the Fruit)—निषेचन के पश्चात् प्रथम परिणाम बीजाण्ड में घटनात्मक परिवर्तन के साथ भ्रूण का विकसित होना है, जिसमें बीजाण्ड पूर्णतया बीज में परिवर्तित हो जाता है। भ्रूण के विकास के साथ-साथ अण्डाशय की भित्ति में और फल के निर्माण से सम्बन्धित फूल के अन्य भागों में भी क्रम से बहुत परिवर्तन होने लगते हैं। इन परिवर्तनों के फल स्वरूप अण्डाशय से फल बन जाता है। इसलिये हम फल को प्रौढ या परिपक्व अण्डाशय भी कह सकते हैं। यदि किसी कारण निषेचन नहीं हो पाता तो अण्डाशय सूख कर गिर जाता है। फल के दो भाग होते हैं, अर्थात् (क) फलावरण (pericarp), जो अण्डाशय की भित्ति से विकसित होता है और (ख) बीज, जो बीजाण्डों से बनते हैं। संतरा, केला, अंगूर और अन्य फलों की कुछ कृष्ट (cultivated) क़िस्मों में भ्रूण और बीज विकसित नहीं होते और तब बीजरहित फल बनते हैं। फलावरण मोटा या पतला हो सकता है; जब यह मोटा होता है तब यह दो या तीन भागों का बना हो सकता है। बाह्य भाग को

उपरिच्छद (epicarp) कहते हैं, जो फल की त्वचा बनाता है ; मध्यवर्ती भाग को मध्यच्छद (mesocarp) कहते हैं और यह आम, आडू, ताड़, इत्यादि में गूदादार होता है ; और अतवर्ती भाग आन्तरभित्ति (endocarp) कहलाता है। यह भाग प्रायः पतला व झिल्लीमय होता है, जैसे संतरे में, या यह कठोर और अष्ठिल (stony) होता है, जैसे अनेक ताड़ों और आम में। कई दशाओं में फलावरण इन तीन भागों में भिन्नित नहीं रहता। जब फूल का केवल अण्डाशय ही फल में विकसित होता है तो इसको साधारणतया सत्य फल (true fruit) कहते हैं। परन्तु प्रायः यह देखा जाता है कि अन्य पुष्पीय भाग, जैसे पुष्पाक्ष (thalamus), पुष्पधर (receptacle) या बाह्यदल पुंज भी वृद्धि करते हैं और फल की रचना में भाग लेते हैं ; इस प्रकार के फल को कूट फल (false fruit) कहते हैं। अत. चलता (*Dillenia*) मे बाह्यदल पुंज चिरलग्न और मांसल होता है और फल का प्रमुख भाग बनाता है। सेव (चित्र ३०२) और नाशपाती में पुष्पाक्ष
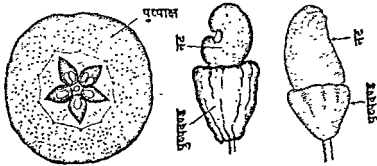
चित्र ३०२ चित्र ३०३ चित्र ३०४

चित्र ३०२—सेव अनुप्रस्थ काट में। चित्र ३०३—काजू। चित्र ३०४—भिलावा।

अण्डाशय के चारों ओर वृद्धि करता है और मांसल हो जाता है। स्ट्राबेरी में पुष्पाक्ष फूल जाता है और बाह्य उत्तल तल पर अनेक सूक्ष्म फल धारण करता है। गुलाब में (देखिये चित्र २६७) पुष्पाक्ष वर्धित होता है और अपने आन्तर अवतल सतह पर अनेक सूक्ष्म सत्य फल धारण करता है। सूर्यमुखी कुल मे अधोवर्ती फल (देखिये चित्र ३३४) शुष्क पुष्पाक्ष से परिवारित रहता है और प्रायः रोमों (बाह्यदल रोमों, pappus) से शिरोभूषित रहता है। काजू (cashew-nut, चित्र ३०३) में पुष्पदड और पुष्पाक्ष वृद्धि करते हैं और फूलकर मांसल हो जाते हैं और एक भक्ष्य फल सदृश काय बनाते हैं, जो कि एक कूट फल है। सत्य फल जो अण्डाशय से विकसित होता है एक भक्ष्य (edible) वृक्काकार काष्ठफल (nut) है और फूले हुए पुष्पदड पर स्थित रहता है। इसी प्रकार भिलावां (*Semecarpus*; चित्र ३०४) में पुष्पदण्ड

मांसल हो जाता है और असली काष्ठफल इसके शिखर पर स्थित रहता है। काष्ठफल भक्ष्य नहीं है लेकिन यह बीजियों द्वारा सूती कपड़ों पर नम्बर लगाने के काम आता है। शरीफा का पुंज-फल (aggregate fruit) जिसमें अनेक सत्य फल एक साथ सायुज्यित रहते हैं, एक कूट फल है, और अन्त में पुष्पक्रमों से विकसित फल, जैसे शहतूत, अनन्नास, अंजीर, बरगद, इत्यादि भी कूट फल माने जाते हैं।

फलों का स्फुटन (Dehiscence of Fruits; चित्र ३०५)—अनेक फल ऐसे हैं जिनके परिपक्व होने पर फलावरण फट जाता है और बीज बिखर जाते हैं। ऐसे फलों को स्फोटी (dehiscent) कहते हैं। बहुत से फल ऐसे भी होते हैं जिनका फलावरण नहीं फटता और इस कारण बीज फल से विमुक्त नहीं हो सकते जब तक कि वह सड़ न जाय। इस प्रकार के फलों को अस्फोटी (indehiscent) कहते हैं। स्फोटी फल नाना प्रकार से खुलते हैं और उनके खुलने की विधि के अनुसार स्फुटन अनुप्रस्थ (transverse), छिद्रिल (porous), और अनुदैर्घ्य (longitudinal) या कपाटीय (valvular) हो सकता है। कपाटीय स्फुटन भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं जैसे सीवनीय (sutural), कोष्ठ-स्फुटन (loculicidal), पटी-स्फोटक (septicidal), और पटी-भंग (septifragal) (देखिये चित्र ३०५)।

(१) अनुप्रस्थ (Transverse; चित्र ३०५ग)—जब फल अनुप्रस्थ रूप से फटता है जिससे कि उसका ऊपरी भाग निचले भाग से सन्दूक के अलग ढक्कन के समान अलग हो जाता है, जैसे सैलोसिया (*Celosia*), कुलफा (*Portulaca*), इत्यादि में।

(२) छिद्रिल (Porous; चित्र ३०५ख)—जब फल अनेक छोटे-छोटे छिद्रों द्वारा स्फुटित होता है जिनसे बीज विमुक्त हो जाते हैं, जैसे पोस्त (poppy), घिया तुरई (bath sponge), इत्यादि में।

(३) कपाटीय (Valvular)—जब फल शिखर से आधार तक या आधार से शिखर तक अनुदैर्घ्य रूप से पूर्णतः या अंशतः फटता है। जब स्फुटन पूर्णतः होता है तो फल अनेक भागों में टूट जाता है, जिनको कपाट (valves) कहते हैं, और इसलिये यह कपाटीय स्फुटन कहलाता है। यह निम्नलिखित प्रकार का हो सकता है:

एकाण्डप फलों में (In Monocarpellary Fruits)

(१) सीवनीय (Sutural; चित्र ३०५क)—जब एकाण्डपी फल फटते हैं तो हमेशा सीवनी (suture) की सहायता से ही फटते हैं। यह सीवनी या तो अक्षीय (ventral) होती है, जैसे मदार में; या पृष्ठीय (dorsal), जैसे दूली चम्पा (*Magnolia*) में, या दोनों सीवनियों से, जैसे लेग्यूमीनोसी (*Leguminosae*)

में, उदाहरणार्थ मटर, सेम, इत्यादि। इस प्रकार के स्फुटन को सीवनीय कहते हैं।

बहु अण्डपी फलों में (In Polycarpellary Fruits)

(२) कोष्ठ-स्फुटन (Loculicidal; चित्र ३०५घ)—जब फल का स्फुटन विवर या कोष्ठ के पीठ की ओर से होता है और कपाट अक्ष से अलग हो जाते हैं, जैसे पिंक
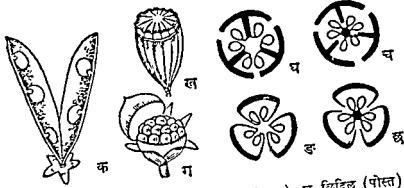
चित्र ३०५—फलों का स्फुटन। क, सीवनीय (मटर); ख, छिद्रिल (पोस्त); ग, अनुप्रस्थ (मैलोसिया), घ, कोष्ठ-स्फुटन, ङ, पटी-स्फोटक; च-छ, पटी-भंग।

(pink), मालवेसी के पौधों में, उदाहरणार्थ कपास, भिंडी, गुल अजायब (*Hibiscus mutabilis*), इत्यादि में, और एकैन्थेसी (*Acanthaceae*), उदाहरणार्थ वासक (*Adhatoda*), ऐन्ड्रोग्रेफिस (*Andrographis*), इत्यादि में।

(३) पटी-स्फोटक (Septicidal, चित्र ३०५ङ)—जब स्फुटन पट (septa) अर्थात् फल की विभाजक भित्ति (partition walls) के द्वारा होता है जिससे फल अपने सघटक अण्डपों में फटा हुआ प्रतीत होता है, जैसे अलसी (linseed), उलट-कम्बल (*Abroma augusta*), क्रूसीफेरी कुल के पौधों में, उदाहरणार्थ सरसों, मूली, इत्यादि में।

(४) पटी-भंग (Septifragal, चित्र ३०५च-छ)—जब बहुकोष्ठी फल का स्फुटन पटी-स्फोटक या पटी-भंग स्फुटन द्वारा होता है और साथ ही साथ पट या विभाजक भित्तियां भी टूट जाती हैं जिससे कपाट टूट कर गिर जाते हैं और बीज केन्द्रीय अक्ष पर लगे रह जाते हैं, जैसे धतूरा, तून (*Cedrela toona*), कनक चम्पा (*Pterospermum*), इत्यादि में।

फलों का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF FRUITS)

फल, चाहे वे सत्य हों या कूट, तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं, अर्थात् एकि फल (simple fruits), पुंज फल (aggregate fruits) और संग्रथित फल (multiple or composite fruits)।

क. एकि फल (Simple Fruits)

जब एक फूल के अण्डाशय से केवल एक फल, उप भागों सहित या रहित, विकसित होता है (सत्य या कूट फल जैसे ऊपर समझाया जा चुका है) तो उसको **एकि फल** कहते हैं। एकि फल शुष्क या मांसल हो सकता है। शुष्क फल स्फोटी (dehiscent) या अस्फोटी (indehiscent) हो सकते हैं।

१. स्फोटी फल (Dehiscent or Capsular Fruits)

(१) **शिंब या फली** (Legume or Pod; चित्र ३०६)—यह शुष्क एकाण्डपी फल है जो कि उत्तरीय, एककोष्ठी अण्डाशय से विकसित होता है और दोनों सीवनियों (sutures) से स्फुटित होता है, जैसे लेग्यूमीनोसी में, उदाहरणार्थ मटर, सेम, दालें, झुनझुनिया इत्यादि में।
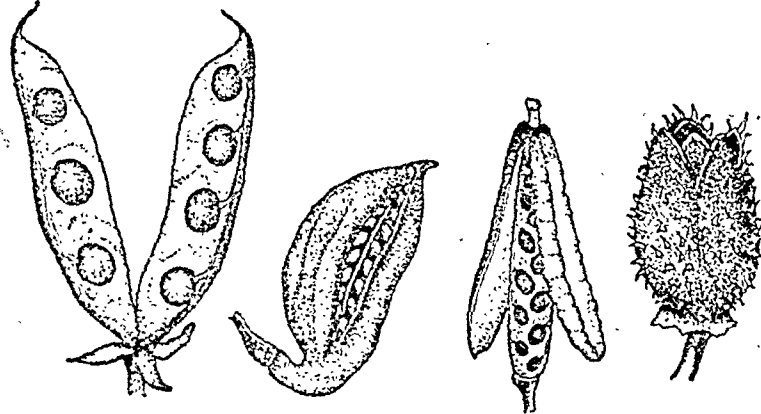
चित्र ३०६ चित्र ३०७ चित्र ३०८ चित्र ३०९

फल। चित्र ३०६–मटर का शिंब या फली। चित्र ३०७–मदार का एकसेवनी। चित्र ३०८–सरसों का कूटपटीक। चित्र ३०९–धतूरा का स्फोटिका।

(२) **एकसेवनी** (Follicle; चित्र ३०७)—यह भी शिंब के समान एक शुष्क, एकाण्डपी, उत्तरीय, एककोष्ठी फल है लेकिन यह केवल एकसीवनी से स्फुटित

होता है, जैसे मदार, एस्क्लेपिएस (*Asclepias*), सदाबहार (periwinkle), चम्पा, इत्यादि में।

(३) कूटपटीक (Siliqua; चित्र ३०८)—यह लम्बा, पतला, बहुबीजी फल है, जो उत्तरीय, द्विअण्डपी अण्डाशय से, जिसमें दो भित्तिलग्न जरायु होते हैं, विकसित होता है। यह दोनों सीवनियों के द्वारा नीचे से ऊपर को फटता है। पहले अण्डाशय केवल एककोष्ठी होता है, लेकिन जैसे-जैसे यह फल में विकसित होता है, बीच में कूट विभाजन भित्ति के बन जाने के कारण यह द्विकोष्ठी हो जाता है। इस कूट विभाजन भित्ति को कूटपटी (replum) कहते हैं जो एक जरायु से दूसरे जरायु तक फैली रहती है। कूटपटीक सरसों कुल या क्रूसीफेरी (*Cruciferae*) में पाया जाता है, जैसे सरसों, मूली, इत्यादि में।

(४) स्फोटिका (Capsule; चित्र ३०९-३१०)—यह बहुबीजी, एककोष्ठी या बहुकोष्ठी फल है, जो उत्तरीय (कभी-कभी अधोवर्ती), द्वि- या बहुअण्डपी अण्डाशय से बनता है और नाना प्रकार से फटता है। सब स्फुटनशील फल जो युक्ताण्डप अण्डाशय से विकसित होते हैं सामान्यतः स्फोटिका कहलाते हैं। स्फोटिका छिद्रों द्वारा फट सकता है, जैसे पोस्त में, या अनुप्रस्थ रूप से, जैसे सीलोसिया (*Celosia*) में; या कोष्ठस्फुटन रूप से, जैसे कपास, भिंडी और गुल अब्बास में, या पटीस्फोटक रूप से (septicidally), जैसे अलसी में या पटीभंग स्फोटन रूप से जैसे धतूरा में।

२. अस्फुटनशील या एकीन फल (Indehiscent or Achenial Fruits)

(१) केर्योप्सिस (Caryopsis; देखिये चित्र ६ और ७)—यह एक बहुत छोटा, शुष्क, एकबीजी फल है, जो कि उत्तरीय एकाण्डप अण्डाशय से बनता है। इस फल का फलावरण बीजावरण से सायुज्यित रहता है। इसके उदाहरण घास कुल या ग्रैमिनी (*Graminaceae*) में मिलते हैं।

(२) एकीन (Achene; चित्र ३११)—यह एक छोटा, शुष्क, एककोष्ठी और एकबीजी फल है, जो कि उत्तरीय एकाण्डप अण्डाशय से बनता है। लेकिन पहले वाले फल के विरुद्ध इस फल का फलावरण बीजावरण से अलग रहता है। [illegible] पृथक्अण्डप स्त्री केसर में विकसित होते हैं और [illegible] संख्या के समूह पैदा करता है जितने कि [illegible] क्लीमेटिस (*Clematis*) और नारवेलिया (*N*[illegible]

(३) सूर्यमुखी फल (*Cypsela*, [illegible] कोष्ठी, और एकबीजी फल है, जो [illegible] जिसमें फलावरण और बीजावरण अलग रहते हैं [illegible]

चित्र ३१० चित्र ३११ चित्र ३१२ चित्र ३१३
फल। चित्र ३१०–कपास का स्फोटिका। चित्र ३११–नारवेलिया का एकीन। चित्र ३१२–गर्जन का सपक्ष फल। चित्र ३१३–मधुलता का सपक्ष फल।

(४) काष्ठफल (Nut)—यह एक शुष्क, एककोष्ठी और एकवीजी फल है जो उत्तरीय द्वि- या वहुअण्डपी अण्डाशय से वनता है और जिसमें फलावरण कठोर व काष्ठ के समान होता है, उदाहरणार्थ चेस्ट नट, वाँज (oak), वीच (beech), इत्यादि में।

नारियल और ताड़ के फल अष्टिफल (drupe) हैं क्योंकि इनमें फल आन्तरभित्ति endocarp) कठोर और काष्ठी हो जाती है (न कि पूर्ण फलावरण), और सुपारी और खजूर एकवीजी भरी (berry) हैं क्योंकि इनमें फलावरण मुलायम होता है (रेशेदार सुपारी में, और गूदेदार खजूर में); इनमें बीज अष्टिल (stony) होता है न कि फलावरण)।

(५) सपक्ष फल (Samara; चित्र ३१२–३१३)—यह एक शुष्क, अस्फुटनशील, एक- या द्विवीजी फल है जो उत्तरीय द्वि- या त्रि-अण्डपी अण्डाशय से वनता है और जिसमें चिपिटित (flattened) पंखमय उद्वर्ध होते हैं, जैसे मधुलता (*Hiptage*), होपिया (*Hopea*), गर्जन (*Dipterocarpus*), एसर (*Acer*), इत्यादि में। सपक्ष फल में पक्ष हमेशा फलावरण से वनते हैं और फल संघटित भागों में फट जाता है, और प्रत्येक एक वीज को घेरे रहता है। साल (*Shorea*) का फल भी पक्षमय फल है लेकिन यहां पर पक्ष शुष्क चिरलग्न वाह्यदल हैं। इस प्रकार के सपक्ष फल को सपक्षी फल (samaroid) कहते हैं (देखिये चित्र ३३१)।

३. मांसल या सरस फल (Fleshy or Succulent Fruits)

मांसल फल एक- या बहुकोष्ठी, एक- या बहुबीजी, उत्तरीय या अधोवर्ती और अक्षवर्ती या भित्तिलग्न जरायुन्यास सहित हो सकते हैं। सामान्यतः वे अस्फुटनशील होते हैं और इस कारण बीज केवल मांसल भाग के सड़ने के बाद ही अलग होते हैं। ऐसे फलों में मुख्यतः जन्तुओं द्वारा बीजों का विकिरण होता है (देखिये पृष्ठ १८८)।

(१) अष्टिफल (Drupe; चित्र ३१४)—यह मांसल (सरस), एक- या बहु-कोष्ठी, और एक-या बहुबीजी फल है, जो कि एकाण्डप या युक्ताण्ड स्त्री केसर से बनता है। इसका फलावरण तीन भागों में भिन्नित रहता है, अर्थात् (१) उपरिच्छद (epicarp), जो फल का छिलका या चर्म बनाती है; (२) मध्यरच्छद (mesocarp), जो प्रायः मांसल होती है; और (३) आन्तरभित्ति (endocarp), जो कठोर व स्थूल होती है, इसलिये इस फल को अष्टिफल (stone-fruit) भी कहते हैं, उदाहरणार्थ आम, आड़ू, अलूचा, नारियल का फल और ताड़ आदि के फल।
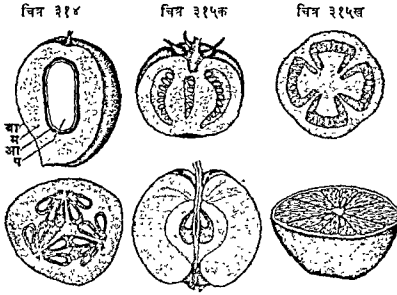
चित्र ३१४ चित्र ३१५क चित्र ३१५ख
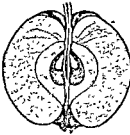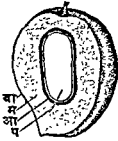
चित्र ३१६ चित्र ३१७ चित्र ३१८

फल। चित्र ३१४—आम का अष्टिफल। उ, उपरिच्छद; म, मध्यरच्छद; आ, आन्तरभित्ति; प, बीजपत्र। चित्र ३१५—टमाटर की भरी। क, अनुदैर्घ्य काट में, ख, अनुप्रस्थ काट में। चित्र ३१६—ककड़ी का पीपो, अनुप्रस्थ काट में। चित्र ३१७—सेव का पोम या सेवीय (देखिये चित्र ३०२)। चित्र ३१८—नारंगी का नारंगक।

चित्र ३१० चित्र ३११ चित्र ३१२ चित्र ३१३

चित्र ३१०—कपास का स्फोटिका। चित्र ३११—नारवेलिया का फल। चित्र ३१२—गर्जन का सपक्ष फल। चित्र ३१३—मधुलता एकीन। का सपक्ष फल।

(४) काष्ठफल (Nut)—यह एक शुष्क, एककोष्ठी और एकबीजी फल है जो उत्तरीय द्वि- या वहुअण्डपी अण्डाशय से वनता है और जिसमें फलावरण कठोर व काष्ठ के समान होता है, उदाहरणार्थ चेस्ट नट, वाँज (oak), बीच (beech), इत्यादि में।

नारियल और ताड़ के फल अष्टिफल (drupe) है क्योंकि इनमें फल आन्तरभित्ति (endocarp) कठोर और काष्ठी हो जाती है (न कि पूर्ण फलावरण), और सुपारी और खजूर एकबीजी भरी (berry) हैं क्योंकि इनमें फलावरण मुलायम होता है (रेशेदार सुपारी में, और गूदेदार खजूर में); इनमें बीज अष्टिल (stony) होता है न कि फलावरण)।

(५) सपक्ष फल (Samara; चित्र ३१२–३१३)—यह एक शुष्क, अस्फुटनशील, एक- या द्विबीजी फल है जो उत्तरीय द्वि- या त्रि-अण्डपी अण्डाशय से वनता है और जिसमें चिपिटित (flattened) पंखमय उद्वर्ध होते हैं, जैसे मधुलता (*Hiptage*), होपिया (*Hopea*), गर्जन (*Dipterocarpus*), एसर (*Acer*), इत्यादि में। सपक्ष फल में पक्ष हमेशा फलावरण से वनते हैं और फल संघटित भागों में फट जाता है, और प्रत्येक एक बीज को घेरे रहता है। साल (*Shorea*) का फल भी पक्षमय फल है लेकिन यहां पर पक्ष शुष्क चिरलग्न वाह्यदल हैं। इस प्रकार के सपक्ष फल को सपक्षी फल (samaroid) कहते हैं (देखिये चित्र ३३१)।

३. मांसल या सरस फल (Fleshy or Succulent Fruits)

मांसल फल एक- या बहुकोष्ठी, एक- या बहुबीजी, उत्तरीय या अधोवर्ती और अक्षवर्ती या भित्तिलग्न जरायुन्यास सहित हो सकते हैं। सामान्यतः वे अस्फुटनशील होते हैं और इस कारण बीज केवल मासल भाग के सड़ने के बाद ही अलग होते हैं। ऐसे फलों में मुख्यतः जन्तुओं द्वारा बीजों का विकिरण होता है (देखिये पृष्ठ १८८)।

(१) अष्ठिफल (Drupe; चित्र ३१४)—यह मांसल (सरस), एक- या बहु-कोष्ठी, और एक-या बहुबीजी फल है, जो कि एकाण्डप या युक्ताण्ड स्त्री केसर से बनता है। इसका फलावरण तीन भागों में भिन्नित रहता है, अर्थात् (१) उपरिच्छद (epicarp), जो फल का छिलका या चर्म बनाती है; (२) मध्यस्च्छद (mesocarp), जो प्रायः मासल होती है; और (३) आन्तरभित्ति (endocarp), जो कठोर व स्थूल होती है, इसलिये इस फल को अष्ठिफल (stone-fruit) भी कहते हैं, उदाहरणार्थ आम, आड़ू, अलूचा, नारियल का फल और ताड़ आदि के फल।

चित्र ३१४ चित्र ३१५क चित्र ३१५ख

वा
म
आ
प

चित्र ३१६ चित्र ३१७ चित्र ३१८

फल। चित्र ३१४—आम का अष्ठिफल। वा, उपरिच्छद; म, मध्यस्च्छद; आ, आन्तरभित्ति; प, बीजपत्र। चित्र ३१५—टमाटर की भरी। क, अनुदैर्घ्य काट में; ख, अनुप्रस्थ काट में। चित्र ३१६—ककड़ी का पीपो, अनुप्रस्थ काट में। चित्र ३१७—सेब का पोम या सेबीय (देखिये चित्र ३०२)। चित्र ३१८—नारंगी का नारंगक।

(२) भरी या बेरी (Berry or Bacca; चित्र ३१५)—यह उत्तरीय (कभी-कभी अवोवर्ती), अस्फुटनशील, प्रायः वहुवीजी, सरस या गूदेदार फल है, जो एक अण्डप या अधिकतर युक्ताण्डप स्त्री केसर से विकसित होता है जिसका जरायुन्यास अक्षवर्ती या भित्तिलग्न होता है, उदाहरणार्थ टमाटर, मकोय, अंगूर, वैगन, केला, अमरूद और पपीता, इत्यादि में। भरी में पहले पहल वीज जरायु में लगे रहते हैं परन्तु वाद में वे जरायु में अलग हो जाते हैं और स्वतन्त्र रूप से गूदे में रहते हैं। एक उपरिच्छद भी वहुधा मिलती है, जैसे खजूर, कंटेली चम्पा, इत्यादि में। भरी में उपरिच्छद, मध्यस्च्छद और आन्तरभित्ति भिन्नित रहते हैं लेकिन यह अष्टिफल से स्थूल आन्तरभित्ति (endocarp) न होने के कारण भिन्नित की जा सकती है।

(३) पीपो (Pepo; चित्र ३१६)—यह भी भरी के समान मांसल व गूदेदार, वहुवीजी फल है, लेकिन यह अवोवर्ती, एककोष्ठी या कूटीय त्रिकोष्ठक युक्ताण्डप स्त्री केसर से वनता है जिसमें भित्तिलग्न जरायुन्यास होता है। यह कद्दू कुल या क्यूकरविटेसी का लक्षणीय फल है। पीपो में वीज गूदे में न्याविष्ट रहते हैं और जरायु से संयोजित रहते हैं।

(४) सेवीया या पोम (Pome; चित्र ३१७)—यह अवोवर्ती द्वि- या वहुकोष्ठी, मांसल, युक्ताण्डप फल है जो कि पुष्पाक्ष से घिरा रहता है। मांसल खाने योग्य भाग पुष्पाक्ष का वना होता है और वास्तविक फल उसके अन्दर रहता है। इसके उदाहरण सेव व नाशपाती में मिलते हैं।

(५) नारंगक (Hesperidium; चित्र ३१८)—यह उत्तरीय, वहुवीजी, मांसल फल है, जो कि युक्ताण्डप स्त्री केसर से विकसित होता है जिसमें अक्षवर्ती जरायु-न्यास होता है। इसमें आन्तरभित्ति अन्दर की ओर प्रक्षिप्त (projected) रहती है और स्पष्ट कोष्ठ वनाती है और उपरिच्छद और मध्यस्च्छद आपस में सायुज्यित रहते हैं और आसानी से पृथक होने वाला छिलका वनाती हैं, उदाहरणार्थ संतरा, चकोतरा, नीवू इत्यादि।

ख. पुंजफल (Aggregate Fruits)

पुंजफल एकल (single) पुष्प से वनता है जिसमें पृथक अण्डप स्त्री केसर हो। अण्डप अलग्न होने के कारण प्रत्येक अण्डप एकि फल (simple fruitlet) में विकसित होता है। इसलिये एक पुंजफल एकि फलों का समूह होता है; उतने ही फलों का समुदाय जितने अलग्न अण्डप उस पुष्प में होते हैं। एकि फलों का पुंज जो कि एक पुष्प से विकसित होता है समूहफल (etaerio) कहलाता है। समूह-फल का प्रत्येक फल एकस्फोटी (follicle), एकीन (achene), भरी (berry) या अष्टिफल (drupe) हो सकता है।

ग. संग्रथित फल (Multiple or Composite Fruits)

संग्रथित फल वह होता है जो कई फूलों से बनता है जो कि सन्निविष्ट (juxtaposed together) रहते हैं; या दूसरे शब्दों में पुष्पक्रम से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के फल को संनिधानफलीय (infructescence) कहते हैं।

(१) सरसाक्ष (Sorosis)—यह एक संग्रथित फल है जो कि शूकी (spike) या स्थूल मंजरी (spadix) से बनता है। फूल अपने सरस बाह्यदलों से सायुज्यित रहते हैं और साथ-साथ इनका अक्ष, जिस पर ये लगे रहते हैं, भी बढ़ता है और मांसल या काष्ठीय हो जाता है। इसके परिणाम स्वरूप पूर्ण पुष्पक्रम एक ठोस पुंज बन जाता है, उदाहरणार्थ अनन्नास (pineapple) और कटहल। शहतूत भी सरसाक्ष है लेकिन इसमें मांसल भाग अवद्ध संयोजित बाह्यदलों का बना होता है।

(२) उदुम्बरक (Syconus; चित्र २९३)—उदुम्बरक एक खोखले, नाशपाती के आकार के मांसल पुष्पधर से विकसित होता है जिसमें अनेक छोटे नर व स्त्री पुष्प समावृत रहते हैं। पुष्पधर बढ़ता है और मांसल हो जाता है और तथाकथित (so-called) फल बनाता है। यह वास्तव में अनेक मन्द फलों या एकीनों को समावृत करता है जो पुष्पधर के अन्दर स्त्री पुष्पों से विकसित होते हैं, जैसे अंजीर, बरगद, पीपल, इत्यादि में।

कुछ सामान्य फल और उनके भक्ष्य (edible) भाग

सेब (सेबीया)—मांसल पुष्पासन। केला (भरी)—मध्यफलभित्ति और आन्तरभित्ति। काजू (काष्ठफल)—पुष्पवृंत और बीजपत्र। नारियल (रेशेदार काष्ठफल)—भ्रूणपोष। ककड़ी (पीपो)—मध्यफलभित्ति, आन्तरभित्ति और जरायु। शरीफा (भरियों का समूह फल)—प्रत्येक भरी का मांसल, मग्न फलावरण। चलता (*Dillenia*)—अनिवर्धमान बाह्यदल पुंज (accrescent calyx)। अंजीर (उदुम्बरक) मांसल पुष्पधर। कटहल (सरसाक्ष)—निपत्र, परिदल पुंज, और बीज। अंगूर (भरी)—फलावरण और जरायु। भारतीय प्लम (अष्ठिफल)—मध्यफलभित्ति, उपरिभित्ति सहित। अमरूद (भरी)—पुष्पासन और फलावरण। लीची (एक-बीजी काष्ठफल)—मांसल बीजोपांग। मक्का, जई, धान और गेहूं (कैरियोप्सिस)—मंडीय भ्रूणपोष। आम (अष्ठिफल)—मध्यफलभित्ति। तरबूज (पीपो या कलाबुक)—मध्यफलभित्ति। नारंगी (नारंगक)—सरस जरायु रोम। ताड़ (रेशेदार अष्ठिफल)—मध्यफलभित्ति। पपीता (भरी)—मध्यफलभित्ति। मटर (शिंब)—बीजपत्र। नाशपाती (पोम या सेबीया)—मांसल पुष्पासन। अनन्नास (सरसाक्ष)—पुष्पधर का बाहरी भाग, निपत्र तथा परिदल पुंज। अनार (दाडिमक)—बीज

का सरस वाह्य स्तर। चकोतरा (नारंगक)—सरस जरायु रोम। स्ट्रावेरी (एकीनों या काष्ठ फलों का पुंजफल)—सरस पुष्पाक्ष। टमाटर (भरी)—फलावरण तथा जरायु। कैथ (भरी)—फल मध्यस्च्छद, आन्तरभित्ति, और जरायु।

अध्याय १३

बीजों और फलों का विकिरण

(DISPERSAL OF FRUITS AND SEEDS)

यदि बीज और फल सीधे मातृ पौधे के नीचे गिरकर वहीं उगते हैं तो मिट्टी के सारे आवश्यक पदार्थों को व्यय कर सकते हैं। ऐसी दशा में उन्हें स्थान व प्रकाश की कमी भी बहुत अधिक अनुभव होती है। इसलिये खाद्य पदार्थ व प्रकाश की कमी के कारण जीवन संघर्ष आरम्भ हो जाता है जिसका फल पौधें के लिये घातक भी सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार की और अन्य प्रकार की संभाव्य घटनाओं से रक्षा करने के लिये पौधें विभिन्न प्रकार की युक्तियां उत्पन्न कर लेते हैं, जिनसे उनके बीज दूर-दूर तक विस्तरित हो जांय। इसके अतिरिक्त यदि बीज व फल दूर-दूर तक बिखर जांय तो यह बहुत सम्भव है कि उनमें से कुछ को अंकुरण और वृद्धि की अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त हो सकें। इस प्रकार पौधों की किसी जाति के लुप्त होने का भय नहीं रहता।

१. वायु द्वारा विकिरण होने वाले बीज व फल (Seeds and Fruits dispersed by Wind)

बीज व फलों में अनेक अनुकूलन होते हैं जो उन्हें वायु द्वारा जनक पौधे से थोड़े या अधिक दूरी तक बिखर जाने में सहायता करते हैं।

चित्र ३२०
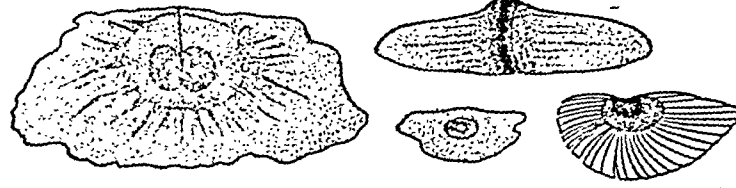
चित्र ३१९ चित्र ३२१ चित्र ३२२

सपक्ष बीज। चित्र ३१९–अरलू। चित्र ३२०–सिकोना। चित्र ३२१–परल। चित्र ३२२–जकल।

(१) पक्ष या पंख (Wings)—अनेक पौधों के बीज व फल पक्ष के रूप में एक या अधिक उपांग उत्पन्न कर लेते हैं जो कि उनको हवा में तैरने में सहायता देते हैं और वायु द्वारा उनके विकिरण में सुविधा पहुंचाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अरलू (*Oroxylon*; चित्र ३१९) सिंकोना, (*Chinchona*; चित्र ३२०), परल (*Stereospermum*; चित्र ३२१), जरुल (*Lagerstroemia*; चित्र ३२२), सहिजन (*Moringa*; चित्र ३२३), टिकोमा (*Tecoma*) के बीजों में पतले, झिल्लीवत पक्ष होते हैं और जब फल फटता है तो बीज हवा के झोकों के साथ दूर-दूर तक चले जाते हैं। इसी प्रकार उसी काम के लिये बहुत फलों में भी एक या दो पंख होते हैं। इस प्रकार के कुछ उदाहरण रतालू *Dioscorea*; चित्र ३२४), ऐश (*Fraxinus*; चित्र ३२५), होपिया (*Hopea*; चित्र ३२७), टर्मिनेलिया मिरियोकार्पा (*Terminalia myriocarpa*; चित्र ३२६), एसर (*Acer*; चित्र ३२८), गरजन (*Dipterocarpus*, चित्र ३२९), मधुलता (*Hiptage*; चित्र ३३०) और साल (*Shorea* ; चित्र ३३१) के फल हैं।

चित्र ३२३ चित्र ३२४

चित्र ३२३—सहिजन का सपक्ष बीज।
चित्र ३२४—रतालू का सपक्ष फल।
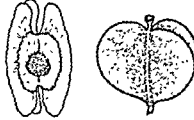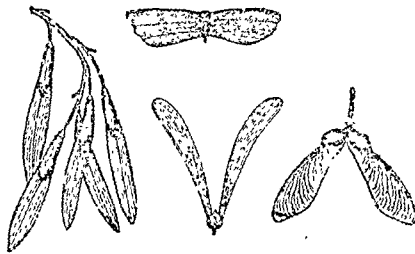
चित्र ३२६

चित्र ३२५ चित्र ३२७ चित्र ३२८

सपक्ष फल। चित्र ३२५–ऐश। चित्र ३२६–टर्मिनेलिया मिरियोकार्पा।
चित्र ३२७–होपिया। चित्र ३२८–एसर।

(२) वायु छत्रत्व (Parachute Mechanism)—कम्पोजिटी कुल के अनेक पौधों में वाह्यदल पुंज रोम सदृश संरचनाओं में रूपान्तरित रहते हैं जिनको
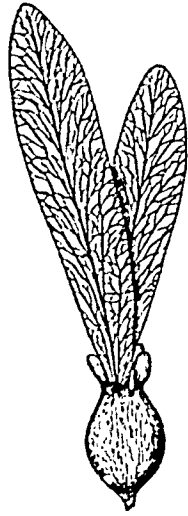
चित्र ३२९ चित्र ३३० चित्र ३३१

सपक्ष फल। चित्र ३२९–गरजन। चित्र ३३०–मधुलता। चित्र ३३१–साल।
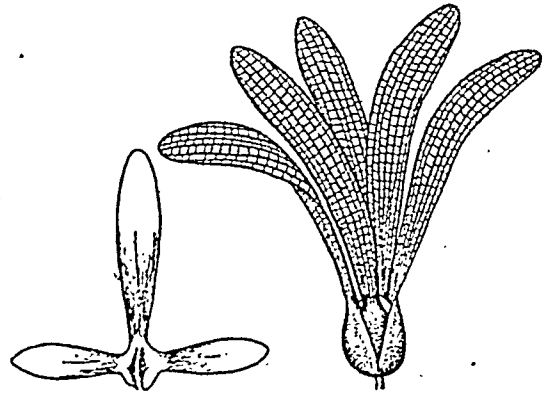
चित्र ३३२ चित्र ३३३

चित्र ३३२—हंसलता बतखनुमा फूलों सहित। चित्र ३३३—हंसलता का फल अवलम्ब टोकरी के समान।
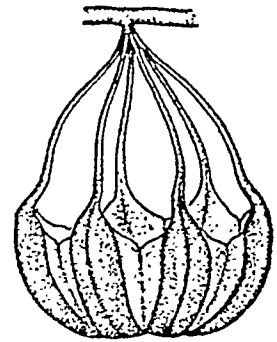
बाह्यदल रोम (pappus) कहते हैं (चित्र ३३४)। यह बाह्यदल रोम फल में चिरलग्न रहता है और छाता के समान खुलता है। जैसे ही फल जनक पौधे से अलग होता है बाह्यदल रोम वायुछत्र (parachute) का काम करता है और उसे हवा में तैरने में सहायता करता है। कभी-कभी फल वायु द्वारा बहुत दूर तक ले जाते हुए भी पाये गये हैं।

(३) समुच्छल विधि (Censer Mechanism)—कुछ पौधों के बीजों का, फल के स्फुटन के बाद ही हवा द्वारा विकिरण हो सकता है। ऐसी दशाओं में बहुधा बीज फल से उस समय तक नहीं निकल सकते जब तक फल हवा द्वारा हिलें नहीं। इस प्रकार पोस्त, भरभडा, घिया तुरई, हंसलता (*Aristolochia gigas*) इत्यादि में फल स्फुटित होता है और जब यह हवा द्वारा हिलता है तो बीज छिटक जाते हैं।

(४) रोम (Hairs)—मदार (चित्र ३३५), ऐस्क्लेपिएस (*Asclepias*), करछी (*Holarrhena*), ब्यूमौन्टिया (*Beaumontia*), चेतियन (*Alstonia*; चित्र ३३६)

चित्र ३३४ चित्र ३३५
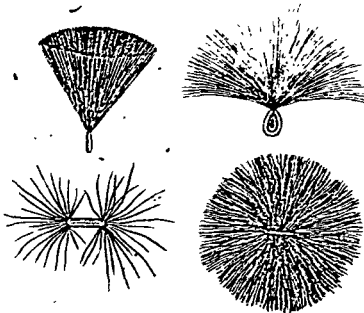
चित्र ३३६ चित्र ३३७

रोयेंदार फल व बीज। चित्र ३३४—कम्पोजिटी के फल का बाह्यदल रोम। चित्र ३३५—मदार। चित्र ३३६—चेतियन। चित्र ३३७—कपास।

और कपास (चित्र ३३७) के बीज के पूरे भाग में रोम एक या [illegible]ओं में लगे रहते हैं। ये रोम बीज को वायु द्वारा बिखरने में सहायता

(५) चिरलग्न वर्तिका (Persistent Styles)—क्लीमेटिस (*Clematis*; चित्र ३३८) और नारवेलिया (*Naravelia*; चित्र ३३९) में वर्तिका चिरलग्न और पक्षवद् होती हैं। इस प्रकार फल आसानी से वायु द्वारा ले जाये जा सकते हैं।

(६) हल्के बीज व फल (Light Seeds and Fruits)—कुछ बीज व फल इतने हल्के और आकार में इतने छोटे होते हैं कि वे वायु के हल्के झोंके से भी ले जाये जा सकते हैं। वनस्पति जगत में ऑर्किड्स के बीज सबसे छोटे होते हैं। उनमें एक स्फोटिका (capsule) में लाखों बीज रहते हैं और वे आकार में इतने छोटे और उनका भार इतना कम होता है कि वे हवा द्वारा धूल के कणों के समान उड़ाये जा सकते हैं। कुछ घासों के बीज (फल) भी बहुत छोटे और हल्के होते हैं। सिंकोना (जिससे कुनैन निकलती है) के बीज भी बहुत छोटे व हल्के होते हैं और उनमें झिल्लीमय पंख होते हैं। आधी छंटाक में इसके ७०,००० बीज होते हैं।

चित्र ३३८ चित्र ३३९
चिरलग्न वर्तिकाएं। चित्र ३३८—क्लीमेटिस के फल। चित्र ३३९—नारवेलिया के फल।

२. जल द्वारा बीजों व फलों का विकिरण (Seeds and Fruits dispersed by Water)

जिन बीजों व फलों का पानी द्वारा विकिरण होता है वे प्रायः स्पन्जी या रेशेदार बाह्य आवरण के रूप में प्लावी युक्तियां (floating devices) उत्पन्न कर लेते हैं। नारियल का रेशेदार फल समुद्र में काफी दूर तक बिना किसी हानि के बह जाते हैं। अतः नारियल समुद्री किनारों और समुद्री द्वीपों की मुख्य वनस्पति है। लॉडोइसिया (*Lodoicea*; चित्र ३४०) की भी यही दशा है। इस पौधे में सबसे बड़ा फल उत्पन्न होता है और फल को पकने में दस साल लगते हैं। इसके फल, पेड़ के पता लगने से काफी पूर्व ही हिन्द महासागर में बहते हुये पाये गये थे। कमल में पुष्पाक्ष स्पन्जी होता है और इसके अर्ध गोलाकार शिखर पर फल लगे रहते हैं। यह समूचा ही पानी में तैरता रहता है और हवा या जल की धारा द्वारा ले जाया जाता है। कुछ समय बाद पुष्पाक्ष सड़ जाता है और फल अलग हो जाते हैं। वे डूब कर पानी के तल में पहुंच

चित्र ३४०—लाडोइसिया का बीज।

जाते हैं और कुछ समय बाद अंकुरित हो जाते हैं। कभी-कभी बीज छोटे व हल्के होते हैं और पानी में तैर सकते हैं, जैसे जल नलिनी के बीज। इनके बीज में एक बीजोपांग होता है जिसमें हवा भरी रहती है। जब फल स्फुटित होता है तो बीज पानी पर तैरने लगते हैं। नदी के किनारे उगने वाले पौधों के फल और बीज बराबर पानी की धारा द्वारा ही ले जाये जाते रहते हैं।

३. विस्फोटक फलों द्वारा बीजों का विकिरण (Seeds dispersed by Explosive Fruits)

बहुत से फल आकस्मिक झटके के साथ स्फुटित होते हैं। इसके फलस्वरूप बीज जनक पौधे से कुछ गज की दूरी पर छिटक जाते हैं। विस्फोटक फलों के साधारण उदाहरण गुलमेंहदी, खट्टी बूटी (*Oxalis*), हरसिंगार, एरंड, इत्यादि हैं। गुलमेंहदी के पके फल छूते ही अकस्मात फट जाते हैं। इनकी कपाटियां अन्दर की ओर मुड़ जाती हैं और बीज तेज झटके के साथ बाहर निकल कर चारों दिशाओं में बिखर जाते हैं। ऐकैन्थसी (*Acanthaceae*) के कई पौधों में विस्फोटक फल पाये जाते हैं जो नम या शुष्क दशाओं में एकाएक अग्र भाग से आधार तक फट जाते हैं और बीजों

चित्र ३४१—रूएलिया ; विस्फोटक फल का आलोकन करो। ज, हुकाभ।

को कुछ झटके के साथ बाहर फेंक देते हैं। इनमें से बहुत दशाओं में बीजों में हुकाभ (jaculators) रहते हैं जो कि सीधे हो जाते हैं और बीजों के बाहर निकलने में सहायता करते हैं। अतः रूएलिया (*Ruellia*; चित्र ३४१) के शुष्क फल वर्षा के

(५) चिरलग्न वर्तिका (Persistent Styles)—क्लीमेटिस (*Clematis*; चित्र ३३८) और नारवेलिया (*Naravelia*; चित्र ३३९) में वर्तिका चिरलग्न और पक्षवद् होती हैं। इस प्रकार फल आसानी से वायु द्वारा ले जाये जा सकते हैं।

(६) हल्के बीज व फल (Light Seeds and Fruits)—कुछ बीज व फल इतने हल्के और आकार में इतने छोटे होते हैं कि वे वायु के हल्के झोंके से भी ले जाये जा सकते हैं। वनस्पति जगत में ऑर्किड्स के बीज सबसे छोटे होते हैं। उनमें एक स्फोटिका (capsule) में लाखों बीज रहते हैं और वे आकार में इतने छोटे और उनका भार इतना कम होता है कि वे हवा द्वारा धूल के कणों के समान उड़ाये जा सकते हैं। कुछ घासों के बीज (फल) भी बहुत छोटे और हल्के होते हैं। सिंकोना (जिससे कुनैन निकलती है) के बीज भी बहुत छोटे व हल्के होते है और उनमें झिल्लीमय पंख होते हैं। आधी छटांक में इसके ७०,००० बीज होते हैं।

चित्र ३३८ चित्र ३३९
चिरलग्न वर्तिकाएं। चित्र ३३८—क्लीमेटिस के फल। चित्र ३३९—नारवेलिया के फल।

२. जल द्वारा बीजों व फलों का विकिरण (Seeds and Fruits dispersed by Water)

जिन बीजों व फलों का पानी द्वारा विकिरण होता है वे प्रायः स्पन्जी या रेशेदार बाह्य आवरण के रूप में प्लावी युक्तियां (floating devices) उत्पन्न कर लेते हैं। नारियल का रेशेदार फल समुद्र में काफी दूर तक बिना किसी हानि के बह जाते हैं। अतः नारियल समुद्री किनारों और समुद्री द्वीपों की मुख्य वनस्पति है। लोडोइसिया (*Lodoicea*; चित्र ३४०) की भी यही दशा है। इस पौधे में सबसे बड़ा फल उत्पन्न होता है और फल को पकने में दस साल लगते हैं। इसके फल, पेड़ के पता लगने से काफी पूर्व ही हिन्द महासागर में बहते हुये पाये गये थे। कमल में पुष्पाक्ष स्पन्जी होता है और इसके अर्ध गोलाकार शिखर पर फल लगे रहते हैं। यह समूचा ही पानी में तैरता रहता है और हवा या जल की धारा द्वारा ले जाया जाता है। कुछ समय बाद पुष्पाक्ष सड़ जाता है और फल अलग हो जाते हैं। वे डूब कर पानी के तल में पहुंच

चित्र ३४०—लाडोइसिया का बीज।

झोंके के बाद पानी के सम्पर्क में आने पर एकाएक दो कपाटियों में स्फुटित हो जाते हैं और बीज सब दिशाओं में छिटक जाते हैं। इसी प्रकार महातीत (*Andrographis*) वज्रदन्ती (*Barleria*), ऐकैन्थस (*Acanthus*), इत्यादि के पके फल भी जब शुष्क हवा रहती है एकाएक फट जाते हैं और बीज छिटक जाते हैं। तेज धूप के दिन फ्लाक्स (*Phlox*) और वज्रदन्ती के फलों के स्फुटन की आवाज स्पष्ट सुनाई देती है। फटने वाले फलों का एक रोचक उदाहरण चम्बुली (*Bauhinia vahlii*) में दिखाई देता है। इसकी लम्बी फली जो कि कभी एक फीट से भी लम्बी होती है तीव्र ध्वनि के साथ फटती है और बीजों को विभिन्न दिशा में बिखेर देती है (चित्र ३४२)।
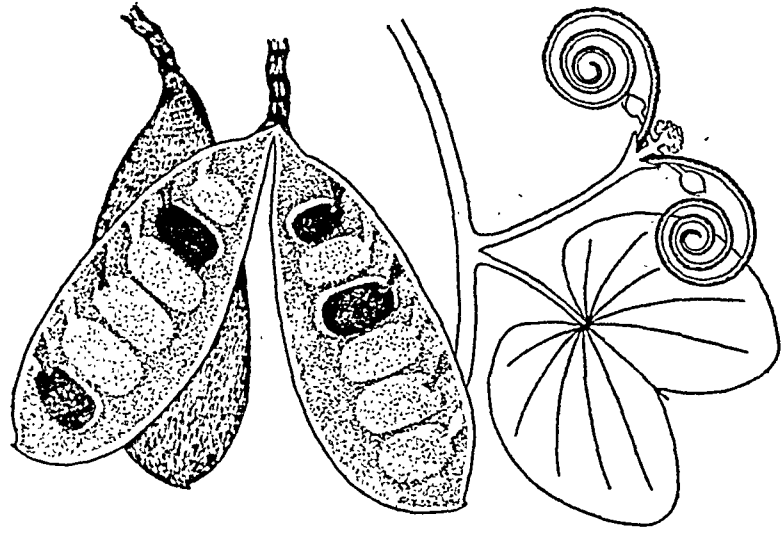
चित्र ३४२—चम्बुली; विस्फोटक फल का आलोकन करो।

४. जन्तुओं द्वारा बीजों और फलों का विकिरण (Seeds and Fruits dispersed by Animals)

बहुत से फलों के शरीर पर हुक, कांटे, कंट, दृढ़ रोम, चिपचिपी ग्रन्थियां होती हैं जिनकी सहायता से वे ऊन वाले जानवरों और मनुष्यों के कपड़ों पर चिपक जाते हैं और जनक पौधे से बहुत दूर तक चले जाते हैं। ओकरा (*Xanthium*; चित्र ३४३), वन-ओकरा (*Urena*; चित्र ३४५) के फल में बहुत से वक्र हुक और एरिसटिडा (*Aristida*; चित्र ३४४) और चोर कांटा (*Chrysopogon*) के फल में इसी काम के लिये पीछे को मुड़े हुए स्तब्ध रोम होते हैं। पुपेलिया (*Pupalia*; चित्र ३४७) इस प्रकार

के विकिरण का बहुत अच्छा उदाहरण है। इसमें फूल छोटे होते हैं और झुंडों में उगते हैं। बाहर के (अपूर्ण पुष्प) पुष्पों के परिदल पुंज के खंडों में हुक वाले दृढ़लोम होते हैं जो बाहर की ओर फैले रहते हैं। जानवरों द्वारा फलों के विकिरण में ये हुकदार दृढ़लोम
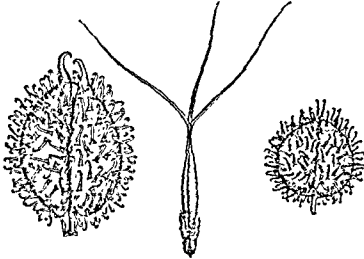
चित्र ३४३ चित्र ३४४ चित्र ३४५

चित्र ३४३—ओकरा का फल वक्र हुक सहित। चित्र ३४४—एरिसटिडा का बीज (फल) आधार पर स्तब्ध रोम सहित। चित्र ३४५—वन-ओकरा का फल वक्र हुक सहित।

बहुत सहायता देते हैं। बाघनखी (*Martynia*, चित्र ३४८) में दो बहुत तेज नुकीले, स्तब्ध व मुड़े हुए हुक रहते हैं जिनके द्वारा ये ऊन वाले जानवरों के शरीर पर चिपक जाते हैं और आसानी से बिखर जाते हैं, लटजीरा (*Achyranthes*) के फल जिनमें सूखे तथा पतले निपत्र और परिदल पुंज पत्तियां (perianth leaves) होती हैं, तथा पुनर्नवा (*Boerhaavia*, चित्र ३४९) और चित्रक (*Plumbago*) के फल, जिनमें चिपचिपी ग्रन्थियां होती हैं, भी इसी प्रकार जानवरों द्वारा विकिरित होती हैं। गोखरू (*Tribulus*) के फल में तेज व स्तब्ध कांटे होते हैं, जिनके द्वारा वे खुरदार जन्तुओं के पैरों पर चिपक जाते हैं और आसानी से बिखर जाते हैं।

अनेक मांसल फलों (विशेषकर अभिदृश्य रंग वाले) के बीज चिड़ियों द्वारा विकिरित होते हैं। वे अमरूद, अंगूर, अंजीर, इत्यादि के गूदेदार फलों को खाते हैं और अपच बीज उनके मल के साथ बाहर निकल आते हैं। ये बीज तब अंकुरित होने लगते हैं। अंजीर, बरगद और पीपल प्राय ताड़ के तनों पर उगे हुए पाये जाते हैं। इन र

में चिड़ियों या गिलहरियों द्वारा बीज वहां छोड़ दिये जाते हैं। विस्कम (*Viscum*) में, जो आम और अन्य पौधों पर अर्ध-पराश्रयी है, बीज बहुत चिपचिपे होते हैं और उन चिड़ियों
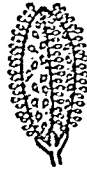
चित्र ३४६ चित्र ३४७ चित्र ३४८

चित्र ३४६–पुनर्नवा का फल चिपचिपी ग्रन्थियों सहित। चित्र ३४७–पुपेलिया के फूल हुकवाले दृढ़लोमों सहित। चित्र ३४८–बाघनखी का फल दो नुकीले मुड़े हुये हुकों सहित।
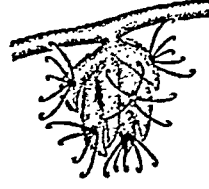
की चोंच पर आसानी से चिपक जाते हैं जो इनके फलों को खाने आती हैं। चिड़ियां अपनी चोंच किसी पेड़ की शाखा पर रगड़ कर साफ करती हैं जिससे बीज पेड़ पर चिपक जाते हैं और अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित हो जाते हैं।

बहुत सी चिड़ियों के (जो पानी में तैरती हैं) शरीर पर जलीय पौधों के फल व बीज चिपक जाते हैं और एक तालाब से दूसरे तालाब तक चले जाते हैं। इसी तरह वे फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती हैं। गीदड़ खजूर और बेर आदि खाते हैं और बीज उनकी पाचन नली से बाहर निकल आने पर अंकुरित हो जाते हैं। चमगादड़ और गिलहरियां भी बीजों के विकिरण में हाथ बंटाते हैं। खाने योग्य फल, सुन्दर फूल, दवाई में काम आने वाले अथवा दूसरे आर्थिक महत्व के पौधे भी मनुष्य जाति के द्वारा वितरित हो जाते हैं।

भाग २

औतिकी या हिस्टॉलॉजी (HISTOLOGY)

अध्याय १

कोशिका (THE CELL)

ऐतिहासिक विवरण—औतिकी का अध्ययन १६६५ ई० से शुरु हुआ जब रॉबर्ट हुक (Robert Hook) नामक एक अंग्रेज ने सर्वप्रथम बोतल के काग (cork) की पतली पर्त की आन्तरिक रचना का अपने स्वयं उन्नत किये सूक्ष्मदर्शी (microscope) की सहायता से अध्ययन किया। उसने पहले पहल बोतल के काग में मधुमक्खी के छत्ते सदृश एक संरचना देखी, और उस संरचना के प्रत्येक अलग-अलग खोखले विवर या गुहा (cavity) को उसने कोशिका (cell) के नाम से पुकारा।

हालैंड निवासी एन्थनी ल्यूवेनहोक (Anthony Leeuwenhoek) ने सर्वप्रथम सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार किया। वह एक बिसाती था, लेकिन १६५३ ई० में, जब वह २१ वर्ष का था, उसे लैन्सों (lenses) को घिसने के धुन सवार हुई। उसने इस कार्य को बड़े उत्साह और परिश्रम के साथ जारी रक्खा और २० वर्ष के अन्दर (१६५३ से १६७३) उसने अपने लैन्सों में आश्चर्यजनक सूक्ष्मता, यथातथ्यता और पूर्णता सम्पन्न की। उसने १६६७ ई० में रायल सोसाइटी के सामने अपने सूक्ष्मदर्शी द्वारा सर्वप्रथम जीवाणुओं (bacteria) का अनुसंधान किया जिनका उसने 'अभागे जन्तु' (the wretched beasties) नाम रखा।

सन् १८३८ ई० में जर्मन वैज्ञानिकों, श्लाईडन (Schleiden) और श्वान (Schwan) ने स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया कि वनस्पति और जन्तुओं दोनों की आन्तरिक रचना कोशिमय (cellular) है। श्लाईडन वनस्पति विज्ञानवेत्ता था और श्वान प्राणि विज्ञानवेत्ता था। उन्होंने यह भी बतलाया कि जीवित ऊतक (living tissue) की प्रत्येक कोशिका एक अर्ध-द्रव (semi-fluid), दानेदार पदार्थ से भरी रहती है। वनस्पति कोशिका के अन्दर भरे हुए इस दानेदार पदार्थ का नाम फॉन मोल (Von Mohl) ने सन् १८४६ में जीवद्रव्य (protoplasm) रखा।

रॉबर्ट ब्राउन (Robert Brown) ने सर्वप्रथम सन् १८३१ में कोशिका के नाभिक (nucleus) की खोज की लेकिन नाभिक की रचना का सन्तोषजनक विवरण सबसे पहले १८८० में स्ट्रासबर्गर (Strasburger) ने दिया। सन् १८८४ में स्ट्रासबर्गर, वाइसमान (Weismann) और अन्य लोगों ने माना कि नाभिक

लक्षणों की वंशगति (inheritance of characters) की समस्या से संबंधित है।

कोशिका की संरचना–पौधों का शरीर अनेक, सूक्ष्म स्वतंत्र कोष्ठों (कक्षों) या इकाइयों का बना होता है। प्रत्येक कोष्ठ या कक्ष एक भित्ति से घिरा होता है, तथा इसमें एक सूक्ष्म दानेदार, अर्ध-द्रव, रंगहीन पदार्थ भरा रहता है। इस पदार्थ के अन्दर एक सघनतर (denser) गोलाकार या अंडाकार काय (body) न्याविष्ट (embedded)
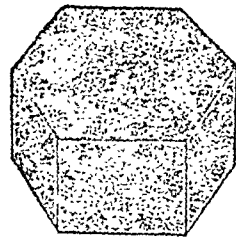
चित्र ३४९
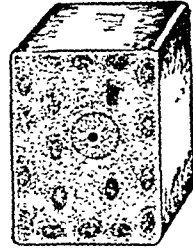
चित्र ३५०
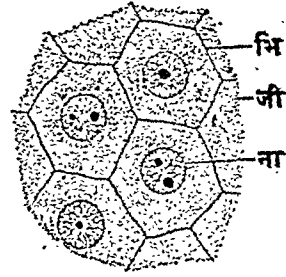
चित्र ३५१

पादप कोशिकाएं। चित्र ३४९–बहुभुजीय कोशिका (त्रिविभितीय आरेख)। चित्र ३५०–एक घनाकार कोशिका काट में (त्रिविभितीय आरेख)। चित्र ३५१–कोशिकाओं का समूह काट में; भि, कोशिका भित्ति; जी, जीवद्रव्य; ना, नाभिक।

रहता है। ये कोष्ठक या इकाइयां मधुमक्खी के छत्ते के कोष्ठकों से बहुत मिलती जुलती हैं। इसलिये इनको भी कोशिकाओं (cells) नाम से पुकारा जाता है। पौधों का शरीर सामान्यतः इस प्रकार की कोशिकाओं का बना होता है, अतः ये कोशिकाएं पौधे की संरचनात्मक इकाइयां (structural units) हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कोशिका पौधे की एक छोटी प्रयोगशाला है, जहां सब जीवकर (vital) अंग कार्य कर रहे हैं। अतः हम एक कोशिका की परिभाषा इस रूप में कर सकते हैं कि यह पौधे की संरचनात्मक और कार्यात्मक इकाई (structural and functional unit) है। कोशिका को जो भित्ति घेरे रहती है, वह कोशिका-भित्ति (cell-wall) कहलाती है, और सूक्ष्म दानेदार, अर्ध-द्रव, रंगहीन पदार्थ जो कोशिका गुहा को भरे रहता है जीवद्रव्य (protoplasm) कहलाता है, तथा सघनतर गोलाकार काय जो जीवद्रव्य में न्याविष्ट रहता है, नाभिक (nucleus) कहलाता है। जीवद्रव्य ही पौधों और जन्तुओं का वास्तविक जीवित पदार्थ है, और प्रत्येक इकाई या जीवद्रव्य का स्वतंत्र पुंज पूर्वलव या प्रोटोप्लास्ट (protoplast) कहलाता है, जिसमें नाभिक भी सम्मिलित है, जो प्रकृतितः जीवद्रव्यीय है। अतः प्रोटोप्लास्ट जीवन की इकाई है, अर्थात् पौधे के शरीर की कायिकीय (कार्यात्मक) इकाई है, और

जीवद्रव्य वह पदार्थ है जिससे इस (प्रोटोप्लास्ट) के प्रत्येक भाग बने हैं। इस प्रकार पादप कोशिका (plant cell) के अवयव प्रोटोप्लास्ट (जो जीवित भाग का प्रतिनिधि रूप है) और कोशिका भित्ति है (जो प्रोटोप्लास्ट को आकार और दृढ़ता तथा आवश्यक रक्षा प्रदान करने के लिये उसके चारों ओर एक आधार कंकाल या ढांचा निर्मित किये होती है)।

कोशिकाओं के अत्यधिक प्रकार के रूप और आकार होते हैं। साधारणतः वे आकार में बहुत छोटी होती हैं और नग्न आँखों से नहीं दिखाई देती। पूर्ण विकसित गोलाकार या बहुभुजी (polygonal) कोशिकाओं का औसत आकार १/१० से १/१०० मिलिमीटर तक होता है। कभी-कभी, जैसे मांसल फलों या मज्जा (pith) में, वे १ मिलिमीटर तक बड़ी हो सकती हैं या इससे भी बडी, या १/२०० मिलिमीटर या उससे भी छोटी हो सकती हैं। जीवाणु कोशिकाएं सबसे छोटी, साधारणतः १/१०० से १/१००० मिलिमीटर तक या इससे भी छोटी होती हैं। रेशेदार (fibrous) कोशिकाएं बहुत अधिक दीर्घित होती हैं, और मुख्यतः लम्बाई में १ से ३ मिलिमीटर तक होती हैं, लेकिन काष्ठीय (woody) स्तम्भ में वे ६ या ८ मिलिमीटर तक लम्बी हो सकती हैं। कुछ रेशे प्रदान करने वाले पौधों, जैसे जूट, सन, फ्लेक्स, इत्यादि में रेशेदार कोशिकाएं २० से ५५० मिलिमीटर तक लम्बी हो सकती हैं। इससे भी बड़ी कोशिकाएं क्षारीर कोशिकाएं (latex cells) हैं।

जीवद्रव्य (PROTOPLASM)

जीवद्रव्य (protoplasm) वनस्पति तथा जन्तुओं का जीवित भाग है। केवल यही ऐसा पदार्थ है जिसमें जीवन रहता है, और सब पौधे व जन्तु, जिनमें यह पदार्थ रहता है, जीवित होते हैं। जीवद्रव्य द्वारा ही सारे जीवकर (vital) कार्य, जैसे वृद्धि, पोषाहार (nutrition), खाद्य निर्माण, श्वसन, प्रजनन, इत्यादि सम्पन्न होते हैं। जब जीवद्रव्य मर जाता है तो कोशिका ऊपर लिखे कोई भी कार्य नहीं कर सकती। इसलिये जीवद्रव्य जीवन का भौतिक आधार है।

जीवद्रव्य की भौतिक प्रकृति (Physical Nature of Protoplasm)—जीवद्रव्य एक स्वच्छ, फेनयुक्त (foamy), चिपचिपा या श्लेष्मिक (slimy), अवलेह सदृश (jelly-like), अर्धद्रव पदार्थ है, और सूक्ष्मदर्शी के नीचे देखने पर सूक्ष्म दानेदार दिखाई देता है। यह तरुण कोशिका की गुहा को पूर्ण रूप से भरे रहता है, लेकिन परिपक्व कोशिका में यह कोशिका भित्ति से लगा हुआ एक पतले स्तर के रूप में रहता है (देखिये चित्र ३५२ ग)। सक्रिय अवस्था में इसमें पानी की ७५ से ९० प्रतिशत मात्रा रहती है और इससे संतृप्त (saturated) रहता है। जल की मात्रा कम होने के साथ इसकी जीवकर क्रियाएं भी कम होने लगती हैं और क्रमशः विल-

रुक जाती है, जैसे शुष्क बीजों में। जीवद्रव्य गर्म करने पर स्कंदित (coagulates) हो जाता है, और जब मृत हो जाता है तो पारदर्शकता (transparency) खो बैठता है।

जीवद्रव्य बाह्य उद्दीपनों (stimuli) की क्रिया के प्रति अनुक्रिया (responds) करता है। ये बाह्य उद्दीपन, जैसे सुई या पिन की नोक से छेड़ना, विद्युत् धक्का (electric shock), कुछ विशेष प्रकार के रासायनिक पदार्थों का समावेश कराया जाना, ताप (temperature) या प्रकाश का आकस्मिक अन्तर, इत्यादि हैं। उद्दीपन के पश्चात् जीवद्रव्य आकुंचित (contracts) होता है, लेकिन उद्दीपन को हटाने पर फिर विस्तारित (expands) हो जाता है। यह आकुंचन-क्षमता (contractility) जिसमें आकुंचन (contraction) और प्रसार या विस्तार (expansion) दोनों शामिल हैं, और जिसे कुने (Kühne) ने १८६४ में स्पाइडरवर्ट के पुंकेसरीय रोम (staminal hair) में दिखलाई थी, जीवद्रव्य की अन्तर्निहित (inherent) शक्ति है।

जीवद्रव्य प्रकृतितः अर्धपारगम्य (semi-permeable) होता है, अर्थात् यह केवल कुछ वस्तुओं को अपने में प्रवेश होने देता है और सबको नहीं। परन्तु जीवद्रव्य का यह गुण मृत्यु के बाद नष्ट हो जाता है।

जीवद्रव्य की रासायनिक प्रकृति (Chemical Nature of Protoplasm)—रासायनिक दृष्टि से जीवद्रव्य रासायनिक पदार्थों का जटिल मिश्रण (complex mixture) है, जिनमें प्रोटीन मुख्य हैं। सजीव जीवद्रव्य की ठीक रासायनिक रचना निर्धारित नहीं की जा सकती क्योंकि इसके विश्लेषण का कोई भी प्रयत्न, इसमें कुछ अज्ञात परिवर्तन होने से, इसे तुरन्त मृत कर देता है। इसके अतिरिक्त इसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं, अतः इसकी बनावट स्थिर या नियत (constant) नहीं रहती। इनके अतिरिक्त जीवद्रव्य में सदा ही अनेक विजातीय पदार्थ (foreign substances) विभिन्न मात्रा में उपस्थित रहते हैं, इस कारण जीवद्रव्य को विशुद्ध रूप में पाना सम्भव नहीं है। निर्जीव जीवद्रव्य के विश्लेषण से पता चला है कि इसमें अनेक तत्व (elements) विभिन्न यौगिकों के रूप में उपस्थित रहते हैं। नाना प्रकार के तत्वों में से ऑक्सीजन (O), कार्बन (C), हाइड्रोजन (H), नाइट्रोजन (N) सबसे अधिक मात्रा में हैं। सक्रिय जीवद्रव्य में पानी (water) की मात्रा अत्यधिक प्रतिशत रहती है, जो कि ७० प्रतिशत से ९० प्रतिशत या इससे भी अधिक होती है, पानी निकालने के पश्चात् अवशेष (residue) में दोनों कार्बनिक व अकार्बनिक यौगिक रहते हैं। कार्बनिक पदार्थों में प्रोटीन, वसीय (fatty) पदार्थ और कार्बोहाइड्रेट का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से भी प्रोटीन (proteins) सबसे मुख्य अवयव हैं

और सबसे अधिक मात्रा में, ४० प्रतिशत से ६० प्रतिशत तक, रहता है। रासायनिक दृष्टि से प्रोटीन (proteins) भी बहुत जटिल यौगिक हैं और इसकी रचना में कार्बन (C), हाइड्रोजन (H), ऑक्सीजन (O), नाइट्रोजन (N) और कभी-कभी गंधक (sulphur), और फ़ॉस्फ़ोरस (P) भी परिवर्ती समानुपात (varying proportions) में भाग लेते हैं। वसीय पदार्थ (fatty substances), जीवद्रव्य में १२% से १४% की मात्रा में होते हैं। ये सत्य वसा (true fats) और स्नेहाभ या लाइपॉइड (lipoids) हैं। सत्य वसा संचित खाद्य के रूप में रहते हैं, और स्नेहाभ (विशेषकर लेसिथिन; lecithin), जिनमें फ़ॉस्फ़ोरस और नाइट्रोजन समाविष्ट होते हैं, जीवद्रव्य के अचर (constant) अवयव प्रतीत होते हैं। कार्बोहाइड्रेट, उदाहरणार्थ शर्करा (sugar), जीवद्रव्य में १२% से १४% तक हमेशा पाये जाते हैं। अकार्बनिक यौगिकों में, जो ५% से ७% तक होते हैं कैल्सियम (Ca), मैग्नीशियम (Mg), पोटासियम (K), लोहा (Fe) और सोडियम (Na) के लवण हमेशा पाये जाते हैं। अन्य धातुओं, जैसे जस्ता (zinc), मैंगनीज़ (Mn), एल्यूमिनियम (Al), बोरॉन (B), तांबा (copper), इत्यादि के लवण भी लेश मात्र रहते हैं।

परीक्षण—(क) आयोडीन विलयन (Iodine solution) जीवद्रव्य को भूरापन लिये हुए पीले रंग का कर देता है। (ख) कास्टिक पोटाश का तनु विलयन (dilute solution) जीवद्रव्य को विलीन कर देता (dissolves) है। (ग) मिलन के प्रतिकर्मक (Millon's reagent) के साथ मिलाने पर जीवद्रव्य का रंग मटमैला लाल हो जाता है; यह प्रतिक्रिया गर्म करने पर जल्दी हो जाती है।

कोशिका द्रव्य और रसधानी (Cytoplasm and Vacuole)—एक प्रारम्भिक पादप कोशिका में प्रोटोप्लास्ट दो भागों में विभिन्न रहता है: (क) कोशिका के जीवद्रव्य का संपूर्ण पुंज, जिसको कोशिका द्रव्य या साइटोप्लाज़्म (cytoplasm) कहते हैं; और (ख) एक घना या सघन (dense), लगभग गोलाकार, जीवद्रव्य का विशेषित पुंज, जिसको नाभिक (nucleus) कहते हैं। कोशिका की तरुणावस्था में कोशिका द्रव्य, नाभिक और कोशिका भित्ति के बीच के स्थान को भरे रहता है। कोशिका द्रव्य का धरातल एक बहुत पतली तथा कोमल झिल्ली बनाती है, जिसको जीवद्रव्य झिल्ली (plasma membrane) या बाह्य द्रव्य या एक्टोप्लाज़्म (ecto-plasm) कहते हैं। यह जीवद्रव्य झिल्ली भी रंगहीन होती है लेकिन यह दानेदार नहीं होती, और बाकी कोशिका द्रव्य से सघनता (consistency) में दृढ़तर होती है, तथा यह कोशिका भित्ति से चिपकी रहती है। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्तर है और पदार्थों के कोशिका में आवागमन को नियन्त्रित करता है। कोशिका द्रव्य के आन्तर दानेदार पुंज को प्राय: आन्तर द्रव्य या एंडोप्लाज़्म (endoplasm

हैं। सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर प्रायः हमें कोशिकाद्रव्य में अनेक नन्हें-नन्हें दाने दिखाई देते हैं, जिनकी प्रकृति का अभी तक ठीक ज्ञान नहीं है। इनको सूक्ष्मसूत्र (microsomes) कहते हैं। तरुण कोशिका में कोशिका द्रव्य गुहा को पूर्ण रूप से भरे रहती है, लेकिन जैसे कोशिका आकार में बढ़ती है इसके अंतर्गत विभिन्न आकारों के अनेक गुहाएं या रसधानियां (vacuoles) उत्पन्न हो जाती हैं। कोशिका की वृद्धि के साथ-साथ सब तुरन्त सायुज्यित (fuse) हो जाती हैं तथा एक बड़ी रसधानी
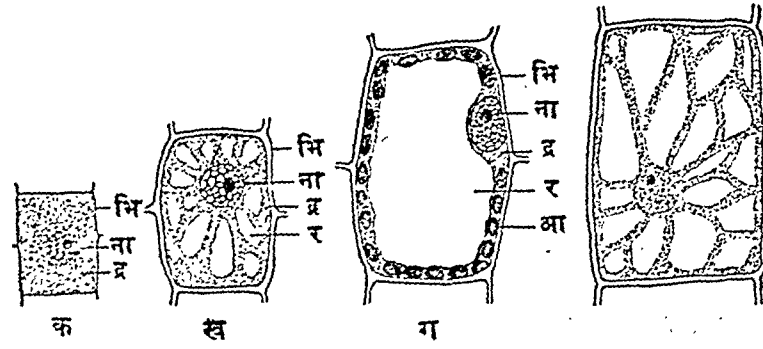
चित्र ३५२ चित्र ३५३

चित्र ३५२—पादप कोशिकाएं, शिशु और प्रौढ़, जिनमें आकार में वृद्धि और रसधानियों का विकास दिखलाया गया है। भि, कोशिका भित्ति ; ना, नाभिक ; द्र, कोशिका द्रव्य; र, रसधानी और आ, आदिलव। चित्र ३५३—एक कोशिका अनेक सूक्ष्म रसधानियों सहित।

बनाती हैं, जो परिपक्व कोशिका के केन्द्र के अधिक भाग को घेरे रहती है, और तब कोशिका द्रव्य कोशिका भित्ति से लगे हुए एक पतले स्तर के रूप में रहता है। नाभिक और आदिलव (plastids) इस पतले स्तर में व्याविष्ट रहते हैं (चित्र ३५२ ग); या कोशिका द्रव्य कोमल वलयकों या डोरों (strands) के रूप में नाभिक के चारों ओर विकीर्ण (radiating) रहते हैं और प्रायः नाभिक को कोशिका की गुहा में लटकाये रहते हैं। ऐसी दशा में अनेक छोटी रसधानियां कोशिका द्रव्य के वलयकों के बीच में दिखाई देती हैं (चित्र ३५३)। रसधानी में एक तरल पदार्थ भरा होता है जिसको कोशिका-रस (cell-sap) कहते हैं। कोशिका की युवावस्था में कोशिका-रस कोशिका द्रव्य में प्रवेश करता (permeates) रहता है। बहुत से रासायनिक यौगिक या तो कोशिका-रस में विलीन (dissolved) रहते हैं या निलम्बन (suspension) की अवस्था में रहते हैं। इसलिये रसधानी को हम पानी, कुछ खनिज लवण, खाद्य पदार्थ और प्रकिण्वों या ऐन्ज़ाइम्स

(enzymes) का भी संग्रह स्थान कह सकते हैं। कोशिका द्रव्य का वह स्तर, जो रसधानी के सम्पर्क में रहता है और इसको एक झिल्ली के रूप में घेरे रहता है टोनोप्लास्ट (tonoplast) कहलाता है।

जीवद्रव्य की गतियाँ (Movements of Protoplasm)—जीवद्रव्य विभिन्न प्रकार की गतियां दिखलाता है। जीवद्रव्य के नग्न पुंज जो कोशिका भित्ति से आवरित (घिरे) नहीं रहते, दो प्रकार की गतियां दिखलाते हैं—पक्ष्मी गति (ciliary movement) और अमीबी गति (amoeboid movement)। कोशिका-भित्ति से घिरा हुआ जीवद्रव्य एक प्रकार की धारा गति (streaming movement) दिखलाता है, जिसको द्रव्यपरिसवण या साइक्लोसिस (cyclosis) कहते हैं। द्रव्यपरिसवण दो प्रकार का होता है—चक्रण या परिभ्रमण (rotation) और परिवहन (circulation)।

(१) पक्ष्मी गति (Ciliary Movement; चित्र ३५४)—स्वतंत्र, सूक्ष्म, जीवद्रव्यीय कायें (protoplasmic bodies) की तरणी गति (swimming movement) को पक्ष्मी गति कहते हैं। इस प्रकार की गति अनेक शैवालों (algae) और कवकों (fungi) के चलजन्युओं (zoospores), जीवाणुओं (bacteria), मॉस और पर्णांगों (ferns) के पुम्-अणुओं (antherozoids), इत्यादि के द्वारा होती है, जिनमें कशावत् (whip-like) संरचना के रूप में पक्ष्म (cilia) या कशाभ (flagellum) नाम से ज्ञात एक या अनेक गतिशयी विशेष अंग होते हैं। इन पक्ष्मों के कम्पन (vibration) से इस प्रकार के पक्ष्मी काय (ciliary bodies) जल में स्वतन्त्रतापूर्वक तथा तीव्रता से गति करते हैं।

(२) अमीबी गति (Amoeboid Movement; चित्र ३५५)—नग्न जीवद्रव्य के पुंजों की रेंगने की चाल को अमीबी गति कहते हैं, जैसे मिक्सोमाइसिटीज (myxomycetes) या श्लेष्म कवकों (slime fungi) की गति। ये अपने
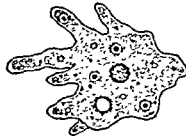
चित्र ३५४ चित्र ३५५

जीवद्रव्य की गतियां। चित्र ३५४—पक्ष्मी गति। चित्र ३५५—अमीबी

शरीर के एक या अधिक भागों के बहिःक्षेपण (protrusion) से, जिनको कूटपाद (false feet or pseudopodia) कहते हैं, रेंगते हैं, और दूसरे क्षण बहिःक्षेपण को पीछे हटा लेते हैं। यह क्रिया बहुत कुछ एककोशिक जीव अमीबा की भांति होती है। कोशिका-भित्ति न होने के कारण इस जीवद्रव्यीय पुंज का कोई निश्चित आकार नहीं होता और वह भोजन के ठोस कणों को भी परिग्रहण (engulf) कर सकता है।

(३) परिभ्रमण (Rotation; चित्र ३५६)—जब जीवद्रव्य कोशिका भित्ति से लगा हुआ दक्षिणावर्त (clockwise) या वामावर्त (anti-clockwise) एक बड़ी केन्द्रीय रसधानी के चारों ओर परिभ्रमण करता है, तो उस गति को परिभ्रमण कहते हैं। किसी विशेष कोशिका के जीवद्रव्य की गति की दिशा नियत रहती है। जब जीवद्रव्य परिभ्रमण करता है तो यह अपनी धारा में नाभिक और आदिलवों को भी बहा ले जाता है। परिभ्रमण वैलिसनेरिया (*Vallisneria*) हाइड्रिला, (*Hydrilla*), नाइटेला (*Nitella*), और अनेक जलीय पौधों में स्पष्ट दिखाई देता है।

(४) परिवहन (Circulation; चित्र ३५७)—जब जीवद्रव्य एक ही कोशिका में अनेक छोटी रसधानियों के चारों ओर विभिन्न दिशाओं में गति करता है तो उस गति को परिवहन कहते हैं। इस प्रक्रम (process) में जीवद्रव्य का एक

चित्र ३५६
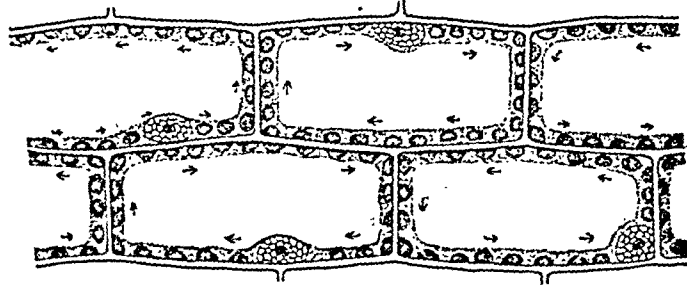
चित्र ३५७
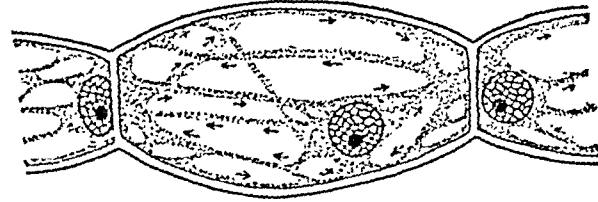
जीवद्रव्य की गतियां। चित्र ३५६—वैलिसनेरिया की पत्ती में परिभ्रमण। चित्र ३५७—कंजूरा के पुंकेसरीय रोमों में परिवहन।

पुंज नाभिक के चारों ओर कोमल वल्यकों या डोरों (strands) के रूप में विभिन्न दिशाओं में विकीर्ण (radiates) रहता है। प्रत्येक वल्यक तब एक रसधानी के चारों ओर घूमता है और अन्त में नाभिक के पास आ जाता है। परिवहन कंजूरा या कोमेलाइना आब्लिक्वा (*Commelina obliqua*) के नीलारुण (purplish) पुंकेसरीय रोमों (staminal hairs) में दिखाई देता है। यह ट्रेडेस्केन्शिया (*Tradescantia*) के पुंकेसरीय रोमों, लौकी, बीगोनिया और कई अन्य स्थलीय पादपों के तरुण प्ररोह रोमों (shoot-hairs) में भी दिखाई देता है।

(२) नाभिक (Nucleus)—कोशिका द्रव्य में अंतःस्थापित (embedded) एक विशेषित जीवद्रव्यीय काय (body) रहता है, जो प्राय: गोलाकार या अंडाकार होता है और कोशिका द्रव्य से सघनतर (denser) होता है, इसे नाभिक (nucleus) कहते हैं। इसका आकार कुछ मात्रा तक कोशिका के रूप पर निर्भर करता है जिसमें यह रहता है। तरुण कोशिका में यह कोशिका के मध्य में स्थित होता है और लगभग सदा गोलाकार या अंडाकार होता है; लेकिन लम्बी कोशिका में यह उसी अनुपात में
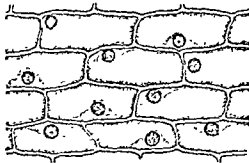
चित्र ३५८—प्याज के शल्क में कोशिकीय संरचना और नाभिक।

लम्बा हो जाता है। परिपक्व कोशिका में जब रसधानी बन जाती है तब यह अस्तर (lining) स्तर में स्थित रहता है और कोशिका भित्ति की ओर चिपिटित (flattened) हो जाता है। नाभिक सभी पौधों की कोशिकाओं में सर्वव्यापक रूप से उपस्थित रहता है। उच्च श्रेणी के पौधों में प्रत्येक कोशिका में केवल एक नाभिक होता है। आक्षीरी ऊतक (laticiferous tissue) अनेक शैवालों और कवकों में एक कोशिका में कई नाभिक दिखाई देते हैं। कुछ निम्न श्रेणी के जीवों में सत्य नाभिक नहीं रहता, किन्तु इनमें उसी तरह का नाभिकीय पदार्थ (nuclear

material) रहता है। नाभिक आकार में भी बहुत विभिन्न होते हैं, १/२ मिलि-मीटर से १/१०० मिलिमीटर तक। तथापि, उनका साधारण आकार १/४० मिलि-मीटर से १/२०० मिलिमीटर तक है। नाभिक कभी भी नये रूप में नहीं बन सकता, लेकिन किसी पूर्ववर्ती (pre-existing) नाभिक के विभाजन से ही उसकी संख्या में वृद्धि होती है।

संरचना (Structure)—प्रत्येक नाभिक (चित्र ३५९) एक पतली, पारदर्शक झिल्ली से घिरा रहता है जिसको (१) नाभिक झिल्ली (nuclear membrane) कहते हैं। यह नाभिक को उसके आवेष्टित (surrounding) कोशिका द्रव्य से अलग करता है। नाभिक का आकार अंशतः इस पर निर्भर रहता है। झिल्ली के अन्दर, पूरी जगह को घेरे हुये, एक जीवद्रव्य का घना तथा स्वच्छ पुंज रहता है जिसको (२) नाभिक रस या नाभिक द्रव्य (nuclear sap or nucleoplasm or karyolymph) कहते हैं। नाभिक रस में निलम्बित (suspended) अनेक सूक्ष्म वक्रित सूत्र, शिथिलतः जहां तहां संबद्ध रहकर एक प्रकार का जाल सा बनाते हैं, जिसे (३) नाभिक जालिका (nuclear reticulum or chromatin network) कहते हैं। ये सूत्र एक पदार्थ के बने होते हैं जिसे रंज्या या क्रोमैटिन (chromatin) या न्यूक्लीन (nuclein) कहते हैं, जो तीव्र अभिरंजनशील (strongly stainable) होता है। क्रोमैटिन एक नाभिक प्रोटीन (nucleoprotein) है जो फ़ॉस्फ़ोरस युक्त प्रोटीन है। एक या अनेक तीव्र वर्तन (refractive), बहुत सूक्ष्म, और प्रायः गोलाकार काय भी, जो नाभिक द्रव्य से अधिक सघनतर (denser) होते हैं, नाभिक में दिखाई देते हैं। इनको (४) अणु-नाभिक (nucleoli) कहते हैं।

चित्र ३५९—नाभिकीय संरचना।

अणु-नाभिक कुछ गुणसूत्रों या क्रोमोसोम (chromosomes) से उनके विशेष प्रदेशों में जुड़े रहते हैं। इसलिये वे उन गुणसूत्रों के भाग समझे जाते हैं। अणु-नाभिक नाभिक प्रोटीन (nucleo-protein) के संग्रह स्थल समझे जाते हैं जो सम-विभाजन या माइटोसिस (mitosis) की क्रिया में प्रोटीन और न्यूक्लीक अम्ल (nucleic acid) में बदल जाते हैं।

रासायनिक रचना (Chemical Composition)—नाभिक की रासायनिक रचना करीब-करीब वैसी ही है जैसे कोशिका द्रव्य की। यह प्रोटीन और प्रोटीन सदृश
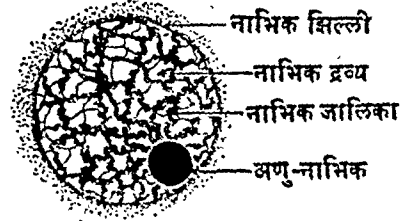
पदार्थों का बना होता है। इसमें एक वस्तु होती है, जिसको न्यूक्लीन (nuclein) कहते हैं। रासायनिक दृष्टि से न्यूक्लीन एक नाभिक प्रोटीन है जिसकी रचना में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और, गंधक के अतिरिक्त फ़ॉस्फ़ोरस भी भाग लेता है। न्यूक्लीन नाभिक जालिका में विद्यमान रहता है, लेकिन नाभिक द्रव्य (nucleoplasm) में नहीं। नाभिक थोड़ा सा क्षारीय (alkaline) होता है।

कार्य (Functions)—नाभिक और जीवद्रव्य दोनों मिलकर कोशिका के जीवन के लिये उत्तरदायी हैं। जब प्रोटोप्लास्ट दो भागों में विभाजित होता है, तो उसका वह भाग जिसमें नाभिक स्थित रहता है, अपने चारों ओर नई भित्ति बनाने और तत्पश्चात अपनी यथाक्रम क्रियाओं को आरम्भ करने की क्षमता रखता है, दूसरा भाग जिसमें नाभिक नहीं रहता मर जाता है। नाभिक कोशिका के जीवकर सक्रियताओं (vital activities), विशेषकर खाद्य का स्वांगीकरण (assimilation) और श्वसन का नियंत्रण केन्द्र समझा जाता है। नाभिक के विशेष कार्य, जो कि वह कोशिका द्रव्य की सहायता से करता है, निम्नलिखित हैं :

(१) नाभिक प्रजनन (reproduction) में प्रत्यक्ष (direct) भाग लेता है। अलिंगी प्रजनन (asexual reproduction) में नाभिक साधारणतः दो बार विभाजित होता है और चार कोशिकाओं का समूह (group) बनाता है, जिनको बीजाणु (spores) कहते हैं, लेकिन लिंगी प्रजनन में दो प्रजनक नाभिक (reproductive nuclei), जिनको युग्मक (gametes) कहते हैं, सायुज्यित होकर एक शुक्तिताड (oospore) बनाते है, जो भ्रूण में विकसित होता है। अतः नाभिक प्रजनन के प्रक्रम (process) में प्रत्यक्ष भाग लेता है।

(२) नाभिक कोशिका भाजन (cell-division) में प्रथम कार्य प्रवृत होता है, अर्थात् नाभिक पहले विभाजित होता है और इसके बाद कोशिका भाजन होता है। अण्ड-कोशिका (egg-cell) विभाजित होकर भ्रूण बनाता है। इसी प्रकार भ्रूण की कोशिकाएं विभाजित होकर पौधे के शरीर को बनाते हैं। इसलिये यह प्रत्यक्ष है कि नाभिक के बार-बार विभाजन के बिना पौधे का शरीर नहीं बन सकता।

(३) नाभिक आनुवंशिक या वंशानुगत लक्षणों या गुणों (hereditary characters) का वाहक (bearer) माना जाता है। यह भी स्पष्ट है कि जनक या पित्र्य पौधों के संलक्षण या गुण सन्तान (offspring) में आ जाते हैं। ये जनक पौधों के शरीर से सन्तान में दो प्रजनक नाभिकों, अर्थात् अंड कोशिका और नर युग्मक, द्वारा पौधों के जीवन वृत (life-history) के प्रजनक अवस्था में संचारित (transmitted) होते हैं। ये नाभिक अपने शरीर में जनक या पित्र्य पौधों के सब लक्षण या गुण सन्निहित रखते हैं और उनको सन्तान को प्रदान करते हैं।

(३) आदिलव या प्लैस्टिड (Plastids)—नाभिक के अलावा, कोशिका के कोशिका द्रव्य में अंतस्थापित अनेक छोटे-छोटे विशेषित जीवद्रव्यीय काय होते हैं जिनको आदिलव (plastids) कहते हैं (देखिये चित्र ३५६)। इनकी आकृति बिम्बाभी (discoidal) या गोलाकार होती है। आदिलव के आधार पदार्थ (ground substance) को घनांश या स्ट्रोमा (stroma) कहते हैं। स्ट्रोमा में अंतस्थापित अनेक दानें होते हैं। स्ट्रोमा रंगहीन होता है, लेकिन दानों में रंग द्रव्य (pigment) होता है। आदिलव जीवित होते हैं। वे कभी भी नये रूप में नहीं बन सकते, लेकिन पूर्ववर्ती (pre-existing) आदिलवों के विभाजन से ही उनकी संख्या बढ़ती है। कोशिका के पूर्व प्रक्रम (early stage) में, जैसे तरुण कलिका में, वे बहुत सूक्ष्म दानों या शलाकाओं (पूर्व आदिलव; proplastids) सदृश दीखते हैं, लेकिन जैसे कोशिका वृद्धि करती है, आदिलव भी वृद्धि करते हैं, विभाजित होते हैं और अपना लाक्षणिक आकार धारण कर लेते हैं। वे उन कोशिकाओं में स्थित रहते हैं जिनको विशेषित कार्य करना पड़ता है, और नील-हरित शैवालों (blue-green algae), कवकों (fungi) और जीवाणुओं (bacteria) में हमेशा अनुपस्थित रहते हैं। आदिलव तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात् रंगहीन कणिका या श्वेत कणक (leucoplasts), हरिम कणक या क्लोरोप्लास्ट्स (chloroplasts) और रंग कणक या रंजित लव (chromoplasts)। एक प्रकार का आदिलव दूसरे में परिवर्तित हो सकता है, उदाहरणार्थ जब श्वेत कणकों को बहुत देर तक प्रकाश में रखा जाय तो वे हरिम कणकों में बदल जाते हैं। इसी प्रकार यदि हरिम कणकों को बहुत देर तक अंधेरे में रखा जाय तो वे श्वेत कणकों में बदल जाते हैं। इसी प्रकार के परिवर्तन रंग कणकों में भी हो सकते हैं। टमाटर के तरुण फल में श्वेत कणक क्रमशः हरिम कणकों में बदलते हैं जो अन्त में फल के परिपक्व होने के साथ रंग कणकों में बदल जाते हैं।

(१) **रंगहीन कणिका या श्वेत कणक (Leucoplasts)**—ये रंगहीन आदिलव हैं। रंगहीन कणिका अधिकतर जड़ों और भूमिगत स्तम्भों के संग्रह कोशिकाओं में पाये जाते हैं। वे अन्य भागों, जिनको प्रकाश नहीं मिलता, में भी पाये जाते हैं। ये भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं, और प्रायः बिम्बाभी, गोलाकार या शलाकाकार होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं : छोटे और बड़े। छोटे बड़ों में, या हरिम कणकों में, या श्वेत कणकों में परिवर्तित हो सकते हैं। बड़े प्रकार को **ऐमिलोप्लास्ट या मण्ड कणक** (amyloplast) या मण्ड बनाने वाले (starch-builder) कहते हैं और वे विलेय शर्करा (soluble sugar) से मण्ड कणों (starch grains) को पौधों के भूमिगत भागों या अन्य संग्रह अंगों में संग्रह के लिये निर्मित करते हैं।

(२) **हरिम कणक (Chloroplasts)**—ये हरे आदिलव हैं। इनका रंग एक हरे रंग द्रव्य के कारण है जिसको **पर्णहरिम या क्लोरोफिल** (chlorophyll)

कहते हैं। कभी-कभी हरा रंग अन्य रंगों से ढक जाता है। हरित कणक केवल उन्हीं
भागों में पाये जाते हैं जो प्रकाश में रहते हैं। हरी पत्तियों में वे बहुतायत से पाये जाते
हैं, और कुछ हद तक प्ररोह (shoot) के हरे भागों में भी मिलते हैं। इनकी आकृति
प्रायः बिम्बाभी या गोलाकार होती है लेकिन कुछ ब्रायोफ़ाइटा (bryophyta) और
शैवालों (algae) में वे अन्य आश्चर्यजनक आकृति धारण कर लेते हैं। कार्य
(Functions)—ये केवल प्रकाश की उपस्थिति में काम करते हैं और अपने
पर्णहरिम की सहायता से कुछ बहुत आवश्यक कार्य करते हैं। हरिम कणक वायु
से कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करते हैं; इस कार्बन डाइऑक्साइड तथा
भूमि से अवशोषित जल से वे शर्करा और मण्ड का निर्माण करते हैं; तथा
(जल को विघटित कर) ऑक्सीजन को परिमुक्त करते हैं जो बाहर निकल
जाती है।

पर्णहरिम (Chlorophyll) एक सरल पदार्थ नहीं है, बल्कि चार विभिन्न रंग
द्रव्यों का मिश्रण है, अर्थात् पर्णहरिम अ या क्लोरोफिल आल्फा (chlorophyll *a*)
—नीला काला; पर्णहरिम ब या क्लोरोफिल बीटा (chlorophyll *b*)—हरा काला,
पर्णपीतक या कैरोटिन (carotin)—नारंगी लाल और पर्णपीत या जैन्थोफ़िल
(xanthophyll)—पीला। पर्णहरिम अ और पर्णहरिम ब दोनों ही हरिम कणक में
परस्पर सबद्ध होते हैं, लेकिन पर्णपीतक या कैरोटिन और पर्णपीत (xanthophyll)
पौधे के किसी भाग में हरिम कणक के बिना भी पाये जा सकते हैं। पर्णहरिम ऐल्कोहल
या क्लोरोफ़ॉर्म की सहायता से आसानी से निस्सारित (extracted) किया जा
सकता है और तब पत्ती रंगहीन हो जाती है। यह पारगमित (transmitted)
प्रकाश में गहरा हरा दिखाई देता है लेकिन प्रतिबिंबित (reflected) प्रकाश
में रक्त-लाल (blood-red) दिखाई देता है। यह पर्णहरिम का भौतिक गुण है,
और इसको प्रतिदीप्ति (fluorescence) कहते हैं। पर्णहरिम के साथ पाये
जाने वाले दोनों रंग द्रव्यों—पर्णपीतक या कैरोटिन और पर्णपीत (xanthophyll)
के मिश्रण को पर्णहरिम के विलयन (solution) से आसानी से निम्न प्रकार
से पृथक कर सकते हैं। पर्णहरिम के विलयन को बेंज़ीन की थोड़ी मात्रा के साथ अच्छी
तरह हिलाओ और विलयन को बैठने दो, बेंज़ीन पर्णहरिम लिये हुए ऊपर तैरने लगता
है (हरा विलयन), और पर्णपीत (xanthophyll) और पर्णपीतक (carotin)
लिये हुए ऐलकोहल पेंदी पर बैठ जाता है (पीला विलयन)। बेंज़ीन की जगह पर
ईथर या जैतून का तेल (olive oil) भी प्रयोग किया जा सकता है। पर्णहरिम
पानी में अविलेय (insoluble) है, चाहे इसे कितनी ही देर तक पानी में क्यों न
उबाला जाय। कार्य (Functions)—यह निश्चयपूर्वक ज्ञात है कि पर्णहरिम
सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा (energy) अवशोषण (absorb) करता है। यह हरिम-

कणकों द्वारा खाद्य के निर्माण से संबंधित रासायनिक प्रकम (chemical process) में भी भाग ले सकता है।

रंग द्रव्यों की रासायनिक रचना

पर्णहरिम अ	—$C_{55}H_{72}O_5N_4Mg$
पर्णहरिम ब	—$C_{55}H_{70}O_6N_4Mg$
पर्णपीतक या कैरोटिन	—$C_{40}H_{56}$
पर्णपीत या जैन्थोफ़िल	—$C_{40}H_{56}O_2$

(३) रंग कणक (Chromoplasts)—ये विभिन्न रंग के लादिलव है—पीले, नारंगी और लाल। ये मुख्यतः फूलों के दलों और फलों में पाये जाते हैं। इनमें पर्णपीतक (नारंगी लाल) और पर्णपीत (पीला) नामक रंग द्रव्य होते हैं। लाल, पीले और हरे के मिश्रण से कई अन्य रंग बन जाते हैं। फूलों के रंग द्रव्यों का कार्य कीड़ों को परागण के लिये आकर्षित करना है। कैरोटिन एक हाइड्रो-कार्बन है, अर्थात् इसमें कार्बन और हाइड्रोजन होते हैं, और इसका सूत्र (formula) $C_{40}H_{56}$ है। पर्णपीत (xanthophyll)—केरोटिन का ऑक्सीकरण उत्पाद (oxidation product) है, अर्थात् इसमें कार्बन और हाइड्रोजन के अतिरिक्त ऑक्सीजन भी होता है, और इसका सूत्र $C_{40}H_{56}O_2$ है।

अधिकतर बैंगनी, नीलारुण और नीले फूलों और कई लाल व भूरे फूलों के रंग नील द्रव्य या ऐन्थोसाएनिन (anthocyanins) नामक रंग द्रव्यों के कारण होते हैं, जो उनके कोशिका-रस (cell-sap) में घुले रहते हैं। ऐन्थोसाएनिन फूलों, रंगीन जड़ों, जैसे चुकन्दर की जड़ और और रंगीन स्तम्भों, जैसे बालसम का तना, में पाये जाते हैं। वे गार्डन क्रोटन और ऐमैरेन्टस की रंग बिरंगी पत्तियों, और बहुत से पौधों, जैसे आम, देशी बादाम, इत्यादि के तरुण लाल पत्तियों में भी पाये जाते हैं, और प्रायः पर्णहरिम को छिपा देते हैं। ये शायद हरिम कणकों, जीवद्रव्य, इत्यादि के लिये परदे (screen) का काम करते हैं और उनकी तीव्र सूर्य के प्रकाश से रक्षा करते हैं। फूलों में वे परागण के लिये कीड़ों को आकर्षित करते हैं।
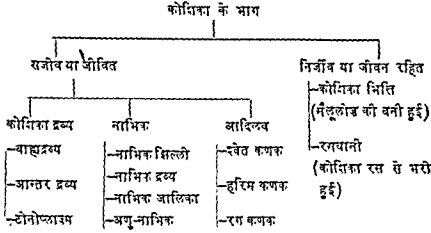
कोशिका भित्ति (THE CELL-WALL)

कोशिका भित्ति का निर्माण (Formation of the Cell-wall)—जीवन एक एकल (single), नग्न कोशिका से आरम्भ होता है, अर्थात् जीवद्रव्य के एक छोटे पुंज से, जिसमें एक नाभिक होता है, लेकिन कोशिका भित्ति नहीं होती। चूंकि जीवद्रव्य बहुत कोमल व मुलायम पदार्थ है इसलिये इसकी सर्वप्रथम आवश्यकता होती है, आत्म-रक्षा। इस आवश्यकता के ही कारण, इसके पहले कि यह आकार में वृद्धि करे या विभाजित हो, यह अपने चारों ओर एक भित्ति का निर्माण करता है। यह अपने शरीर के बाह्य तल पर छोटी कणिकाएं स्रावित करता है। ये कणिकाएं संख्या में बढ़ती हैं और अन्त में सायुज्यित हो जाती हैं। जब वे आपस में सायुज्यित हो जाती हैं तो इसके फलस्वरूप पूर्ण भित्ति बन जाती है जिसको कोशिका भित्ति कहते हैं, और जीवद्रव्य इससे घिर जाता है। कोशिका भित्ति जीवद्रव्य के चारों ओर ढांचा बनाती है, और इसके रूप को स्थिर रखती है तथा बाह्य आक्रमणों से उसकी रक्षा करती है, इसके अतिरिक्त कोशिका भित्तियां पौधों के शरीर का ढांचा या कंकाल बनाती हैं, और पौधे के शरीर की सामर्थ्य (strength) व दृढ़ता के लिये उत्तरदायी हैं।

कोशिका भित्ति की वृद्धि (Growth of the Cell-wall)—कोशिका भित्ति जब पहले पहल बनती है तो बहुत-पतली तथा नर्म स्तर के रूप में रहती है। जैसे-जैसे कोशिका की वृद्धि होती है, वैसे कोशिका भित्ति में भौतिक व रासायनिक दोनों प्रकार के परिवर्तन होते हैं, अर्थात् कोशिका भित्ति के तल क्षेत्र में और मोटाई में वृद्धि होती है। (१) कोशिका भित्ति के तल क्षेत्र में वृद्धि अर्थात् इसके आकार में वृद्धि, कोशिका के प्रथम अवस्था में होती है और इसका कारण कोशिका भित्ति के एक या अन्य दिशाओं

में फैलना है जिसके साथ-साथ, मूल भित्ति के अंतर्गत, जीवद्रव्य द्वारा स्रावित नये ठोस कणों का अन्तर्वेशन (intercalation) होता है। इस प्रकार से वृद्धि की विधि को अन्तराधान द्वारा वृद्धि (growth by intussusception) कहते हैं। (२) इसके विपरीत कोशिका भित्ति की मोटाई में वृद्धि का मुख्य कारण जीवद्रव्य द्वारा मूल भित्ति के आन्तर तल पर स्पष्ट पतले स्तरों या पट्टिकाओं (plates) का एक के बाद एक निक्षेपण (deposition) होना है। इस विधि को सन्निधान द्वारा वृद्धि (growth by apposition) कहते हैं। जब कोशिका भित्ति यथेष्ट मोटी हो जाती है, तो यह स्तरित या स्तरीय (stratified) आकृति दिखाती है, अर्थात् ऐसा प्रतीत होता है, जैसे एक के ऊपर दूसरा स्तर क्रमानुसार जमा कर रख दिया गया हो। दो संलग्न या सन्निहित (contiguous) कोशिकाओं के बीच की मूल कोशिका भित्ति सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखने पर पहचानी जा सकती है। इस मूल या मध्य भित्ति को मध्य पटल (middle lamella) कहते हैं (चित्र ३६०)। यह एक पदार्थ की बनी होती है, जिसको कैल्सियम पैक्टेट (calcium pectate) कहते हैं। यह भी देखा जाता है कि एक कोशिका का जीवद्रव्य पड़ोसी कोशिका के जीवद्रव्य से पतले जीवद्रव्यीय तन्तुओं या वलयकों से संबद्ध रहता है जो कोशिका भित्ति में विकसित छोटे गर्तों (pits) से गए होते हैं। प्रत्येक जीवद्रव्यीय तन्तु या वलयक को द्रव्य-तन्तु या प्लैज़्मोडज़्मा (plasmodesma) कहते हैं (चित्र ३६०)।
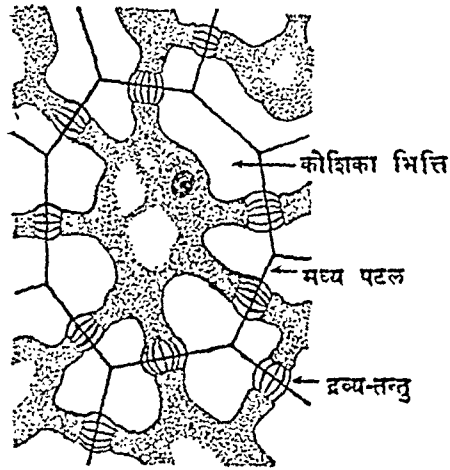
चित्र ३६०—खजूर के बीज के भ्रूणपोष से कोशिकाएं।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि कोशिका भित्ति की मोटाई में वृद्धि कई अवस्थाओं में होती है। जो कोशिका भित्ति जीवद्रव्य से संलग्न रहकर एक बहुत पतले स्तर के रूप में जीवद्रव्य द्वारा मूलतः निर्मित हुई रहती है और पैक्टोज (pectose) की बनी होती है, प्रथम भित्ति (primary wall) कहलाती है। प्रथम भित्ति जो दो संलग्न कोशिकाओं में उभयनिष्ट या सामान्य होती है और वास्तव में दोनों द्वारा निर्मित होती है, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, मध्य पटल (middle lamella) कहलाती है। सन्निधान विधि के द्वारा प्राथमिक भित्ति के ऊपर नए स्तरों के जमने से परवर्ती या द्वितीय

भित्ति (secondary wall) बन जाती है। यह पैक्टोज और सेलुलोज की बनी होती है। तृतीय भित्ति (tertiary wall), जो शुद्ध सेलुलोज की बनी होती है, द्वितीय भित्ति के अभिमुख बनती है। फिर भी द्वितीय और तृतीय भित्तियां हमेशा स्पष्ट पहचानी नहीं जा सकती। ये दोनों भित्तियां अंत में लिग्निभूत (lignified) हो सकती हैं।

कोशिका भित्ति का स्थूलन (Thickening of the Cell-wall)—कोशिका भित्ति का स्थूलन उन कोशिकाओं में होता है जिनको कि अन्त में वाहिनियां (vessels) या दारु वाहिनिकियां (tracheids) में विकसित होना होता है। जब इन कोशिकाओं में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है और अपना पूर्ण आकार प्राप्त कर लेती हैं तो उनकी भित्तियां स्थूलित होने लगती हैं। इन दशाओं में स्थूलन कोशिका भित्ति के आन्तर तल पर एक कठोर पदार्थ के निक्षेपण (deposition) के कारण है, जिसको लिग्निन (lignin) कहते हैं। लिग्निन सम्पूर्ण कोशिका भित्ति के चारों ओर एकसमान निक्षिप्त नहीं होता, लेकिन अधिकतर यह निक्षेपण कोशिका भित्ति के विशेष भागों तक ही सीमित रहता है; और अधिकतम भाग अस्थूलित रहता है। स्थूलन के विभिन्न रूप निम्नलिखित हो सकते हैं:

(१) वलयाकार या छल्लेदार (Annular or Ring-like; चित्र ३६१)—जब लिग्निन का निक्षेपण छल्लों के रूप में होता है, जो कोशिका भित्ति के आन्तर तल पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर एक दूसरे के ऊपर बन जाते हैं, और भित्ति का शेष भाग अस्थूलित रहता है।
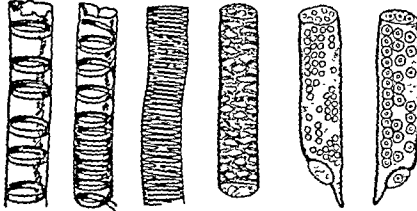
चित्र ३६१ चित्र ३६२ चित्र ३६३ चित्र ३६४ चित्र ३६५ चित्र ३६६

कोशिका भित्ति का स्थूलन। चित्र ३६१—वलयाकार। चित्र ३६२—सर्पिल। चित्र ३६३—सोपानवत्। चित्र ३६४—जालिकावत्। चित्र ३६५—गर्ती (साधारण गर्त)। चित्र ३६६—गर्ती (परिवेशित गर्त)।

(२) सर्पिल (Spiral; चित्र ३६२)—जब स्थूलन एक सर्पिल पट्टी का रूप धारण करता है।

(३) सोपानवत् या सीढ़ीनुमा (Scalariform or Ladder-like; चित्र ३६३)—जब लिग्निन या स्थूलन पदार्थ अनुप्रस्थ तौर (transversely) पर सीढ़ी के डंडों के रूप में निक्षिप्त होते हैं। इसीलिये इसको सोपानवत् या सीढ़ीनुमा कहते हैं। भित्ति के अस्थूलित भाग दीर्घित अनुप्रस्थ गर्त के समान प्रतीत होते हैं लेकिन उनके बीच में स्थूलित भाग भित्ति को सीढ़ी का रूप दे देता है।

(४) जालिकावत् (Reticulate or Netted; चित्र ३६४)—जब स्थूलन जालिका के समान होता है, अतः यह स्पष्ट है कि भित्ति में अनेक अनियमित अस्थूलित स्थान रह जाते हैं।

(५) गर्तो (Pitted; चित्र ३६५-६९)—जब कोशिका भित्ति का सम्पूर्ण आन्तर तल अधिकतर एक समान स्थूलित हो जाता है, और कहीं-कहीं पर कुछ छोटे अस्थूलित भाग या गुहाएं या विवर रह जाते हैं। ये अस्थूलित भाग गर्त (pits) कहलाते हैं, और ये दो प्रकार के होते हैं: (क) साधारण गर्त (simple pits) और (ख) परिवेशित गर्त (bordered pits)। गर्त जोड़ों या युगलों (pairs) में बनते हैं और एक दूसरे के आमने सामने भित्ति के विपरीत पार्श्वों या पक्षों में स्थित होते हैं। मूल भित्ति का वह भाग जो आमने सामने के गर्तों को पृथक करता है पिधान झिल्ली (closing membrane) कहलाती है। परिवेशित गर्तो की पिधान झिल्ली मध्य भाग में थोड़ी फूली या स्थूलित होती है। इसे स्थूलक या टोरस (torus) कहते हैं, जब गर्त का संपूर्ण क्षेत्रफल पूरी गहराई तक एक सा होता है तो उसको साधारण गर्त कहते हैं (चित्र ३६७-६८)। जब यह क्षेत्र एक सा नहीं होता, बल्कि भित्ति की ओर अधिक चौड़ा और कोशिका की गुहा की ओर संकरा होता है, तो उसको परिवेशित गर्त कहते हैं (चित्र ३६९ ख)। परिवेशित गर्त में भित्ति का आसन्न (adjoining) स्थूलन पदार्थ अन्दर की ओर वृद्धि करता है और गर्त के चारों ओर एक मेहराब सा बनाकर आगे की ओर झुका हुआ उपांत या परिवेशन (border) बनाता है। इसलिये इस
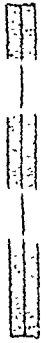
साधारण गर्त। चित्र ३६७—एक कोशिका काट में, जिसमें उसकी भित्ति में साधारण गर्त दिखलाये गये हैं; ग, गर्त; भित्ति, कोशिका भित्ति; मध्य, मध्य पटल।

गर्त को परिवेशित गर्त कहते हैं। तल दृश्य (surface view) में साधारण गर्त एक वृत्ताकार (circular) या वलयित गुहा के समान दीखता है; परिवेशित गर्त भी वैसा ही दीखता है लेकिन यह वृत्ताकार उपांत या परिवेशन (border) से घिरा रहता है। परिवेशित गर्त उस कीप (funnel) के समान है जिसका वृन्त (stem) नहीं होता और जिसकी अधिक चौड़ी परिमा (rim) कोशिका भित्ति की ओर होती है और संकरी परिमा कोशिका गुहा की ओर। गर्त गोलाकार होने के बजाय बहुभुजी, अंडाकार, दीर्घित (elongated) या कुछ अनियमित हो सकते हैं। गर्त
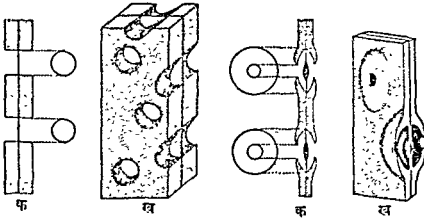
चित्र ३६८ चित्र ३६९

सामान्य गर्त। चित्र ३६८—क, कोशिका भित्ति दो सामान्य गर्तों सहित—छेदीय और तल दृश्य; ख, कोशिका भित्ति का एक भाग (दृश्य-नियमानुसार) कुछ सामान्य गर्तों सहित—छेदीय दृश्य (दाहिने और ऊपर) और तल दृश्य (सामने)।

परिवेशित गर्त। चित्र ३६९—क, कोशिका भित्ति दो परिवेशित गर्तों सहित—छेदीय और तल दृश्य; ख, कोशिका भित्ति का एक भाग (दृश्य-नियमानुसार) दो परिवेशित गर्तों सहित—छेदीय दृश्य (नीचे) और तल दृश्य (ऊपर)।

वे क्षेत्र हैं जिनसे द्रवों का विसरण (diffusion) आसानी से हो सकता है। परिवेशित गर्तों में यह विसरण अधिकांश रूप में टोरस द्वारा नियंत्रित होता है, जो एक ओर से दबाने पर गर्त को बन्द कर देता है। जीवित कोशिकाओं में स्थित साधारण गर्तों द्वारा भी जीवद्रव्य का विसरण होता है। परिवेशित गर्त, शंकु वृक्षों (conifers), उदाहरणार्थ चीड़ (pine) के दारु वाहिनिकियों (tracheids) और एन्जियोस्पर्म के वाहिनियों (vessels) में पाये जाते हैं, उनमें साधारण गर्त भी पाये जाते हैं; लेकिन वे अधिक मात्रा में कुछ जीवित कोशिकाओं में पाये जाते हैं, और दारु

मृदूतक (wood parenchyma), मज्जका किरण (medullary rays), फ्लोएम मृदूतक (phloem parenchyma), सहजात कोशिकाएं (companion cells), इत्यादि में सावारण गर्त बहुतायत से पाये जाते हैं। रेशों (fibres) में साधारण तिर्यक (oblique) गर्त होते हैं और कभी-कभी उनमें
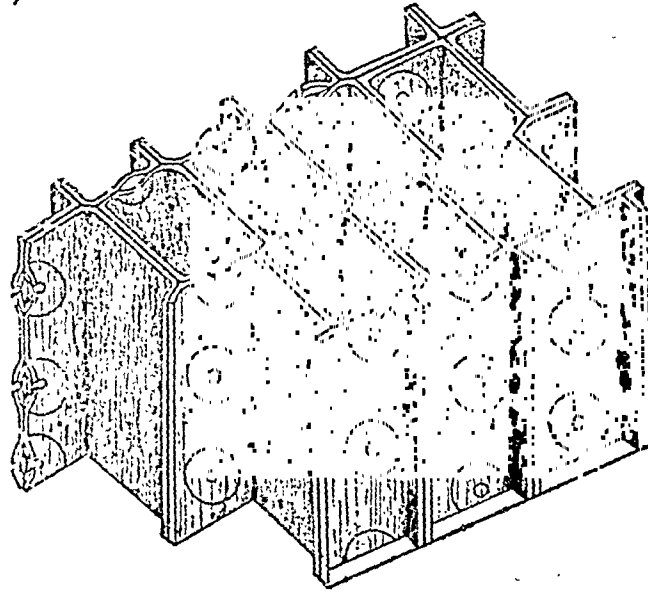
चित्र ३७०—चीड़ के स्तम्भ की दारु वाहिनिकियां परिवेशित गर्तों सहित (आरेखीय)।

परिवेशित गर्त भी मिलते हैं। अष्टि कोशिकाओं (stone cells) में सावारण या शाखीय (branched) गर्त होते हैं।

कोशिका भित्ति की रासायनिक प्रकृति (Chemical Nature of the Cell-wall)—कोशिका भित्ति नाना प्रकार के रासायनिक पदार्थों की बनी होती है, जिनमें सैलूलोज मुख्य है। जैसे-जैसे कोशिका की आयु बढ़ती है, सैलूलोज में रासायनिक परिवर्तन होते हैं और नाना प्रकार के नये पदार्थ बनते जाते हैं। बहुत से खनिज पदार्थ भी कोशिका भित्ति में प्रायः व्याप्त होते जाते हैं।

सैलूलोज (Cellulose)—तरुण कोशिका की भित्ति सैलूलोज नामक पदार्थ की बनी होती है। इसके साथ और भी अनेक पदार्थ होते हैं जिनमें पैक्टिक यौगिक (pectic compounds) मुख्य हैं। जब भित्ति पहले पहल बनती है तो पैक्टिन की बनी होती है जो शीघ्र ही कैल्सियम पैक्टेट नामक अविलेय (insoluble) पदार्थ में परिवर्तित हो जाती है, जैसे मध्य पटल (middle lamella) में, कुछ

समय पश्चात् कोशिका भित्ति में केवल पैक्टिन और सैलूलोज ही रहते हैं, और अन्त में शुद्ध सैलूलोज जीवद्रव्य द्वारा स्रावित (secreted) किया जाता है। कवकों (fungi) को छोड़कर बाकी सभी पौधों के नर्म भागों की कोशिका भित्तियों में सैलूलोज हमेशा उपस्थित रहता है। सैलूलोज एक कोमल, प्रत्यास्थ या लचीला (elastic), पारदर्शक पदार्थ है, जो जल के लिये पारगम्य (permeable) है। सैलूलोज की बनी भित्तियां प्रायः पतली होती हैं, और उन जीवित कोशिकाओं में जीवद्रव्य होता है। रासायनिक दृष्टि से सैलूलोज एक कार्बोहाइड्रेट है, जिसमें कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन नामक तत्व होते हैं। हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन इसकी रचना में उसी अनुपात में भाग लेते हैं जिस अनुपात में वे पानी की रचना में। इसका सूत्र $(C_6H_{10}O_5)n$ और n का मान (value) अभी पता नहीं चला है। सैलूलोज बहुत महत्वपूर्ण पदार्थ है। यह शाकाहारी जन्तुओं का भोजन है लेकिन मनुष्य इसको पचा नहीं सकते। कागज, विस्फोट-कपास (gun-cotton), सैलूलॉयड और कृत्रिम रेशम जैसी वस्तुएं इससे बनाई जाती हैं। कपास और फ्लैक्स या सन (flax) के रेशे शुद्ध सैलूलोज के बने होते हैं, लेकिन भांग के रेशे में सैलूलोज और लिग्निन का मिश्रण होता है।

परीक्षण—(क) सैलूलोज में पहले आयोडीन विलयन (iodine solution) मिलाओ और फिर उसमें ५० प्रतिशत सल्फ्यूरिक अम्ल (sulphuric acid) की एक बूंद या सान्द्र जिंक क्लोराइड (concentrated zinc chloride) की एक बूंद डालो तो सैलूलोज की भित्तियां नीली या बैंगनी हो जाती हैं। (ख) क्लोर-जिंक-आयोडीन (chlor-zinc-iodine) से सैलूलोज नीला या बैंगनी हो जाता है। (ग) फ़ास्फ़ोरिक एसिड आयोडीन (phosphoric acid iodine) से सैलूलोज बैंगनी रंग का हो जाता है।

कोशिका भित्ति की मोटाई में जैसे वृद्धि होती है, वैसे-वैसे उसमें नाना प्रकार के रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं और उसमें अनेक खनिज पदार्थ प्रवेश करते हैं। कभी-कभी कोशिका भित्ति अपने पूर्ण जीवन काल तक सैलूलोज की ही बनी रहती है या कभी सैलूलोज के रासायनिक परिवर्तनों, या जीवद्रव्य द्वारा नये पदार्थों की वृद्धि, या बाह्य पदार्थों के अंतःप्रवेश से यह परिवर्तित हो सकती है। अतः कोशिका भित्ति, लिग्निन (lignin), क्यूटिन (cutin), त्वक्षि या सुबेरिन (suberin), श्लेष्म (mucilage) और खनिज पदार्थों से व्याप्त (impregnated) हो सकती है। कोशिका भित्ति में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं :

(१) लिग्निभवन या लिग्निफिकेशन (Lignification)—इसका कारण सैलूलोज की बनी मूल कोशिका भित्ति में लिग्निन के स्तरों का जमा होना है, या सैलूलोज लिग्निन के रूप में बदल सकता है। दोनों ही दशाओं में सम्पूर्ण भित्ति लिग्निभूत

(lignified) हो सकती है, या लिग्निभवन अंशतः होता है। लिग्निन एक कठोर, और रासायनिक रूप में जटिल (complex) पदार्थ है। यह पौधों के कठोर तथा काष्ठी (woody) ऊतकों में पाया जाता है। लिग्निभूत कोशिकाएं प्रायः स्थूल भित्ति-युक्त (thick-walled) और मृत होती हैं। यद्यपि यह कठोर है, फिर भी जल के लिये पारगम्य (permeable) है। सब जल-वाहक वाहिनियां लिग्निभूत होती हैं। अधिकतर वनस्पति रेशे (vegetable fibres) भी लिग्निभूत होते हैं, लेकिन कपास के रेशे सैलूलोज के बने होते हैं। लिग्निभूत ऊतकों का कार्य यांत्रिक होता है, अर्थात् ये पौधों के शरीर की दृढ़ता स्थिर रखने में सहायक होते हैं।

परीक्षण—(क) एसिड एनिलीन सल्फेट (acid aniline sulphate) या ऐनिलीन क्लोराइड का विलयन लिग्निन को दीप्त पीला (bright yellow) रंग देता है, (ख) एसिड फ्लोरोग्लूसिन (acid phloroglucin) का विलयन लिग्निन को बैंगनी लाल (violet red) रंग देता है। (ग) क्लोर-जिंक-आयोडीन (chlor-zinc-iodine) इसको पीला अभिरंजित (stains) करता है।

(२) क्यूटिनीभवन (Cutinization)—सैलूलोज या कुछ प्रकार के पैक्टोज के क्यूटिन में बदल जाने की क्रिया को क्यूटिनीभवन कहते हैं। क्यूटिन की प्रकृति मोम सी (waxy) है। यह स्तम्भों तथा पत्तियों के चर्म (त्वचा) में एक निश्चित स्तर बनाता है जिसको बाह्यचर्म (cuticle) कहते हैं। यह कोशिका भित्ति को जल के लिये अपारगम्य (impermeable) या थोड़ा सा पारगम्य कर देता है। इसका कार्य पौधे के तल से जल के वाष्पन (evaporation) को रोकना है।

(३) त्वक्षिभवन (Suberization)—कोशिका भित्ति में प्रायः त्वक्षि या सुबेरिन (suberin) नामक पदार्थ जमा हो जाता है। त्वक्षिभवन काग (cork) की कोशिकाओं में होता है। बोतल के काग की कोशिकाएं त्वक्षिभूत (suberized) होती हैं। त्वक्षि एक वसीय (fatty) पदार्थ है और यह कोशिका भित्ति को जल के लिये अपारगम्य (impermeable) कर देता है। इसलिये क्यूटिन की ही भांति त्वक्षि भी जल के वाष्पन को रोकता है।

(४) श्लेष्मीय परिवर्तन (Mucilaginous Change)—सैलूलोज एक प्रकार के श्लेष्मीय (slimy) पदार्थ में भी बदल सकता है, जिसको श्लेष्म (mucilage) कहते हैं। यह पानी को खूब अवशोषित करता है, और अपने में इकट्ठा रखता है तथा एक श्यान (viscous) पदार्थ बनाता है, लेकिन सूखने पर यह कठोर तथा कठोरीकृत (horny) हो जाता है। यह ऐलकोहल में अविलेय है। श्लेष्म घृतकुमारी (Indian aloe) के मांसल पत्तियों में काफी मात्रा में पाया जाता है, गुड़हल के फूलों, भिंडी के फलों, अलसी और इसबगोल (*Plantago*) के बीजों और पोई या बासेला (*Basella*) की पत्तियों और शाखाओं में भी श्लेष्म

प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इस प्रकार के बीज भिगोये जाने पर फूल जाते हैं और श्लेष्मीय हो जाते हैं। श्लेष्म रेगिस्तानी पौधों की मांसल पत्तियों में भी पाया जाता है।

(५) खनिजीकरण (Mineralization)—कोशिका भित्ति में नाना प्रकार के खनिज मणिभ (mineral crystals) प्रवेश पा सकते हैं। ये पदार्थ अधिकतर पौधे के शरीर में ही उसमें होने वाली अनेक रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप निर्मित होते हैं और मणिभ (crystals) के रूप में कोशिका भित्ति में या और कहीं जमा हो जाते हैं। इनमें सिलिका (silica) के कण और कैल्सियम ऑक्सेलेट (calcium oxalate) के मणिभ अधिक होते हैं। सिलिका घास की पत्तियों (देखिये पृष्ठ २२४) में बहुतायत से पायी जाती है। कैल्सियम ऑक्सेलेट के मणिभ भी पौधों में बहुतायत से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पेड़ों में, जैसे रबर के पौधे की पत्तियों में कैल्सियम कार्बोनेट एक मणिभीय (crystalline) पुंज के रूप में पाया जाता है जो अंगूर के गुच्छे के समान दिखाई देता है।

अधिकतर कवकों में और कभी-कभी शैवालों में कोशिका भित्ति काइटिन (chitin) नामक पदार्थ की बनी होती है जो सेलूलोज से मिलता जुलता है। फिर भी काइटिन जन्तुओं में विशेष रूप से पाया जाता है।

कोशिकान्तर्वस्तु (CELL INCLUSIONS)

वनस्पति कोशिकाओं में नाना प्रकार के रासायनिक यौगिक निर्जीव अन्तर्वेश (inclusions) के रूप में पाये जाते हैं। उन सब का वर्णन करना यहां पर सम्भव नहीं है। इसलिये केवल उनका वर्णन यहां पर दिया जा सकता है जो अधिकतर पाये जाने वाले और अधिक महत्व के हैं। इनमें से कुछ पदार्थ तो जीवद्रव्य के पोषाहार (nutrition) से सम्बन्धित हैं, कुछ विशेष कार्य करते हैं, और कुछ ऐसे भी हैं जो कि जीवद्रव्य के कुछ भी काम नहीं आते। तदनुसार ये सब यौगिक तीन मुख्य वर्गों में बांटे जा सकते हैं, अर्थात् (क) संचित या आरक्षित पदार्थ (reserve materials), (ख) स्रावक पदार्थ (secretory products), (ग) वर्ज्य पदार्थ (waste products)।

क. संचित या आरक्षित पदार्थ (Reserve Materials)—ये पदार्थ जीवद्रव्य द्वारा निर्मित किये जाते हैं और उसी के द्वारा विशेष कोशिकाओं में संचित किये जाते हैं। इस प्रकार संचित पदार्थ अन्त में जीवद्रव्य द्वारा अपने पोषाहार के लिये तथा पौधों के शरीर की रचना में प्रयुक्त किये जाते हैं। अतः संचित पदार्थ पौधों के भोजन का काम देते हैं। अनेक ऐसे पदार्थ कोशिका-रस में विलयन (solution) के रूप में पाये जाते हैं, और कुछ पदार्थ ठोस रूप में संचित रहते हैं। संचित पदार्थों में अनेक प्रकार के (१) कार्बोहाइड्रेट, (२) नाइट्रोजनीय पदार्थ

(nitrogenous materials) और (३) वसा और तैल या तेल (fats and oils) हैं।

१. कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates)

ये वह पदार्थ हैं जिनमें कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन होते हैं। इनमें हाइड्रोजन और ऑक्सीजन उसी अनुपात में होते हैं जिसमें कि वे पानी में होते हैं। जब ये पदार्थ गर्म किये जाते हैं तो वे झुलसने (charred) लगते हैं, और एक काला पुंज बन जाता है। यह काला पुंज कार्बन है। पानी भाप बन कर उड़ जाता है और कार्बन बच रहता है। कुछ कार्बोहाइड्रेट पानी में विलेय (soluble) हैं, और कुछ अविलेय (insoluble)। शर्कराएं (sugars) और इनूलिन (inulin) विलेय हैं और सबसे महत्वपूर्ण अविलेय पदार्थ मण्ड (starch) है।

(१) शर्कराएं (Sugars)—पौधों में नाना प्रकार की शर्कराएं पायी जाती हैं। इनमें से द्राक्षा-शर्करा या ग्लूकोज (grape-sugar or glucose) विशेषकर अंगूर, और इक्षु-शर्करा या सुक्रोज (cane-sugar or sucrose) ईख या गन्ना और चुकन्दर में पायी जाती हैं। द्राक्षा-शर्करा सबसे साधारण कार्बोहाइड्रेट है और इसका निर्माण सूर्य के प्रकाश में पत्तियों में पाये जाने वाले हरिमकणों द्वारा होता है। कार्बोहाइड्रेट के दूसरे रूप जीवित पदार्थों की सहायता से या उसके बिना ही द्राक्षा-शर्करा से बनते हैं। पौधों के शरीर में इसका संचार इसी के रूप में होता है जब तक कि यह संग्रह ऊतकों में नहीं पहुंच जाता। वहां पर यह अधिकतर मण्ड, एक अविलेय कार्बोहाइड्रेट, में परिवर्तित हो जाता है, और कुछ या अधिक समय तक संचित रहता है। यह मण्ड फिर से शर्करा में परिवर्तित किया जा सकता है। द्राक्षा-शर्करा का रासायनिक सूत्र $C_6H_{12}O_6$ है, और इक्षु-शर्करा का सूत्र $C_{12}H_{22}O_{11}$ है। अंगूर में १२-१५% या अधिक, सेब में ७-१०% और अलूचा (plum) में ३-५% द्राक्षा-शर्करा होती है। ईख में १०-१५% और चुकन्दर में १०-२०% इक्षु-शर्करा होती है।

द्राक्षा-शर्करा का परीक्षण (Tests for Glucose)—(१) द्राक्षा-शर्करा के विलयन में २-३ बूंदे ताम्र सल्फेट या तूतिया (copper sulphate) के विलयन को डालो और इसके बाद कास्टिक सोडा का विलयन तब तक मिलाओ जब तक मिश्रण का रंग स्वच्छ नीला न हो जाय। अब अगर इस विलयन को उबाला जाय तो पहले इसका रंग पीला और तुरन्त ही लाल हो जाता है। (२) **फ़ेलिंग का विलयन** (Fehling's solution) इसमें मिलाकर इसे उबालो। स्वच्छ नीला घोल लाल रंग का हो जाता है।

इक्षु-शर्करा का परीक्षण (Tests for Sucrose)—इक्षु-शर्करा के विलयन

को १ या २ बूंद सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ उबालो, और तब इस विलयन को द्राक्षा-शर्करा के लिये परीक्षण करो।

(२) इनूलिन (Inulin; चित्र ३७१)—इनूलिन एक विलेय कार्बोहाइड्रेट है और कोशिका रस में विलेय अवस्था में रहता है। मण्ड की भांति यह भी एक प्रकार की शर्करा में आसानी से बदल जाता है। इनूलिन डैलिया (*Dahlia*) और कम्पोजिटी के कुछ अन्य पौधों के कन्दिल मूलों (tuberous roots) में पाया जाता है। यदि डैलिया के जड़ के टुकड़े ऐल्कोहल या ग्लिसरीन में ६ या ७ दिन या इससे अधिक दिनों तक डुबा रखे जाय तो उनमें मौजूद इनूलिन गोलाकार मणिभीय पुंजों के रूप में अवक्षेपित (precipitated) हो जाता है। तब जड़ के एक टुकड़े के काट या सेक्शन (section) तैयार करके सूक्ष्मदर्शी द्वारा निरीक्षण किया जाता है। ताजी जड़ों के मोटे-मोटे सेक्शन काट कर अगर प्रबल ऐल्कोहल (strong alcohol) में एक घंटे रखे जाय तो इनूलिन अवक्षेपित किया जा सकता है। सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर इनूलिन के पूर्ण निर्मित मणिभ (crystals) सितारे के आकार के या चक्राकार दिखाई देते हैं, और अर्ध-निर्मित मणिभ लगभग पंखे के आकार के दिखाई देते हैं। ये मणिभ अधिकतर कोशिका भित्ति पर जमा होते हैं और कभी-कभी कोशिका गुहा में भी। कभी-कभी ये मणिभ आकार में इतने बड़े होते हैं कि वे कई-कई कोशिकाओं में फैले होते हैं। इनूलिन की वही रासायनिक रचना है जो मण्ड की, अर्थात् $(C_6H_{10}O_5)n$।
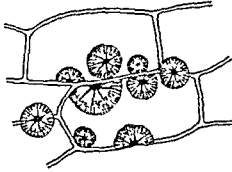
चित्र ३७१—डैलिया के कन्दिल मूल में इनूलिन मणिभ।

परीक्षण—जब इनूलिन विलयन, एसिड फ्लोरोग्लूसिन विलयन के साथ मिलाया जाता है तो यह पीलापन लिये हुए भूरा हो जाता है। अवक्षेपित किये जाने पर यह अपनी विशिष्ट आकृति के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है।

(३) मण्ड (Starch; चित्र ३७२-७५)—यह एक अविलेय कार्बोहाइड्रेट है और नन्हे-नन्हे दानों या कणों के रूप में मिलता है। कवकों (fungi) को छोड़कर मण्ड कण पौधों में सर्वत्र पाये जाते हैं। ये पौधे के लगभग सभी अंगों में पाये जाते हैं, लेकिन संग्रह ऊतकों में विशेषकर अधिक होते हैं। धान्य (cereals) और ज्वार, बाजरा (millets) आदि में, जो मनुष्य मात्र के मुख्य भोजन हैं, मण्ड काफी मात्रा में होता है। जब इसकी पोषाहार के लिये आवश्यकता होती है तो यह शर्करा में बदल

जाता है। मण्ड कण भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं : वे गोल व चिपटे हो सकते हैं, जैसे गेहूं में; बहुभुजी, जैसे मक्का में; करीब-करीब गोलाकार, जैसे मटर और सेम में; प्रायः अण्डाकार, जैसे आलू में, या कभी-कभी द्विमुण्डाकार (dumb-bell-shaped), जैसे यूफोर्बिया के आक्षीरी कोशिकाओं में। वे आकार में भी बहुत भिन्न होते हैं, बड़े से बड़े कण लम्बाई में १०० माइक्रोन लम्बे होते हैं, जैसे कैना के प्रकन्द (rhizome) में; और

चित्र ३७२ चित्र ३७३ चित्र ३७४ चित्र ३७५

मण्ड कण। चित्र ३७२—आलू में साधारण उत्केन्द्र कण। चित्र ३७३—आलू में संयुक्त कण। चित्र ३७४ क—मक्का में साधारण एककेन्द्रीय कण; ख—मटर में एककेन्द्रीय कण। चित्र ३७५ क—चावल में संयुक्त कण। ख—जई में संयुक्त कण।

छोटे से छोटे कण लगभग ५ माइक्रोन लम्बे होते हैं, जैसे चावल में। आलू में वे भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं। नियमानुसार, संग्रह अंगों में श्वेत कणकों (leucoplasts) द्वारा अवक्षेपित (precipitated) मण्ड कण उन मण्ड कणों से बड़े होते हैं जो कि हरिमकणकों द्वारा पत्तियों में निर्मित होते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि संग्रह अंगों में या पत्तियों में मण्ड, द्राक्षा-शर्करा से बनता है और श्वेत कणकों या हरिमकणकों द्वारा यह मण्ड संश्लेषण (starch synthesis) प्रकाश से संबंधित नहीं है।

आलू के मण्ड कण में एक सिरे पर एक गहरे रंग का गोल धब्बा दिखाई देता है जिसको वृन्तक (hilum) कहते हैं। यह कण के उद्गम (origin) के केन्द्र को संकेत करता है। वृन्तक के चारों ओर विभिन्न घनत्वों की अनेक रेखाएं या धारियां एकांतरतः जमा होती हैं। इसलिये प्रत्येक मण्ड कण की स्तरित (stratified) आकृति हो जाती है। जब कि स्तर वृन्तक के एक ओर जमा होते जाते हैं, जैसे आलू में, तो कण को उत्केन्द्र (eccentric) कहते हैं, और जब ये वृन्तक के चारों ओर एककेन्द्रीय रूप (concentrically) से जमा हो जाती हैं, जैसे गेहूं, मक्का, मटर, सेम, और बहुत से दालों में, तो मण्ड कण को एककेन्द्रीय या संकेन्द्रीय (concentric) कहते हैं। उत्केन्द्र कण संकेन्द्रीय कणों की तुलना में अधिक पाये जाते हैं। मण्ड कण

अलग-अलग पाये जा सकते हैं और जब उनमें केवल एक वृन्तक होता है तो वे साधारण (simple) कण कहे जाते हैं। कभी-कभी दो या दो से अधिक कण ठोस समूह रूप में पाये जाते हैं और उनमें उतने ही वृन्तक होते हैं जितने दाने तो उस समूह को संयुक्त (compound) कण कहते हैं। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि श्वेत कणक

चित्र २७६ चित्र २७७

मण्डकण। चित्र २७६—आलू के कन्द का सेक्शन जिसमें कुछ कोशिकाएं उत्केन्द्र कणों सहित दिखाई गई हैं। चित्र २७७—मटर के बीजपत्र का सेक्शन जिसमें कुछ कोशिकायें एककेन्द्रीय कणों (और प्रोटीन के सूक्ष्म कणिकाएं) सहित दिखाई गई हैं।

(leucoplasts) दो या अधिक कण एक साथ बना पास पास बना देते हैं और बाद में जब कण में नए स्तर जमा होते जाते हैं तो वे साथ [illegible] समूह बना लेते हैं। यह पुंज संयुक्त कण है। प्राय यह सम्पूर्ण पुंज कुछ सामान्य बाह्य स्तरों से घिरा रहता है जो कि श्वेत कणकों द्वारा स्रावित होते हैं। [illegible] शकरकन्द के कन्दिल मूलों और चावल और जई के भ्रूणपोष में मिलते हैं (चित्र २७५), कभी-कभी आलू में भी कुछ संयुक्त कण दिखाई देते हैं (चित्र [illegible])। मण्ड की रासायनिक रचना वही है जो सेलूलोज और डेक्सट्रिन की, अर्थात् $(C_6H_{10}O_5)_n$। यह जल और ऐलकोहल में अविलेय है। चावल में ७०-८०%, [illegible] में [illegible]%, मक्का में ६८%, जौ में ६०-६५% और अरारोट (arrowroot) में २०-३०%, और आलू में २०% मण्ड होता है।

परिक्षण—आयोडीन विलयन से साधित किये जाने पर मण्ड नीला या काला हो जाता है। रंग की गहराई प्रतिकर्मक (reagent) की सांद्रता पर निर्भर करती है।

(४) ग्लाइकोजन (Glycogen)—यह कवकों में पाया जाने वाला सामान्य कार्बोहाइड्रेट है। यीस्ट (yeast) नामक एक एककोशिक कवक में यह पौधे के शुष्कभार (dry weight) का ३०% होता है। यह उच्च श्रेणी के पौधों में नहीं पाया जाता और जन्तुओं में बहुतायत से मिलता है। इसलिये यह कभी-कभी जन्तु मण्ड (animal starch) भी कहलाता है। यह कोशिका के कोशिका द्रव्य में दानों के रूप में पाया जाता है। ग्लाइकोजन एक सफ़ेद अमणिभ (amorphous) चूर्णन (powder) है और गर्म पानी में विलेय है। आयोडीन विलयन के साथ इसका रंग लाली लिये हुए भूरा हो जाता है। गर्म करने पर रंग गायब हो जाता है और ठंडा करने पर फिर प्रकट हो जाता है। इसका रासायनिक सूत्र $(C_6H_{10}O_5)n$ है।

२. नाइट्रोजनीय पदार्थ (Nitrogenous Materials)

पौधों में संचित नाइट्रोजनीय पदार्थ, जो कि उनके खाद्य के लिये उपयोग में आते हैं, नाना प्रकार के **प्रोटीन** और **ऐमिनो यौगिक** हैं (ऐमाइन और ऐमिनो अम्ल)।

चित्र ३७८—एरंड के बीज के भ्रूणपोष में ऐल्यूरोन कण। दाहिने कुछ कण आवर्धित। ऐल्यूरोन कण में मणिभाभ और गुलिकाभ का आलोकन करो।

(१) प्रोटीन (Proteins)—ये जटिल, कार्बनिक, नाइट्रोजनीय पदार्थ हैं जिनकी रचना में कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन भाग लेते हैं[१]। कुछ दशाओं में उनमें गंधक और फ़ॉस्फ़ोरस भी मिलता है। जीवद्रव्य को छोड़कर बाकी कार्बनिक यौगिकों में प्रोटीन रासायनिक रचना में सबसे जटिल हैं और पौधों के शरीर

---

[१]प्रोटीन की औसत प्रतिशत रासायनिक रचना इस प्रकार दी जा सकती है: कार्बन–५०–५४% ; हाइड्रोजन–लगभग ७% ; ऑक्सीजन–२०–२५% ; नाइट्रोजन-१६-१८% ; गन्धक–०.४% और फ़ॉस्फ़ोरस–०.४% ।

में नाना प्रकार के प्रोटीन पाये जाते हैं। इनमें से कुछ पानी में विलेय हैं, लेकिन अधिकांश अविलेय हैं। कुछ लवणीय विलयन (saline solution) में विलेय हैं, लेकिन ये सब प्रबल अम्लों तथा क्षारों में विलेय होते हैं। प्रोटीन संग्रह ऊतकों में काफी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं, सक्रिय (जिनमें वृद्धि हो रही हो) ऊतकों में उससे कम संख्या में और परिपक्व अक्रिय ऊतकों में बिलकुल नहीं पाये जाते हैं। अविलेय या कुछ विलेय प्रोटीन का एक रूप जो एरंड के बीज के भ्रूणपोष में अधिक मात्रा में पाया जाता है, ऐल्यूरोन कण (aleurone grain; चित्र ३०८) है। प्रत्येक ऐल्यूरोन कण एक ठोस, अंडाकार या गोलाकार काय है, और इसके बीच में एक मणिभ सदृश्य काय होता है जिसको मणिभाभ (crystalloid) कहते हैं, और एक गोल खनिज काय होता है जिसको गुलिकाभ (globoid) कहते हैं। मणिभाभ कण या दाने के चौड़े भाग में स्थित होता है और इसकी प्रकृति प्रोटीन की तरह होती है। गुलिकाभ कण के संकरे भाग में पाया जाता है और कैल्सियम और मैग्नीशियम का द्विगुण फ़ास्फ़ेट (double phosphate) है। ऐल्यूरोन कण में मणिभाभ और गुलिकाभ सदा नहीं पाये जाते। ये एक दाने में एक या एक से अधिक भी हो सकते हैं या कभी नहीं भी हो सकते। ऐल्यूरोन कण आकार में भिन्न होते हैं। जब वे मण्ड के साथ होते हैं तो बहुत छोटे होते हैं, जैसे मटर में; लेकिन तैलीय (oily) बीजों में, जैसे एरंड में, वे काफी बड़े आकार के होते हैं। वसीय बीजों (fatty seeds) में मण्ड वाले बीजों से प्रोटीन का अधिक प्रतिशत होता है, उदाहरणार्थ चावल में ७% प्रोटीन, गेहूं में १२% प्रोटीन, लेकिन सूर्यमुखी के बीज में ३०% प्रोटीन की मात्रा होती है। लेग्यूमीनोसी कुल के पौधों के मण्डीय बीजों में प्रोटीन की मात्रा उतनी ही होती है जितनी कि वसीय बीजों में, उदाहरणार्थ दालों में २५% प्रोटीन होता है। सोयाबीन (soybean) में ४२-४७% प्रोटीन होता है।

परीक्षण—(क) आयोडीन विलयन प्रोटीन को पीलापन युक्त भूरा रंग देता है। (ख) मिलन का प्रतिकर्मक (Millon's reagent) प्रोटीन के साथ सफ़ेद अवक्षेप (precipitate) देता है जो उबालने पर मटमैला लाल में बदल जाता है। (ग) प्रोटीन के विलयन में यदि कॉस्टिक सोडा का विलयन अधिक मात्रा में मिलाया जाय और उसके बाद १% तूतिया (copper sulphate) के विलयन की कुछ बूंदें डाली जाय तो वह बैंगनी रंग का हो जाता है जो गर्म करने पर अधिक गहरा हो जाता है (बाइयूरेट अभिक्रिया, biuret reaction)।

(२) ऐमिनो यौगिक (Amino-compounds)—ऐमिनो अम्ल और ऐमाइड्स नाइट्रोजनीय खाद्य पदार्थों में सबसे साधारण यौगिक हैं और कोशिका रस में विलेय अवस्था में रहते हैं। ये पौधों के वर्धन (growing) भागों में बहुतायत से पाये जाते हैं और संग्रह ऊतकों में उससे कम। जब प्रोटीन का स्थानान्तरण (translocation)

आवश्यक होता है तो प्रोटीन ऐमाइन्स और ऐमिनो अम्ल में बदल जाता है। ऐमाइन्स और ऐमिनो अम्ल वर्धन प्रदेशों की ओर जाते हैं जहां पर जीवद्रव्य बहुत सक्रिय होता है, और वहां पर ये पदार्थ स्वीकरण कर लिये जाते हैं, जटिल प्रोटीन के निर्माण में ये प्रारम्भिक अवस्थाएं हैं। इनमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन रहता है, और सिस्टिन (cystine) नामक ऐमिनो अम्ल में गन्धक भी रहता है।

३. वसा और तेल या तैल (Fats and Oils)

वसा और तैल कम या अधिक मात्रा में सभी पौधों में पाया जाता है। जीवित कोशिकाओं के जीवद्रव्य में वे छोटी गोलिकाओं (globules) के रूप में मिलते हैं। पुष्पी पादपों में ये बीजों और फलों में विशेष रूप से संचित रहते हैं, लेकिन मण्डीय बीजों और फलों में बहुत-कम वसा होती है। वसा और तैल में कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन होता है, लेकिन हाइड्रोजन और ऑक्सीजन इनमें उसी अनुपात में नहीं होते जिस अनुपात में वे पानी में होते हैं। इनमें ऑक्सीजन का अनुपात कार्बोहाइड्रेट से हमेशा कम होता है। इनमें नाइट्रोजन नहीं होता। वे पानी में अविलेय हैं, लेकिन ईथर, क्लोरोफार्म और पैट्रोलियम में विलेय हैं। इनमें से बहुत कम ऐलकोहल में विलेय हैं, उदाहरणार्थ एरंड का तेल। जीवित अंगों में वसा, वसीय अम्लों (fatty acids) और ग्लिसरीन से, लाइपेज़ (lipase) नामक ऐन्ज़ाइम की उपस्थिति में, संश्लेषित (synthesized) होती है। ये दोनों पदार्थ, अर्थात् वसीय अम्ल और ग्लिसरीन, श्वसन की क्रिया में कार्बोहाइड्रेट (शर्करा और मण्ड) से बनते हैं। ये महत्वपूर्ण संचित पदार्थ हैं जिनमें ऊर्जा बहुत अधिक मात्रा में संचित रहती है। जब वसा का विघटन (decomposition) होता है तो उनमें संचित ऊर्जा का मोचन (liberation) होता है और यह ऊर्जा जीवद्रव्य द्वारा नाना प्रकार के कार्य करने के लिये प्रयोग होती है। वसा का वसीय अम्ल और ग्लिसरीन में पाचन भी लाइपेज़ (lipase) नामक ऐन्ज़ाइम द्वारा होता है। जो वसा साधारण ताप (temperature) पर द्रव अवस्था में रहते हैं, तैल (oils) कहलाते हैं। पौधों में वसा सामान्यतः तैल के रूप में मिलता है। तैल दो प्रकार के होते हैं, अर्थात् स्थिर (fixed) या अवाष्पशील (non-volatile), जैसे ऊपर वर्णन किया जा चुका है, और गंध तैल (essential oil) या वाष्पी (volatile) तैल (देखिये पृष्ठ २२३)।

इनमें से बहुत से तेल भोजन, साबुन व तेल के पेन्ट बनाने, रोशनी करने, स्नेहन (lubrication), इत्यादि के काम आते हैं, इसलिये ये आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं, उदाहरणार्थ नारियल का तेल, जैतून का तेल, एरंड का तेल, तिल का तेल, मूंगफली का तेल, अलसी का तेल, बिनौले का तेल, सरसों का तेल, इत्यादि।

परीक्षण—(क) ऑस्मिक अम्ल (Osmic acid) तेल को काला कर देता है। (ख) ऐल्केनेट (या ऐल्केनिन) का ऐल्कोहलिक विलयन उन्हें लाल रंग का कर देता है।
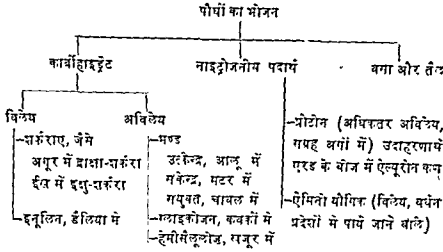
ख. स्रावक पदार्थ (Secretory Products)—इसमें वे सब पदार्थ शामिल हैं जो जीवद्रव्य द्वारा निर्मित तो होते हैं, लेकिन उसके द्वारा अपने पोषाहार और वृद्धि के लिये उपयोग नहीं किये जाते। वे पौधे में कुछ विशेष कार्य करते हैं। इनके नाम व वर्णन निम्नलिखित हैं :

(१) प्रकिण्व या ऐन्जाइम (Enzymes)—ये विलेय नाइट्रोजनीय पदार्थ हैं जो जीवद्रव्य द्वारा स्रावित किये जाते हैं। सामान्यतः इनको पाचक कारक (digestive agents) कहते हैं। इनका कार्य अविलेय यौगिकों को विलेय करना है; उदाहरणार्थ मण्ड को शर्करा में बदलना, और जटिल यौगिकों का सरल यौगिकों में बदलना है, उदाहरणार्थ शर्करा को कार्बन-डाइऑक्साइड और पानी में बदलना।

(२) रंजक द्रव्य (Colouring Matters)—अनेक रंजक [illegible] में पर्णहरिम (chlorophyll) और ऐन्थोसाएनिन (anthocyanin) [illegible] प्रमुख हैं। पर्णहरिम अधिकतर पत्तियों में पाया जाता है और [illegible] से सम्बन्धित है। शर्करा और मण्ड जैसे खाद्य पदार्थ पर्णहरिम की [illegible] में निर्मित होते हैं। ऐन्थोसाएनिन बहुत से पौधों के फूलों में विलयन के [illegible] है और उनके रंग के लिये उत्तरदायी है (देखिये पृष्ठ २०८)।

(३) मकरन्द (Nectar)—बहुत से फूल विशेष [illegible] या ग्रन्थियों से परागण के हेतु कीटों को आकर्षित करने के लिये मकरन्द स्रावित करते हैं। [illegible]

मकरन्द को खाते हैं और घटनाक्रमवश (incidentally) एक फूल से दूसरे फूल में पराग कणों को ले जाते हैं (देखिये परागण, पृष्ठ १५५)।

ग. वर्ज्य पदार्थ (Waste Products)—इस शीर्षक के अन्तर्गत पौधों में पाये जाने वाले वे नाना प्रकार के पदार्थ सम्मिलित हैं जो जीवद्रव्य के किसी जीवकर (vital) कार्य में भाग नहीं लेते और न वे जीवद्रव्य द्वारा प्रत्यक्ष स्रावित ही किये जाते हैं। ये पदार्थ उन नाना प्रकार के रचनात्मक (constructive) और विघटनात्मक (destructive) परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप बन जाते हैं जो पौधे के शरीर में घटित होते रहते हैं। इसलिये इनको केवल उपजात (by-products) माना जाता है। चूंकि पौधों में कोई उत्सर्जन संहति (excretory system) नहीं होती, इसलिये ये वर्ज्य पदार्थ छाल (bark), पुरानी पत्तियों, मृत दारु (wood) और दूसरी विशेष कोशिकाओं में, जीवद्रव्य की क्रियाशीलता के क्षेत्र से दूर, एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार इन्हें भी उत्सर्जन (excretions) मान सकते हैं। ये दो प्रकार के हो सकते हैं: (१) अनाइट्रोजनीय (non-nitrogenous) और (२) नाइट्रोजनीय (nitrogenous)

(१) अनाइट्रोजनीय (Non-nitrogenous)

(१) **टैनिन** (Tannins)—ये जटिल यौगिकों (complex compounds) के विषमांग (heterogenous) समूह हैं जो पौधों में विस्तार से वितरित हैं। ये पौधों के लगभग प्रत्येक भाग में, या तो एकाकी पृथक कोशिकाओं में या कोशिकाओं के छोटे समूहों में, कोशिका रस में विलीन (dissolved) रहते हैं। वे कोशिका भित्तियों में भी और प्रायः कुछ मृत ऊतकों में, जैसे छाल और अन्तःकाष्ठ या हृत्काष्ठ (heart-wood) में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। नई या पुरानी पत्तियों में और बहुत से कच्चे फलों में टैनिन काफी मात्रा में होता है। जैसे-जैसे फल पकता है टैनिन गायब होते जाते हैं और वे द्राक्षा-शर्करा और अन्य पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं, ये हड़ या हरीतकी (chebulic myrobalan), बहेड़ा (beleric myrobalan) और आंवला (emblic myrobalan), इत्यादि में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। चाय की पत्तियों में लगभग १८ प्रतिशत टैनिन होता है, वृक्षवृण या गाल (galls) में २५% से ७५% तक टैनिन पाया जाता है। कत्था जो एक प्रकार का टैनिन है, खैर (*Acacia catechu*) के अन्तःकाष्ठ या हृत्काष्ठ से प्राप्त किया जाता है, और सुपारी में भी पाया जाता है। टैनिन एक कड़ुवा या तीखा (bitter) पदार्थ है, और इसलिये तेज चाय और हड़, बहेड़ा, आदि के फल का स्वाद कड़ुआ या तीखा होता है। यह अपूतिदूषित (aseptic) है, अर्थात् पराश्रयी कवकों और कीटों के आक्रमण से सुरक्षित रहता है। टैनिन की

उपस्थिति काष्ठ को कठोर और टिकाऊ बना देती है। टैनिन के विविध लाभ हैं। लोहे के लवणों के साथ मिलाकर ये स्याही बनाने के काम आते हैं। वे चर्मसंस्करणी (tanning) अर्थात् खाल को कमाने या चमड़े में बदलने की क्रिया में काम आते हैं। वे अनेक औषधियों में भी प्रयोग किये जाते हैं।

परीक्षण—(क) लोहे के लवण, जैसे फ़ेरिक क्लोराइड (ferric chloride) के साथ ये नीला-काला रंग देते हैं (यदि एक कच्चा केला लोहे के चाकू से काटा जाय तो चाकू काला पड़ जाता है। यह केले में मौजूद टैनिन की चाकू के फल के लोहे के साथ होने वाली क्रिया के कारण होता है।) (ख) ये क्रोमिक अम्ल (chromic acid) या पोटासियम डाइक्रोमेट के साथ गहरा भूरा रंग देते हैं।

(२) गंध तेल (Essential Oils)—ये वाष्पशील तेल हैं और तैल ग्रन्थि (oil glands) नामक ग्रन्थियों में पाये जाते हैं। चकोतरे, तुलसी, नींबू, सिम्बोपोगॉन सिट्रेटस (*Cymbopogon citratus*), यूकेलिप्टस (*Eucalyptus*), इत्यादि की पत्तियां, और संतरा, नींबू और चकोतरे के फल के छिलके में जो पारदर्शक बिन्दु दिखाई देते हैं वे सब तैल ग्रन्थियां (oil glands) हैं। ये बहुत से पौधों के पुष्पों के दलों में भी पाये जाते हैं, जैसे गुलाब, चमेली, इत्यादि में, इन फूलों की सुगन्ध इनमें पाये जाने वाले गंध तेलों के कारण होती है। ये तेल, वसीय तेलों (fatty oils) से दो बातों में भिन्न हैं, एक तो रासायनिक रचना में और दूसरे वाष्पशीलता में। ये पानी में यथेष्ट सीमा तक विलेय हैं और पानी में इनका गन्ध तथा स्वाद आ जाता है, वाष्पशील होने के कारण गंध तेल पौधों से आसवन (distillation) की क्रिया द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं, जब कि स्थिर तेल (fixed oils) केवल दाब (pressure) से प्राप्त किये जा सकते हैं। वसीय तेलों के समान ये भी ईथर, पैट्रोलियम, इत्यादि में आसानी से विलेय हैं और वे भी उसी तरह परीक्षणों (tests) के परिणाम प्रकट करते हैं (नीचे देखिये)। ये ऐलकोहल में विलेय हैं, लेकिन स्थिर तेल विलेय नहीं हैं। व्यापारिक महत्व के लगभग २०० गंध तेल हैं। इनमें से कुछ सामान्य तेल, नींबू का तेल, यूकेलिप्टस का तेल, लौंग का तेल (clove oil), लैवेण्डर का तेल (lavender oil), चन्दन का तेल (sandalwood oil), थाइम का तेल (thyme oil), इत्यादि हैं।

(३) सर्जास या रेजिन (Resins)—यह अधिकतर शंकु वृक्षों (conifers) के स्तम्भों में पाया जाता है। यह विशेष नलिकाओं में होता है जिनको सर्जास नलिकाएं (resin ducts) कहते हैं। सर्जास पीले रंग के ठोस पदार्थ हैं जो पानी में अविलेय हैं लेकिन ऐलकोहल, तारपीन और स्पिरिट में विलेय हैं। जब ये दारु (काष्ठ) में उपस्थित रहते हैं तो उसकी शक्ति और स्थायित्व (durability) बढ़ जाती है। थोड़ा सा तारपीन भी इनके साथ मिला रहता है जो आसवन (distillation)

की क्रिया से अलग किया जा सकता है, और अवशेष (residue) भाग स्वच्छ सर्जास रह जाता है।

(४) गोंद (Gums)—गोंद विभिन्न प्रकार के पौधों में बनता है। वे ऐलकोहल में अविलेय हैं लेकिन पानी में विलेय हैं। पानी में डालने पर वे जल्दी फूल जाते हैं और एक श्यान (viscous) पुंज बनाते हैं। वे कई पुष्पी पादपों में पाये जाते हैं और नाना प्रकार के होते हैं। ऐकेशिया सेनीगल (*Acacia senegal*) से हमें व्यापार में काम आने वाला श्रेष्ठ गोंद, अरबी गोंद (gum-arabic) प्राप्त होता है। गोंद सर्जास के साथ मिश्रण के रूप में भी पाये जाते हैं।

(५) खनिज मणिभ (Mineral Crystals)—सामान्य प्रकार के मणिभ, सिलिका (silica), कैल्सियम कार्बोनेट और कैल्सियम ऑक्सेलेट (calcium oxalate) के होते हैं। वे या तो कोशिका गुहा या कोशिका भित्ति में पाये जाते हैं, इनमें से कैल्सियम ऑक्सेलेट के मणिभ अधिकांश होते हैं और विभिन्न पौधों में विस्तार रूप में बंटित होते हैं।

(१) सिलिका (Silica) कोशिका भित्ति में या तो पपड़ी (incrustation) के रूप में या इसमें न्याविष्ट (embedded) रहती है। घासों की पत्तियों और इक्विसीटम (*Equisetum*) में सिलिका अधिकतर पायी जाती है। गेहूं के भूसे में लगभग ७२%, राई (rye) के भूसे में ५०% और इक्विसीटम में ७१% सिलिका होती है।

(२) कैल्सियम कार्बोनेट (Calcium carbonate)—कुछ पौधों, विशेषकर रबर के पौधे की पत्तियों की बाह्यत्वचा (epidermis) में कैल्सियम कार्बोनेट सूक्ष्म मणिभों के पुंज के रूप में पाया जाता है। तल के पास आन्तरिक भित्ति जहां तहां वृन्त के रूप में अन्दर की ओर निकली रहती है और इस वृन्त के चारों ओर कैल्सियम कार्बोनेट के छोटे-छोटे मणिभों के पुंज जमा हो जाते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि अंगूर का गुच्छा वृन्त से लटका है। कैल्सियम कार्बोनेट का मणिभीय पुंज कोशिकाश्म (cystolith; चित्र ३७९) कहलाता है। कोशिकाश्म बरगद और ऐकैन्थेसी (*Acanthaceae*) कुल के कई पौधों की पत्तियों में पाये जाते हैं।
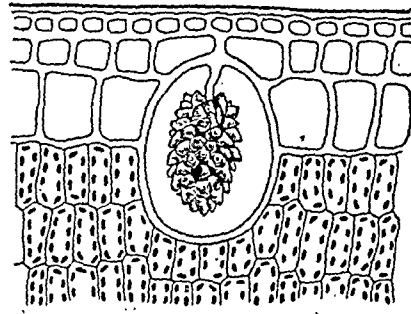
खनिज मणिभ। चित्र ३७९—रबर के पौधे की पत्ती में कोशिकाश्म।

(३) कैल्सियम ऑक्सेलेट (Calcium oxalate) नाना प्रकार के मणिभों

पाये जाने वाले दूध सदृश रस को आक्षीर कहते हैं (देखिये चित्र ४०८-९)। यह प्रायः एक पायस (emulsion) है जिसमें नाना प्रकार के रासायनिक पदार्थ रहते हैं। पोषक पदार्थों में शर्करा, मण्ड कण (डंडाकार या द्विमुण्डाकार), प्रोटीन और तैल प्रायः पाये जाते हैं, तथा वर्ज्य पदार्थों में गोंद, सर्जास, टैनिन, ऐलकालायड, रबर, इत्यादि साधारणतः मिलते हैं। आक्षीर में कुछ लवण, ऐन्ज़ाइम और प्रायः कुछ विषैले पदार्थ भी रहते हैं। आक्षीर का कार्य स्पष्ट नहीं है। सम्भवतः यह पोषाहार, घावों के भरने और पराश्रयी पौधों और जन्तुओं से रक्षा करने से सम्बन्धित है। आक्षीर प्रायः सफ़ेद व दूधिया, जैसे बरगद, पीपल, कटहल, मदार, कनेर, यूफ़ोर्बिया (*Euphorbia*) इत्यादि में, या कभी-कभी रंगीन (पीला, नारंगी या लाल), जैसे पोस्ता, भरभंडा इत्यादि में, या कभी-कभी पानी की तरह का, जैसे केला में, होता है।
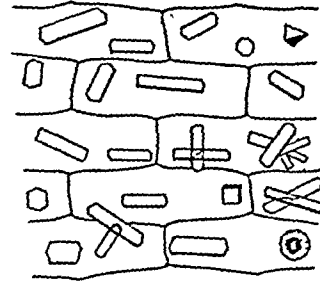
खनिज मणिभ।
चित्र ३८३—प्याज के शुष्क शल्क में नाना आकार के कैलसियम ऑक्सेलेट मणिभ।

(७) कार्बनिक अम्ल (Organic Acids)—जीवित कोशिकाएं अम्लीय प्रतिक्रिया करती हैं। इसका कारण यह है कि कोशिका रस में कार्बनिक अम्ल पाये जाते हैं। पौधों में नाना प्रकार के कार्बनिक अम्ल पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ इमली, अनन्नास और अंगूर में टार्टरिक अम्ल (tartaric acid), नीबू, नारंगी, चकोतरा, इत्यादि में सिट्रिक अम्ल (citric acid), खट्टी पत्ती (*Oxalis*) और जंगली पालक (*Rumex*) में ऑक्सैलिक अम्ल (oxalic acid), और चना और घावपत्ता (*Bryophyllum*) की पत्तियों और बहुत से कच्चे फलों में मैलिक अम्ल (malic acid) पाये जाते हैं। बहुत से फलों का, विशेषकर कच्चे फलों का, खट्टा स्वाद इन अम्लों की उपस्थिति के कारण है।

२. नाइट्रोजनीय (Nitrogenous)

ऐलकालायड (Alkaloids)—ये संकीर्ण नाइट्रोजनीय पदार्थ हैं और कुछ पौधों के बीजों व जड़ों में कार्बनिक अम्लों के साथ मिले हुये पाये जाते हैं। इनका स्वाद अत्यधिक कड़वा होता है और इनमें से कई अत्यन्त विषैले होते हैं। इनमें से कुछ द्रव हैं, लेकिन अधिकतर मणिभीय ठोस पदार्थ हैं, जो पानी में अविलेय हैं या बहुत कम विलेय हैं, लेकिन ऐलकोहल में आसानी से विलेय हैं। पौधों में पाये जाने वाले २०० से ऊपर ऐलकालायड हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन यहां किया जा सकता है। सिन्कोना (*Cinchona*)

में क्विनिन (quinine) और सिन्कोनिन (cinchonine); तम्बाकू में निकोटिन (nicotine), पोस्त में मॉरफीन (morphine), कॉफी और चाय में कैफ़ीन (caffeine), कुचला (nux-vomica) में स्ट्रिक्निन (strychnine), ऐट्रोपा बेलाडोना (*Atropa belladonna*) में ऐट्रोपीन (atropine), धतूरा में धतूरिन (daturine), मीठा विष (*Solanum dulcamara*) में सोलेनिन (solanine), आदि-आदि होते हैं।

नयी कोशिकाओं का निर्माण
(FORMATION OF NEW CELLS)

पौधे अपना जीवन एक कोशिका के रूप में आरम्भ करते है। यह विभाजित होकर दो कोशिकाएं बनाती हैं। ये दो फिर विभाजित होती हैं और यह प्रक्रम जारी रहता हैं जब तक असंख्य कोशिकाएं नही बन जाती। इन दशाओं में पहले नाभिक विभाजित होता हैं, और नाभिक विभाजन के पश्चात् कोशिका का विभाजन होता हैं। और भी अनेक विधियां हैं जिनके अनुसार पौधों में नई कोशिकाए बनती हैं।

(१) कायिक कोशिका विभाजन (Somatic Cell Division)—वह कोशिका विभाजन जिसके द्वारा पौधे के काय या शरीर का विकास होता है कायिक कोशिका विभाजन कहलाता हैं। इसके अन्तर्गत नाभिक का विभाजन, जिसको सम-विभाजन या माइटोसिस (mitosis or karyokinesis) या परोक्ष नाभिकीय विभाजन (indirect nuclear division) कहते हैं, और कोशिका द्रव्य (cytoplasm) का विभाजन, जिसको द्रव्य-परिवर्तन (cytokinesis) कहते हैं, सम्मिलित हैं।

सम-विभाजन (Mitosis)—इस प्रक्रम में नाभिक (चित्र ३८४ क) कई जटिल परिवर्तनों में अभिगमन करता हैं जिनका अध्ययन मूल अग्रक (root-tip) और स्तम्भ अग्रक (stem-tip) के विशेष प्रकार से स्थिर किये हुए (fixed) और अभिरंजित (stained) काटों (sections) द्वारा किया जा सकता हैं। इन परिवर्तनों में चार अवस्थाए हैं: पूर्वावस्था या प्रोफेज (prophase); मध्यावस्था या मेटाफेज (metaphase), पश्चावस्था या ऐनाफेज (anaphase) और अन्त्यावस्था या टेलोफेज (telophase)।
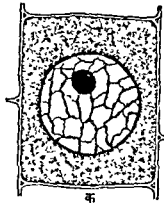
सम-विभाजन। चित्र ३८४ क—उपापचयी नाभिक।

पूर्वावस्था (Prophase)—पूर्वावस्था का सबसे प्रथम संकेत अनेक अलग-अलग

पतले वक्र सूत्रों का दृष्टिगोचर होना है। इन सूत्रों को गुणसूत्र या क्रोमोसोम (chromosome) कहते हैं (ख)। गुणसूत्र, विशेषकर लम्बे वाले, करीब-करीब सर्पिल रूप से कुण्डलित रहते हैं। प्रत्येक गुण सूत्र अनुदैर्ध्यतः (longitudinally) दोहरा होता है और उसमें दो सूत्र, जिनको अर्धसूत्र या क्रोमेटिड (chromatid) कहते हैं, पूरी लम्बाई में एक दूसरे से चिपके रहते हैं। गुणसूत्र नाभिकीय प्रोटीन के बने होते हैं। जैसे-जैसे पूर्वावस्था अग्रसर होती है तो गुणसूत्र अपने कुंडल ढीले कर देते हैं और थोड़ा बहुत मोटे हो जाते हैं (ग)। उनकी दोहरी या युग्म (double) प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। अर्धसूत्र (chromatids) की रूपरेखा थोड़ा सा अनियमित, रोम सदृश्य आकृति धारण करती है। लेकिन जल्दी ही वे अपनी रोम
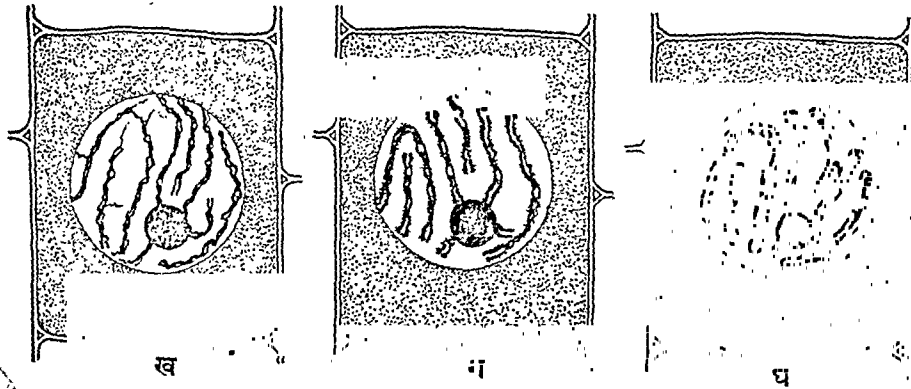
सम-विभाजन—चित्र ३८४ ख–घ—पूर्वावस्था।

सदृश्य रचना खो बैठते हैं और मोटे व चिकने हो जाते हैं। जैसे-जैसे पूर्वावस्था बढ़ती है प्रत्येक गुणसूत्र के चारों ओर एक गुणसूत्रीय (chromosomal) पदार्थ की छाद एकत्रित हो जाती है और अर्धसूत्र (chromatids) उसमें बहुत पास-पास कुंडलित हो जाते हैं (घ)। अच्छी तरह से स्थिर किये हुए गुणसूत्रों में कुछ बिना अभिरंजित दरारें या संकुंचन (constrictions) दिखाई देते हैं। ये संयोजन प्रदेश (attachment regions) हैं जिनको तर्कुयुज या सेन्ट्रोमियर (centromere) कहते हैं। अणु-नाभिक अपनी अभिरंजन शक्ति (staining power) खो बैठते हैं और पूर्ण रूप से लुप्त हो जाते हैं। तब नाभिक जटिल शृंखलाबद्ध परिवर्तनों से तुरन्त अगली अवस्था, अर्थात् मध्यावस्था या मेटाफेज (metaphase) में चला जाता है।

मध्यावस्था या मेटाफेज (Metaphase)—नाभिकीय झिल्ली विलुप्त हो जाती है और एक तर्कु सदृश्य (spindle-like) काय, जिसको नाभिकीय तर्कु (nuclear

spindle) कहते हैं, बन जाता है (ङ)। यह प्रायः द्विध्रुवी (bipolar) होता है लेकिन कुछ दशाओं में बहुध्रुवी या एकध्रुवी होता है। तर्कु के उद्गम (origin) की विधि बहुत भिन्न है। यह पूर्णतः नाभिकीय रस से बन सकता है, या, यह नाभिकीय झिल्ली के बाहर दो विपरीत ध्रुवी टोपियों के रूप में प्रतीत होता है, जैसे प्रायः मूल अग्रकों में। झिल्ली तब विलुप्त हो जाती है और तर्कु (spindle) नाभिकीय प्रदेश में बढ़ता है। गुणसूत्र तर्कु के भूमध्य समतल (equatorial plane) की ओर बढ़ते हैं और वहां एक दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग रहते हैं। इस अवस्था में अर्धसूत्र बहुत पास-पास आ जाते हैं। प्रत्येक अर्धसूत्र के जोड़े के सेन्ट्रोमियर से रेशे सदृश प्रसरण (extensions), जिनको सकर्षण रेशे (tractile fibres) कहते हैं, नाभिकीय तर्कु से आरपार विपरीत ध्रुवों की ओर बनते हैं। पौधे की प्रत्येक स्पीशीज विशेष के लिये गुणसूत्रों की संख्या निश्चित होती है और यह संख्या सामान्यतः सम (even) होती है, और $2n$ या $2x$ या द्विगुणित (diploid) से सम्बोधित की जाती है। गुणसूत्रों की संख्या भिन्न-भिन्न हो सकती है लेकिन इनकी सामान्य संख्या २४ है।

ङ
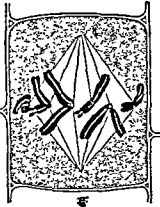
सम-विभाजन

चित्र ३८४ ङ—मध्यावस्था।

पश्चावस्था या एनाफेज (Anaphase)—मध्यावस्था के अन्त में प्रत्येक अर्धसूत्रों के जोडों के सेन्ट्रोमियर एक दूसरे को प्रतिकर्षण (repel) करते हुये प्रतीत होते हैं। वे एक दूसरे से पृथक होकर सकर्षण रेशों (tractile fibres) के रास्ते से होकर दो विपरीत ध्रुवों की ओर अग्रसर होते हैं (च)। अर्धसूत्रों की गति स्वतः प्रेरित (autonomous) होती है। इस गति के कारण का ठीक-ठीक पता नहीं चला है। एकल सूत्र तुरन्त एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। तर्कु भी दीर्घित हो सकता है और एकल सूत्रों के दोनों सेटों (sets) के पूर्ण पृथक्करण (separation) में सहायता करता है।

च

सम-विभाजन।

चित्र ३८४ च—पश्चावस्था।

अन्त्यावस्था या टेलोफेज (Telophase)—प्रत्येक ध्रुव में अर्धसूत्र (जो अब

गुणसूत्र माने जाते हैं) संहत समूह (close group) बनाते हैं (छ)। तर्कु की ध्रुवीय टोपियां विलुप्त हो जाती हैं और प्रत्येक गुणसूत्र के चारों ओर एक नाभिकीय झिल्ली बन जाती है (ज)। कुछ गुणसूत्रों के निश्चित बिन्दुओं पर अणु नाभिक फिर से दिखाई देने लगते हैं। तर्कु काय (spindle body) और आधार द्रव्य या
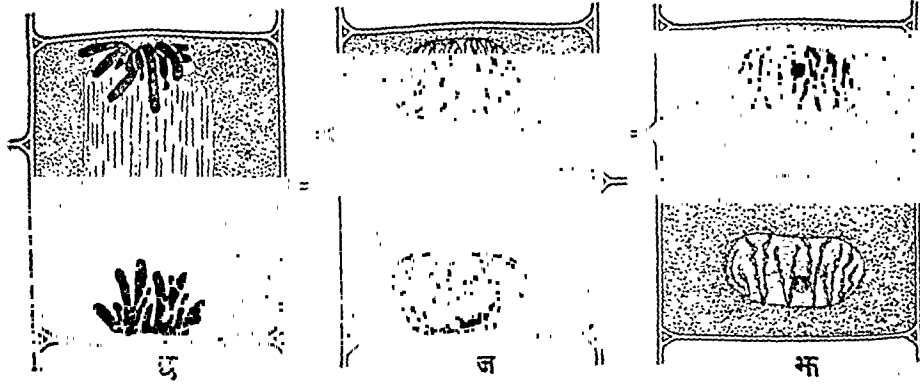
सम-विभाजन। चित्र ३८४ छ—झ—अन्त्यावस्था।

मेट्रिक्स (matrix) विलुप्त हो जाते हैं। गुणसूत्र दो नाभिकों में फिर से संघटित हो जाते हैं। नाभिकीय रस फिर से दृष्टिगोचर हो जाता है और प्रत्येक नाभिक आकार में बढ़ने लगता है (झ)। यह उपापचयी अवस्था (metabolic stage) में प्रवेश करता है या अगले विभाजन के लिये तैयारी करता है।

द्रव्य-परिवर्तन (Cytokinesis) या कोशिका-द्रव्य का विभाजन और कोशिका भित्ति का निर्माण—इधर कुछ समय से द्रव्य-परिवर्तन अत्यधिक अनुसंधान का विषय रहा है। कोशिका द्रव्य का विभाजन इन दो विधियों में से किसी एक से हो सकता है: मध्य-वृत्तीय प्रदेश (equatorial region) में नई कोशिका भित्ति के बनने, या सीताकरण (furrowing) अर्थात् कोशिका द्रव्य के विदरण (cleavage) से। पहली विधि को कोशिका-पट्टि (cell-plate) विधि कहते हैं और वर्धी विभाजन (vegetative division) में सामान्यतः होती है। यह प्रायः अन्त्यावस्था या टेलोफेज में आरम्भ होती है जब मध्य वृत्तीय प्रदेश में नये सैलूलोज़ के कण क्रमशः अवसादित (deposited) होते हैं और तुरन्त ही ये कण
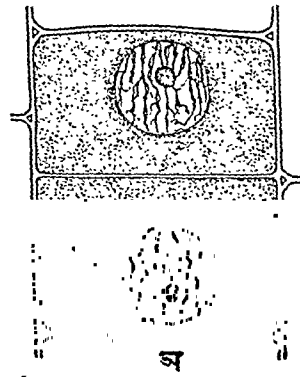
सम-विभाजन।
चित्र ३८४ ञ—द्रव्य-परिवर्तन।

एक दूसरे से सायुज्यित होकर एक कोमल झिल्ली बनाते हैं, और कोशिका-द्रव्य को दो नयी कोशिकाओं में विभाजित कर देते हैं (ञ)। सीताकरण (furrowing) की विधि में जो कभी-कभी पराग कोष में पराग कणों के निर्माण के समय दिखाई देती है, बाह्यद्रव्य (ectoplast) में संकुंचन (constriction) या सीताएं (furrows) दिखाई देती हैं और ये क्रमशः अन्दर की ओर बढ़ती हैं और कोशिका-द्रव्य को दो भागों में विभाजित कर देती हैं।

महत्व (Importance)—सूत्र संविभाजन या समसूत्रण का महत्व इस बात में है कि नाभिकीय विभाजन के इस जटिल विधि में गुणसूत्रों के अवयव दोनों नाभिकों में समान रूप में अनुभाजित (apportioned) होते हैं और इस लिये अनुजात नाभिकाएं (daughter nuclei) गुणात्मक रूप में (qualitatively) और मात्रात्मक रूप में (quantitatively) मातृ नाभिक के समान होती हैं। गुणसूत्र वंशानुगत लक्षणों के वाहक होते हैं और चूंकि दोनों अनुजात नाभिकों में गुणसूत्र पदार्थ (chromosomal substance) समान रूप से बंट जाते हैं इसलिये मूल नाभिक के सब गुण उनमें पाये जाते हैं।

(२) अर्ध सूत्रण या ह्रास विभाजन (Meiosis or Reduction Division;
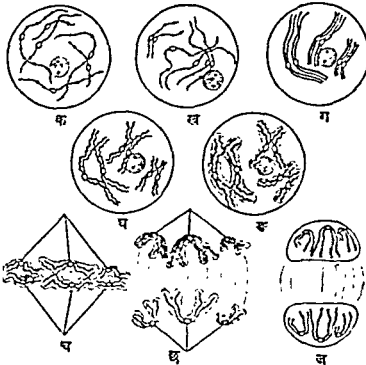
अर्धसूत्रण। चित्र ३८५ क—भाजन प्रथम। पूर्वावस्था—क, सूक्ष्मांगु; ख, युग्मांगु; ग, स्थूलांगु; घ, द्वयंगु; ङ, उप परिणाह; च, मध्यावस्था; छ, पश्चावस्था; ज, अन्त्यावस्था।

चित्र ३८५)—अर्ध सूत्रण, जिसका स्ट्रासबर्गर ने सर्वप्रथम १८८८ में अनुसन्धान किया, नाभिकीय विभाजन की एक जटिल विधि या प्रक्रम हैं, जिसमें इस विधि से बने हुये चार नाभिकों में गुणसूत्रों की संख्या आधी हो जाती है (n)। मान लिया कि मातृ नाभिक में १२ गुणसूत्र ($2n$) हैं तो प्रत्येक अनुजात (daughter) नाभिक में केवल ६ होंगे। सब जीवों में जिनमे लैंगिक जनन होता है उनके जीवन चक्र में कभी न कभी ह्रास विभाजन होता है। लैंगिक जनन का अर्थ नर युग्मक का मादा युग्मक के साथ सायुज्यन (fusion) और निषेचनज् या युग्मज (zygote) का बनना है, जिससे यथासमय सन्तान का विकास होता है। यदि युग्मकों में गुणसूत्रों की उतनी ही
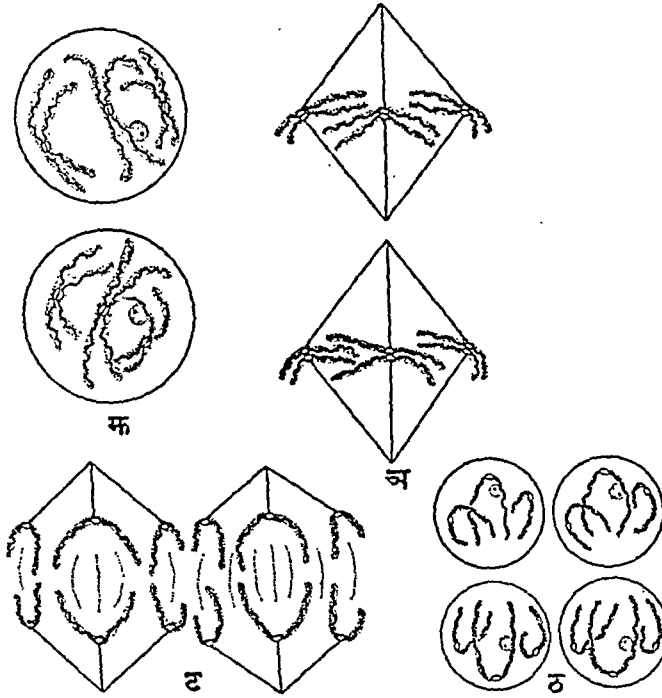
अर्धसूत्रण। चित्र ३८५ ख—भाजन द्वितीय।
झ, पूर्वावस्था; ञ, मध्यावस्था; ट, पश्चावस्था; ठ अन्त्यावस्था।

संख्या होती जितनी कि उनके जनक (parents) में तो सन्तान में गुणसूत्रों की संख्या अधिक हो जाती [illegible] की रचना भी अ[illegible]। इसके फलस्वरुप सन्तान नयी, विचित्र [illegible] (typ[illegible] हो जाती, क्योंकि गुणसूत्र वंशानुगत गुण [illegible] अर्ध सूत्रण [illegible] या पारगमन (tran[illegible] mission) [illegible] जीवों में [illegible]

लैंगिक जनन होता है युग्मक अगुणित (haploid) होते हैं (n) तथा निषेचन के पश्चात् जो निषेचनज (zygote) बने उसमें गुणसूत्रों की संख्या दुगुनी हो जाय ($n+n=2n$)। उच्च श्रेणी के पौधों में जिनमें पीढ़ी एकान्तरण (alternation of generations) होता है अर्ध सूत्रण उस समय होता है जब कि पौधा अपने जीवन-वृत्त में युग्मक-भू या गैमीटोफाइट (gametophyte) अवस्था में प्रवेश करता है, अर्थात् बीजाणु मातृ कोशिका (spore-mother cell) से बीजाणु (spore) के निर्माण में। इसके विपरीत निम्न श्रेणी के पौधों में अर्धसूत्रण निषेचन के तुरन्त पश्चात् या निषेचनज (zygote) के अंकुरण के समय होता है।

(३) असूत्रि संविभाजन (Amitosis) या प्रत्यक्ष नाभिकीय विभाजन (Direct Nuclear Division)—इस प्रकार के विभाजन में नाभिक कुछ हद तक दीर्घित (elongated) होता है और तब उसमें संकुंचन (constriction) होता है, अर्थात् यह बीच या एक किनारे पर सकरा होने लगता है, और अन्त में यह दो में विभाजित हो जाता है। इस प्रकार जो दो नाभिक बनते हैं वे प्रायः आकार में असमान होते हैं। प्रत्यक्ष नाभिकीय विभाजन के बाद कोशिका का विभाजन हो सकता है और नहीं भी हो सकता। निम्न श्रेणी के पौधों, जैसे शैवालों (algae) और कवकों (fungi) में असूत्रि संविभाजन सामान्यतः होता है। उच्च श्रेणी के पादपों में पुरानी कोशिकाओं में या जिनमें विह्रास (degeneration) के स्पष्ट चिह्न दिखाई देते हैं इस प्रकार का विभाजन होता पाया गया है।

(४) मुक्त-कोशिका-निर्माण (Free Cell Formation ; चित्र ३८६)—यह परोक्ष नाभिकीय विभाजन (indirect nuclear division) का रूपान्तर है। यह परोक्ष नाभिकीय विभाजन से इस बात में भिन्न है कि नाभिक के विभाजन के तुरन्त बाद ही कोशिका भित्ति का निर्माण नहीं होता। इस प्रकार में लगातार सम-विभाजन के परिणाम स्वरूप मातृ कोशिका के अन्दर बहुत से नाभिक बन जाते हैं। नाभिकों के विभाजन के रुक जाने के बाद, कोशिका द्रव्य हर नाभिक के चारों ओर एकत्रित हो जाता है और प्रत्येक नाभिक के चारों ओर एक कोशिका भित्ति का निर्माण होता है। कोशिका भित्तियों का निर्माण एक ओर से दूसरी ओर क्रमशः बढ़ता है और इसके फल स्वरूप नियमित ऊतक (कोशिकाओं का समूह)

चित्र ३८६—भ्रूणपोष के परिवर्धन में मुक्त कोशिका निर्माण।
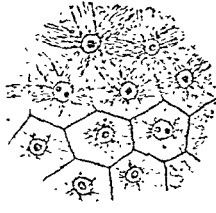
बनता है। भ्रूणपोष, अर्थात् बीज का खाद्य संग्रह ऊतक, इसी विधि से बनता है।

(५) समुद्भवन (Budding; चित्र ३८७) यह यीस्ट (yeast) नामक एक-कोशिक कवक में दिखाई देता है। इस पौधे में कोशिका अपने शरीर के ऊपर एक या अधिक सूक्ष्म उद्वर्ध (outgrowths) बनाती है। नाभिक प्रत्यक्ष विभाजन (असूत्रि संविभाजन) द्वारा विभाजित होकर दो में विपाटित (splits) हो जाता
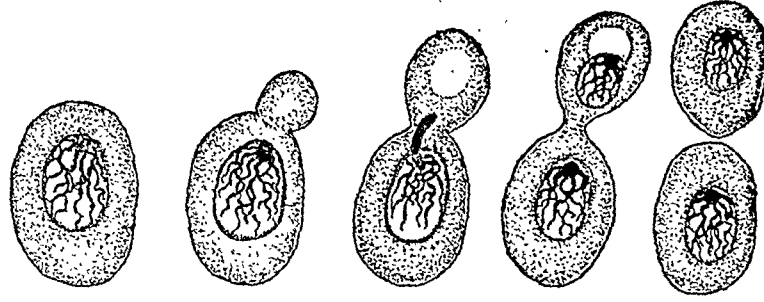
चित्र ३८७—यीस्ट में समुद्भवन।

है। इनमें से एक, एक उद्वर्ध में चला जाता है। उद्वर्ध आकार में बढ़ता है और अन्त में मातृ यीस्ट से अलग हो जाता है और नई स्वतन्त्र कोशिका (एक नया यीस्ट पादप) बन जाती है। कोशिका निर्माण के इस प्रक्रम को समुद्भवन (budding) कहते हैं। प्रायः समुद्भवन एक के बाद दूसरा जारी रहता है इसलिये कोशिकाओं की शृंखला (chain) या उपशृंखला (sub-chains) बन जाती है। अंततः सब कोशिकाएं एक दूसरे से अलग हो जाती हैं।

अध्याय २

ऊतक (THE TISSUE)

कोशिकाएं वृद्धि करती हैं और निश्चित कार्य करने के लिये विशिष्ट आकार ग्रहण करती हैं। एक ही आकार की कोशिकाएं एक-सा वृद्धि करती हैं और समान कार्य करने के लिये एक समूह में इकट्ठा हो जाती हैं। परिपक्व कोशिकाओं का प्रत्येक समूह एक ऊतक को जन्म देता है, अतः ऊतक (tissue) कोशिकाओं या वाहिनियों का एक ऐसा समूह है, जो रूप, कार्य और उद्गम (origin) में भी समान है। प्रधानतया ऊतक दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं: विभाजी (meristematic) और स्थायी (permanent)।

विभाजी ऊतक (Meristematic Tissues)—ये ऐसी कोशिकाओं की बनी होती हैं जो विभाजित होने वाली हों या जिनमें विभाजन की क्षमता हो। ये कोशिकाएं आकार में गोल, अंडाकार, या बहुभुजी होती हैं और इनमें अन्तराकोशिक अवकाश (intercellular spaces) नहीं होते। इनकी भित्तियां पतली तथा समांग (homogeneous) होती हैं ; इनमें जीवद्रव्य अधिक मात्रा में होता है और सक्रिय होता है तथा इनमें बड़े नाभिक होते हैं। इनमें रसधानी छोटी होती है या होती ही नहीं। उद्गम की दृष्टि से विभज्याएं (meristems) प्राथमिक (primary) हो सकते हैं या परवर्ती (secondary)।

प्राथमिक विभज्या (primary meristem) पौधे के किसी अंग के विकास की आरम्भिक अवस्था से ही रहता है, और अपनी स्थिति के अनुसार यह अग्रस्थ (terminal), पार्श्व (lateral) या मध्यनिविष्ट या आन्तर्निविष्ट (intercalary) हो सकता है। (क) अग्रस्थ विभज्या स्तम्भ व मूल के अग्रक या चोटी (apex) पर स्थित रहता है। (ख) आन्तर्निविष्ट विभज्या जब उपस्थित रहता है तो स्थायी ऊतकों के पुंजों के बीच में स्थित रहता है। यह पत्ती के आधार पर हो सकता है, जैसे चीड़ (pine) में या पर्व के आधार पर, जैसे कुछ घासों, इक्विसीटम (*Equisetum*) इत्यादि में, या कभी-कभी गांठ (node) के नीचे, जैसे पोदीना (mint) में। यह अग्रस्थ विभज्या का पृथक्कृत (detached) भाग है जो अंग की वृद्धि के कारण उससे अलग हो गया है। अग्रस्थ विभज्या और आन्तर्निविष्ट विभज्या भी (जब उपस्थित रहते हैं) प्राथमिक स्थाई ऊतक बनाते हैं और यह पौधों के शरीर की लम्बाई में वृद्धि के लिये उत्तरदायी हैं। (ग) पार्श्व विभज्या, उदाहरणार्थ स्तम्भ की एधा, पौधों के पक्ष या पार्श्व (side) में स्थित रहता है। यह मुख्यतया एक तल में, त्रिज्य (radial) दिशा में विभाजित होता है, और परवर्ती स्थायी ऊतकों को जन्म देता है, तथा पौधों के शरीर की मोटाई में वृद्धि के लिये उत्तरदायी है।

परवर्ती विभज्या (secondary meristem) बाद में पौधे के किसी अंग के विकास की निश्चित अवस्था में दृष्टिगोचर होता है। यह हमेशा पार्श्विक होता है और स्तम्भ व मूल के पार्श्व या पक्ष (side) में स्थित होता है। यह भी देखा जाता है कि कुछ प्राथमिक स्थायी ऊतक भी विभाजी हो जाते हैं, अर्थात् वे विभाजन की शक्ति ग्रहण कर लेते हैं, और उनको परवर्ती विभज्या कहते हैं, उदाहरणार्थ मूल की एधा (cambium), स्तम्भ की अन्तरगुंछक एधा (interfascicular cambium) और स्तम्भ की काग एधा (cork cambium)। परवर्ती विभज्या हमेशा पार्श्विक होता है। सब पार्श्विक विभज्याएं (प्राथमिक और परवर्ती) परवर्ती स्थाई ऊतकों को जन्म देते हैं, और पौधों के शरीर की मोटाई में वृद्धि के लिये उत्तरदायी हैं।

स्थायी ऊतक (Permanent Tissues)—ये उन कोशिकाओं के वने होते हैं जिन्होंने विभाजन की क्षमता खो दी हो, और जिनका रूप व आकार निश्चित हो गया हो। वे जीवित या मृत और तनु-भित्तीय (thin-walled) या स्थूल-भित्तीय (thick-walled) हो सकते हैं। स्थाई ऊतक विभज्याओं की कोशिकाओं के भेदीकरण (differentiation) से वनते हैं और **प्राथमिक या परवर्ती** हो सकते हैं। प्राथमिक स्थायी ऊतक वर्धन प्रदेश के अग्रस्थ विभज्या से वनते हैं और परवर्ती स्थायी ऊतक पार्श्व विभज्या से।

ऊतक
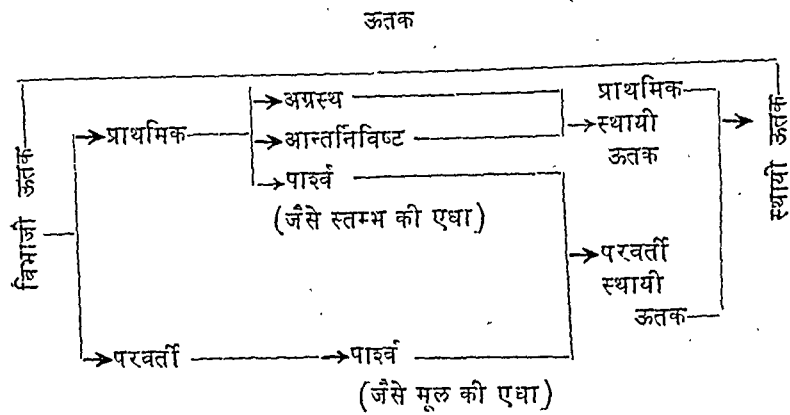
स्थायी ऊतकों का वर्गीकरण
(CLASSIFICATION OF PERMANENT TISSUES)

प्रारम्भिक अवस्था में कोशिकाओं की संरचना लगभग समान होती है, लेकिन जैसे-जैसे श्रम-विभाजन (division of labour) वढ़ता जाता है वे क्रमशः भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण करने लगती हैं और **स्थायी ऊतकों** को जन्म देती हैं। इनका साधारण (simple) और जटिल या संकीर्ण (complex) में वर्गीकरण किया जा सकता है। साधारण ऊतक एक प्रकार की कोशिकाओं का वना होता है जो एक समांग (homogeneous) पुंज वनाते हैं; और जटिल या संकीर्ण ऊतक एक से अधिक प्रकार की कोशिकाओं का वना होता है, जो मिलकर एकक (unit) के समान कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त एक और प्रकार का ऊतक होता है जिसको स्रावक या स्रावी ऊतक (secretory tissues) कहते हैं।

१. साधारण ऊतक

(१) मृदूतक या पैरेंकाइमा (Parenchyma; चित्र ३८८)—मृदूतक उन
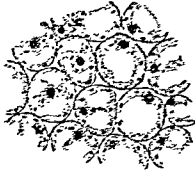
चित्र ३८८

चित्र ३८९ चित्र ३९०

चित्र ३८८—मृदूतक। चित्र ३८९—स्थूलकोणोतक अनुप्रस्थ काट में।
चित्र ३९०—स्थूलकोणोतक अनुदैर्घ्य काट में।
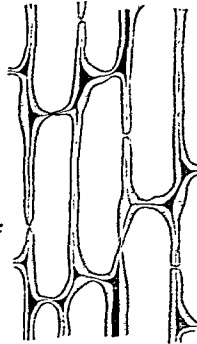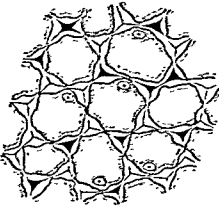
कोशिकाओं का समूह है जो लगभग समव्यासीय (isodiametric) होते हैं, अर्थात् सब पक्षों में बराबर फैले रहते हैं। प्रारूपिक मृदूतकीय कोशिकाएं अंडाकार, गोलाकार या बहुभुजी होती हैं। इनकी भित्तियां पतली होती हैं औ सेलुलोज की बनी होती हैं; वे प्रायः जीवित होती हैं। मृदूतकीय ऊतक पौधों के सब कोमल भागों में सर्वत्र पाया जाता है। प्रधानतः इसका कार्य खाद्य पदार्थ का संग्रह करना है। जब मृदूतकीय ऊतक में हरित कणक पाये जाते हैं तो वह हरित ऊतक (chlorenchyma) कहलाता है। इसका कार्य खाद्य पदार्थ का निर्माण करना है। बहुत जलीय पौधों (aquatic plants) और कैना (*Canna*) और केला के पर्णवृन्त में एक विशेष प्रकार का मृदूतक विकसित होता है। इस प्रकार की प्रत्येक कोशिका

की भित्ति कई जगहों में इस प्रकार से बाहर की ओर निकली रहती है जैसे तारों से विकीर्ण रश्मियां होती हैं। इसलिये ये साधारण रूप में तारावत् (star-like) होती हैं। इन कोशिकाओं के बीच में कई वायु विवर (air cavities) रहते हैं, जहां वायु संचित रहती है। इस प्रकार का ऊतक प्रायः वायूतक (aerenchyma; देखिये चित्र ३९१-९२) कहलाता है।

(२) स्थूलकोणोतक (Collenchyma; चित्र ३८९-९०)—इस ऊतक में लगभग दीर्घित मृदूतकीय कोशिकाएं होती हैं जिनके अन्त भाग तिर्यक (तिरछे), थोड़े गोल या शुण्डाकार (tapering) होते हैं। कोशिकाएं कोनों पर अन्तराकोशिक अवकाशों (intercellular spaces) के सामने बहुत अधिक स्थूलित होती
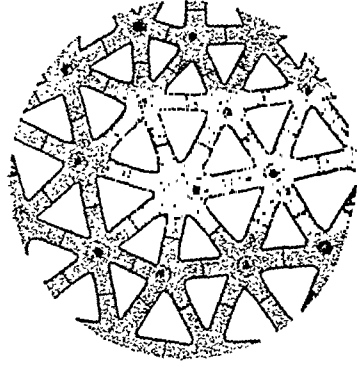
चित्र ३९१ चित्र ३९२

चित्र ३९१—केला के पर्णवृन्त में वायूतक। चित्र ३९२—कैना के पर्णवृन्त में वायूतक।
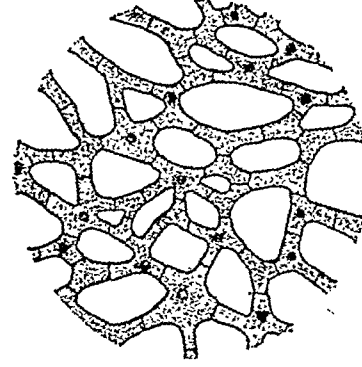
हैं। वे स्तम्भ के अनुप्रस्थ काट (transverse section) में गोलाकार, अंडाकार या बहुभुजी दिखाई देते हैं। इनमें स्थूलन, पैक्टिन से व्याप्त सैलूलोज के रोपण के कारण होता है। यद्यपि ये कोशिकाएं स्थूलित होती हैं, लेकिन कभी लिग्निभूत नहीं होती। इनकी भित्तियों में कहीं-कहीं पर गर्त होते हैं। स्थूलकोणोतक शाकीय द्विबीजपत्री पौधों, उदाहरणार्थ सूर्यमुखी, लौकी, इत्यादि में बाह्यत्वचा या एपिडर्मिस (epidermis) के नीचे पाया जाता है। वहां यह कई स्तरों में रहता है और कूटकों (ridges) में विशेष रूप से विकसित रहता है। कुछ विशेष उदाहरणों को छोड़कर यह मूल और एकबीजपत्री पौधों में नहीं पाया जाता है। इसकी कोशिकाएं जीवित होती हैं और इनमें प्रायः कुछ हरिम कणक भी पाये जाते हैं। नम्य (flexible) प्रकृति के होने के कारण स्थूलकोणोतक वर्धन अंगों को तनाव सामर्थ्य (tensile strength) प्रदान करते हैं, और वितान्य (extensible)

तक हो सकते हैं। ऐसी लम्बी तथा स्थूल-भित्तीय कोशिकाएं व्यापारिक महत्व के अति उत्तम बुनने योग्य रेशे बनाती हैं। जूट (jute), नारियल,
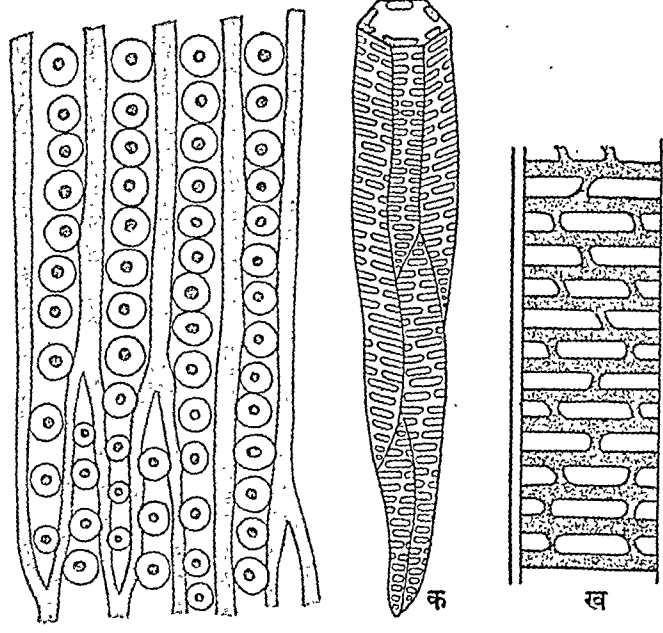
चित्र ३९५ चित्र ३९६

वाहिनिकियां। चित्र ३९५—चीड़ के स्तम्भ की वाहिनिकियां परिवेशित गर्त सहित (त्रिज्यक अनुदैर्घ्य काट में)। चित्र ३९६—क, फर्न की सोपानवत् वाहिनिकी; ख, वाहिनिकी की भित्ति का एक भाग दीर्घित।

सनई या क्रोटालेरिया जन्सिआ (*Crotalaria juncea*), अम्वाड़ी या हिविस्कस कैनेविनस (*Hibiscus cannabinus*), ऐगेवी सिसलाना (*Agave sisalana*), लाल अम्वाड़ी या हिविस्कस सवदरिफा (*Hibiscus sabdariffa*), कुछ अन्य सामान्य पौधे हैं जिनसे लम्बे रेशे प्राप्त होते हैं।

कभी-कभी पौधे के शरीर में इधर-उधर विशेष प्रकार के दृढ़ोतक विकसित होते हैं। इनको अष्टि (stone) या दृढ़ कोशिकाएं (sclerotic cells or sclereids; चित्र ३९४) कहते हैं। यद्यपि ये कोशिकाएं स्थूल-भित्तीय और तीव्र लिग्निभूत होती हैं, ये लम्बी तथा नुकीली नहीं होती, किन्तु अधिकतर समव्यासीय या आकार में अनियमित या थोड़ा दीर्घित होती हैं। वे मृत होती हैं और इनकी कोशिका गुहा बहुत संकरी होती है, तथा इनकी भित्तियों में बहुत से साधारण गर्त होते हैं जो शाखी या अशाखी होते हैं। अष्टि कोशिकाएं या तो अवद्ध (loosely) विन्यस्त
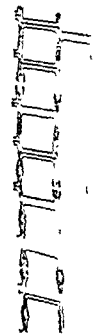
रहती है या सघन इकट्ठी रहती है, और कठोर बीजों, दृढ़ फल और अष्टिल फलों में पायी जाती है। वे जिन भागों में पायी जाती है उनको दृढ़ता और कठोरता प्रदान करती है। स्तम्भ, पत्ती तथा फलों में मृदूतक के पुंज में अष्टि कोशिकाओं के समूह पाये जाते हैं। नासपाती का मासल भाग अष्टि की उपस्थिति के कारण किरकिरा होता है।

२. संकुल या सकीर्ण ऊतक (Complex Tissues)

(१) दारु या जाइलम (Xylem)—दारु या काष्ठ (wood) एक संवाहन ऊतक (conducting tissue) है और नाना प्रकार के अवयवों का बना होता है, उदाहरणार्थ (क) दारु वाहिनिकियाँ (tracheids); (ख) दारु वाहिनिया (vessels or tracheae); (ग) काष्ठ तन्तु (wood fibres); (घ) दारु मृदूतक (xylem parenchyma)। सम्पूर्ण जाइलम का कार्य जल तथा खनिज लवणों को जड से पत्तियों तक सवाहन करना है और पौधों के शरीर को यांत्रिक सामर्थ्य (mechanical strength) प्रदान करना है।

(क) दारु वाहिनिकियाँ (Tracheids)—ये दीर्घित, नलिका सदृश्य कोशिकाए हैं जिनमे कठोर, स्थूल और लिग्निभूत भित्ति और बड़ी कोशिका गुहा होती है। इनके किनारे शुण्डाकार (tapering) होते हैं। ये या तो गोल और छेनी-सदृश्य या कुछ कम दशाओ में नुकीले होते हैं। ये मृत, खाली
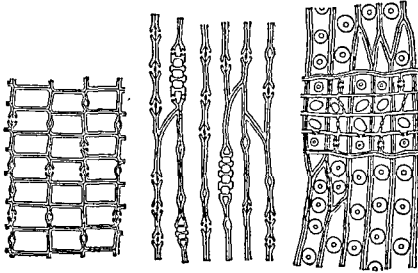
चित्र ३९७ चित्र ३९८ चित्र ३९९

परिवेशित गर्तों युक्त दारु वाहिनिकियाँ। चित्र ३९७–चीड का स्तम्भ अनुप्रस्थ काट में। चित्र ३९८–चीड़ का स्तम्भ स्पर्शीय (अनुदैर्घ्य) काट में। चित्र ३९९–चीड़ का स्तम्भ अरीय (अनुदैर्घ्य) काट में।

कोशिकाएं हैं जिनकी भित्तियों में एक या अधिक परिवेशित गर्तों की पंक्तियां होती हैं। दारु वाहिनिकियाँ वलयाकार, सर्पिल, सोपानवत्, या गर्ती हो सकती हैं। अनुप्रस्थ काट में वे प्रायः कोणीय या तो बहुभुजी या आयताकार होती हैं। पर्णांगों (ferns) और जिम्नोस्पर्म्स के दारु में केवल दारु वाहिनिकियाँ (और वाहिनियां नहीं) पायी जाती हैं, लेकिन ऐंजियोस्पर्म्स में वे दारु वाहिनियों के साथ मिली रहती हैं। उनकी भित्तियां लिग्निभूत और कठोर होने के कारण दारु वाहिनिकियां पौधों के शरीर को सामर्थ्य (strength) देती हैं लेकिन उनका मुख्य कार्य जड़ से पत्तियों तक जल का संवाहन करना है।

(ख) दारु वाहिनियाँ (Vessels or Tracheae)—दारु वाहिनियां बेलनाकार, नलिका सदृश संरचनाएं हैं। वे एक के ऊपर एक रखी हुई कोशिकाओं की पंक्तियों से बनती हैं, जिनकी अनुप्रस्थ विभाजक भित्तियां (transverse partition walls) अवशोषित हो जाती हैं। अतः दारु वाहिनी कोशिकाओं की नल सदृश पंक्ति है। जैसे एक जल नल (water pipe) की लाइन कई नलों के टुकड़ों को जोड़कर बनती है वैसे ही ये भी बनती हैं। उनकी भित्तियाँ स्थूलित होती हैं और स्थूलन के अनुसार उनके नाम रखे जाते हैं, जैसे **वलयाकार** (annular), **सर्पिल** (spiral), **सोपानवत्** (scalariform), **जालिकावत्** (reticulate), या **गर्ती** (pitted)। वाहिनियों के साथ प्रायः कुछ 'दारु वाहिनिकियां मिली रहती हैं। वाहिनी बंडल (vascular bundle) के दारु के मुख्य ऊतक दारु वाहिनिकियां और वाहिनियां हैं। उनका मुख्य
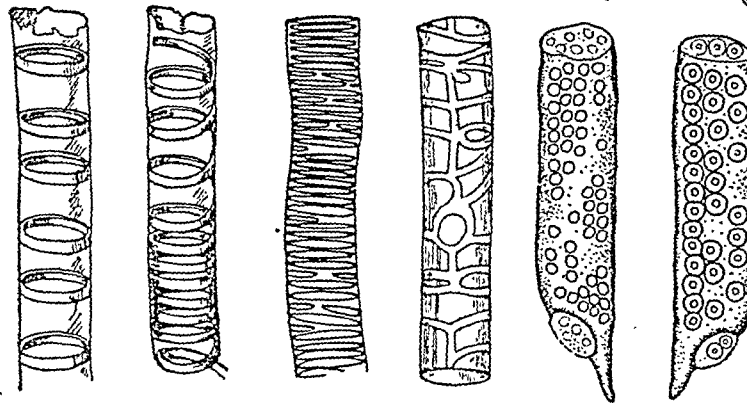
चित्र ४०० चित्र ४०१ चित्र ४०२ चित्र ४०३ चित्र ४०४ चित्र ४०५

दारु वाहिनियों के प्रकार। चित्र ४००—वलयाकार। चित्र ४०१—सर्पिल। चित्र ४०२—सोपानवत्। चित्र ४०३—जालिकावत्। चित्र ४०४—एक दारु वाहिनी साधारण गर्तों सहित। चित्र ४०५—एक दारु वाहिनी परिवेशित गर्तों सहित।

कार्य जड़ से पत्तियों तक जल और खनिज लवणों को संवाहन करना है। वे मृत, स्थूल-भित्ति वाली (thick-walled), और लिग्निभूत होती है, और इसलिये पौधों के शरीर को सामर्थ्य प्रदान करने का यान्त्रिक कार्य भी करती है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि दारु वाहिनिकी एक नियमित कोशिका है जिसकी पार्श्व और अनुप्रस्थ भित्तियां अखंड या सम्पूर्ण होती हैं, लेकिन वाहिनी में अनुप्रस्थ भित्तिया विलीन रहती हैं और इसलिये यह आकार में नलिका सदृश होती है। दोनों स्थूल भित्ति वाली और लिग्निभूत होती हैं, और दोनों वलयाकार, सर्पिल, सोपानवत्, जालिकावत् और गर्ती भी हो सकती हैं।

(ग) काष्ठ तन्तु (Wood Fibres)—दारु के साथ जो दृढ़ोतक कोशिकाएं पायी जाती हैं उनको काष्ठ तन्तु कहते हैं। वे काष्ठी द्विबीजपत्री पौधों में बहुतायत से पायी जाती हैं और दारु की यान्त्रिक सामर्थ्य में सहायता करती हैं।

(घ) काष्ठ या दारु मृदूतक (Wood Parenchyma)—दारु में मृदूतक कोशिकाएं प्रायः पायी जाती हैं, और दारु मृदूतक कहलाती हैं। ये कोशिकाएं जीवित होती हैं और प्रायः पतली भित्ति वाली होती हैं। काष्ठ मृदूतक, सीधे या परोक्ष रूप से (indirectly), जल को वाहिनियों तथा दारु वाहिनिकियों में ऊपर की ओर संवाहन करने में सहायता करती हैं। यह खाद्य संग्रह में भी सहायता करती हैं।

(२) फ्लोएम (Phloem)–फ्लोएम या बास्ट (Phloem or bast) दूसरा संवाही ऊतक है और निम्नलिखित अवयवों का बना होता है: (क) चालनी नलिकाएं (sieve-tubes), (ख) सहजात कोशिकाए (companion cells), (ग) फ्लोएम मृदूतक (phloem parenchyma) और (घ) बास्ट रेशे (bast fibres) (दुर्लभ)। फ्लोएम सम्पूर्ण रूप से निर्मित खाद्य पदार्थों को पत्ती से संग्रह अंगों और वर्धन प्रदेशों में संवाहन करने में सहायता करता है।

चालनी-नलिका

सहकोशिका
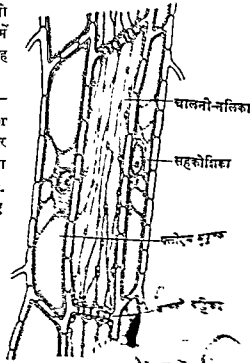
चित्र ४०६—

(क) **चालनी नलिकाएं** (Sieve-tubes)—चालनी नलिकाएं पतली नलिका सदृश संरचनाएं हैं और दीर्घित कोशिकाओं की बनी होती हैं, जो एक के ऊपर एक रखी होती हैं। उनकी भित्तियां पतली तथा सैलूलोज की बनी होती हैं। इनकी अनुप्रस्थ विभाजन भित्ति अनेक छिद्रों से छिद्रित (peforated) होती हैं। इस प्रकार अनुप्रस्थ भित्ति बहुत कुछ चालनी के समान दिखाई देती है और **चालनी पट्टिका** या सीव प्लेट (sieve-plate) कहलाती है। चालनी पट्टिका कभी-कभी पार्श्व (अनुदैर्घ्य) भित्ति में भी बन सकती है। कुछ दशाओं में चालनी पट्टिका अनुप्रस्थ नहीं होती लेकिन तिरछी झुकी होती है और तब इसके भिन्न-भिन्न भाग छिद्रिल रहते हैं। इस प्रकार की चालनी पट्टिका **संयुक्त पट्टिका** (compound plate) कहलाती है। वर्धन ऋतु के अन्त में चालनी पट्टिका एक रंगहीन, चमकदार पदार्थ के स्तर से ढक जाती है। यह स्तर एक गद्दी के समान होता है, जिसको **कैलस गद्दी** (callus pad) या **कैलस** (callus) कहते हैं। यह एक प्रकार के कार्बोहाइड्रेट का बना होता है, जिसको पस्स या कैलोस (callose) कहते हैं। शीत ऋतु में कैलस छिद्रों को पूर्णतः बंद कर देता है, लेकिन वसन्त में, जब सक्रिय ऋतु आरम्भ होती है, तो कैलस विलीन हो जाता है। पुरानी चालनी नलिकाओं में कैलस स्थाई रूप से जमा रहता है। चालनी नलिका में नाभिक नहीं पाया जाता है, लेकिन इसमें कोशिका द्रव्य की एक अस्तर स्तर (lining layer) होती है, जो छिद्रों द्वारा सतत (continuous) रहती है। चालनी नलिकाएं निर्मित खाद्य पदार्थों—प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट—का पत्तियों से पौधों के संग्रह अंगों तथा वर्धन प्रदेशों में अनुदैर्घ्य संवाहन के काम आती हैं। चालनी पट्टिका के दोनों ओर खाद्य पदार्थ की एक गहरी परत पायी जाती है और उसमें एक संकरा मध्य भाग होता है।
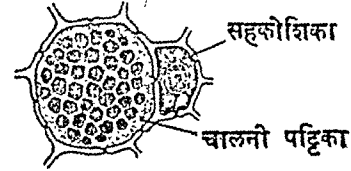
चित्र ४०७—चालनी नलिका अनुप्रस्थ काट में।

(ख) **सहजात कोशिकाएं** (Companion Cells)—प्रत्येक चालनी नलिका से सम्बन्धित और उससे छिद्रों द्वारा मिली हुई एक पतली भित्ति वाली, दीर्घित कोशिका होती है, जिसको **सहजात कोशिका** (companion cell) कहते हैं। यह जीवित होती है और इसके अन्दर जीवद्रव्य और नाभिक होता है। सहजात कोशिका केवल ऐन्जियोस्पर्मस में पायी जाती है।

(ग) **फ्लोएम मृदूतक** (Phloem Parenchyma)—फ्लोएम में कुछ मृदूतक कोशिकाएं होती हैं। ये सजीव होती हैं और आकार में प्रायः बेलनाकार होती हैं। बहुत एकबीजपत्री पौधों में फ्लोएम मृदूतक नहीं पाया जाता।

(घ) बास्ट रेशे (Bast Fibres)—फ्लोएम या बास्ट में पायी जाने वाली दृढ़ोतक कोशिकाएं बास्ट रेशे कहलाते हैं। ये प्राथमिक या पूर्ववर्ती फ्लोएम में अनुपस्थित रहती हैं, लेकिन परवर्ती फ्लोएम में अधिकतर पायी जाती है।

३. स्रावक ऊतक (Secretory Tissues)

(१) आक्षीरी ऊतक (Laticiferous Tissues)—इसमें पतली भित्ति वाली, बहुत अधिक दीर्घित और बहुत शाखीय नलिकाएं होती हैं (चित्र ४०८-९) जिनके
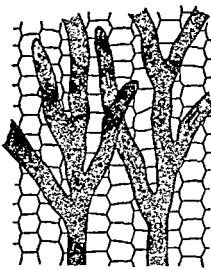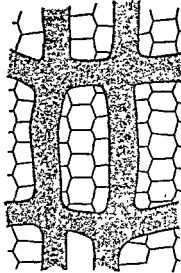
चित्र ४०८ चित्र ४०९
आक्षीरी ऊतक। चित्र ४०८—आक्षीरी कोशिकाएं।
चित्र ४०९—आक्षीरी वाहिनियां।

अन्दर दूध सदृश रस भरा रहता है, जिसको आक्षीर या लेटेक्स (latex) कहते हैं (देखिए पृष्ठ २२५)। आक्षीरी नलिकाएं दो प्रकार की होती हैं : आक्षीरी वाहिनियां (latex vessels) और आक्षीरी कोशिकाएं (latex cells)। इनमें अनेक नाभिक होते हैं जो कोशिका भित्ति के किनारे-किनारे जीवद्रव्य के पतले स्तर में न्याविष्ट रहते हैं। भित्ति प्रायः पतली होती है और सैलूलोज की बनी होती है। वे मृदूतक कोशिकाओं के पुंज में अनियमित रूप से वटित रहते हैं। आक्षीरी नलिकाओं का कार्य ठीक तरह से ज्ञात नहीं है। वे खाद्य संग्रह अगों या वर्ज्य पदार्थों के भंडार (reservoir) का कार्य कर सकती हैं। वे स्थानांतरणीय ऊतकों (translocatory tissues) का कार्य भी कर सकती है।

आक्षीरी वाहिनियां (Latex Vessels; चित्र ४०९)—ये बहुत सी कोशिकाओं

के सायुज्यन (fusion) के फल स्वरूप वनती हैं। वे उन दीर्घित विभाजी कोशिकाओं की पंक्ति से वनती हैं जिनकी विभाजन भित्तियां दारु वाहिनियों (wood vessels) के समान जल्दी ही विलीन हो जाती हैं। ये लगभग समान्तर नलिकाओं के जैसे वृद्धि करती हैं, और पौधे के परिपक्व भाग में उनकी शाखाओं के सायुज्यन के फल स्वरूप वे एक दूसरे से शाखाजालित (anastomose) होती हैं और एक जाल सा वनाती हैं। आक्षीरी वाहिनियां कुछ कम्पोज़िटी (*Compositae*) कुल के पौधों, जैसे सौंकस (*Sonchus*) और पैपेवरेसी (*Papaveraceae*) कुल के पौधों, जैसे पोस्त, सत्यानाशी, वाग की पोस्त में पायी जाती हैं।

आक्षीरी कोशिकाएं (Latex Cells; चित्र ४०८)—यद्यपि ये आक्षीरी वाहिनियों के समान अधिक शाखीय होती हैं लेकिन ये वास्तव में एकल या स्वतन्त्र इकाइयां हैं। वे सूक्ष्म संरचनाओं के रूप में उत्पन्न होती हैं और पौधे की वृद्धि के साथ-साथ दीर्घित व शाखीय हो जाती हैं। ये पौधों के ऊतकों में सव दिशाओं में शाखित होती हैं, लेकिन आपस में सायुज्यित होकर जाल नहीं वनाती। वे अखंड कोशिक (coenocytic) प्रकृति की होती हैं। आक्षीर कोशिकाएं मदार (*Calotropis*), यूफ़ोर्विया (*Euphorbia*), कनेर (*Nerium*), पीला कनेर (*Thevetia*), सदावहार या विंका (*Vinca*), फाइकस (उदाहरणार्थ वरगद, अंजीर, पीपल), इत्यादि में पायी जाती हैं।

(२) ग्रन्थिल ऊतक (Glandular Tissue)—यह ऊतक ग्रन्थियों का वना होता है जो विशेष संरचनाएं हैं जिनमें स्रावक (secretory) या उत्सर्जक (excretory) पदार्थ रहते हैं। ग्रन्थियों में एकल (single) एकाकी (isolated) कोशिकाएं या कोशिकाओं के समूह केन्द्रीय विवर सहित या विवर रहित रहती
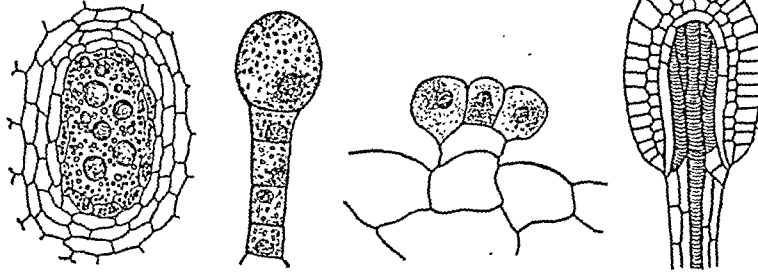
चित्र ४१० चित्र ४११ चित्र ४१२ चित्र ४१३

ग्रन्थियाँ। चित्र ४१०—संतरा के छिलके की एक तैल ग्रन्थि। चित्र ४११—पुनर्नवा के फल का एक ग्रन्थिल रोम। चित्र ४१२—वटरवर्ट की एक पाचक ग्रन्थि। चित्र ४१३—ड्रोसेरा की एक पाचक ग्रन्थि।

हैं। वे नाना प्रकार की होती हैं और त्वचा स्तर (या वाह्यत्वचा) के ऊपर वाह्य ग्रन्थियों के रूप में या पौधों के शरीर के भीतर अन्य ऊतकों में आन्तरिक ग्रन्थियों के रूप में व्याविष्ट रहते हैं। वे मृदूतकीय प्रकृति के होते हैं और इनमें अधिक मात्रा में जीवद्रव्य होता है तथा एक बड़ा नाभिक भी होता है। इनमें नाना प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं और वे विभिन्न कार्य करते हैं। जैसे ऊपर कहा जा चुका है ग्रन्थियां वाह्य या आन्तरिक हो सकती हैं।

आन्तरिक ग्रन्थियां (Internal Glands) में निम्नलिखित सम्मिलित हैं: (१) तैल ग्रन्थियां (oil glands; चित्र ४१०), जो गंध तेल स्रावित करती हैं, जैसे संतरा, नीबू, चकोतरा, इत्यादि के फलों और पत्तियों में; (२) श्लेष्म स्रावक ग्रन्थिया (mucilage-secreting glands), जैसे पान की पत्ती में; (३) ग्रन्थियां जो गोंद, सर्जास और टैनिन इत्यादि स्रावित करती हैं; (४) पाचक ग्रन्थियां, जो ऐन्जाइम (enzyme) या पाचक कारक स्रावित करती हैं; और (५) जल स्रावक ग्रन्थियां (water-secreting glands) जिनको जलोत्सर्जक (hydathodes) कहते हैं।

वाह्य ग्रन्थियां (External Glands)—ये उद्वर्ध (outgrowths) के रूप में निकल आती हैं और इनकी प्रकृति छोटे रोमों के समान है जिनके सिरे पर ग्रन्थियां रहती हैं। वाह्य ग्रन्थियां निम्नलिखित हैं: (१) जल स्रावक रोम या ग्रन्थियां (water-secreting hairs or glands), जिनको जलोत्सर्जक (hydathodes) भी कहते हैं; (२) ग्रन्थिल रोम (चित्र ४११), जो गोंद सदृश पदार्थ स्रावित करते हैं, जैसे तम्बाकू, चित्रक या प्लम्बैगो (*Plumbago*), पुनर्नवा या वोरहैविया (*Boerhaavia*) में; (३) ग्रन्थिल रोम, जो क्षोभकर (irritating), विषैले पदार्थ स्रावित करते हैं, जैसे बिच्छू (nettles; चित्र १८०) में; (४) मकरन्द कोष (nectaries), जैसे बहुत से फूलों में और, (५) ऐन्जाइम स्रावक ग्रन्थिया (enzyme secreting glands; चित्र ४१२–४१३), जैसे मांसभक्षी पादपों (carnivorous plants) में।

चित्र ४१४–पिस्टिआ के ...

स्थायी ऊतक

- साधारण
  - मृदूतक
  - स्थूलकोणोतक
  - दृढ़ोतक
- संकुल या संकीर्ण
  - दारु, जिसमें दारु वाहिनिकियां, वाहिनियां, काष्ठ तन्तु और दारु मृदूतक सम्मिलित हैं।
  - फ्लोएम, जिसमें चालनी नलिकाएं, सहजात कोशिकाएं, फ्लोएम मृदूतक और वास्ट रेशे सम्मिलित हैं।
- स्रावक
  - आक्षीरी
    - आक्षीरी वाहिनिय
    - आक्षीरी कोशिकाएं
  - ग्रन्थिल
    - आन्तर
    - वाह्य
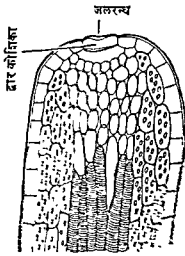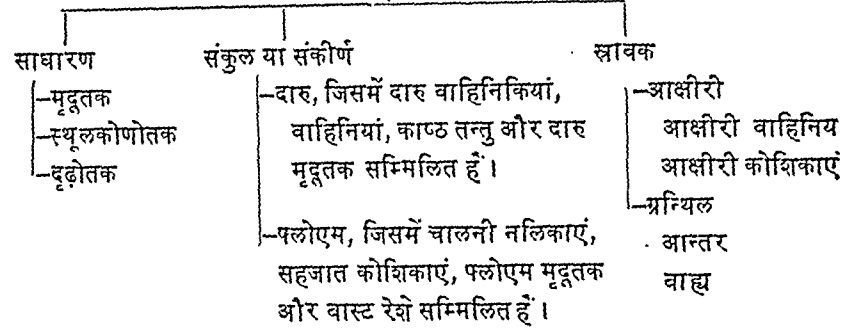
यांत्रिक ऊतकों का वंटन (Distribution of Mechanical or Strengthening Tissues)—पौधों के शरीर में यांत्रिक ऊतकों का वंटन कई बातों पर निर्भर है। केवल यांत्रिक दृष्टिकोण से वंटन का सिद्धान्त निम्नलिखित है। तनों को ऊपर के भागों का भार संभालना पड़ता है, और वे हवा के झोंके से इधर उधर हिलते हैं। इसलिये वे वारी-वारी से तनते और संपीडित (compress) होते हैं। अतः स्तम्भों में यांत्रिक ऊतकों की सबसे अच्छी स्थिति परिमा (periphery) के समीप, या तो वेलन (cylinder) के रूप में या छोटे-छोटे समूहों के रूप में है। इसके विपरीत, जब तना हिलता है तो हिलते हुए तने से जड़ों पर कर्षण बल (pulling force) पड़ता है और इसके चारों ओर की मिट्टी भी संपीडन (compressing) बल डालती है, इन बलों का सामना करने के लिये जड़ के केन्द्र में या केन्द्र के चारों ओर ठोस काष्ठीय सिलिंडर (wood cylinder) का विकास होता है।

स्थूलकोणोतक और दृढ़ोतक, जिसमें रेशे, काष्ठ तन्तु, और वास्ट रेशे सम्मिलित हैं, पौधे के शरीर को सामर्थ्य या बल प्रदान करने वाले दो सबसे मुख्य ऊतक हैं, इनमें से स्थूलकोणोतक (collenchyma) के वंटन का वर्णन किया जा चुका है। स्तम्भों में दृढ़ोतक अनेक भागों में वंटित होता है।

मूलों में दृढ़ोतक कम ही विकसित होता है और उनमें स्थूलकोणोतक (collenchyma) तो होता ही नहीं हैं। यहां लिग्निभूत दारु वाहिनियां और दारु वाहिनिकियां ही आवश्यक सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

पर्ण में दृढ़ोतक के वंटन के लिये पृष्ठ २७२ देखिये।

प्राथमिक (अग्रस्थ) विभज्या
[PRIMARY (APICAL) MERISTEM]

१. स्तम्भ अग्रक (Stem Apex ; चित्र ४१५)

स्तम्भ के अग्रक से होते हुए एक माध्यिक अनुदैर्घ्य काट (median longitudinal section) को यदि सूक्ष्मदर्शी से परीक्षण किया जाय तो ज्ञात होता है

चित्र ४१५—स्तम्भ अग्रक।
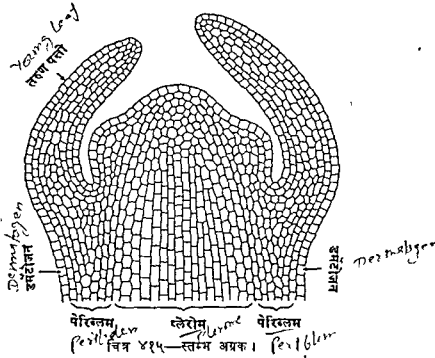
कि अग्रस्थ विभज्या या वर्धन प्रदेश प्रायः गोल कोशिकाओं के छोटे पुंज का बना होता है। ये कोशिकाएं सारभूतत: समान होती हैं और विभाजन की दशा में होती हैं। ये विभाजी कोशिकाएं प्रविभज्या (promeristem or primordial meristem) बनाती हैं। प्रविभज्या की कोशिकाएं तुरन्त तीन प्रदेशों में भिन्नित हो जाती हैं, अर्थात् भ्रूणीय बाह्यत्वचा या डर्मेटोजन (dermatogen), भ्रूणीय निस्त्वक् या पेरिब्लम (periblem) और भ्रूणीय रम्भ या प्लेरोम (plerome)। इन तीनों प्रदेशों की कोशिकाएं वृद्धि करती हैं और स्तम्भ के परिपक्व भागों के प्राथमिक स्थायी ऊतकों को बनाती हैं। काट (section) में दोनों ओर कई उद्वर्ध (outgrowths) दिखाई देते हैं जो वर्धन अग्रक को घेरे रहते हैं। ये

कलिका की तरुण पत्तियाँ हैं जो स्तम्भ के कोमल वर्धन अग्रक को ढके रहती हैं और उसकी रक्षा करती हैं।

(१) भ्रूणीय वाह्यत्वचा या डर्मेटोजन (Dermatogen)—यह सबसे वाहरी कोशिकाओं की एकल स्तर है। यह स्तर अग्रक के ऊपर से होती हुई एकल स्तर के रूप में नीचे की ओर जारी रहती है। ये कोशिकाएं केवल त्रिज्यक या अरीय (radial) भित्तियों द्वारा, अर्थात् स्तम्भ के तल से लम्ब कोण वनाते हुये, विभाजित होती हैं और परिधि में वृद्धि करती है। इस प्रकार वे नीचे स्थित ऊतकों के आयतन में वढ़ती हुई वृद्धि के साथ-साथ वढ़ती रहती हैं। डर्मेटोजन (dermatogen) स्तम्भ की वाह्यत्वचा (epidermis) वनाता है।

(२) भ्रूणीय निरवक् या पेरिब्लम (Periblem)—यह डर्मेटोजन के नीचे स्थित होता है, और अग्रस्थ विभज्या का मध्य प्रदेश है। चोटी पर यह एक-स्तरीय होता है लेकिन नीचे की ओर यह वहुस्तरीय हो जाता है। यह स्तम्भ की अन्तस्त्वचिका (cortex) वनाता है, जो प्राय:, विशेषकर द्विवीजपत्री पौधों में, अधस्त्वचा (hypodermis), सामान्य अन्तस्त्वचिका (general cortex) और अंतस्त्वचा (endodermis) में भिन्नित होता है।

(३) भ्रूणीय रम्भ या प्लेरोम (Plerome)—यह पेरिब्लम के अन्दर रहता ह और स्तम्भ अग्रक का मध्य भाग है। चोटी के कुछ नीचे कोशिकाओं के समूहों या वलयकों की दीर्घित हो जाने की प्रवृति होती है, दीर्घित कोशिकाओं के ये समूह या वलयक प्रागेधा (procambium) वनाते हैं। अन्त में ये प्रागेध डोरे (procambial strands) वाहिनियों और चालनी नलिकाओं के वंडलों, अर्थात् वाहिनी वंडलों (vascular bundles) में भिन्नित हो जाती हैं। फिर भी, इसका एक भाग अभिन्नित (undifferentiated) रहता है और यह वाहिनी वंडल का एधा (cambium) वनाता है। प्लेरोम मध्य परिचक्र (pericyles), मज्जका किरणों (medullary or pith rays), मज्जा या पिथ (pith) और वाहिनी वंडलों [प्रागेध डोरों (procambial strands) से वनी हुई] में भिन्नित होता है, और स्तम्भ का केन्द्रीय वाहिनी सिलिंडर या रम्भ या स्टील (stele) वनाता है।

२. मूल अग्रक (Root Apex; चित्र ४१६)

मूल के अग्रक से होते हुए एक माध्यिक अनुदैर्घ्य काट (median longitudinal section) को देखने से प्रतीत होता है कि यह एक वहु-स्तरीय ऊतक, जिसको मूलछद (root-cap) कहते हैं, से ढका और सुरक्षित रहता है। अग्रस्थ विभज्या (apical meristem) या वर्धन प्रदेश मूलछद के पीछे स्थित रहता है। स्तम्भ की भांति,
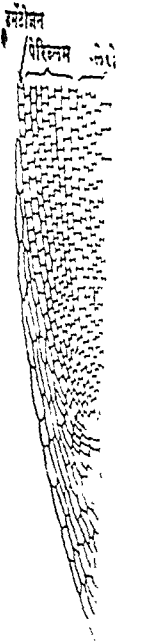
प्रविभज्या (promeristem) आरम्भिक अवस्था में ही तीन प्रदेशों में भिन्नित हो जाता है, अर्थात् (१) भ्रूणीय वाह्यत्वचा या डर्मेटोजन, (२) भ्रूणीय नित्वक् या पेरिब्लम, और (३) भ्रूणीय रम्भ या प्लेरोम। बहुत सी जड़ों में ये तीन प्रदेश स्पष्ट रूप से नहीं पहचाने जा सकते।

(१) भ्रूणीय वाह्यत्वचा—स्तम्भ की भांति, यह भी एक-स्तरीय है, लेकिन चोटी के पास यह पेरिब्लम से मिल जाता है। इसके ठीक वाहर ही डर्मेटोजन अनेक नई कोशिकाएं काटता है, और इस प्रकार एक छोटी कोशिकाओं वाली ऊतक बनाता है, जिसको मूलछदजन या कैलिप्ट्रोजन (calyptrogen) कहते हैं। यह भी विभाजी होता है और अपनी कोशिकाओं के वार-वार विभाजन से मूलछद बनाता है। जैसे-जैसे मूल कठोर भूमि में प्रवेश करता है, मूलछद प्रायः घिस जाता है लेकिन तव यह अधःस्थ (underlying) मूलछदजन या कैलिप्ट्रोजन से फिर से वनाया जाता है। कुछ पौधों में डर्मेटोजन, विना मूलछदजन के अन्तरयण (intervention) से, सीधे मूलछद बनाता है। मूलछद की वाहरी कोशिकाओं की भित्तियां श्लेष्म में रूपान्तरित हो सकती हैं जो जड़ को भूमि में आसानी से आगे ढकेलने में सहायता करती हैं। जलीय पादपों में मूलछद अनुपस्थित रहता है यद्यपि इसकी समवृति संरचना (analogous structure), जिसको मूल-गोह (root-pocket) कहते हैं, इनमें से बहुतों में अभिदृश्य रहता है (देखिये पृष्ठ २६)। कभी-कभी, जैसा प्रायः द्विबीजपत्री पौधों में, डर्मेटोजन ऊपर की ओर जड़ के एकल सबसे बाहरी स्तर (मूलत्वचा) के रूप में सतत रहता है। लेकिन एकबीजपत्री पौधों में डर्मेटोजन प्रायः मूलछद के निर्माण में समाप्त हो जाता है, अतः जड़ का सबसे बाहरी स्तर पेरिब्लम के सब से बाहरी स्तर से बनता है। मूल अग्रक से थोड़ी दूरी पर सबसे वाहरी स्तर में अनेक एककोशिक मूल रोम होते हैं। जलीय पादपों में प्राय मूल रोम नहीं होते हैं।
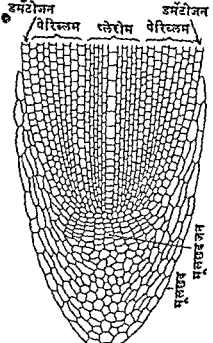
डर्मेटोजन
डर्मेटोजन
पेरिब्लम
प्लेरोम
पेरिब्लम
मूलछदजन
मूलछद

चित्र ४१६
मूल अग्रक।

(२) भ्रूणीय नित्वक् या पेरिब्लम (Periblem)—स्तम्भ की भांति यह भी चोटी पर एक-स्तरीय होता है; लेकिन ऊपर

की ओर यह बहु-स्तरीय होता है। एकबीजपत्री पौधों में पेरिब्लम का सबसे बाहरी स्तर मूल का सबसे बाहरी स्तर बनाता है। पेरिब्लम मूल के मध्य प्रदेश या अन्तस्त्वचिका (cortex) को बनाता है।

(३) भ्रूणीय रम्भ या प्लेरोम (Plerome)—इसकी संरचना और कार्य लगभग स्तम्भ के प्लेरोम के समान हैं। लेकिन यहां पर कुछ प्रागेध-डोरे (procambial strands) एकान्तरेण रूप से वाहिनियों (दारु) के बंडलों और कुछ चालनी नलिकाओं के बंडलों को बनाती हैं।

अध्याय ३

रन्ध्र (STOMATA)

संरचना और व्यवहार—रन्ध्र बहुत छोटे छिद्र हैं जो पौधों के वायवीय हरे भागों, विशेषकर पत्तियों, के बाह्यत्वचा स्तर में पाये जाते हैं। मूल तथा प्ररोह के हरे रंग रहित भाग में ये नहीं पाये जाते। प्रत्येक रन्ध्र दो अर्ध-चन्द्राकार कोशिकाओं से घिरा रहता है, जिनको द्वार कोशिकाएं (guard cells) कहते हैं। रन्ध्र (stoma) शब्द प्रायः द्वार कोशिकाओं सहित रन्ध्र के छिद्र के लिये प्रयोग किया जाता है। द्वार कोशिकाएं जीवित होती हैं और उनमें सर्वदा हरिम कणक पाये जाते हैं। इनकी आन्तरिक भित्ति मोटी तथा बाह्य भित्ति पतली होती है। ये रन्ध्र या मार्ग की रक्षा करते हैं, अर्थात् वे इसके खुलने या बंद होने का ओंठों के समान नियमन (regulate) करते हैं। कभी-कभी द्वार कोशिकाएं दो या अधिक कोशिकाओं से घिरी रहती हैं जो बाह्यत्वचीय कोशिकाओं से भिन्न होती हैं; इस प्रकार की कोशिकाओं को अतिरिक्त कोशिकाएं (accessory cells) कहते हैं। द्विबीजपत्री पौधों की पत्तियों में रन्ध्र बिखरे रहते हैं, लेकिन एकबीजपत्री पौधों में वे समांतर पंक्तियों में रहते हैं। सामान्य दशाओं में रन्ध्र रात्रि के समय, अर्थात् प्रकाश की अनुपस्थिति में, बंद रहते हैं, और दिन में, अर्थात् प्रकाश की उपस्थिति में, वे खुले रहते हैं। दिन के समय भी वे उस समय बंद हो सकते हैं जब पत्तियों की सतह से कुछ दशाओं में, जैसे कि वायु की शुष्कता से, शुष्क हवा के चलने से, या मिट्टी में पानी की पर्याप्त मात्रा नहीं रहने से, तीव्र वाष्पोत्सर्जन (जल का वाष्पन) होता है। प्रकाश की तीव्रता (intensity of light) का रन्ध्रों के खुलने की मात्रा पर काफी प्रभाव पड़ता है। रन्ध्रों का खुलना और बन्द होना द्वार कोशिकाओं की गति के कारण होता है। जब द्वार कोशिकाएं आशून (turgid) हो जाती हैं, अर्थात् पानी से भरी रहती हैं, वे विस्तारित होती हैं और बाहर की दिशा

में उभर जाती हैं, और रन्ध्र खुल जाते हैं। जब पानी की कमी के कारण द्वारा कोशिकाएं श्लथ (flaccid) हो जाती है तो रन्ध्र बद हो जाते हैं।

चित्र ४१७—बाह्यत्वचीय स्तर में रन्ध्र (तल दृश्य)
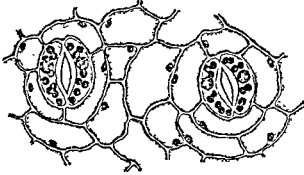
द्वार कोशिकाओं की आशूनता (turgidity) और श्लथता (flaccidity) उनमें शर्करा या मण्ड (starch) की उपस्थिति के कारण है। प्रकाश में हरिम कणकों द्वारा निर्मित शर्करा उनमें एकत्रित होती है, और यह विलेय होने के कारण, कोशिका रस का सांद्रण (concentration) बढ जाता है। इस दशा में द्वार कोशिकाए पड़ोसी बाह्यत्वचा की कोशिकाओं से जल का अवशोषण करती हैं और आशून हो जाती है, और रन्ध्र खुल जाता है। इसके विपरीत अंधेरे में द्वार कोशिकाओं में उपस्थित शर्करा मण्ड में परिवर्तित हो जाती है, जो अविलेय यौगिक है। इस कारण द्वार कोशिकाओं के कोशिका रस का सांद्रण पडोसी कोशिकाओं से कम हो जाता है। इन दशाओं में द्वार कोशिकाए अपना जल खो देने के कारण सिकुड़ जाती है, और रन्ध्र बन्द हो जाता है। रात्रि के समय शर्करा का मण्ड में परिवर्तन और दिन में इसके विपरीत मण्ड का शर्करा में परिवर्तन द्वार कोशिकाओं के कोशिका रस की अम्लता (acidity) और क्षारीयता (alkalinity) पर निर्भर है। रात्रि के समय प्रकाश संश्लेषण न होने के कारण कार्बन-डाइऑक्साइड द्वार कोशिकाओं में एकत्रित हो जाती है और कोशिकान्तर्वस्तुए (cell contents) थोडी अम्लीय हो जाती है। इस दशा में शर्करा मण्ड में परिवर्तित हो जाता है। दिन के समय कार्बन-डाइऑक्साइड प्रकाश संश्लेषण में उपयोग में आ जाती है और इस प्रकार कोशिकान्तर्वस्तुएं थोड़ा क्षारीय हो जाती है। इन दशाओं में मण्ड शर्करा में परिवर्तित हो जाता है।

कार्य और वंटन—रन्ध्र पौधे और वायुमडल के बीच गैस के विनिमय के काम आते है—ऑक्सीजन श्वसन के लिये और कार्बन-डाइऑक्साइड कार्बोहाइड्रेट के

निर्माण के लिये। गैसों के विसरण (diffusion) की सुविधा के लिये प्रत्येक रन्ध्र अन्दर की ओर एक छोटे विवर या गुहा में खुलता है। इसको श्वसन विवर (respira-

चित्र ४१८ चित्र ४१९ चित्र ४२०
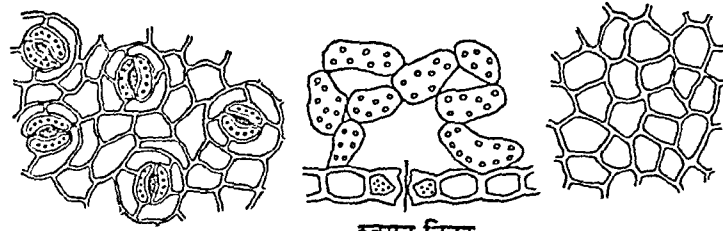
पान की पत्ती में रन्ध्र। चित्र ४१८–निचली बाह्यत्वचा कई रन्ध्रों सहित (तल दृश्य)। चित्र ४१९–पर्ण का काट (नीचे के ओर से एक भाग)। चित्र ४२०–ऊपरी बाह्यत्वचा रन्ध्र सहित (तल दृश्य)।

tory cavity; चित्र ४१९) कहते हैं और यह अन्तराकोशिक अवकाशों और वायु विवरों के तंत्र से सम्बन्धित रहता है। रन्ध्र वे अंग भी हैं जिनके द्वारा जल का वाष्पन होता है; इस प्रकार पौधे को अधिशेष जल से छुटकारा मिल जाता है। पृष्ठ-प्रतिपृष्ठी (dorsiventral) पत्तियों में रन्ध्र निचली बाह्यत्वचा (चित्र ४१८) में बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं (देखिये पृष्ठ ८६)। ऊपरी बाह्यत्वचा में (चित्र ४२०) कोई रन्ध्र नहीं होता (या कभी-कभी थोड़े से होते हैं)। समद्विपार्श्व (isobilateral) या केन्द्रिक (centric) पत्तियों में (देखिये पृष्ठ ८६) रन्ध्र प्रत्येक ओर करीब-करीब बराबर वंटित होते हैं। प्लवमान (floating) पत्तियों, जैसे जल नलिनी की पत्ती में, रन्ध्र केवल ऊपरी बाह्यत्वचा पर होते हैं। निमग्न (submerged) पत्तियों में रन्ध्र नहीं पाये जाते। मरुस्थल के पौधों में और उन पौधों में जिनमें मरुद्‌भिदी अनुकूलन (xerophytic adaptations) होते हैं, उदाहरणार्थ चीड़, एगेवी (*Agave*), कनेर (*Nerium*; चित्र ४२१), इत्यादि, एक या अधिक रन्ध्र पत्तियों में खातिकाओं (grooves) या गर्तों में पाये जाते हैं। वाष्पन को कम करने के लिये यह एक
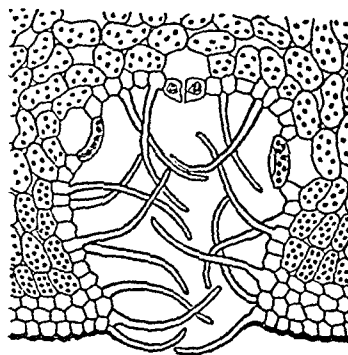
चित्र ४२१
कनेर के पर्ण में निमग्न रन्ध्र।

विशेष प्रकार का अनुकूलन है, क्योंकि गर्तों में स्थित होने के कारण वे हवा के झोंकों से बचे रहते हैं, प्रति इकाई क्षेत्रफल में रन्ध्रों की संख्या काफी भिन्न होती है। सामान्य भूमि में उगने वाले पौधों में औसतन १०० से ३०० रन्ध्र प्रति वर्ग मिलिमीटर में होते हैं, या कभी-कभी इससे बहुत कम या बहुत अधिक होते हैं। उदाहरणार्थ मरुस्थल के पौधों में केवल १०-१५ रन्ध्र प्रति वर्ग मिलिमीटर में होते हैं और कई ऐसे पौधे हैं जिनमें १,३०० रन्ध्र प्रति वर्ग मिलिमीटर में होते हैं।

ऊतक तंत्र—कुछ ऊतक साधारणतया मिल कर बड़ी इकाइयां बनाते हैं जिनको ऊतक तंत्र कहते हैं। पादप काय में इस प्रकार के तीन तंत्र सामान्य रूप में पाये जाते हैं। (१) बाह्य ऊतक तंत्र जिसमें बाह्यत्वचा प्रायः बाह्यचर्म सहित, और बहुकोशिक रोम, तथा कभी-कभी रन्ध्र होते हैं; (२) आधार ऊतक तंत्र जिसमें (क) अधस्त्वचा, (ख) सामान्य अंतस्त्वचिका, (ग) अंतस्त्वचा, (घ) मध्य परिचक्र, (ङ) मज्जका रश्मि; और (च) मज्जा होते हैं; और वाहिनी ऊतक तंत्र जिसमें वाहिनी बंडल हैं। इन तंत्रों का अध्ययन सूर्यमुखी के स्तम्भ को निर्देश कर किया जा सकता है (देखिये चित्र ४२३)। ये तीनों तंत्र क्रमशः डर्मेटोजन, पेरिब्लम और प्लेरोम से क्रमानुसार परिवर्धित होते हैं जैसा निम्न तालिका में दिखाया गया है।

प्राथमिक विभज्याएं और ऊतक तंत्र (Primary Meristems and Tissue Systems)

अध्याय ४
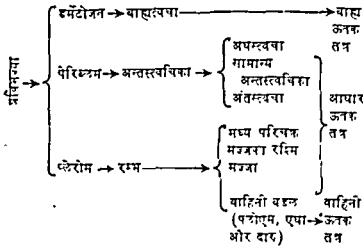
स्तम्भों की आन्तरिक संरचना

(INTERNAL STRUCTURE OF STEMS)

द्विबीजपत्री स्तम्भ (DICOTYLEDONOUS STEMS)

१. सूर्यमुखी का तरुण स्तम्भ (Young Sunflower Stem)

स्तम्भ का एक पतला अनुप्रस्थ काट तैयार करो और सैफ्रानिन (safranin से अभिरंजित (stain) करो। पहले गोह लेंस (pocket lens) द्वारा विभि ऊतकों का वंटन, तथा लगभग वलय (ring) में स्थित वाहिनी वंडलों के विन्या का आलोकन करो (चित्र ४२२)। उसके वाद सूक्ष्मदर्शी द्वारा परिम (periphery) से केन्द्र की ओर सब ऊतकों का अध्ययन करो।
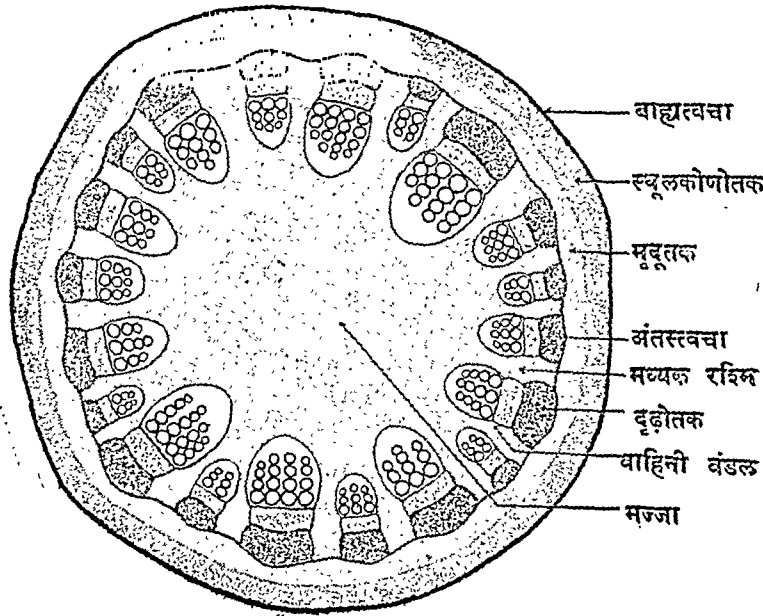
चित्र ४२२—सूर्यमुखी का तरुण स्तम्भ अनुप्रस्थ काट में, जैसा गोह लेंस के नीचे दिखाई देता है।

(१) वाह्यत्वचा (Epidermis)—यह सबसे वाहर का स्तर वनाती है, औ इसमें कोशिकाओं की एक एकल पंक्ति होती है। ये कोशिकाएं स्पर्शीय रूप

pectin) के निक्षेप (deposit) के कारण होता है। कोशिका जीवित होती है और उनमें कई हरितकणक होते हैं।

(ख) अन्तस्त्वचिका का मृदूतक (Parenchyma of the cortex)—केन्द्रीय प्रदेश में अन्तस्त्वचिका पतली भित्ति वाली, बड़ी, गोल या अंडाकार, मृदूतकीय कोशिकाओं के कुछ स्तरों की बनी होती है। वाहिनी बंडल के बाहर ये स्तर केवल एक या दो ही हो सकते हैं। इसमें अभिदृश्य अन्तराकोशिक अवकाश होते हैं। कुछ इक्की (isolated) सर्जास नलिकाएं (resin ducts), प्रत्येक पतली भित्ति वाली जीवित कोशिकाओं की एक स्तर से ढकी हुई, भी इधर-उधर उसमें दिखाई देती हैं। (ग) अन्तस्त्वचा (Endodermis)—यह अन्तस्त्वचिका के सबसे अन्दर का स्तर है और उसका रम्भ से सीमांकन (demarcates) करता है। इसकी कोशिकाएं लगभग ढोलकाकार (barrel-shaped) सी होती हैं और आपस में सटी हुई होती हैं, जिनके मध्य में अन्तराकोशिक अवकाश नहीं होते। दृढ़ोतक के सिध्म (patch) के बाहर अन्तस्त्वचा अभिदृश्य होती है, लेकिन इसके दोनों ओर यह अपनी अनन्यता (identity) खो बैठती है। इसमें प्रायः हमेशा मण्ड कण पाये जाते हैं, इसलिये इसको मण्ड छाद (starch sheath) भी कहते हैं।

(३) मध्य परिचक्र (Pericycle)—यह अन्तस्त्वचा तथा वाहिनी बंडलों के बीच में स्थित प्रदेश है, और दृढ़ोतक के अर्ध चन्द्राकार सिध्मों (semilunar patches) तथा मध्यवर्ती मृदूतक के पुंजों से निरूपित रहता है। प्रत्येक सिध्म जो वाहिनी बंडल के फ्लोएम से सम्बन्धित रहता है दृढ़ बास्ट (hard bast) कहलाता है। इस ऊतक में मध्य पटल (middle lamella) बहुत स्पष्ट दिखाई देती है।

(४) मज्जका किरण (Medullary Rays)—दो वाहिनी बंडलों के बीच में स्थित, काफी, बड़ी, बहुभुजी या अरीय दीर्घित (radially elongated) कोशिकाओं के कुछ स्तर मज्जका किरण बनाते हैं।

(५) मज्जा (Pith)—यह सूर्यमुखी के तने में काफी विकसित होता है, और इसके अधिक भाग को घेरे हुए रहता है। यह वाहिनी बंडलों के नीचे से केन्द्र तक फैला होता है। यह गोल या बहुभुजी, पतली भित्ति वाली कोशिकाओं का बना होता है जिनके बीच में अभिदृश्य अन्तराकोशिक अवकाश पाये जाते हैं।

(६) वाहिनी बंडल (Vascular Bundles)—ये एकस्व (collateral) तथा अबद्ध या वर्धिष्णु (open) होते हैं और एक वलय (ring) में विन्यस्त रहते हैं। प्रत्येक बंडल (१) फ्लोएम या बास्ट (२) एधा और (३) दारु या काष्ठ का बना होता है।

(अ) फ्लोएम (Phloem)—यह बाहर की ओर स्थित होता है तथा पतली और सैलूलोज की बनी भित्तियों के अवयवों का बना होता है। यह (क) चालनी

चिपिटित (tangentially flattened) रहती हैं और अपनी अरीय (radial) भित्तियों से एक दूसरे से बिलकुल चिपकी रहती हैं। इनके ऊपर बाह्यचर्म (cuticle) की एक सुनिश्चित परत रहती है। इसमें कहीं-कहीं पर बहु कोशिक रोम और कुछ रन्ध्र भी पाये जाते हैं लेकिन इसमें हरिमकणक नहीं होते; परन्तु रन्ध्र की द्वार कोशिकाओं में हरिमकणक पाये जाते हैं।

(२) अन्तस्त्वचिका (Cortex)—यह बाह्यत्वचा के नीचे स्थित होती है और बाह्य स्थूल कोणोतक, केन्द्रीय मृदूतक और आन्तर मण्ड छाद या अन्तस्त्वचा की बनी होती
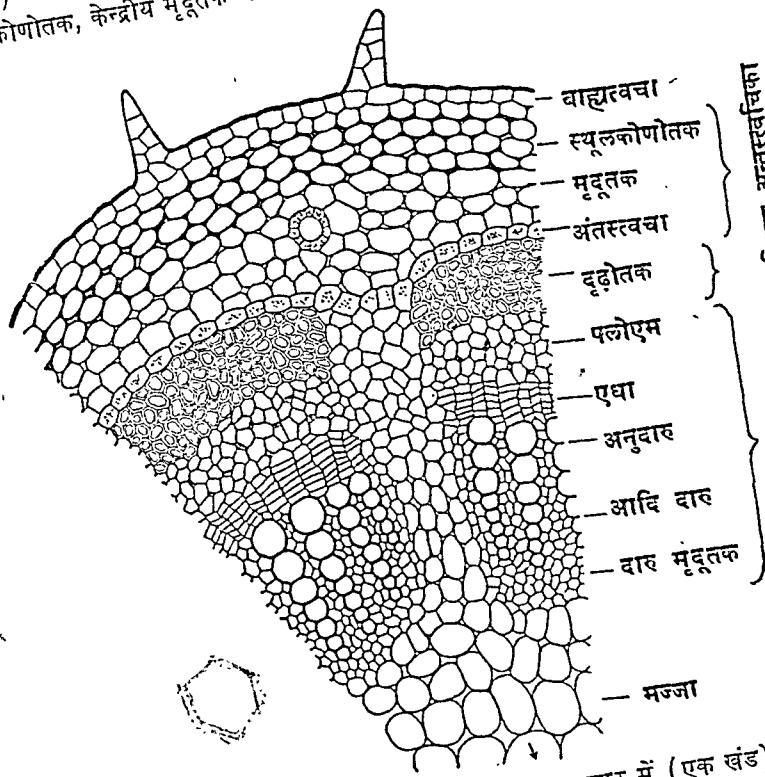
चित्र ४२३—सूर्यमुखी का तरुण स्तम्भ अनुप्रस्थ काट में (एक खंड), जैसे सूक्ष्मदर्शी के नीचे दिखाई देता है।

है। (क) स्थूल कोणोतक (collenchyma)—यह बाह्यत्वचा के बिलकुल नीचे होता है और कोशिकाओं के ४ या ५ स्तरों का बना होता है। स्थूल कोणोतक कोशिकाएं किनारों पर अन्तराकोशिक अवकाशों के सम्मुख विशेष रूप से स्थूलित होती हैं। स्थूलन पेक्टिन से व्याप्त सैलूलोज (cellulose impregnated with

नलिकाओं (sieve-tubes) का बना होता है जो बाकी फ्लोएम से थोड़े बड़े विवर प्रतीत होते हैं। सर्वोपरि सूर्यमुखी के स्तम्भ की चालनी नलिकाएं बहुत संकरी होती हैं। प्रत्येक चालनी नलिका से सम्बन्धित एक छोटी कोशिका दिखाई देती है जिसको (ख) सहकोशिका (companion cell) कहते हैं। बाकी फ्लोएम छोटी-छोटी कोशिकाओं वाले मृदूतक से भरा होता है जिसको (ग) फ्लोएम मृदूतक (Phloem parenchyma) कहते हैं। फ्लोएम के सब तत्व जीवित होते हैं, और इनमें नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ भरे रहते हैं।

(आ) एधा (Cambium)—अन्दर की ओर बढ़ने पर पतली भित्ति वाली ऊतकों की एक पट्टी (band) दिखाई देती है, जिसकी कोशिकाएं अरीय पंक्तियों में विन्यस्त रहती हैं। ये लगभग आयताकार होती हैं, और आकार में बहुत छोटी और पतली भित्तियों वाली होती हैं। (यदि सेक्शन स्तम्भ के अपेक्षाकृत पुराने भागों में से काटा जाय तो एधा एक वाहिनी बंडल से दूसरे में सतत रहती है और इसकी कोशिकाओं का विभाजन बाहर और अन्दर दोनों ओर दिखाई देता है। यह परवर्ती वृद्धि (secondary growth) के आरम्भ होने को संकेत करता है।)

(इ) दारु या काष्ठ (Xylem or Wood)—यह अन्दर की ओर स्थित होता है और निम्नलिखित तत्वों का बना होता है: (क) दारु वाहिनियां (Wood Vessels) —दारु में कुछ बड़े विवर त्रिज्यक पंक्तियों में विन्यस्त आसानी से पहचाने जा सकते हैं। ये दारु वाहिनियां हैं। छोटी वाहिनियां जो आदि दारु (protoxylem) बनाती हैं। केन्द्र की ओर स्थित होती हैं, और बड़ी जो अनुदारु (metaxylem) बनाती हैं केन्द्र से दूर स्थित होती हैं। आदि दारु वलयाकार सर्पिल, तथा सोपानवत् (scalari-form) वाहिनियों का बना होता है, और अनुदारु गर्तिल (pitted) तथा जालकीय (reticulate) वाहिनियों का। इनकी भित्तियां हमेशा मोटी तथा लिग्निभूत (lignified) होती हैं। (ख) दारु वाहिनिकियां (Tracheids)—वाहिनियों को आवरित किये हुए और उनके बीच में स्थित कुछ छोटी स्थूल भित्ति वाली कोशिकाएं दिखाई दे सकती हैं। ये दारु वाहिनिकियां हैं। स्तम्भ के अनुप्रस्थ काट में ये काष्ठ तन्तुओं से नहीं पहचानी जा सकती हैं जो उनके बीच में मिले हुये रहते हैं। (ग) काष्ठ तन्तु (Wood Fibres)—ये सेक्शन में लगभग अनियमित और बहु-भुजी दिखाई देते हैं। वे स्थूल भित्ति-युक्त और लिग्निभूत होते हैं और दारु वाहिनियों के समान अभिरंजित होते हैं। वाहिनियों के अलावा काष्ठ का सम्पूर्ण भाग इन तत्वों का बना होता है। (घ) दारु मृदूतक (Wood Parenchyma)—वाहिनी बंडल के अन्दर की ओर आदि दारु को घेरे हुये मृदूतकीय कोशिकाओं का एक सिध्म दिखाई देता है। यह दारु मृदूतक है। इसमें जीवद्रव्य रहता है।

२. क्यूकरविटा (*Cucurbita*) का तरुण स्तम्भ (चित्र ४२४)।

स्तम्भ का एक पतला अनुप्रस्थ काट तैयार करो और भली भांति सैफानिन से अभिरंजित करो। गोह लेन्स द्वारा आलोकन करो कि यह खोखला है और इसमें प्रायः पांच सीताएं (furrows) और पांच कूटक (ridges) होते हैं। साधारणतः वाहिनी बंडलों की संख्या दस होती है और वे दो पंक्तियों में विन्यस्त रहते हैं। बाहर की पंक्ति के बंडल कूटकों से और अन्दर की पंक्ति के बंडल सीताओं से तदनुरूप होते हैं। तब सूक्ष्मदर्शी द्वारा निम्नलिखित ऊतकों को परिमा से केन्द्रीय विवर (गुहा) तक आलोकन करो।

(१) बाह्यत्वचा—यह एकल स्तर है जो कि सीताओं तथा कूटकों से होकर गुजरती है। यह प्रायः अनेक लम्बे तथा संकरे बहुकोशिक रोम धारण करती है।
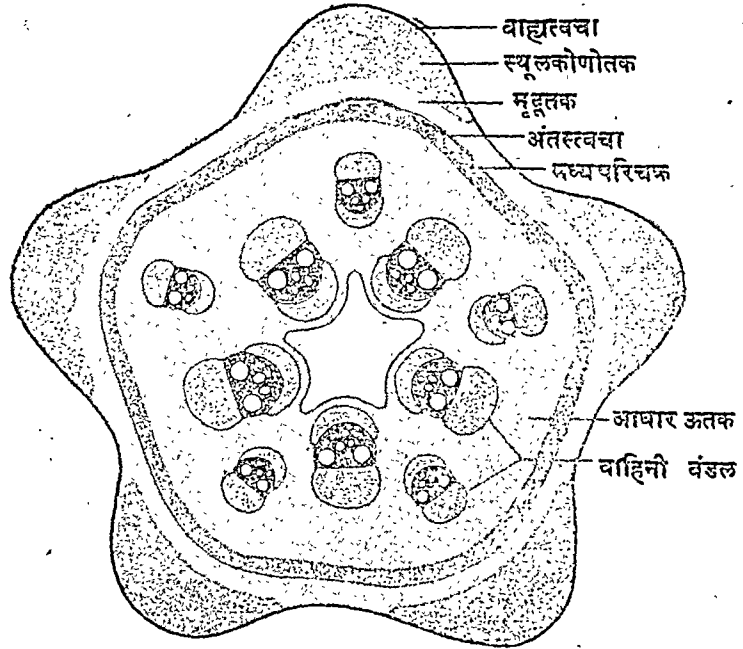
चित्र ४२४—क्यूकरविटा का तरुण स्तम्भ अनुप्रस्थ काट में, जैसा गोह लेंस के नीचे दिखाई देता है।

(२) अन्तस्त्वचिका—यह बाहर की ओर स्थूल कोणोतक, बीच में मृदूतक और अन्दर की ओर अन्तस्त्वचा से मिलकर बनता है। (क) स्थूल कोणोतक बाह्यत्वचा के तुरन्त नीचे होता है और कूटकों के नीचे छः या सात (कभी-कभी

भित्ति वाली, लिग्निभूत कोशिकाएं होती हैं जो कि बहुभुजी आकार की होती हैं।

(४) आधार ऊतक (Ground Tissue)—आधार ऊतक की पतली भित्ति वाली कोशिकाओं का सतत पुंज (continuous mass) दृढ़ोतक के नीचे से मज्जा विवर तक फैला रहता है। इस ऊतक में वाहिनी बंडल अंतर्भूत (embedded) रहते हैं।

(५) वाहिनी बंडल—ये उभयस्थ फ्लोएमी होते हैं और प्राय संख्या में दस होते हैं तथा दो पंक्तियों में विन्यस्त रहते हैं। प्रत्येक बंडल (अ) दारु (आ) एधा की दो पट्टियों और (इ) फ्लोएम के दो सिध्मों का बना होता है।

(अ) दारु बंडल के मध्य में स्थित होता है, और यह बाहर की ओर चौड़ी वाहिनियों (गर्तो) का बना होता है जो अनुदारु (metaxylem) बनाती हैं, तथा अन्दर की ओर संकरी वाहिनियों का निर्मित होता है जो आदि दारु (protoxylem) बनाती हैं। दारु में कुछ दारु वाहिनिकियां, काष्ठ तन्तु और दारु मृदूतक भी होते हैं। सूर्यमुखी के स्तम्भ की भांति वाहिनियां अरीय पंक्तियों में नियमित रूप से विन्यस्त नहीं रहती।

(आ) एधा—यह ऊतक दारु के दोनों ओर स्थित होता है। यह फ्लोएम और दारु के बीच में अन्दर की ओर, और दारु और फ्लोएम के बीच में बाहर की ओर संकरी पट्टी बनाता है। इसकी कोशिकाएं पतली भित्ति वाली और आयताकार होती हैं, और अरीय पंक्तियों में विन्यस्त रहती हैं। बाहरी एधा बहुस्तरीय होती है और लगभग चपटी होती है, लेकिन अन्दर की एधा अल्प-स्तरीय और वक्र होती है। एधा की प्रत्येक पट्टी क्रमशः फ्लोएम और दारु में संविलीन (merges) हो जाती है।

(५) फ्लोएम दो सिध्मों में पाया जाता है, बाहरी और भीतरी। आलोकन करो कि आकार में बाहरी फ्लोएम समतलोत्तल (planoconvex) और भीतरी फ्लोएम अर्ध चन्द्राकार होता है। फ्लोएम का प्रत्येक सिध्म चालनी नलिकाओं, सहकोशिकाओं, और फ्लोएम मृदूतक का बना होता है। क्यूकरबिटा (*Cucurbita*) के स्तम्भ में चालनी नलिकाएं बहुत अभिदृश्य होती हैं। इधर उधर छिद्रों सहित चालनी पट्टिकाएं स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। फ्लोएम का बाकी भाग छोटे, पतली भित्ति वाले कोशिकाओं का बना होता है जिसको फ्लोएम मृदूतक कहते हैं।

एक बीजपत्री स्तम्भ
(MONOCOTYLEDONOUS STEM)

१. मक्का का स्तम्भ (Indian Corn or Maize Stem; चित्र ४२६)

एक पतला अनुप्रस्थ काट (transverse section) काटो और सैफ्रानीन

और आधार ऊतक में बिखरे होते हैं। ये संख्या में अधिक होते हैं और परिमा (periphery) के पास केन्द्र की अपेक्षा अधिक पास-पास रहते हैं। परिमा के पास स्थित वाहिनी वंडल आकार में केन्द्रीय वंडलों से छोटे होते हैं। प्रत्येक वाहिनी वंडल लगभग पूर्णतः दृढ़ोतक की छाद से आवरित रहता है और सामान्य रूप रेखा में
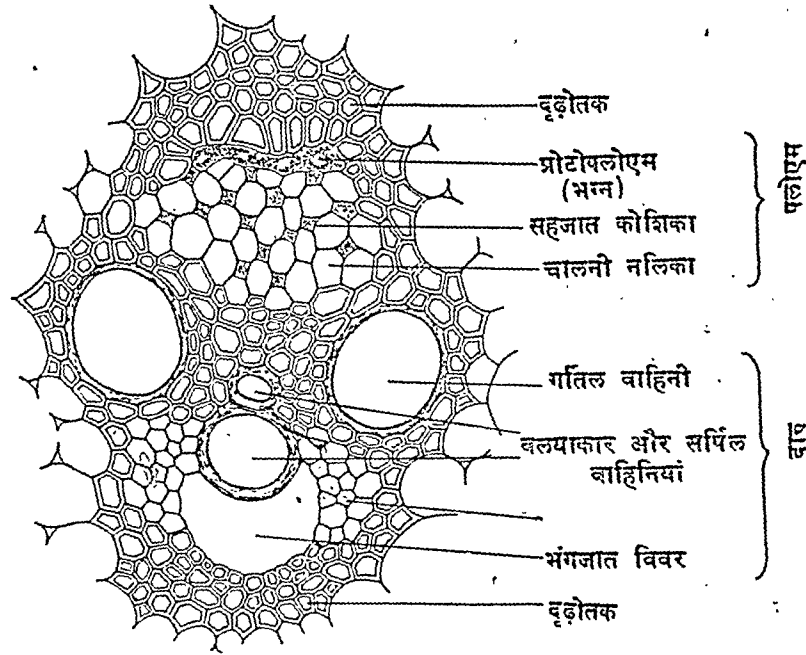
चित्र ४२७–मक्का के स्तम्भ का एक वाहिनी वंडल (आवर्धित)।

अंडाकार होता है। दृढ़ोतक की छाद ऊपर और नीचे विशेष रूप से विकसित होती है। वंडल दो भागों का वना होता है, अर्थात् दारु और फ्लोएम।

(अ) दारु में प्रायः चार स्पष्ट वाहिनियां होती हैं जो Y आकार में विन्यस्त रहती हैं, और अनेक छोटी वाहिनियां होती हैं जो अनियमित रुप से विन्यस्त रहती हैं। दो छोटी वाहिनियां (वलयाकार और सर्पिल) जो केन्द्र की ओर एक ही त्रिज्या में स्थित रहती हैं आदि दारु (protoxylem) वनाती हैं, और दो पार्श्व में स्थित वड़ी वाहिनियां (गर्ती), और उनके मध्यांतर स्थित छोटी गर्ती दारु वाहिनिकियां सहित अनुदारु (metaxylem) वनाती हैं। इसके अतिरिक्त आदि दारु में पतली भित्ति वाला दारु मृदूतक भी पाया जाता है जो एक अभिदृश्य (water cavity) जल विवर को घेरे रहता है। दो गर्ती वाहिनियों

अध्याय ५

मूलों या जड़ों की आन्तरिक संरचना

१. तरुण द्विबीजपत्री मूल (Young Dicotyledonous Root ; चित्र ४२८)

तरुण द्विबीजपत्री मूल के पतले अनुप्रस्थ काट में परिधि से केन्द्र तक ऊतकों का निम्नलिखित विन्यास रहता है।

(१) **मूलत्वचा या रोमी परत (Epiblema or Piliferous Layer)**—यह पतली भित्ति वाली कोशिकाओं की एकल सबसे बाहरी स्तर है। इनमें से अधिकांश

चित्र ४२८—तरुण द्विबीजपत्री मूल अनुप्रस्थ काट में जैसा सूक्ष्मदर्शी के नीचे दिखाई देता है।

कोशिकाओं की बाहरी भित्तियां बाहर की ओर निकली रहती हैं और एककोशिक रोम बनाती हैं। यह स्तर जल और अन्य विलेयशील (solutes) पदार्थों का भूमि से अवशोषण करती हैं, इसलिये इसमें बाह्यचर्म नहीं होता। मूल रोम मूल के अवशोषण तल को बढ़ाते हैं।

(२) **अन्तस्त्वचिका**—यह पतली भित्तियों वाली, गोल कोशिकाओं के अनेक स्तरों

की बनी होती हैं, जिनके बीच में अनेक अन्तराकोशिक अवकाश होते हैं। अन्तस्त्वचिका की कोशिकाओं में मण्ड कण और रंगहीन कणिकाएं (leucoplasts) पाये जाते हैं। कुछ दशाओं में मूल त्वचा अल्प जीवित रहती हैं और तुरन्त मर जाती हैं। तब अन्तस्त्वचिका के कुछ बाहरी स्तर क्यूटिन-युक्त (cutinized) हो जाते हैं और मूल का बहिस्त्वचा (exodermis) बनाते हैं।

(३) अन्तस्त्वचा—यह नालाकार कोशिकाओं की एक वृत्ताकार स्तर है। ये कोशिकाएं पास-पास मिली रहती हैं और इनके बीच में अन्तराकोशिक अवकाश नहीं होते। इस स्तर की अरीय भित्तियां प्रायः स्थूलित रहती हैं और कभी-कभी यह स्थूलन भीतरी भित्ति तक फैला रहता है, और प्रायः आदि दारु से मिली हुई भित्ति में साधारण गर्त पाये जाते हैं। अन्तस्त्वचा अन्तस्त्वचिका के सबसे अन्दर का स्तर है और रम्भ के चारों ओर वलय या सिलिंडर के रूप में रहता है। इधर-उधर, विशेषकर आदि दारु के सम्मुख, अन्तस्त्वचा स्तर में पतली भित्ति वाली कोशिकाएं पायी जाती हैं। इनको मार्ग कोशिकाएं (passage cells) कहते हैं।

(४) मध्य परिचक्र—यह अन्तस्त्वचा के अन्दर रहती है और उसके समान एक-स्तरीय होती है। इसकी कोशिकाएं बहुत पतली भित्ति वाली होती है, और इनमें काफी मात्रा में जीवद्रव्य होता है।

(५) संयोजि ऊतक—बंडलों के बीच और चारों ओर स्थित मृदूतक संयोजि ऊतक बनाते हैं।

(६) मज्जा—यह मूल के केन्द्र में थोड़ा स्थान घेरता है। कभी-कभी दारु वाहिनियों के केन्द्र में मिल जाने के कारण मज्जा करीब-करीब अभिलोपित (obliterated) हो जाता है।

(७) वाहिनी बंडल—द्विबीजपत्री स्तम्भ के समान ये भी वलय में विन्यस्त रहते हैं, लेकिन यहां दारु और फ्लोएम बराबर संख्या में पृथक् बंडल बनाते हैं, और उनका विन्यास त्रिज्यक (radial) होता है। आदि दारु केन्द्र से दूर स्थित होता है इसलिये दारु का विकास अभिकेन्द्र ([illegible]petal) होता है, [illegible] दूसरे शब्दों में, दारु बहिरारम्भ (exarch) [illegible] बंडलों की संख्या दो से छ तक (द्वि-, त्रि- [illegible] इससे अधिक होती है। एधा बाद में [illegible] फ्लोएम बंडल (phloem bund[illegible] फ्लोएम मृदूतक होते हैं। दारु बंडल [illegible] दारु का बना होता है। आदि [illegible] परिचक्र से संसक्त (abutting [illegible] आदि दारु छोटी वाहिनियों [illegible]

(जालिकावत् और गर्ती) का बना होता है, अनु दारु के समूह प्रायः केन्द्र में मिल जाते हैं और तब मज्जा अभिलोपित हो जाती है (यह विघटित हो जाती है)।

२. एक बीजपत्री मूल (Monocotyledonous Root; चित्र ४२९)

एकबीजपत्री मूल के पतले अनुप्रस्थ काट में सूक्ष्मदर्शी के नीचे निम्नलिखित ऊतक दीखते हैं :

(१) मूलत्वचा या रोमी परत (Epiblema or Piliferous Layer)—यह एकल सबसे बाहरी स्तर है, जिसमें अनेक एक-कोशिक मूलरोम होते हैं।
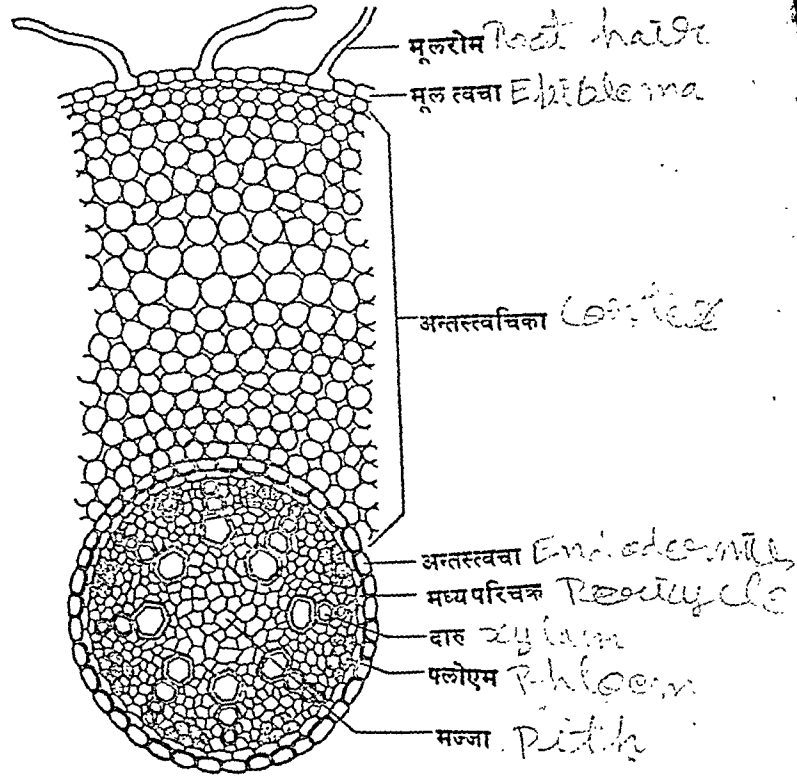
चित्र ४२९–एक बीजपत्री मूल अनुप्रस्थ काट में जैसा सूक्ष्मदर्शी के नीचे दिखाई देता है।

(२) अन्तस्त्वचिका—यह गोल या अंडाकार कोशिकाओं का बना हुआ बहुस्तरीय प्रदेश है जिसमें अनेक अन्तराकोशिक अवकाश पाये जाते हैं। जैसे-जैसे मूलत्वचा

मरती जाती हैं, अन्तस्त्वचिका के कुछ बाहरी स्तर क्यूटिन युक्त हो जाते हैं और बहिस्त्वचा बनाते हैं।

(३) अन्तस्त्वचा—यह अन्तस्त्वचिका का सबसे अन्दर का स्तर है और रम्भ के बाहर एक निश्चित वलय बनाता है। इसकी त्रिज्यक भित्तियां और प्रायः आन्तर-भित्तियां प्रचुर मात्रा में स्थूलित रहती हैं। अन्तस्त्वचिका की कोशिकाएं नालाकार होती हैं। इस स्तर में मार्ग कोशिकाएं आदि दारु के विपरीत पायी जाती हैं।

(४) मध्य परिचक्र—यह अन्तस्त्वचा के अन्दर स्थित एक वलयाकार स्तर है।

(५) संयोजि ऊतक—वाहिनी बंडलों के बीच में और चारों ओर स्थित मृदूतक संयोजि ऊतक कहलाता है।

(६) मज्जा—मूल के केन्द्रीय भाग में स्थित मृदूतकीय कोशिकाओं का पुंज मज्जा कहलाती है। अधिकतर एकबीजपत्री मूलों में यह सुविकसित रहती है। कुछ दशाओं में मज्जा स्थूल भित्ति वाली तथा लिग्निभूत हो जाती है।

(७) वाहिनी बंडल—दारु और फ्लोएम के समान संख्या के बंडल होते हैं, और ये वलय में विन्यस्त रहते हैं। इनका विन्यास त्रिज्यक (radial) होता है। बंडल संख्या में अधिक होते हैं। केवल कुछ अपवाद स्वरूप (exceptional) जड़ों में ये संख्या में सीमित होते हैं। दारु का विकास अभिकेन्द्र होता है। फ्लोएम बंडल चालनी नलिकाओं, सहकोशिकाओं और फ्लोएम मृदूतक का बना होता है। दारु बंडल आदि दारु तथा अनुदारु का बना होता है। आदि दारु मध्य परिचक्र से संसक्त रहता है, और अनुदारु केन्द्र की ओर। आदि दारु वलयाकार तथा सर्पिल वाहिनियों का, और अनुदारु जालिकावत् और गर्ती वाहिनियों का बना होता है। मज्जा में कुछ एकल तथा बड़ी वाहिनियां दिखाई दे सकती हैं।

१. द्विबीजपत्री और एकबीजपत्री मूलों में अन्तर

	द्विबीजपत्री मूल	एकबीजपत्री मूल
(१) दारु बंडल	संख्या में २ से ६ (द्वि से षट् रम्भ), बहुत कम दशाओं में अधिक	संख्या में अधिक (बहुरम्भ) बहुत कम दशाओं में ही सीमित संख्या में, जैसे प्याज में
(२) मज्जा	छोटी या अनुपस्थित	बड़ी और सुविकसित
(३) मध्य परिचक्र	पार्श्वमूलों तथा परवर्ती विभज्याओं (अर्थात् एधा और काग एधा) को जन्म देता है।	केवल पार्श्व मूलों को जन्म देता है।
(४) एधा	बाद में परवर्ती विभज्या के रूप में प्रतीत होता है।	सम्पूर्ण रूप से अनुपस्थित

पार्श्व मूलों का उद्‌गम (Origin of Lateral Roots; चित्र ४३०)—पार्श्व मूल के आन्तर स्तर से उद्‌गमित (originate) होते हैं, इसलिये इनको अंतर्जात
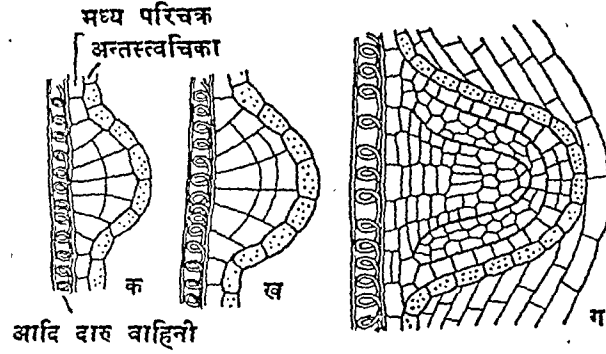
चित्र ४३०—पार्श्वमूल काउद्‌गमी। क, ख, और ग मध्य परिचक्र से निर्माण की अवस्थाएं हैं।

(endogenous) कहते हैं। यह आन्तर स्तर मध्य परिचक्र है। आदि दारु के विपरीत स्थित मध्य परिचक्र की कोशिकाएं स्पर्शीय रूप से, विभाजित (divide tangentially) होना आरम्भ करती हैं और इस प्रकार कुछ स्तर बन जाते हैं। वे अन्तस्त्वचा को बाहर की ओर ढकेलती हैं और अन्तस्त्वचिका से होते हुए वृद्धि करती हैं। इस अवस्था में मूल अग्रक के तीन प्रदेश, अर्थात् डर्मेटोजन या कैलिप्ट्रोजन, पेरिब्लम और प्लेरोम स्पष्ट दिखाई देते लगते हैं। अन्तस्त्वचिका की कुछ कोशिकाएं और अन्तस्त्वचा मूलछद (root-cap) का कुछ भाग बनाती हैं। लेकिन जैसे मूलछद भूमि में होकर गुजरता है यह भाग तुरन्त टूट जाता है, और मूलछद फिर से मूलछदजन से बनता है।

अध्याय ६

पत्तियों की आन्तरिक संरचना

(INTERNAL STRUCTURE OF LEAVES)

१. पृष्ठ-प्रतिपृष्ठी पत्ती (Dorsiventral Leaf; चित्र ४३१)

पत्तियां प्रायः क्षैतिज दिशा में वृद्धि करती हैं; इसलिये उनका ऊपरी तल निचले तल से बहुत अधिक प्रदीप्त (illuminated) होता है। इस प्रकार की पत्ती को पृष्ठ-प्रतिपृष्ठी पत्ती कहते हैं। इस असमान प्रदीप्ति के कारण पत्ती के ऊपरी तथा

(अ) लंब ऊतक मृदूतक प्रायः एक से दो या तीन स्तर लम्बी, लगभग वेलनाकार कोशिकाओं का वना होता हैं। इन कोशिकाओं का लम्ब अक्ष वाह्यत्वचा से लम्व कोण वनाता हैं और वे पास-पास मिले रहते हैं। इनमें अनेक हरिम कणक होते हैं जो कोशिका भित्ति से मिले हुए चारों ओर विन्यस्त रहते हैं। लंव-ऊतक मृदूतक का कार्य प्रकाश की उपस्थिति में, अर्थात् दिन में उनमें स्थित हरिम कणकों की सहायता से शर्करा तथा स्टार्च का निर्माण करना हैं।

(आ) स्पंजी मृदूतक अंडाकार, गोल या अधिकतर अनियमित कोशिकाओं का वना होता हैं, जो निचली वाह्यत्वचा के पास अवद्ध विन्यस्त रहते हैं। इनके वीच में अनेक वड़े, अन्तराकोशिक अवकाश और वायु विवर स्थित रहते हैं। लेकिन वे शिराओं या वाहिनी वंडलों के चारों ओर सटे हुए रहते हैं। इन कोशिकाओं में कुछ हरिम कणक होते हैं। स्पंजी कोशिकाएं अन्तराकोशिक अवकाशों के द्वारा गैसों के विसरण में सहायता करती हैं और कुछ हद तक वे स्टार्च तथा शर्करा के निर्माण में भी सहायता करती हैं।

(४) वाहिनी वंडल—जैसे-जैसे वे पत्ती के आधार से अग्रक या तट की ओर अग्रसर होते हैं आकार तथा अपने अवयवों की संख्या में घटते जाते हैं। प्रत्येक वाहिनी वंडल में ऊपरी वाह्यत्वचा की ओर दारु तथा निचली वाह्यत्वचा की ओर फ्लोएम होता है। दारु नाना प्रकार की वाहिनियों (विशेषकर वलयाकार और सर्पिल), दारु वाहिनिकियों, काष्ठ तन्तु और दारु मृदूतक का वना होता हैं। शिरा के अग्रक की ओर दारु में केवल कुछ वलयाकार और सर्पिल दारु वाहिनिकियां या केवल एक सर्पिल दारु वाहिनिकी होती हैं, और अन्य तत्व (अवयव) विलुप्त हो जाते हैं। दारु जल तथा अपक्व खाद्य पदार्थों को पत्ती के विभिन्न भागों में संवाहन तथा वितरण करता है। फ्लोएम कुछ संकरी चालनी नलिकाओं, सहकोशिकाओं तथा फ्लोएम मृदूतक का वना होता हैं। चोटी की ओर कुछ अविकसित चालनी नलिकाएं और सहकोशिकाएं दिखाई देती हैं। फ्लोएम निर्मित खाद्य पदार्थ को पत्रदल से वर्धन तथा संग्रह प्रदेशों तक पहुंचाता है।

पर्णवृन्त और वडी शिराओं के वाहिनी वंडल प्रायः दृढ़ोतक छाद से घिरे रहते हैं। यह छाद स्थूल भित्तिवाले रेशेदार कोशिकाओं का वना होता हैं, जो वाहिनी वंडल को सामर्थ्य प्रदान करते हैं। दृढ़ोतक वाहिनी वंडल को या तो पूर्णतः घेरे रहता हैं या यह केवल ऊपरी या निचले भाग या दोनों भागों के पास एक या दो अलग सिध्मों के रूप में रहता हैं। वाहिनी वंडल के आकार के घटने के साथ-साथ दृढ़ोतक भी उसी मात्रा में घटता जाता है और छोटे वंडलों में यह विलुप्त हो जाता है। प्रत्येक वंडल रंगहीन, मृदूतकीय कोशिकाओं के स्तर से परिवारित रहता हैं जिसको उपांत मृदूतक या वंडल छाद कहते हैं।

पत्तियों में दृढ़ोतक का बंटन बहुत अनियमित होता है। कभी-कभी यह आधार ऊतक में इधर-उधर गिम्ब बनाता है। कभी-कभी यह दो या अधिक वाहिनी बंडलों को मिलाता हुआ एक सतत प्रदेश बनाता है, या यह ऊपरी या निचली बाह्यत्वचा से बंडल तक फैला रहता है। अधिकतर यह दारु या फ्लोएम से सम्बन्धित एक गिम्ब के रूप में रहता है, या एक छाद के रूप में वाहिनी बंडल को घेरे रहता है और ऊपरी तथा निचले भाग में मोटा रहता है।

२. समद्विपार्श्व पत्ती (Isobilateral Leaf; चित्र ४३२)

अनेक एकबीजपत्री पौधों में पत्तियां लगभग ऊर्ध्व होती हैं। इसलिये वे दोनों पक्षों में लगभग बराबर प्रदीप्त होते हैं। इस प्रकार की पत्तियों को समद्विपार्श्व
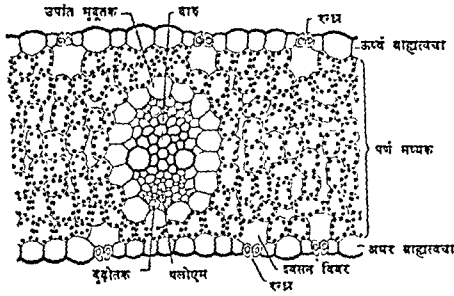
चित्र ४३२—एक समद्विपार्श्व पर्ण अनुप्रस्थ काट में, जैसा सूक्ष्मदर्शी के नीचे दिखाई देता है।

(isobilateral) कहते हैं। वे दोनों पक्षों में एक समान संरचना दिखलाते हैं। दोनों बाह्यत्वचाओं में रन्ध्र पाये जाते हैं, और पर्ण मध्यक प्राय खम्भ-ऊतक और स्पंजी मृदूतक में विभिन्न नहीं रहता, लेकिन केवल स्पंजी कोशिकाओं का बना होता है, जिनमें हरित कण एकसमान बंटित रहते हैं। स्पंजी कोशिकाओं के बदले पर्ण मध्यक केवल खम्भ-ऊतक कोशिकाओं का बना होता है। कभी-कभी पर्ण मध्यक में स्पंजी मृदूतक और दोनों तरफ खम्भ-ऊतक मृदूतक में विभिन्न रह सकता

अध्याय ७

स्थूलता में परवर्ती वृद्धि

(SECONDARY GROWTH IN THICKNESS)

१. द्विबीजपत्री स्तम्भ

वर्षानुवर्षी द्विबीजपत्री पौधों (क्षुप या वृक्षों) में प्राथमिक ऊतकों के पूर्ण रूप से वन जाने के बाद, एधा क्रियाशील हो जाती है और रम्भीय प्रदेश (stelar region) में नया (परवर्ती) ऊतक काटना प्रारम्भ कर देती है। जल्दी या देर में विभज्या की एक पट्टी, जिसे काग-एधा (cork-cambium) कहते हैं, परिमीय प्रदेश (peripheral region) में दिखाई पड़ती है और यह उस प्रदेश में अन्य परवर्ती ऊतक, अर्थात् काग, इत्यादि बनाना प्रारम्भ कर देती है। ये सब परवर्ती ऊतक प्राथमिक ऊतक के ऊपर बनते जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप स्तम्भ स्थूलता या मोटाई (thickness) में वृद्धि करता है। रम्भीय (stelar) और वाह्यरम्भीय (extra stelar) प्रदेश में क्रमशः एधा तथा काग-एधा द्वारा परवर्ती ऊतक बनने के कारण जो मोटाई या स्थूलता में वृद्धि होती है, उसको परवर्ती वृद्धि (secondary growth) कहते हैं।

(क) एधा की सक्रियता

एधा वलय (Cambium Ring)—संघाती एधा (fascicular cambium) की सक्रियता के साथ-साथ परवर्ती वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है, जो विभाजी होने के कारण वाहर और अन्दर दोनों ओर नई कोशिकाएं काटती है। यह देखा जाता है कि कुछ मज्जका रश्मि कोशिकाएं, अधिकतर संघाती एधा की सीध में, भी विभाजी हो जाती हैं, और अन्तःसंघाती एधा (interfascicular cambium) बनाती हैं। यह दोनों ओर वाहिनी बंडलों के संघाती एधा से मिल जाती है और एक पूर्ण वलय बनाती है, जिसको एधा वलय कहते हैं।

परवर्ती ऊतक—सम्पूर्ण एधा वलय सक्रिय हो जाती है और यह वाहर और भीतर की ओर नई कोशिकाएं बनाती है। जो कोशिकाएं वाहर की ओर कटती हैं फ्लोएम के अवयवों या तत्वों में परिवर्तित हो जाती हैं, और यह परवर्ती या परवर्धी फ्लोएम कहलाता है। इसमें प्राथमिक फ्लोएम के समान चालनी नलिकाएं, सहकोशिकाएं, और फ्लोएम मृदूतक होते हैं। बहुत सी दशाओं में बास्ट रेशे (bast fibres) भी बन जाते हैं। लेकिन अष्टि कोशिकाएं कम पायी जाती ह। व्यावसायिक महत्व के अनेक वस्त्र निर्माणी रेशे परवर्धी फ्लोएम और मध्य परिचक्र से प्राप्त होते हैं।

एधा द्वारा अन्दर की ओर कटी हुई नई कोशिकाएं शनैःशनैः दारु के तत्वों में परिवर्तित

हो जाती है, और ये परवर्ती दारु बनाते हैं। यह सोपानवत् और गर्ती वाहिनियों, दारु वाहिनिकियों, अनेक त्रिज्यक कतारों में विन्यस्त काष्ठ तन्तुओं, और कुछ दारु मृदूतक का बना होता है। एधा सदैव बाहर की अपेक्षा अन्दर की ओर अधिक सक्रिय होती है। इसलिये फ्लोएम की अपेक्षा दारु मात्रा में अधिक जल्दी बढ़ता है, और जल्दी ही गठा हुआ पुंज बना लेता है। परवर्ती वृद्धि के पश्चात यह पौधे के शरीर का मुख्य भाग बनाता है। परवर्ती दारु के अधिक बनने के कारण और इसके द्वारा दबाव पड़ने से एधा और फ्लोएम केन्द्र से दूर होते चले जाते हैं। प्राथमिक फ्लोएम कुचल जाता है और अकार्य हो जाता है। इसके अवशेष परवर्ती फ्लोएम के बाहर स्पर्शरेखीय रूप में (tangentially) फैले हुए दिखाई देते हैं। अन्य परिविस्थ ऊतक भी बहुत फैल जाते हैं। प्राथमिक दारु लगभग वैसा ही रहता है और मज्जा के बाहर पहचाना जा सकता है।

कहीं-कहीं पर एधा द्वारा बनाई गई नई कोशिकाएं अन्दर की ओर या बाहर की ओर या दोनों ओर, दारु तथा फ्लोएम के तत्वों में भिन्नित नहीं होती, लेकिन वे मृदूतकीय रहती हैं। तब वे त्रैज्य दिशा में मृदूतक के नियमित पट्टी बनाती हैं और परवर्ती दारु से परवर्ती फ्लोएम तक एधा से होते हुए सतत पट्ट सी फैली होती हैं। मृदूतक के ये सतत पट्ट परवर्ती मज्जका रश्मियां (secondary medullary rays) कहलाते हैं। ये मोटाई में एक या अधिक स्तर के होते हैं और एक से अनेक (कभी-कभी पन्द्रह तक) स्तर ऊंचाई में होते हैं। परवर्ती फ्लोएम में वे कोशिकाओं के विभाजन से फैलते हैं और लगभग एक कीप (funnel) सदृश्य दिखाई देते हैं। मज्जका रश्मियों की कोशिकाएं अधिकतर त्रैज्य रूप में दीर्घित रहती हैं।

वार्षिक वलय (Annual Rings ; चित्र ४३३-३४)—उन प्रदेशों में जहां जलवायु में काफी अन्तर होता है एधा की सक्रियता वर्ष भर एक समान नहीं होती। वसंत में या सक्रिय वर्षा ऋतु में जब हरी पत्तियों की उत्पत्ति और सक्रियता अधिक होती है तो रस के संवाहन की काफ़ी आवश्यकता होती है। इस कारण वर्ष के इस भाग में एधा अधिक सक्रिय होती है और चौड़े विवरों वाली वाहिनियां (बड़ी गर्ती वाहिनियां) अधिक संख्या में बनाती है। शरद ऋतु या अक्रिय काल में, जब रस के संवाहन की आवश्यकता कम होती है, एधा कम सक्रिय रहती है और सकरे परिमापों (dimensions) के (प्राय. सकरी गर्ती वाहिनिया, वाहिनिकियां और काष्ठ तन्तु) तत्व बनाती है। इसलिये वसन्त ऋतु में बने काष्ठ को वसन्त काष्ठ (spring wood) या पहले का काष्ठ और शरद ऋतु में बने काष्ठ को शरद काष्ठ (autumn wood) या बाद का काष्ठ कहते हैं। स्तम्भ के अनुप्रस्थ काट में ये दोनों प्रकार के काष्ठ, एक साथ एककेन्द्रीय वलयों के रूप में दिखाई देते हैं और इनको वार्षिक वलय (annual ring) या वृद्धि वलय (growth ring) कहते हैं, और प्रत्येक वर्ष क्रमिक वार्षिक वलय एधा की सक्रियता से बनते हैं। बाद के शरद काष्ठ और प्राथमिक वसन्त काष्ठ में

स्पष्ट भेद होता है, और इसके कारण क्रमिक वलय खाली आंख (naked eye) से ही स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक वृक्ष के तने में जो अनुप्रस्थ रूप में काटा गया हो (चित्र ४३३) वार्षिक वलय खाली आंख से आसानी से देखे जा सकते हैं। प्रत्येक वार्षिक वलय एक वर्ष की वृद्धि बताता है, और इसलिय वार्षिक वलयों को गिनकर पौधे की आयु का सन्निकट अनुमान लगाया जा सकता है, जैसे चीड़ के पेड़ में, किन्तु बहुत पौधों में वार्षिक वलयों की संख्या में अन्तर होता है। कुछ पौधों में बड़ी वसन्त वाहिनियां लगभग एक वलय में विन्यस्त रहती हैं, लेकिन कुछ पौधों में वे पूरे वसन्त काष्ठ में समान रूप से वितरित रहती हैं। क्रमिक वर्षों के वार्षिक वलय चौड़ाई में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। पेड़ों की वृद्धि की अनुकूल परिस्थितियों में चौड़ वलय बनते हैं, और जब परिस्थितियां प्रतिकूल होती हैं तो वलय संकरे होते हैं।

चित्र ४३३—स्तम्भ का कटा पृष्ठ जिसमें वार्षिक वलय दिखाई दे रहे हैं।
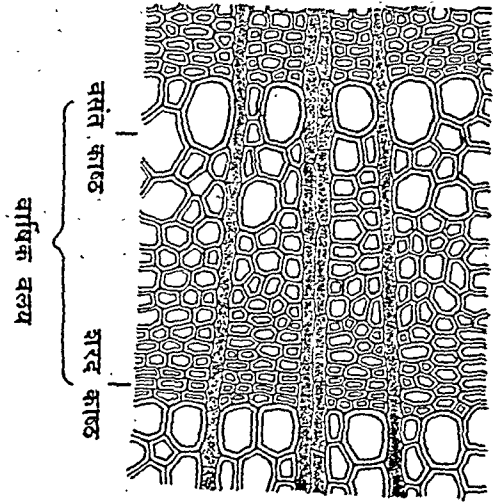
चित्र ४३४—एक वार्षिक वलय काट में (आवर्धित)।

अन्तः दारु या काष्ठ और रस दारु या काष्ठ (Heart-wood and Sap-wood)—पुराने वृक्षों में परवर्धी दारु का मध्य भाग टैनिन तथा अन्य पदार्थों से भरा रहता है, जो इसको कठोर और स्थायी बना देता है। इस प्रदेश को अन्तः दारु (heart-wood or duramen) कहते हैं। यह भाग टैनिन, तेल, गोंद, सर्जास, इत्यादि की उपस्थिति से काला दिखाई देता है। वाहिनियां प्रायः दारु वर्धों या गुहारुधों (tyloses) द्वारा रुंध (plugged) जाती हैं। ये दारु वर्ध बैलून सदृश अन्तर्वृद्धियां (ingrowths) हैं, जो आसन्न (adjoining) मृदूतक से गर्तों के आरपार विकसित

होती है। अब अन्तःकाष्ठ का कार्य जल का संवाहन नहीं रहता, लेकिन यह स्तम्भ को यांत्रिक सहारा देता है। परवर्ती दारु का बाहरी प्रदेश जो हल्के रंग का होता है रस-दारु (sap-wood or alburnum) कहलाता है। केवल यही जड़ से पत्तों तक जल तथा लवणों के विलयनों को संवाहन के काम आता है।

(ख) काग-एधा का उद्गम और सक्रियता

एधा द्वारा नये ऊतकों के बनने के कारण स्तम्भ की परिमा (periphery) के ऊतकों पर बहुत अधिक दबाव पड़ता है। इससे बाह्यत्वचा काफी फैल जाती है और इधर-उधर विदीर्ण (ruptured) हो जाती है, तथा यह शीघ्र ही नष्ट भी हो सकती है। किन्तु अधिकतर दशाओं में अन्तस्त्वचिका, कोशिका भित्तियों की प्रत्यास्थ (elastic) प्रकृति और कोशिकाओं के समायोजन शक्ति (power of accommodation) के कारण बहुत समय तक बनी रहती है। स्थूल कोणोतक और दृढ़ोतक स्पर्शरेखीय रूप में बहुत अधिक चिपिटित हो जाते हैं। परिमीय रक्षी ऊतकों, विशेषतया बाह्यत्वचा, को प्रतिस्थापन या संवलित करने के लिये इस प्रदेश में परवर्ती विभज्या की एक पट्टी उत्पन्न होती है, जिसको काग-एधा (cork-cambium or phellogen) कहते हैं। इस प्रकार अन्तस्त्वचिका की सबसे बाहरी स्तर विभाजी हो जाती है और काग-एधा को जन्म देती है। यह बाह्यत्वचा में या भीतरी स्तरों में भी उत्पन्न हो सकती है। एधा के समान यह भी विभाजित होने लगती है और दोनों ओर नई कोशिकाएं बनाती है।

परवर्धी अन्तस्त्वचिका—जो कोशिकाएं अन्दर की ओर काटी जाती हैं मृदूतकीय प्रकृति की होती हैं। इसको **परवर्धी अन्तस्त्वचिका या काग-त्वचा** (phelloderm) कहते हैं। परवर्ती अन्तस्त्वचिका की कोशिकाओं में प्रायः हरित कणक पाये जाते हैं और ये प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करते हैं। कभी-कभी वे मोटी भित्ति के होते हैं, लेकिन सैल्यूलोज के बने होते हैं और उनमें गर्त होते हैं। परवर्धी अन्तस्त्वचिका की कोशिकाएं कुछ पंक्तियों में विन्यस्त रहती हैं, और प्राथमिक अन्तस्त्वचिका के ऊपर जुड़ती हैं।

काग—सक्रिय काग-एधा द्वारा बाहर की ओर जो नई कोशिकाएं कटती हैं वे आकार में लगभग आयताकार होती हैं और शीघ्र ही त्वक्षि युक्त (suberized) हो जाती हैं, वे पौधे का काग बनाती हैं। काग बाज (*Quercus suber*) में काग बहुत मोटा होता है, और इससे बोतल के काग बनते हैं। जब यह काग पेड़ से निकाल लिया जाता है तो अन्तःस्थित काग एधा द्वारा काग की एक नई पट्टी बन जाती है। काग कोशिकाएं मृत, त्वक्षि युक्त और स्थूल भित्ति वाली होती हैं। वे कुछ त्रैज्य पंक्तियों में विन्यस्त रहती हैं, और उनके बीच में अन्तराकोशिक अवकाश भी नहीं पाये जाते

उनका रंग प्रायः भूरा होता है। त्वक्षि युक्त होने के कारण काग जल के लिये अपारगम्य है, इसलिये यह वाहरी ऊतकों के जल तथा खाद्य पदार्थों के प्रदाय (supply) को
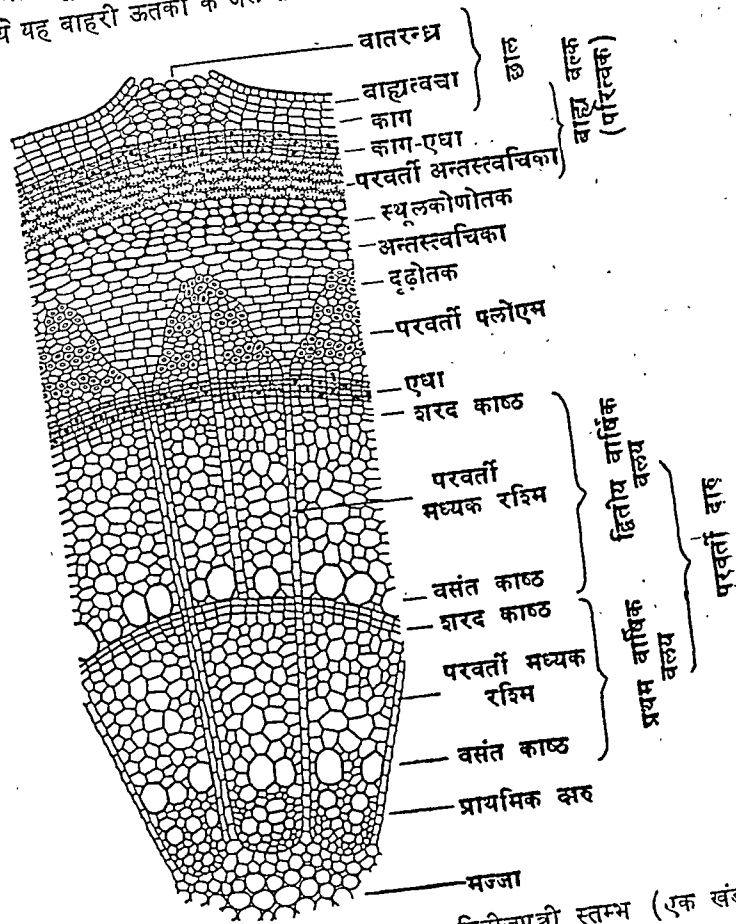
चित्र ४३५—एक दो वर्ष पुराना द्विबीजपत्री स्तम्भ (एक खंड) अनुप्रस्थ काट में जिसमें स्थूलता में परवर्ती वृद्धि दिखाई गई है।

काट देता है। इस कारण वे शीघ्र ही मर जाते हैं और पौधे के छाल (bark) का काम करते हैं।

परिमीय प्रदेश (peripheral region) में वने हुए सब नई कोशिकाओं, अर्थात् काग, काग-एधा, परवर्ती अन्तस्त्वचिका या काग त्वचा को एक साथ मिलकर बाह्य वल्क (periderm) के नाम से पुकारते हैं।

छाल—सक्रिय काग-एधा के बाहर की सभी मृत कोशिकाएं मिलकर पौधे की छाल को बनाते हैं। इसलिये इसके अन्तर्गत बाह्यत्वचा, वातरन्ध्र और काग, तथा कभी-कभी अधस्त्वचा तथा अन्तस्त्वचिका का एक भाग सम्मिलित है। यह काग-एधा की स्थिति पर निर्भर होता है, अर्थात् काग-एधा का उद्गम जितना गहरा होता है उतनी ही छाल अधिक मोटी होती है।

जब काग-एधा एक सम्पूर्ण वलय के रूप में उत्पन्न होती है, तो जो छाल बनती है एक पर्त के रूप में निकल आती है। इस प्रकार की छाल को वलय-छाल (ring-bark) कहते हैं, जैसे भोजपत्र (*Betula*) में। जब यह पट्टियों के रूप में उत्पन्न होती है तो जो छाल बनती है शल्कों के रूप में निकलती है, इसलिये इसको शल्क-छाल (scale-bark) कहते है, जैसे अमरूद में। छाल का कार्य रक्षा करना है।

वातरन्ध्र (Lenticels ; चित्र ४३६)—ये छाल में वाताय रन्ध्र है, जिनके द्वारा गैसों का विनिमय होता है। बाहर से वे स्तम्भ के सतह पर दाग या छोटे उद्वर्ध के समान दिखाई देते हैं। इस दाग से होते हुए एक काट (section) में दिखाई देता है कि वातरन्ध्र छोटी, पतली भित्ति वाली कोशिकाओं के अवद्ध पुंज का बना होता है। इनको संपूरक कोशिकाएं (complementary cells) कहते हैं। प्रत्येक वातरन्ध्र में काग-एधा, काग कोशिकाओं की सुमहृत पंक्तियों को बनाने के बजाय, प्रायः अंडाकार या गोल कोशिकाओं को बनाती है, जो अवद्ध रूप से विन्यस्त रहती है, और इनके बीच में कई अन्तराकोशिक अवकाश छूट जाते हैं। सामान्यतः वातरन्ध्र रन्ध्र के नीचे विकसित होते हैं, और जैसे-जैसे इनकी कोशिकाएं संख्या तथा आकार में वृद्धि करती है तो बाह्यत्वचा विदीर्ण हो जाती है। इस प्रकार वायुमंडल तथा पौधों की आन्तरिक कोशिकाओं में आवागमन स्थापित हो जाता है। तब वातरन्ध्रों के द्वारा गैस आसानी से आ जा सकती है। गैसों के विसरण को सरलीकरण करने के लिये काग तथा काग-एधा के ऊपर तथा नीचे विभिन्न पंक्तियों के बीच में खाली स्थान छूट जाते हैं। शरद ऋतु में काग के बनने के कारण वातरन्ध्र बन्द हो जाते हैं, लेकिन जब नया सक्रिय मौसम आता है तो यह विदीर्ण हो जाता है।

चित्र ४३६—एक वातरन्ध्र, जैसा अनुप्रस्थ काट में दिखाई देता है।

काग तथा छाल के कार्य—काग तथा छाल पौधे के रक्षी ऊतक हैं। पर्य

जल के वाष्पन को रोकना, पौधे के शरीर को वाह्य ताप की विभिन्नताओं से बचाना और पराश्रयी कवकों तथा कीटों के आक्रमण से उसकी रक्षा करना है।

(१) काग—क्षुप तथा वृक्षों में किसी न किसी समय वाह्यत्वचा मजबूत बन जाती है या कभी-कभी काग से प्रतिस्थापित हो जाती है, और तब यह वाह्यत्वचा का कार्य करता है। यह प्रधानतः रक्षी ऊतक है। काग वाह्यत्वचा से हमेशा अधिक मोटा होता है, इसलिये यह वाह्यत्वचा से अधिक रक्षा कर सकता है। इस प्रकार नीचे स्थित काग-एधा द्वारा काग का नवकरण (renewal) निश्चित रूप में लाभदायक है। सब काग कोशिकाएं त्वक्षि युक्त होती हैं और इस प्रकार यह स्तम्भ का जलसह आवरण (waterproof covering) का कार्य करती हैं। इस प्रकार वाष्पन द्वारा जल की क्षति रुक जाती है, या वहुत कम हो जाती है। काग ऊतक पौधों को पराश्रयी कवकों और कीटों के आक्रमण से भी रक्षा करता है। काग कोशिकाएं मृत व खाली होने के कारण केवल वायु से भरे रहते हैं। इसलिये वे ऊष्मा के निकृष्ट संवाहक (bad conductors) होती हैं। इस कारण वाह्य ताप का आकस्मिक परिवर्तन पौधों के आन्तरिक ऊतकों पर प्रभाव नहीं डालती। काग पौधों द्वारा घावों को भरने के काम भी आता है।

(२) छाल—छाल मृत ऊतकों का पुंज है जो पौधों के शरीर में परिमीय प्रदेश में स्थित एक कठोर शुष्क आवरण है, और इसका कार्य भी रक्षा करना है। यह आन्तरिक ऊतकों की कवकों और कीटों के आक्रमण से रक्षा करता है। यह वाष्पन द्वारा जल की क्षति को रोकता है, और वाह्यताप की विभिन्नताओं से पौधे की रक्षा करता है। वहुत से पौधों में छाल निकल आती है और तब यह सब कार्य काग वाले भाग द्वारा किया जाता है।

रक्षी ऊतक (Protective Tissues)—यह ध्यान देने योग्य वात है कि पौधों में तीन ऊतक होते हैं, अर्थात् (१) वाह्यत्वचा, (२) काग, (३) छाल, जो विशिष्ट रूप से रक्षा के हेतु विकसित होते हैं। पौधों की आरम्भिक अवस्था में केवल वाह्यत्वचा रक्षा करती है, किन्तु कुछ क्षुपों और वृक्षों में वाद में वाह्यत्वचा के साथ-साथ या उसके स्थान पर काग और छाल उसी कार्य के लिये उत्पन्न हो जाते हैं।

भाग ३

कायिकी या क्रिया-विज्ञान (PHYSIOLOGY)

अध्याय १

सामान्य विचार

कायिकी का जीवन के विविध कार्यों से संबंध होता है, जैसे खाद्य पदार्थ की रचना, जीवद्रव्य का पोषाहार, काय या शरीर का अभिनिर्माण, श्वसन, उपापचयन (metabolism), प्रजनन, वृद्धि, गति, आदि। ये सभी जीवकर कार्य जीवद्रव्य द्वारा सम्पादित होते हैं जो पौधों और जन्तुओं, दोनों ही का जीवित पदार्थ है। जीवद्रव्य की क्रियाशीलता और जीवन के संधारण करने (maintain) के लिये प्राथमिक आवश्यक वस्तुएं जल, वायु, आहार, ऊष्मा (heat) और प्रकाश हैं।

जल—जल (पृष्ठ १७ भी देखिये) जीवद्रव्य की बहुमुखी क्रियाशीलताओं के लिये अत्यावश्यक वस्तु है। सक्रिय अवस्था में जीवद्रव्य में सदा अधिक प्रतिशत—७५-९५ प्रतिशत-जल विद्यमान रहता है। इसके अतिरिक्त भूमि से अकार्बनिक पदार्थ भी तनु विलयन के रूप में अवशोषित होते हैं; निर्मित खाद्य पदार्थ जल के माध्यम द्वारा पौध के शरीर में यात्रा करते हैं; इसी तरह गैसें भी विलयन रूप में जीवद्रव्य तक पहुंचती हैं और पौधे के शरीर में अनेक रासायनिक परिवर्तन विलयन रूप में सम्पन्न होते हैं।

वायु—वायु पौधे के लिये दूसरी आवश्यक वस्तु है। वायु में विद्यमान गैसों में से पौधा साधारणतया केवल आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड प्रयुक्त करता है। पौधे को श्वसन के लिये आक्सीजन और खाद्य के निर्माण के लिये कार्बन डाइआक्साइड की आवश्यकता होती है।

खाद्य—जीवद्रव्य को भी उसके पोषाहार के लिये खाद्य आवश्यक होता है। सब सजीव प्राणियों के लिये वह प्राथमिक आवश्यकता है, किन्तु जन्तुओं के विपरीत पौधे वायुमंडल तथा भूमि से अवशोषित कच्चे या अकार्बनिक पदार्थों से अपना निजी खाद्य निर्मित करते हैं।

ऊष्मा—जीवद्रव्य की सक्रियता के संधारण करने और पौधे के शरीर में संचालित रहने वाले सब जीवकर प्रक्रमों के लिये ऊष्मा की कुछ निश्चित मात्रा आवश्यक है। कुछ निश्चित सीमाओं तक जितना ही उच्चतर ताप होगा, जीवद्रव्य की सक्रियता उतनी ही अधिक होगी। विभिन्न कार्यों के लिये विभिन्न

कणों के दीर्घ अंतरालों (interspaces) द्वारा सरलतया जल रिसने के कारण यह जल्दी सूख जाती है और प्रायः सूखी पड़ी रहती है। इस मिट्टी में केशिकत्व की न्यूनता होती है। यह मिट्टी सदा हल्की होती है। **दुमट** (loam) मिट्टी प्रबल पादप वृद्धि के लिये सर्वोत्तम मिट्टी है और कृषि-सम्बन्धी फसलों के लिये अत्यधिक उपयुक्त होती है क्योंकि उसमें सब आवश्यक भौतिक अवस्थायें—उत्कृष्टतर वातन के लिये सरन्ध्रता (porosity), अतिरिक्त जल के लिये अधोमुख गति कर सकने के लिए रिसना (percolation), और अवभूमि (sub-soil) जल की ऊर्ध्वमुख गति के लिये केशिकत्व–विद्यमान रहते हैं। साथ ही इसमें पादप खाद्य भी यथेष्ट रहता है। मिट्टी के उपर्युक्त अवयवों के अनुपात का सन्निकट निर्धारण एक बीकर में मिट्टी के एक छोटे डले को विलोडित (stirring) करने से कर सकते हैं जिसमें जल की अतिरिक्त मात्रा मिला दी गई हो और उसके बाद उस अन्तर्वस्तु (contents) को मापन सिलिंडर में उंड़ेल दिया जाय। जब उसे स्थिर होने दिया जाय तो देखा जायगा कि रेत कण पेंदे में संचित हो जाते हैं, सिल्ट उसके कुछ ऊपर, और चिकनी मिट्टी ऊपरी सिरे पर स्पष्ट तहों के रूप में जम जाती है। तथापि चिकनी मिट्टी का कुछ अंश पानी में आलंबित (suspended) रहता है। उसके बाद उनके अनुपातों को निर्धारित कर प्रतिशत की गणना कर ली जाती है। ह्यूमस या अगलित जीवांश (humus) अधिकांशतः जल पर तैरता है। जल की अम्लता (acidity) और क्षारीयता (alkalinity) की परीक्षा लिटमस कागज द्वारा की जा सकती है।

रासायनिक प्रकृति--रासायनिकतया मिट्टी में विभिन्न प्रकार के अकार्बनिक लवण, जैसे पोटासियम (potassium), कैल्सियम (calcium), मैग्नीसियम (magnesium), सोडियम (sodium) और लोहा (iron), तथा विरल तत्वों (trace-elements) में से बोरॉन (boron), मैंगनीज (manganese), ताँबा (copper), जस्ता (zinc) और ऐल्यूमिनियम (aluminium), आदि के नाइट्रेट, सल्फेट, फॉस्फेट, क्लोराइड और कार्बोनेट, आदि विद्यमान रहते हैं। तथापि, अधिकांश तत्व मिट्टी में ऑक्साइडों (oxides) के रूप में ही रहते हैं, जो प्रायः बहुत ही न्यून, १ से भी कम प्रतिशत में रहते हैं; विरल तत्व अधिकांशतः ०.००२ से ०.०००१ प्रतिशत में होते हैं। कार्बनिक यौगिकों की एक निश्चित मात्रा, मुख्यतः प्रोटीन और उनके विघटन पदार्थ, जो मिट्टी के जीवाणुओं और कवकों द्वारा ऑक्सीकरण (oxidation) के परिणाम स्वरूप जन्तुओं और पौधों के मृत शरीरों के वर्ज्य पदार्थ (waste product) से उत्पन्न होते हैं, मिट्टी में विद्यमान रहते हैं। ह्यूमस (मिट्टी में झड़ी पत्तियों और पौधों के मृत भागों से जीवाणु तथा कवक की सक्रियता के

परिणाम स्वरूप निर्मित क्षयज कार्बनिक पदार्थ) में कार्बनिक खाद्य की एक निश्चित मात्रा विद्यमान रहती है। मिट्टी में पादप खाद्य की प्राप्यता (availability) की अपेक्षा मिट्टी की अम्लता तथा क्षारीयता कम महत्वपूर्ण नहीं होती। चूने (कैल्शियम कार्बोनेट) की उच्च मात्रा वाली मिट्टियां क्षारीय होती हैं और ह्यूमस की उच्च मात्रा वाली मिट्टियां अम्लीय होती हैं। तथापि, स्थिति के अनुरूप इनमें से किसी एक के मिलाने से ये परिस्थितियां परिवर्तित हो सकती हैं। अधिकांश खेती की फसलों के लिये थोड़ी सी अम्लीय मिट्टी अच्छी होती है। कुछ फसलें उदासीन (neutral) मिट्टी में अच्छी तरह उगती हैं। इसके विपरीत केला सदृश कुछ फसलों के लिये अम्लीय मिट्टी ही ठीक होती है। चूने (कैल्सियम कार्बोनेट) की कुछ निश्चित मात्रा युक्त मिट्टी चूर्णमय या चूना मिट्टी (calcareous) कहलाती है। ऐसी मिट्टी में चूने की विद्यमानता परखने के लिये यदि इसके थोड़े से नमूने में सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (strong hydrochloric acid) मिला दें तो इसमें नंगी आंख से या गोह लेंस से उसमें बुदबुदन (effervesence) दिखाई पड़ेगा।

भूमि जल या मिट्टी जल (Soil Water)—मिट्टी में विभिन्न मात्रा में पानी विद्यमान रहता है जिसमें एक निश्चित मात्रा में अनेक रासायनिक यौगिक विलीन (dissolved) रहते हैं। अकार्बनिक यौगिक मूलतः चट्टानों से और कार्बनिक यौगिक पादप तथा जन्तु अवशेषों (residues) से व्युत्पन्न (derived) होते हैं।

मिट्टी वायु (Soil Air)—वायु, जो स्पष्टतः मिट्टी के कणों के मध्यस्थ अंतरालों में काफी अधिक अनुपात में आक्सीजन विद्यमान रखती है, बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि वह मूलों और अनेक भूमि जीवों, जैसे वातजीवी जीवाणुओं, कवकों, प्रोटोजोआ, केंचुआ आदि के सामान्य श्वसन में सहायता पहुंचाती है और उनकी सक्रियता (activity) संचारित रखती है। चिकनी मिट्टी की प्रचुरता वाली उपरोधित (clogged) भूमि में ये अंग और जीव पीड़ित रहते हैं।

भूमि जीव (Soil Organisms)—मिट्टी में अनेक प्रकार के जीवाणु विद्यमान रहते हैं। कभी-कभी तो, विशेषतया कार्बनिक पदार्थों के क्षेत्रों में, ये प्रति ग्राम मिट्टी में लाखों तक की संख्या में रहते हैं, और उनमें से अनेक मिट्टी की उर्वरता के लिये लाभकारी अभिकर्ता (agents) होते हैं। नाइट्रीकारी (nitrifying) जीवाणु मृत पौधों और जन्तुओं के प्रोटीनों को नाइट्रेटों के रूप में रूपान्तरित करते हैं और यह एक तथ्य है कि यदि ऐसे जीवाणुओं की सक्रियता का अभाव होता तो प्रोटीनें उसी प्रकार ही भूमि में निष्प्रयोजन फंसी पड़ी रहती। इसके अतिरिक्त नाइट्रोजन विनिवेशक (nitrogen-fixing) जीवाणु, ऐमोनियाकारी (ammonifying) जीवाणु, गंधक जीवाणु तथा अन्य अनेक रूपों के जीवाणु मिट्टी में होते हैं। मिट्टी में

कवक (fungi) भी, विशेषतया अम्लीय मिट्टी में जीवाणुओं को प्रतिस्थापित कर बहुसंख्यक रहते हैं। जीवाणुओं के सदृश वे भी प्रोटीनों के विघटन में उपयोगी अभिकर्ता होते हैं। मिट्टी में अनेक शैवाल (algae) भी रहते हैं। यह अब निश्चित रूप से ज्ञात है कि नील-हरित-शैवाल (blue-green algae) में से अनेक वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मिट्टी में विनिवेशित करते हैं। भूमि जीवी जन्तुओं में अनेक प्रोटोज़ोआ, केंचुआ और चूहे आदि जंतु मिट्टी के स्थानान्तरण में सहायक अभिकर्ता होते हैं। बिल बनाकर रहने वाले जन्तु उत्कृष्टतर वातन (aeration) और जल के रिसने (percolation) के लिये मिट्टी को अदृढ़ बनाते हैं।

ह्यूमस या अगलित जीवांश—ह्यूमस अनेक मिट्टियों में विद्यमान एक काले से रंग का पदार्थ है। इसमें कार्बनिक पदार्थ, मुख्यतः प्रोटीनों से संयुक्त सैलूलोज (cellulose) और लिग्निन (lignin), विघटन की अनेक अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं, जो अनेक प्रकार के मिट्टी के जीवाणुओं और कवकों की सक्रियता द्वारा मृत मूलों, तनों, शाखाओं और पत्तियों से बनते हैं। ह्यूमस सामान्यतः एक पृष्ठ स्तर (surface layer) निर्मित करता है। कभी-कभी यह कुछ गहरा भी होता है, जैसे जंगलों और दलदलों में। यह रासायनिक और भौतिक दोनों ही रूपों में पौधों के लिये यथेष्ट महत्व का होता है।

उर्वरक या रासायनिक खाद (Fertilizers)—साधारणतया पौधों के लिये आवश्यक लवण मिट्टी में विद्यमान रहते हैं। तथापि कभी किसी न किसी में उसकी न्यूनता (deficiency) होती है और इस न्यूनता की पूर्ति के लिये उर्वरकों या खादों का उपयोग आवश्यक हो जाता है। उर्वरक कुछ निश्चित रासायनिक पदार्थ हैं जो मिट्टी में उचित प्रकार से मिलाने से उसे उर्वर बनाते हैं, अर्थात् उसे अधिक प्रचुरता से उत्पादन करने में समर्थ बनाते हैं। अधिक उत्तम फसलों के उत्पादन के लिये खेत में खाद डालना निम्नांकित तीन विधियों में से किसी एक के द्वारा किया जा सकता है। (१) कृत्रिम खाद डालने की क्रिया मिट्टी में विशेष रासायनिक यौगिक या उपयुक्त अनुपात में उनके मिश्रण मिलाने से की जा सकती है। साधारणतया मिट्टी में पोटाँश (potash), फ़ॉस्फ़ोरस (phosphorus) और नाइट्रोजन (nitrogen) की मात्रा न्यून हो जाती है। इसलिये इन तत्वों के विलेय यौगिक उर्वरकों के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। (२) गोवर की खाद (farmyard manure) डालने की क्रिया मिट्टी में गोवर और कार्बनिक कचरा (refuse) के मिलाने से होती है। (३) प्राकृतिक खाद देने की क्रिया फसलों के हेरफेर या सस्य चक्र (rotation of crops) द्वारा की जाती है।

अध्याय ३

पौधों की रासायनिक रचना

(CHEMICAL COMPOSITION OF THE PLANT)

पादप काय (plant body) की रचना में जो विभिन्न तत्व होते हैं उनका निर्धारण रासायनिक विश्लेषणों (chemical analyses) द्वारा किया जाता है, और जो तत्व पौधों के लिये प्रधान रूप से आवश्यक हैं उनका निर्धारण द्रव संवर्धन प्रयोगों (water culture experiments) से किया जाता है।

१. रासायनिक विश्लेषण

पौधे के रासायनिक विश्लेषणों द्वारा हम उन विभिन्न तत्वों को ज्ञात कर सकते हैं जो उसकी रचना में लगे हैं। इस कार्य के लिए पौधे का एक प्रतिनिधि निदर्श (representative sample) लिया जाता है और उसको ११०° सें० पर शुष्कित किया जाता है। इस प्रकार पौधे मे जितना पानी रहता है निकाल दिया जाता है। फिर सावधानी से तोल कर पौधे के पूर्ण भार से उसके पानी का अनुपात ज्ञात किया जाता है। सामान्य तौर पर पौधो में पानी का उच्च प्रतिशत रहता है—काष्ठीय भागों में लगभग ५० प्रतिशत, कोमल भागों में लगभग ७५ प्रतिशत, सरस भागों में ८५ से ९५ प्रतिशत तक और जलीय पौधों में ९५ से ९८ प्रतिशत तक। जब पौधा झुलसाया (charred) जाता है तो हमको लकड़ी का कोयला प्राप्त होता है। इस लकड़ी के कोयले का प्रधान अंश कार्बन है; वास्तव में, पौधे का लगभग आधा शुष्क भार कार्बन है। शुष्कित पौधा फिर एक ज्वाला में लगभग ६००° सें० पर सावधानी से जलाया जाता है। इस प्रकार जलाने पर कार्बनिक यौगिक, जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, तेल व वसा इत्यादि, दहनशील होने के कारण कार्बन डाइआक्साइड, जल वाष्प, सल्फर डाइआक्साइड, ऐमोनिया और स्वतन्त्र नाइट्रोजन में परिवर्तित हो जाते हैं, और बाहर निकल जाते हैं। इन गैसों को उपयुक्त विधियों से एकत्र किया जा सकता है और उनकी रचना का अध्ययन किया जा सकता है। प्रोटीनों का जब विश्लेषण किया जाता है तो उनमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन और प्राय. गन्धक और फास्फोरस मिलते हैं, कार्बोहाइड्रेटों और तेलों तथा वसाओं में केवल कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन रहते हैं। ऊपर लिखित शोधन के पश्चात जो अवशेष रह जाता है उसमें केवल अकार्बनिक यौगिक रहते हैं जो अदहनशील हैं और भस्म या राख (ash) कहलाता है। विभिन्न पौधों में और एक ही पौधे के विभिन्न भागों में राख का प्रतिशत विभिन्न होता है, लेकिन यह साधारणतः १%—१५% के

अन्दर रहता है। राख के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्रकृति में पाये जाने वाले ९२ मुख्य तत्वों में से लगभग ४०, या कदाचित अधिक राख में विद्यमान हैं। इनमें से अधिकांश तत्व बहुत सूक्ष्म मात्रा में रहते हैं और उनकी विद्यमानता भी स्थिर नहीं है। तथापि निम्नलिखित तत्व पौधे की राख में अचर रहते हैं, यद्यपि वे विभिन्न पौधों में विभिन्न अनुपात में रहते हैं: धातुओं में पोटासियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम, लोहा और सोडियम, तथा अधातुओं में गन्धक, फास्फ़ोरस, क्लोरीन, और सिलिकॉन। इसके अतिरिक्त राख में कुछ अन्य तत्व केवल लेशमात्र रहते हैं: वे बोरॉन, मैंगनीज, जस्ता (zinc), तांबा (copper), मोलिब्डिनम और ऐल्यूमीनियम हैं। ये विरल तत्व कहलाते हैं।

पौधों के रासायनिक विश्लेषणों (दहनशील पदार्थों और राख को शामिल करके) से ज्ञात होता है कि विभिन्न तत्व जो इसमें पता लगाने योग्य और नापने योग्य मात्रा में पाये जाते हैं निम्नलिखित १३ तत्व सब पौधों में अचर हैं: धातुओं में पोटासियम, कैल्सियम, मैग्नीसियम, लोहा और सोडियम, तथा अधातुओं में कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, गंधक, फ़ास्फ़ोरस, क्लोरीन, सिलिकॉन। इसके अतिरिक्त कुछ विरल तत्व जो हरे पौधों में अचर हैं ये हैं: बोरॉन, मैंगनीज, जस्ता, तांबा, और मोलिब्डिनम। ऐल्यूमीनियम भी कई पौधों में पाया जाता है। पादप काय की औसत रासायनिक रचना इस प्रकार दी जा सकती है:

कार्बन	..	४५.०%
आक्सीजन	..	४२.०%
हाइड्रोजन	..	६.५%
नाइट्रोजन	..	१.५%
राख	..	५.०%
		१००%

२. द्रव संवर्धन प्रयोग

द्रव संवर्धन प्रयोगों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि ऊपर लिखे हुए १० तत्व पौधों के पोषाहार के लिये आवश्यक हैं। इन प्रयोगों में कुछ पौद या बीजांकुर (seedlings) पानी में उगाए जाते हैं जिसमें कुछ ज्ञात लवण निश्चित मात्रा में मिले होते हैं और पौधों की वृद्धि तथा विकास के संबंध में उन पर पड़े प्रभाव को अध्ययन किया जाता है। द्रव संवर्धन प्रयोग हमें यह निश्चित करने में समर्थ बनाता है कि (१) पौधों की स्वस्थ वृद्धि के लिये आवश्यक तत्व कौन हैं, (२) किन रूपों में वे सर्वोत्तम रूप से लिये जा सकते हैं, (३) इन तत्वों का क्या विशेष पोषक मूल्य होता है। नौप (Knop) ने सामान्य संवर्धन विलयन, अर्थात्

बीजांकुर की सामान्य वृद्धि के लिये आवश्यक विलयन, तैयार करने के लिये निम्नलिखित संघटन दिया है, अन्य विभिन्न संघटनों के संवर्धन विलयनों का भी उपयोग किया गया है।

नोप का सामान्य संवर्धन विलयन (Knop's normal culture solution)

पोटासियम नाइट्रेट, KNO_3	..	१ ग्राम
अम्ल पोटासियम फ़ॉस्फ़ेट, KH_2PO_4	..	१ ग्राम
मैग्नीसियम सल्फ़ेट, $MgSO_4$	..	१ ग्राम
कैल्सियम नाइट्रेट, $Ca(NO_3)_2$	..	४ ग्राम
फ़ेरिक क्लोराइड विलयन, $FeCl_3$	..	कुछ बूंदें
जल ..	..	१,००० घन सेमी.

यह ०.७% सान्द्रता का संचित विलयन (stock solution) है। ०.१% विलयन बनाने के लिये जो संवर्धन विलयन प्रयोगों के लिये उपयुक्त होता है इस संचित विलयन में ६,००० घन-सेंटिमीटर जल मिला दें।

प्रयोग १—द्रव संवर्धन प्रयोग—इन प्रयोगों में एक आकार और रूप की ही बोतलों या जारों की श्रेणी, जिनमें प्रत्येक पर क्रमशः क, ख, ग, घ आदि चिह्न अंकित होते हैं, एक ही प्रकार और न्यूनाधिकतया एक ही आकार के उपयुक्त संख्या के बीजांकुर, और ज्ञात संघटन के संवर्धन विलयन आवश्यक वस्तुएं हैं। (क) बोतल में सामान्य संवर्धन विलयन भर लिया जाता है। (ख) बोतल में वही किन्तु पोटासियम लवण (potassium salt) रहित संवर्धन विलयन भरा जाता है। (ग) बोतल में वही किन्तु कैल्सियम लवण (calcium salt) रहित संवर्धन विलयन, (घ) बोतल में वही किन्तु मैग्नीसियम लवण (magnesium salt) रहित संवर्धन विलयन तथा (ङ) बोतल में वही किन्तु लोह लवण (iron salt) रहित संवर्धन विलयन भरा है।
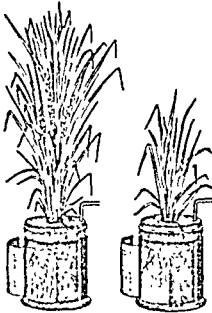
चित्र ४३७—द्रव संवर्धन प्रयोग, बायें, सामान्य विलयन में, दाहिने, उसी में एक आवश्यक तत्वरहित।

इस प्रकार इस से अधिक संख्या की बोतलें भी व्यवस्थित की जा सकती हैं जिनमें से प्रत्येक में एक विशेष तत्व रहित संवर्धन विलयन भरा हो। एक चिरे (split) काग के मध्य से प्रत्येक बोतल में एक बीजांकुर स्थापित कर दिया जाता है और जड़ों के उचित वातन के लिये व्यवस्था की जाती है। यह वांछित है कि संवर्धन विलयन का पाक्षिक नवीकरण किया जाय। जब कुछ दिन तक वृद्धि हो चुकती है तो यह देखा जाता है कि (क) बोतल के बीजांकुर की वृद्धि सामान्य है, (ख) बोतल के बीजांकुर की पत्तियों का रंग नष्ट हो जाता है और बीजांकुर मुरझा जाता है; (ग) बोतल के बीजांकुर की पत्तियां पीली सी पड़ जाती हैं और मूल तंत्र का उचित विकास नहीं होता; (घ) बोतल के बीजांकुर में पर्णहरिम का निर्माण नहीं होता और (ङ) बोतल में बीजांकुर अहरिमता युक्त (chlorotic) हो जाता है। इस प्रकार प्रगति करने से अंततः यह निष्कर्ष निकलता है कि पौधे की सामान्य वृद्धि के लिये पोटासियम, कैल्सियम, मैग्नीसियम, लोहा और हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, गंधक और फ़ॉस्फ़ोरस उपयुक्त विलेय यौगिकों के रूप में आवश्यक होते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि स्वतंत्र आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड वायु से प्राप्त होते हैं।

सारभूत और असारभूत तत्व (Essential and Non-essential Elements)

पौधे के रासायनिक विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि उसमें तत्वों की एक लम्बी सूची पायी जाती है, जब कि संवर्धन प्रयोगों से सिद्ध होता है कि सब पौधों की सामान्य वृद्धि के लिये दस तत्व (कार्बन को शामिल करते हुये जो वायु से प्राप्त होता है) सारभूत है। विरल तत्वों में से बोरॉन, मैंगनीज, जस्ता, तांबा, और मोलिब्डिनम भी अब सारभूत समझे जाते हैं। अतः कुल तत्वों की संख्या जो अब सारभूत समझे जाते हैं १५ है। अन्य तत्व जो पादप काय में पाये जाते हैं असारभूत हैं। तथापि यह नोट कर लेना चाहिये कि कुछ पौधों को अपनी सामान्य वृद्धि के लिये १५ सुस्थापित तत्वों के अतिरिक्त एक या अधिक तत्वों की भी आवश्यकता होती हैं।

तत्वों का वर्गीकरण

सारभूत	:	धातु—पोटासियम, कैल्सियम, मैग्नीसियम और लोहा।
		अधातु—कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, गन्धक और फ़ॉस्फ़ोरस।
असारभूत	:	धातु—सोडियम।
		अधातु — क्लोरीन और सिलिकॉन।

विरल (मात्रभूत) : धातु — मैंगनीज, जस्ता, तांबा और मोलिब्डिनम।
अधातु — बोरोन।

पौधों के शरीर में विभिन्न तत्वों द्वारा संपन्न कार्य

(१) पोटासियम—यह पौधे के वर्धन प्रदेशों में प्रचुरतः पाया जाता है। यह मारभूततः जीवद्रव्य का एक रचक (constituent) है और उसकी जीवकर क्रियाओं से निकटतया संबंधित होता है। तथापि, यह उसके नाभिक (nucleus) और आदिलवों (plastids) में अनुपस्थित रहता है। पोटासियम एक उत्प्रेरक (catalyst) के समान कार्य करता है और यह कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन के संश्लेषण में सहायता करता है; पोटासियम की अनुपस्थिति में मंडकण या स्टार्च कण नहीं बनते। पोटासियम पौधे की वृद्धि में सहायता करता है और स्वस्थ पुष्प, बीज, तथा फल उत्पन्न करने के लिये उसे समर्थ बनाता है।

(२) मैग्नीसियम—यह फ़ॉस्फ़ोरस मिली हुई लाइपिड (lipid) वस्तुओं के संश्लेषण में सहायता करता है जो जीवद्रव्य के आवश्यक रचक होते हैं। यह ५·६% भार के लगभग तक पर्णहरिम में रहता है और इसलिये इस की अनुपस्थिति में पर्णहरिम का निर्माण नहीं होता और पौधे की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है। यह धान्य (cereals) और फलीदार पौधों के बीजों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहता है।

(३) कैल्सियम—यह हरे पौधों में सदा पाया जाता है। यह कोशिका भित्ति में, विशेषतया मध्य पटल (middle lamella) में कैल्सियम पैक्टेट (calcium pectate) के रूप में रहता है। यह अम्लों के उदासीनीकरण में उपयोगी होता है अन्यथा पौधों पर उनका विषैला प्रभाव पड़े। यह जीवद्रव्य की अर्ध-पारगम्यता (semi-permeability) के संधारण रखने में सहायता करता है। यह अनेक विषैले पदार्थों के लिये प्रतिजीव विष भी होता है। यह मूलों की वृद्धि का भी प्रवर्तक है। नींबू, संतरे, और गैडक (shaddock) आदि पौधे कैल्सियम (या चूना) प्रचुर मात्रा वाली मिट्टी में अच्छी तरह बढ़ते हैं। साधारण रूप में फलों और विशेष रूप में गुठली वाले फलों के सामान्य विकास के लिये प्रचुर मात्रा में कैल्सियम (या चूने) की आवश्यकता होती है।

(४) लोहा—यह पर्णहरिम (chlorophyll) के निर्माण के लिये आवश्यक है, यद्यपि यह एक रचक रूप में विद्यमान नहीं रहता। यह आदिलवों (plastids) में संग्रहित हो सकता है। लोहा जीवद्रव्य और नाभिक के रज्जा या क्रोमेटिन में सदा विद्यमान रहता है।

(५-६) गंधक और फ़ॉस्फ़ोरस—गंधक सिस्टिन (cystine) नामक ऐमिनो अम्ल का रचक है जो पौधे के प्रोटीन बनाने वाले यौगिकों में से एक है। यह सरसों के तेल

का एक आवश्यक रचक है। यह जीवित पदार्थों, जैसे जीवद्रव्य में विद्यमान रहता है। इस की अनुपस्थिति में पत्तियां अहरिमता युक्त (chlorotic) हो जाती हैं और स्तम्भ दुर्बल हो जाते हैं। नाभिक के एक रचक, नाभिक प्रोटीन, और जीवद्रव्य के एक रचक, लेसिथिन (lecithin) में फ़ॉस्फ़ोरस सदा विद्यमान रहता है; यह नाभिकीय तथा कोशिका भाजन का प्रवर्तन करता है, और श्वसन क्रिया में कार्बोहाइड्रेट के खंडन से संबंधित होता है। फ़ॉस्फ़ोरस पोषाहार में सहायता करता है तथा फलों, विशेषकर अन्नों के परिपक्वता में शीघ्रता करता है। यह मूल तंत्र के विकास का प्रवर्तन करता है। मूली, चुकंदर और आलू समान भूमिगत अंगों को अपने सामान्य विकास के लिये फ़ॉस्फ़ोरस की आवश्यकता होती है। गंधक कुछ धातुओं के सल्फेट रूप में और फ़ॉस्फ़ोरस कैल्सियम या पोटासियम के फ़ॉस्फ़ेट रूप में अवशोषित होता है।

(७) **कार्बन**—यह पौधे के सूखे भार का ४५% या उससे भी अधिक मुख्य ढर (bulk) का निर्माण करता है। यह सब कार्बनिक यौगिकों का प्रचुर रचक होता है, जो यथार्थ में कार्बन के यौगिक ही कहलाते हैं। कार्बन वायुमंडल से कार्बन डाइ-आक्साइड रूप में अवशोषित होता है। यद्यपि वायु में कार्बन डाइआक्साइड केवल ०.०३ % तक की ही मात्रा में होता है तथापि पौधों के लिये सब कार्बन का एक मात्र स्रोत वायु ही है जो द्रव संवर्धन प्रयोगों से सिद्ध किया गया है। यह ध्यान में रखने की बात है कि पौधे और वायुमंडल के मध्य कार्बन डाइआक्साइड और आक्सीजन का एक नियमित चक्रण है और दो प्रक्रम इससे संबंधित हैं। एक तो प्रकाश-संश्लेपण (photosynthesis) और दूसरा श्वसन (respiration)। अतएव यह स्पष्ट है कि वायु में इन गैसों के सम्पूर्ण आयतन नियत ही बने रहते हैं।

(८) **नाइट्रोजन**—यद्यपि आयतन रूप में वायु के प्रत्येक १०० भाग में ७८ भाग के लगभग की मात्रा में नाइट्रोजन रहता है, तथापि यह एक नियम सा है कि स्वतंत्र रूप में इसका उपयोग पौधों द्वारा नहीं होता। यद्यपि नाइट्रोजन वायु में इतनी प्रचुर मात्रा में है, तथापि पौधों के सूखे पदार्थ में यह केवल १ से ३% तक ही मिलता है। फिर भी यह पौधे के जीवन के लिये अनिवार्य है क्योंकि यह प्रोटीनों, पर्णहरिम और जीवद्रव्य का सारभूत रचक है। नाइट्रोजन वृद्धि के लिये, विशेषतया पत्तियों की वृद्धि के लिये सारभूत है। सलाद (lettuce) के समान पत्तेदार शाक मिट्टी में नाइट्रोजन की अनुपस्थिति के कारण अधिक क्षतिग्रस्त होते हैं।

मिट्टी का नाइट्रोजन (Nitrogen of the Soil)—मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा ०.०९६ से लेकर ०.२१% तक रहती है (औसत भारतीय मिट्टी में लगभग ०.०५% नाइट्रोजन होता है); फिर भी पौधे के लिये नाइट्रोजन का मुख्य स्रोत मिट्टी ही है। यहां यह अकार्बनिक तथा कार्बनिक यौगिकों के रूप में रहती है। अकार्बनिक

यौगिकों के मुख्य रूप पोटैशियम और कैल्सियम के नाइट्रेट और नाइट्राइट हैं और ऐमोनिया तथा उसके यौगिक भी हैं, जब कि कार्बनिक यौगिक मुख्यतया प्रोटीन हैं। सामान्यतः मिट्टी में विद्यमान ऐमोनियम यौगिक मिट्टी में रहनेवाले कुछ अणुजीवों —नाइट्रीकारी जीवाणुओं की क्रिया द्वारा नाइट्रेट रूप में परिवर्तित होकर हरे पौधों के उपयोग के लिये प्राप्य बनाये जाते हैं। यह प्रक्रम नाइट्रीकरण (nitrification) कहलाता है। इस प्रक्रम में ऐमोनियम यौगिक नाइट्रेट रूप में दो अवस्थाओं में ऑक्सीकृत होते हैं: (क) इन पर नाइट्राइट जीवाणु (नाइट्रोसोमोनास, *Nitrosomonas*) द्वारा क्रिया होती है और नाइट्राइट ($-NO_2$) रूप में आक्सीकृत होते हैं, और (ख) इस प्रकार निर्मित नाइट्राइट पर नाइट्रेट जीवाणु (नाइट्रोबैक्टर, *Nitrobacter*) की क्रिया होती है और फिर आक्सीकृत होकर नाइट्रेट ($-NO_3$) रूप में बदलते हैं। इस प्रकार उत्पन्न नाइट्रेट हरे पौधों द्वारा सरलतया अवशोषित होता है। तथापि, मिट्टियों की कुछ किस्मों में ऐमोनियम यौगिक मुख्य रूप होते हैं जिनसे नाइट्रोजन पौधों द्वारा सरलतया अवशोषित होती है। तथापि ऐमोनियम यौगिक का एक अंश विनाइट्रीकर (denitrifying) जीवाणुओं द्वारा वियोजित हो कर स्वतंत्र नाइट्रोजन बनता है जो तब वायुमंडल में चला जाता है।

नाइट्रोजन के कार्बनिक यौगिक के मुख्य रूप अनेक प्रकार की प्रोटीनें हैं। जन्तुओं और पौधों के मृत शरीर के प्रोटीन विभिन्न प्रकार के पूतिगन्धी (putrefying) जीवाणुओं और कुछ सीमा तक मिट्टी में रहने वाले कवकों द्वारा विघटित किये जाते हैं। प्रथम अवस्था में आक्सीजन की अनुपस्थिति में प्रोटीन पूतिगन्धी जीवाणुओं और कवकों द्वारा ऐमिनो अम्ल के रूप में अपचयित होती है और फिर ऐमोनियम यौगिक (ऐमोनियाकरण) रूप में रूपान्तरित होती है। दूसरी अवस्था में आक्सीजन की उपस्थिति में, ऐमोनियम यौगिक उपर्युक्त ढंग से नाइट्रीकृत होते हैं। इस प्रकार उत्पन्न नाइट्रेट सरलतया हरे पौधों द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं।

वायुमंडलीय नाइट्रोजन का विनिवेशन (Fixation of Atmospheric Nitrogen)—वायु का गैसीय नाइट्रोजन अन्य तत्वों के साथ संयुक्त होता है और अन्त में मिट्टी में नाइट्रोजन के यौगिक रूप में पौधों के लिये प्राप्य बनता है। जिन विधियों द्वारा नाइट्रोजन का विनिवेशन किया जा सकता है वे निम्न हैं: (१) वायुमंडल में विद्युत् का विसर्जन (discharge of electricity), (२) कुछ मृतोपजीवी जीवाणुओं की सक्रियता, (३) सहजीवी जीवाणुओं की सक्रियता, (४) नील-हरित-शैवालों (blue-green algae) की सक्रियता जो डा० पी० के० डे द्वारा सिद्ध की जा चुकी है।

(२) मृतोपजीवी जीवाणुओं द्वारा मिट्टी में नाइट्रोजन विनिवेशन (Nitrogen Fixaton by Saprophytic Bacteria in the Soil)—मिट्टी में विद्यमान

अनेक प्रकार के नाइट्रोजन विनिवेशी जीवाणुओं में भूमि के वायु का स्वतन्त्र नाइट्रोजन अपने शरीर में ऐमिनो अम्ल (amino-acid) रूप में विनिवेशन (fixing) करने और अंत में उनसे प्रोटीन बनाने की क्षमता होती है। इन जीवाणुओं की मृत्यु के बाद ये प्रोटीन मिट्टी में मिल जाते हैं। धीरे-धीरे इन पर नाइट्रीकारी जीवाणुओं की क्रिया होती है और अंततः नाइट्रेट रूप में परिवर्तित हो जाती हैं, जो तब हरे पौधों द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं। किन्तु यह अवश्य जान लेना चाहिये कि मृतोपजीवी जीवाणुओं द्वारा विनिवेशित स्वतंत्र नाइट्रोजन की मात्रा सहजीवी जीवाणुओं द्वारा विनिवेशित नाइट्रोजन की अपेक्षा बहुत न्यून होती है। ऐसे जीवाणुओं के स्पष्ट दो समूह होते हैं: वातजीवी (aerobic) और वात निरपेक्षी (anaerobic)। एज़ोटोबैक्टर (वातजीवी), और क्लोस्ट्रीडियम (वात निरपेक्षी) की अनेक स्पीशीज इन दोनों समूहों के प्रारूपिक है। ये जीवाणु मिट्टी में विस्तीर्ण रूप से प्रसारित हैं। इन जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन विनिवेशन की उत्कृष्टता मिट्टी में ऊर्जा के स्रोत रूप में कार्बोहाइड्रेट (विशेषतया शर्करा) के आक्सीकरण पर निर्भर करता है। किन्तु नाइट्रोजन विनिवेशन के रसायन विज्ञान का निश्चित ज्ञान नहीं हो सका है।

(३) **सहजीवी जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन विनिवेशन:** लेग्यूमीनोसी के गुटिका जीवाणु (Nitrogen Fixation by Symbiotic Bacteria: Nodule Bacteria of *Leguminosae*)—कृषकों ने बहुत दिनों से यह बात देखी है कि दाल समान फलीदार पौधों को मिट्टी में उगाने पर उसकी उर्वरता बढ़ती है और उस भूमि में धान्य की उपज अधिक होती है। बाद में इस बात की खोज की गई कि इन पौधों के मूल में कुछ फुलाव होते हैं जिन्हें गुटिकाएं (nodules) या गुलिकाएं (tubercles) कहते हैं। ये कुछ प्रकार के नाइट्रोजन विनिवेशक जीवाणुओं, विशेषतया राइज़ोबियम रेडिसीकोला (*Rhizobium radicicola*) के विभिन्न प्रभेदों (strains) द्वारा संक्रांत होते हैं और उपर्युक्त गुटिकाओं में मिट्टी के वायु के स्वतन्त्र नाइट्रोजन का विनिवेशन करने की क्षमता इनमें होती है। यह विशेष रूप से ध्यान रखने की बात है कि न तो फलीदार पौधे और न जीवाणु ही स्वयं नाइट्रोजन का विनिवेशन कर सकते हैं। यह बात अब ज्ञात हो चुकी है कि लेग्यूमीनोसी कुल के अधिकांश पौधों (किन्तु सब में नहीं) के गुटिकाओं में और कुछ अन्य पौधों के मूलों में भी ऐसे जीवाणु विद्यमान रहते है। इन जीवाणुओं द्वारा मूल का संक्रमण (infection) और गुटिका (nodule) निर्माण की विधि इस प्रकार है। मूल रोम के अग्र भाग द्वारा जीवाणु प्रवेश करते हैं। उसके अन्दर प्रवेश करने के पश्चात् वे श्लेष्म (mucilage) द्वारा एक साथ लिपटे हुये अगणित जीवाणु कोशिकाओं से निर्मित एक प्रकार के सूत्र में बन जाते हैं। यह सूत्र रोम के भीतर प्रविष्ट होने लगता है और कोशिका भित्तियों को

छिद्रित कर मूल की अंतस्त्वचिका (cortex) तक पहुंच जाता है। तब जीवाणुओं की संख्या वृद्धि होने लगती है और वे अन्तस्त्वचिका में उपनिवेश बना लेते हैं। कदाचित् इन जीवाणुओं द्वारा स्रावित कुछ उद्दीपक पदार्थ के कारण अन्तस्त्वचिका कोशिकाएं वृद्धि पाने के लिये उद्दीप्त होती हैं और इस प्रकार अनेक आकारों के फलाव (गण्ड)

चित्र ४३८

चित्र ४३९

चित्र ४३८—एक शैम्बिक पौधे की गुटिकायें या ग्रन्थायें। चित्र ४३९—एक मूल रोम जीवाणुओं द्वारा संक्रात।

तथा गुटिकाओं को उत्पन्न करती हैं और उनमें कुछ ऐमिनो यौगिक रूप में वायु के नाइट्रोजन को विनिवेशित करती हैं। ऐमिनो यौगिकों का कुछ भाग पौधे के शरीर में अवशोषित हो जाता है और दूसरा भाग गुटिकाओं द्वारा उत्सर्जित होता है और शेष भाग गुटिकाओं में बंधा पड़ा रह जाता है। इस प्रकार मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक हो जाती है और विशेषतया यह तब होता है जब मिट्टी में गुटिका-धारी फलीदार पौधे जोत कर मिला दिये जाते हैं। फलीदार पौधे जीवाणुओं को कार्बोहाइड्रेट प्रदान करते हैं और जीवाणु उन पौधों को नाइट्रोजनीय खाद्य प्रदान करते हैं। इसलिये यह सहजीवन (symbiosis) का एक उदाहरण है। तथापि यह उल्लेखनीय है कि ऐमिनो यौगिक की ग्रन्थाओं में रचना प्रारम्भ करने वाले आरम्भिक रासायनिक परिवर्तनों का अभी तक स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सका है।

अनेक प्रकार के नाइट्रोजन विनिवेशी जीवाणुओं में भूमि के वायु का स्वतन्त्र नाइट्रोजन अपने शरीर में ऐमिनो अम्ल (amino-acid) रूप में विनिवेशन (fixing) करने और अंत में उनसे प्रोटीन बनाने की क्षमता होती है। इन जीवाणुओं की मृत्यु के बाद ये प्रोटीन मिट्टी में मिल जाते हैं। धीरे-धीरे इन पर नाइट्रीकारी जीवाणुओं की क्रिया होती है और अंततः नाइट्रेट रूप में परिवर्तित हो जाती हैं, जो तब हरे पौधों द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं। किन्तु यह अवश्य जान लेना चाहिये कि मृतोपजीवी जीवाणुओं द्वारा विनिवेशित स्वतंत्र नाइट्रोजन की मात्रा सहजीवी जीवाणुओं द्वारा विनिवेशित नाइट्रोजन की अपेक्षा बहुत न्यून होती है। ऐसे जीवाणुओं के स्पष्ट दो समूह होते हैं: वातजीवी (aerobic) और वात निरपेक्षी (anaerobic)। एज़ोटोबैक्टर (वातजीवी), और क्लोस्ट्रीडियम (वात निरपेक्षी) की अनेक स्पीशीज़ इन दोनों समूहों के प्रारूपिक हैं। ये जीवाणु मिट्टी में विस्तीर्ण रूप से प्रसारित हैं। इन जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन विनिवेशन की उत्कृष्टता मिट्टी में ऊर्जा के स्रोत रूप में कार्बोहाइड्रेट (विशेषतया शर्करा) के आक्सीकरण पर निर्भर करता है। किन्तु नाइट्रोजन विनिवेशन के रसायन विज्ञान का निश्चित ज्ञान नहीं हो सका है।

(३) **सहजीवी जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन विनिवेशन:** लेग्यूमीनोसी के गुटिका जीवाणु (Nitrogen Fixation by Symbiotic Bacteria: Nodule Bacteria of *Leguminosae*)—कृषकों ने बहुत दिनों से यह बात देखी है कि दाल समान फलीदार पौधों को मिट्टी में उगाने पर उसकी उर्वरता बढ़ती है और उस भूमि में धान्य की उपज अधिक होती है। बाद में इस बात की खोज की गई कि इन पौधों के मूल में कुछ फुलाव होते हैं जिन्हें गुटिकाएं (nodules) या गुलिकाएं (tubercles) कहते हैं। ये कुछ प्रकार के नाइट्रोजन विनिवेशक जीवाणुओं, विशेषतया राइज़ोबियम रेडिसीकोला (*Rhizobium radicicola*) के विभिन्न प्रभेदों (strains) द्वारा संक्रात होते हैं और उपर्युक्त गुटिकाओं में मिट्टी के वायु के स्वतन्त्र नाइट्रोजन का विनिवेशन करने की क्षमता इनमें होती है। यह विशेष रूप से ध्यान रखने की बात है कि न तो फलीदार पौधे और न जीवाणु ही स्वयं नाइट्रोजन का विनिवेशन कर सकते हैं। यह बात अब ज्ञात हो चुकी है कि लेग्यूमीनोसी कुल के अधिकांश पौधों (किन्तु सब में नहीं) के गुटिकाओं में और कुछ अन्य पौधों के मूलों में भी ऐसे जीवाणु विद्यमान रहते हैं। इन जीवाणुओं द्वारा मूल का संक्रमण (infection) और गुटिका (nodule) निर्माण की विधि इस प्रकार है। मूल रोम के अग्र भाग द्वारा जीवाणु प्रवेश करते हैं। उसके अन्दर प्रवेश करने के पश्चात् वे श्लेष्म (mucilage) द्वारा एक साथ लिपटे हुये अगणित जीवाणु कोशिकाओं से निर्मित एक प्रकार के सूत्र में बन जाते हैं। यह सूत्र रोम के भीतर प्रविष्ट होने लगता है और कोशिका भित्तियों को

छिद्रित कर मूल की अंतस्त्वचिका (cortex) तक पहुंच जाता है। तब जीवाणुओं की संख्या वृद्धि होने लगती है और वे अन्तस्त्वचिका में उपनिवेश बना लेते हैं। कदाचित् इन जीवाणुओं द्वारा स्रावित कुछ उद्दीपक पदार्थ के कारण अन्तस्त्वचिका कोशिकाएं वृद्धि पाने के लिये उद्दीप्त होती हैं और इस प्रकार अनेक आकारों के फुलाव (गण्ड)

चित्र ४३८ चित्र ४३९

चित्र ४३८—एक शैम्बिक पौधे की गुटिकायें या ग्रन्थायें। चित्र ४३९—एक मूल रोम जीवाणुओं द्वारा सक्रांत।

तथा गुटिकाओं को उत्पन्न करती हैं और उनमें कुछ ऐमिनो यौगिक रूप में वायु के नाइट्रोजन को विनिवेशित करती हैं। ऐमिनो यौगिकों का कुछ भाग पौधे के शरीर में अवशोषित हो जाता है और दूसरा भाग गुटिकाओं द्वारा उत्सर्जित होता है और शेष भाग गुटिकाओं में बंधा पड़ा रह जाता है। इस प्रकार मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक हो जाती है और विशेषतया यह तब होता है जब मिट्टी में गुटिका-धारी फलीदार पौधे जोत कर मिला दिये जाते हैं। फलीदार पौधे जीवाणुओं को कार्बोहाइड्रेट प्रदान करते हैं और जीवाणु उन पौधों को नाइट्रोजनीय खाद्य प्रदान करते हैं। इसलिये यह सहजीवन (symbiosis) का एक उदाहरण है। तथापि यह उल्लेखनीय है कि ऐमिनो यौगिक की ग्रन्थाओं में रचना प्रारम्भ करने वाले आरंभिक रासायनिक परिवर्तनों का अभी तक स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सका है।

सस्य चक्र या फसलों का हेर-फेर (Rotation of Crops)—मिट्टी में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का विनिवेशन कृषि-सम्बन्धी अत्यधिक महत्व का है। अधिकांश फसलें मिट्टी से नाइट्रोजनीय यौगिकों का अवशोषण करती हैं और इस प्रकार उसे दुर्बल बनाती हैं। इसके विपरीत, फली वाले पौधे इसमें नाइट्रोजन की वृद्धि करते हैं जब उनके ग्रन्थिल मूल मिट्टी में ही छोड़ दिये गये होते हैं। इस प्रकार फली वाली फसलें, जैसे दालें, ढेंचा (सेस्बेनिया कैन्नेबिना), लोबिया (विग्ना साइनेंसिस), आदि को बिना फली वाली फसलों, जैसे धान्य (धान, गेंहू, मक्का, जौ, जई, आदि) और जुवार, बाजरा आदि अन्नों के हेर-फेर के साथ बोई जाती हैं। शलज़म, मूली, चुकन्दर, आदि जड़ वाली फसलें मिट्टी से पोटास, कैल्सियम, और नाइट्रोजन प्रचुर मात्रा में ग्रहण करती हैं।

विरल या लघु तत्व (Tracc-or Micro-elements)—अब यह निश्चिततया ज्ञात है कि कम से कम पांच विरल तत्व, जैसे बोरॉन (boron), मैंगनीज, जस्ता (zinc), ताँबा (copper) और मोलिब्डिनम पौधों की सामान्य वृद्धि के लिये सारभूत होते हैं, मिट्टी या संवर्धन विलयन में इन में से किसी एक के अभाव में असामान्य वृद्धि होती है और कुछ पौधों के रोग उत्पन्न होते हैं। यद्यपि ऐल्यूमिनियम सारभूत नहीं माना जाता, तथापि बहुत विस्तीर्ण रूप से पौधों में वितरित रहता है। कदाचित् बोरॉन की आवश्यकता सब पौधों को होती है। फूलगोभी (cauliflower) को इसकी विशेष आवश्यकता होती है। फली वाले पौधों में बोरॉन मूल ग्रन्थाओं के उत्पन्न करने में सहायक होता है। मैंगनीज के अभाव में पत्तियां सूखती हैं, पौधे की दुर्बल वृद्धि होती है, फूल कम लगते हैं और अहरिमता (chlorosis) होती है। संतरे, नीबू, टमाटर, बंदगोभी आदि में मैंगनीज की मात्रा सदा अधिक होती है और यह सम्भव है कि इनमें मैंगनीज और विटामिन के मध्य कोई संबंध है। जस्ते के अभाव के कारण पत्ती व प्ररोह की अवरुद्ध वृद्धि होती है, पत्तियों का कर्बुरण (mottling) और वर्धन अग्रकों का सूखना भी इसका परिणाम होता है। जस्ते से श्वसन और हरिम कणकों की रचना में सहायता मिलती है। तांबें के अभाव में पर्णहरिम की रचना नहीं होती। तांबे के अभाव में जौ के दाने नहीं बनते। मोलिब्डिनम के अभाव में पत्ती में अहरिमतायुक्त (chlorotic) या ऊतिक्षयी (nccrotic) क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। इसके द्वारा प्रोटीन संश्लेषण में सहायता मिलती है। यह प्रकिण्वों की रचना में भाग लेता है। वायु के स्वतन्त्र नाइट्रोजन के विनिवेशन के लिये एज़ोटोबैक्टर (*Azotobacter*) और राइज़ोबियम (*Rhizobium*) को मोलिब्डिनम की आवश्यकता होती है। ऐल्यूमिनियम पौधों के प्रायः सब अंगों, विशेषकर मूल और पत्ती में पाया जाता है। वह फूलों के रंग पर प्रभाव डालता है तथा अत्यन्त निम्न सान्द्रण (low concentration) में यह वृद्धि का उद्दीपन करता है।

अध्याय ४

जल तथा कच्चे खाद्य पदार्थों का अवशोषण (ABSORPTION OF WATER AND RAW FOOD MATERIALS)

मूल तथा पत्तियां पौधे के मुख्य अवशोषक अंग हैं। मूल भूमि से जल तथा विलीन खनिज लवणों का अवशोषण करते हैं और पत्तियां वायुमंडल से गैसें—आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड—लेती हैं।

१. मिट्टी से जल तथा अकार्बनिक लवण—हरे पौधे भूमि से एककोशिक मूल रोमों द्वारा जल तथा अकार्बनिक लवण अवशोषित करते हैं। ये मूल रोम मिट्टी के कणों के अन्तरालों (interstices) में अनियमित रूप से फैले रहते हैं और उन कणों के निकट सम्पर्क में आ जाते हैं। जल सर्वदा बहुत अधिक मात्रा में, पौधे की आवश्यकता से सदा अधिक ही, अवशोषित किया जाता है। विभिन्न विलेय अकार्बनिक लवण भी जो मिट्टी में विद्यमान रहते हैं मूल रोमों द्वारा बहुत तनु विलयन के रूप में जल के साथ अवशोषित कर लिये जाते हैं। इनमें से बहुत से लवण जल के उस बहुत पतले पटल (film) में विलेय होते हैं जो मिट्टी के प्रत्येक कण को घेरे रहता है। इनमें से कुछ शुद्ध जल में अविलेय होते हैं किन्तु वे मूलों द्वारा स्रावित अम्लों, मुख्यतया पोटासियम फॉस्फेट और कार्बोनिक अम्ल की अल्प मात्रा में विलेय बन सकते हैं। यह एक तथ्य है इस का प्रमाण इस बात से मिलता है कि संगमरमर का एक टुकड़ा कुछ समय तक जड़ों के सम्पर्क में रहने पर कुछ गहराई तक निक्षारित (etched) हो जाता है।

भूमिजल की प्राप्यता (Availability of Soil Water)—पानी का पतला या कभी-कभी मोटा पटल प्रत्येक मिट्टी कण को घेरे रहता है जो इसके द्वारा केशिका बल से संधारित रहता है। यह केशिका जल (capillary water) कहलाता है। मिट्टी के कणों के मध्यवर्ती अंतरालों में भी यह रहता है।

यह केशिका जल मूल-रोमों द्वारा सरलतया अवशोषित होता है, अतएव यह पौधे के लिये जल प्रदाय का मुख्य स्रोत माना जाता है। इस जल के पटल में अनेक पोषक लवण विलीन रहते हैं, ये सब भी केशिका जल के साथ अवशोषित होते हैं। केशिका जल किसी भी दिशा में कण से कण तक गति कर सकता है। यदि यह केशिका जल मात्रा में न्यून हो जाता है तो पौधे को क्षति पहुंचती है और कुम्हलाने (wilting) से उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

२. वायुमंडल से गैसें (Gases from the Atmosphere)—

विद्यमान विभिन्न गैसों[१] में से केवल आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड ही ऐसी हैं जो पौधों द्वारा अवशोषित और प्रयुक्त होती हैं। अन्य गैसें पौधे के शरीर में प्रविष्ट कर सकती हैं किन्तु वे प्रयोग हुए विना ही लौटा दी जाती हैं। पौधें के सब सजीव कोशिकाओं द्वारा आक्सीजन का अवशोषण श्वसन के लिये होता है, किन्तु कार्वन डाइआक्साइड का अवशोषण केवल हरी कोशिकाओं द्वारा कार्वोहाइड्रेट के निर्माण के लिये होता है।

रसाकर्षण (Osmosis)—यह देखा गया है कि कुछ ऐसी झिल्लियां होती हैं जो यदि किसी विलायक (solvent), उदाहरणार्थ पानी, और विलेयशील (solute), उदाहरणार्थ पानी में नमक या चीनी, को पृथक करने, या विभिन्न सान्द्रण (concentration) के दो विलयनों को पृथक करने के लिये प्रयुक्त की जांय तो एक ओर तो विलायक को अपने आर-पार स्वतंन्त्रता पूर्वक जाने देती हैं किन्तु दूसरी ओर विलेयशील को अपने भीतर से जाने देने का इस प्रकार रोध करती हैं जिससे उसकी सूक्ष्म मात्रा ही झिल्ली पार कर सकती है। इस प्रकार के वरणात्मक (selective) पारगमन के गुण के कारण ऐसी झिल्लियां अर्ध-पारगम्य (semi-permeable) या विभेदीय पारगम्य (differentially permeable) कहलाती हैं। अर्ध-पारगम्य झिल्ली के मध्य से विभिन्न सान्द्रण के द्रवों के पारगमन की विधि **रसाकर्षण** (osmosis) कहलाती है और इस प्रकार पृथक्कारी झिल्ली पर द्रव द्वारा डाले दाव को उस द्रव का **रसाकर्षण दाव** (osmotic pressure) कहते हैं। किसी विलयन का रसाकर्षण दाव उसके सान्द्रण का समानुपाती होता है। चर्मपत्र कागज, मछली या जन्तुओं का मूत्राशय (bladder) और अंडे की झिल्ली इस प्रकार की कुछ झिल्लियां हैं। जब इस प्रकार की झिल्ली से तनु (weak) विलयन सांद्र (strong) विलयन से पृथक किया जाता है तो विलायक का तनु विलयन से सांद्र विलयन की ओर एक निश्चित स्थानान्तर होता है। उदाहरण के लिये जब किशमिश (raisin) पानी में भिगो दी जाती है तो अन्तःकर्षण (endosmosis) के कारण वह फूल जाती है, उसके साथ ही उसमें संचित शर्करा के उच्च प्रतिशत की कुछ मात्रा बाहर के पानी में बहिष्कर्षण (exosmosis) के कारण पाई जाती है। इसी प्रकार शर्करा या नमक के सांद्र विलयन (मान लें २५% या ३०%) में डूबा अंगूर सिकुड़ जाता है।

---

[१] वायु की संरचना (Composition of the Air)—आयतन रूप से वायु के १०० भाग में से ७८ प्रतिशत नाइट्रोजन, २१ प्रतिशत आक्सीजन, ०.०३ प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड होती है, और अन्य गैसें जैसे हाइड्रोजन, ऐमोनिया, ओज़ोन, जलीय भाप आदि विरल रूप में ही रहती हैं।

(चित्र ४४१)—उन मूल रोमों में जो विलयन रूप में शर्करा और लवण रक्खे होती हैं, कोशिका रस (cell-sap) चारों ओर से घिरी मिट्टी के पानी की अपेक्षा अधिक सांद्र होता हैं। जल और कोशिका रस दोनों ही द्रव कोशिका झिल्ली (सैलूलोज कोशिका भित्ति और जीवद्रव्य झिल्ली) द्वारा पृथकीकृत होते हैं। परिणामतः रसाकर्षण संचालित होता है। मध्यवर्ती कोशिका झिल्लियों के मध्य से मूल रोमों में मिट्टी से पानी का प्रवाह होता है (अन्तःकर्षण, endosmosis)। किन्तु इस दशा में रसाकर्षण एक शुद्ध भौतिक प्रक्रम नहीं होता। यद्यपि कोशिका भित्ति जल और विलेयशील दोनों के लिये ही पारगम्य होती है, किन्तु जीवद्रव्य झिल्ली विभिन्नतया और वरणतया (differentially and selectively) ही पारगम्य होती है जो जल को भीतर बहने देती हैं किन्तु कोशिका रस की शर्करा और लवण को बाहर बह जाने से रोकती हैं। यह वरणात्मक पारगम्यता (selective permeability) जीवद्रव्य झिल्ली का संलक्षण होती है। यह भी जानने योग्य बात है कि विभिन्न परिस्थितियों में वही झिल्ली विभिन्न पारगम्यता की होती है।

चित्र ४४१—एक मूल रोम जिस पर मिट्टी के कण चिपके हैं।

आशूनता (Turgidity)—जब कोई कोशिका अधिकाधिक जल का इस प्रकार अवशोषण करती जाती है कि रसधानी (vacuole) में जल का संचय हो जाता है तो बाहर घेरे हुए जीवद्रव्य और कोशिका भित्ति पर कुछ निश्चित दाव पड़ता है। इसके फल स्वरूप जीवद्रव्य कोशिका भित्ति के विरुद्ध बाहर की ओर ढकेला जाता है और कोशिका भित्ति भी तन जाती हैं। तनी हुई सैलूलोज़ भित्ति प्रत्यास्थ (elastic) होने के कारण अपने मूल रूप में लौट आने के लिये प्रवृत होती है। और इस प्रकार बदले में कोशिका के द्रव पदार्थ पर दाव डालती हैं। इस प्रकार जल से आविष्ट (charged) कोशिका अपनी भित्ति तनाव (tension) की अवस्था में रखने पर आशून (turgid) कहलाती हैं और यह अवस्था आशूनता (turgidity) कहलाती हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि कोशिका के आशून अवस्था में दो प्रकार के दाव उत्पन्न होते हैं: एक बाह्यवर्ती और दूसरा अन्तर्वर्ती। कोशिका की द्रव अन्तर्वस्तु (contents) द्वारा कोशिका भित्ति पर पड़े दाव को आशूनता दाव (turgor pressure), और तनी हुई कोशिका भित्ति द्वारा कोशिका अन्तर्वस्तु पर पड़ा हुआ
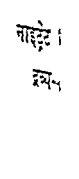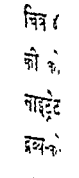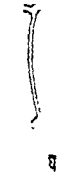
अन्तवर्ती दाब भित्ति दाब (wall pressure) कहलाता है। सामान्यतः ये दोनों दाब एक दूसरे का प्रतितोलन (counterbalance) करते हैं और उनके मध्य साम्यावस्था (equilibrium) की स्थिति बनी रहती है।

द्रव्य-कोच (Plasmolysis; चित्र ४४२)—यदि किसी हरी पत्ती, या रंगीन पंखुड़ी के एक काट या स्पाइरोगाइरा (*Spirogyra*) के तन्तु को लवण या शर्करा के सान्द्र विलयन (मान लें ५ या १०% विलयन) में रक्खा जाय और सूक्ष्मदर्शी में देखा जाय तो देखा जायगा कि नाभिक (nucleus) और आदिलव (plastid) सहित जीवद्रव्य कोशिका भित्ति से दूर संकुचित होता है और केन्द्र में एक गोल या अनियमित पुंज (mass) निर्मित करता है, जब कि कोशिका भित्ति और जीवद्रव्यीय पुंज के मध्य का अवकाश (space) लवण या शर्करा विलयन से भर जाता है। जीवद्रव्य के ऐसे संकुचन का कारण यह है कि कोशिका रस की अपेक्षा लवण या शर्करा विलयन अधिक रसाकर्षीमान के होने के कारण रसाकर्षण प्रक्रम द्वारा रसधानी से जल बाहर निकल जाता है। किसी सान्द्र विलयन की क्रिया के अधीन, जो कोशिका रस से भी अधिक सान्द्र हो, कोशिका भित्ति से जीवद्रव्य का संकुचन द्रव्य-कोच (plasmolysis) कहलाता है. यदि लवण या शर्करा विलयन को शुद्ध जल द्वारा प्रतिस्थापित किया जाय तो द्रव्य-कोच के कुछ बाद ही जीवद्रव्य अपनी मूल स्थिति में लौट आता दिखाई पड़ता है और रसधानी पुनः प्रकट हो जाती है। द्रव्य-कोच उत्पन्न करने के लिये पोटासियम नाइट्रेट विलयन (१०%) अत्यन्त उत्तम प्रतिकर्मक (reagent) है।

क

ख

ग

घ

चित्र ४४२—वैलिसनेरिया की पत्ती की कोशिका में १०% पोटासियम नाइट्रेट के विलयन की क्रिया के प्रति द्रव्य-कोच; क, सामान्य कोशिका; ख-घ, द्रव्य-कोच की अवस्थायें।

द्रव्य-कोच (plasmolysis) एक जीवकर क्रिया है। एक ओर तो

यह रसाकर्षण की क्रिया का स्पष्टीकरण करती हैं और दूसरी ओर हानिकर पदार्थों के प्रवेश के लिये कोशिका भित्ति की पारगम्यता तथा जीवद्रव्य के बाह्य-स्तर-वाह्यद्रव्य (ectoplasm) की अर्ध-पारगम्यता प्रकट करती हैं।

अध्याय ५

जल और कच्चे खाद्य पदार्थों का संवाहन
(CONDUCTION OF WATER AND RAW FOOD MATERIALS)

मूल-दाब (ROOT-PRESSURE)

मूल रोमों द्वारा अवशोषित जल अन्तस्त्वचिका के ऊतक में संचित होता है। जल के इस संचय के परिणामस्वरूप अन्तस्त्वचिका की कोशिकायें पूर्णतः आशून (turgid) हो जाती हैं। इस अवस्था में उनकी भित्तियां जो सैलूलोज की बनी होती हैं तरल अन्तर्वस्तु पर दाब डालती हैं और उनकी कुछ मात्रा दारु वाहिनियों की ओर ढकेलती हैं तथा अन्तस्त्वचकीय कोशिकायें श्लथ (flaccid) हो जाती हैं। वे फिर जल अवशोषण करती हैं और आशून हो जाती हैं और
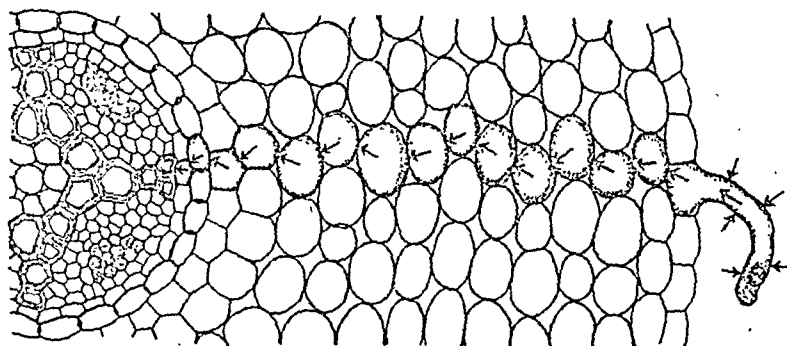
चित्र ४४३—एक मूल अनुप्रस्थ काट में जिसमें जल का मार्ग मूल रोम से दारु तक दिखलाया गया है।

यह प्रक्रम जारी रहता है। इस प्रकार एक अन्तरायिक (intermittent) पंप चलने की क्रिया मूल की अन्तस्त्वचिका में चलती रहती है और यह पंप-कार्य स्वभावतः प्रचुर दाब उत्पन्न करता है। इस दाब के फल स्वरूप दारु वाहिनियों

के अन्दर जल ढकेला जाता है जो उन मार्ग कोशिकाओं (passage cells), अस्थूलित प्रदेशों और गर्तों के मध्य से जाता है जो अन्तस्त्वचा और वाहिनियों में बने होते हैं। इसके अतिरिक्त वाहिनियों की छिन्नभूत भित्तियां भी जल द्वारा पारगम्य होती हैं। अतएव मूल-दाब की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि यह वह दाब है जिसको मूल की अन्तस्त्वचकोष कोशिकायें अपनी पूर्णतः आशून अवस्था में अपने तरल अन्तर्वस्तुओं पर डालते हैं जिसके कारण उनकी कुछ मात्रा दारु वाहिनियों के अन्दर तथा उनके द्वारा ऊपर की ओर स्तम्भ में बलपूर्वक पहुंचता है।

प्रयोग ४—मूल-दाब (Root-pressure, चित्र ४४८)—किसी स्वस्थ पौधे (विशेषतः किसी गमले के पौधे) को प्रातःकाल जमीन से कुछ इंच ऊपर आड़ा काट ले और उसमें एक रबर की नली द्वारा एक टी-नली (T-tube) लगा दें। नली में कुछ पानी डालें और मिट्टी को अच्छी तरह सींचें। एक दाबमापी (manometer) (अर्थात् एक बल्ब तथा लम्बी भुजा वाली यू-नली, U-tube) में चित्र में प्रदर्शित रूप में अशत पारा भरें। दाबमापी को टी-नली में एक रबर काग द्वारा जोड़ दें। टी-नली के ऊपरी सिरे पर एक काग कस दें जिसमें काच की पतली नली लगी हो। पिघले पैरैफिन द्वारा सब जोड़ों को वायुरुद्ध (air-tight) कर लें। पतली नली के छेद को मुहर-बन्द कर दें, और दाबमापी की लंबी भुजा में पारे का तल (level) देख लें।

चित्र ४४८—मूल-दाब पर प्रयोग।

प्रेक्षण (Observation)—कुछ घंटों के बाद लंबी भुजा में पारा के तल में चढ़ाव देखें, टी-नली में पानी के तल का भी चढ़ाव देखें।

अनुमिति (Inference)—पारा का चढ़ाव निश्चिततया ही टी-नली में पानी का संचय होने और उसके द्वारा उत्पन्न दाब के कारण होता है। यह घटना प्रत्यक्षतः स्तम्भ के कटे सतह से जल के निस्रावण (exudation) के कारण होती है। अतएव यह प्रयोग प्रदर्शित करता है कि जल मूल-दाब के द्वारा स्तम्भ में ऊपर चढ़ता है।

वाष्पोत्सर्जन या उत्स्वेदन (TRANSPIRATION)

पौधे मिट्टी से अधिक मात्रा में मूल रोमों द्वारा जल अवशोषित करते हैं। अनेक कार्यिकीय प्रक्रमों (physiological processes) के लिये इस जल का केवल कुछ भाग ही पौधों द्वारा प्रतिधारित होता है, लेकिन जल-वाष्प रूप में अधिकांश भाग नष्ट हो जाता है। (जीवित पौधों के आन्तरिक ऊतकों (internal tissues) जैसे वायवीय भागों, से पत्तियों, हरे प्ररोहों (green shoots) आदि, के द्वारा सूर्य के प्रकाश से प्रभावित तथा कुछ मात्रा में जीवद्रव्य द्वारा नियंत्रित जल-वाष्प का निष्कासन **वाष्पोत्सर्जन** (transpiration) कहलाता है।) यह वाष्पन (evaporation) का साधारण प्रक्रम नहीं है क्योंकि यह जीवद्रव्य की जीवकर सक्रियता और वाष्पोत्सर्जक अंगों की कुछ संरचनात्मक विशेषताओं द्वारा नियंत्रित होता है। पौधे में लगी हुई पत्ती की अपेक्षा पौधे से पृथक की गई पत्ती बहुत अधिक शीघ्रता से जल त्याग करती है और यह हानि पांच-छः गुनी अधिक पाई गई है। अकेले एक पौधे से वाष्प बन कर निकले पानी की कुल मात्रा यथेष्ट होती है। (वाष्पोत्सर्जन का प्रक्रम (mechanism) इस तरह है। पानी का प्रत्येक ताप पर वाष्पन होता है और क्योंकि मृदूतकीय (parenchymatous) कोशिकाएं जल से आविष्ट (charged) रहती हैं अतएव वह इन कोशिकाओं से वाष्पित होता रहता है, और अन्तराकोशिक अवकाशों (intercellular spaces) में उस समय तक एकत्र होता रहता है जब तक वे जल-वाष्प से संतृप्त (saturated) नहीं हो जाते। वहां से जल-वाष्प या तो रन्ध्र (stomata) या पतले बाह्यचर्म (cuticle) द्वारा वायुमंडल में चला जाता है। इनमें से पहले को **रंध्रीय वाष्पोत्सर्जन** (stomatal transpiration) और दूसरे को **बाह्यचर्मीय वाष्पोत्सर्जन** (cuticular transpiration) कहते हैं। रंध्रीय वाष्पोत्सर्जन तो नियमित घटना है और बाह्यचर्मीय वाष्पोत्सर्जन की तुलना में कई गुना अधिक घटित होता है। रात को रन्ध्र बन्द रहने के कारण वाष्पोत्सर्जन अवरुद्ध रहता है। वाष्पोत्सर्जन में जल बाहर निकलता है, इस कारण चारों ओर की वायु की आर्द्रता (humidity) इस प्रक्रम द्वारा उल्लेखनीय रूप में प्रभावित होती है। बड़े पत्तीदार वृक्षों के नीचे हवा इसी कारण ठंडी और नम रहती है। पृष्ठ-प्रतिपृष्ठी (dorsiventral) पत्तियों में निम्न तल में सदा अधिक संख्या में रन्ध्र होते हैं, ऊपरी तल में प्रायः बिलकुल नहीं होते। परिणामतः यह तल ऊपरी तल की अपेक्षा अधिक वेग से वाष्पोत्सर्जन करता है। किन्तु समद्विपार्श्व (isobilateral) पत्तियों में न्यूनाधिकतया दोनों ही तलों पर रन्ध्र समान रूप से वितरित रहते हैं। रन्ध्रों

की द्वार-कोशिकाएं (guard-cells) रन्ध्रों को परिस्थितियों के अनुसार अंशतः या पूर्णतः खोलने या सर्वथा बंद ही कर देने के द्वारा वाष्पोत्सर्जन को नियन्त्रित करती है। वाष्पोत्सर्जन के प्रक्रम में वातरन्ध्रों (lenticels; देखिये चित्र ४३६) का भी हाथ होता है। वातरन्ध्र की कोशिकाओं की शिथिल संहति (mass) के द्वारा जल-वाष्प बाहर निकलता है।

प्रयोग ५—वाष्पोत्सर्जनः परिच्छादक प्रयोग (Transpiration: bell-jar experiment)—निम्न विधि से वाष्पोत्सर्जन आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है। एक गमले का पौधा जिसका मिट्टी का तल एक तेल पुते कागज द्वारा ठीक तरह ढका हो, एक परिच्छादक में बंद कर दिया जाता है और कमरे के साधारण ताप में कुछ समय तक रक्खा जाता है। इसके बाद देखा जाता है कि परिच्छादक की भीतरी सतह पर पानी की छोटी-छोटी बहुत सी बूंदे हैं।

प्रयोग ६—पृष्ठ-प्रतिपृष्ठी पत्ती की दो तलों से असमान वाष्पोत्सर्जन (Unequal transpiration from the two surfaces of a dorsi-ventral leaf; चित्र ४४५)—निस्यन्दनपत्र (filter paper) या पतले चूसक सोखा पत्र के छोटे टुकड़े कोबाल्ट क्लोराइड (या कोबाल्ट नाइट्रेट) के ५% विलयन में भिगो लो और उन्हें एक ज्वाला (flame) पर सुखाओ। कोबाल्ट पत्रों का यह गुण है कि वे सुखाने पर गहरे नीले होते हैं, किन्तु नमी के सम्पर्क में वे गुलाबी हो जाते हैं। चित्र में दिखाये अनुसार दो सूखे पत्रों में से एक को एक मोटी, स्वस्थ पत्ती के ऊपरी तल पर और दूसरे को निचले तल पर रक्खो। उनको अभ्रक (mica) के टुकड़ों या कांच की स्लाइड से या चित्र में दिखाये अनुसार एक पत्र-स्वज (leaf-clasp) से पूरी तरह ढक दो और उनको ठीक तरह पत्ती पर कस दो। उसके बाद किनारों को शीघ्रता से वैसलीन से मुहर-बंद कर दो जिससे वायुमंडलीय नमी कागजों के सम्पर्क में आने से रुक सके।
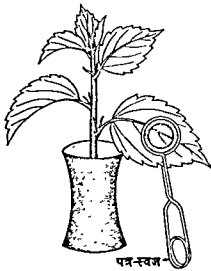
चित्र ४४५—प्रयोग जिसमें पर्ण के दो सतहों से विषम वाष्पोत्सर्जन दिखलाया गया है।

प्रेक्षण (Observation)—हमारे प्रयोगों में यह दिखाई पड़ेगा कि पत्ती के ऊपरी तल के कोबाल्ट पत्र की अपेक्षा निचले तल का कोबाल्ट पत्र अधिक शीघ्र गुलाबी हो जाता है। इस तरह का रंग परिवर्तन कुछ घंटों में ही घटित हो जाता है।

अनुमिति (Inference)—इससे प्रत्यक्षतः प्रकट होता है कि पत्ती अपने ऊपरी तल की अपेक्षा निचले तल से अधिक वेग से वाष्पोत्सर्जन करती है। जैसा पहले ही समझाया जा चुका है यह निचले तल पर बहुत अधिक संख्या के रन्ध्रों के होने और ऊपरी तल पर थोड़ी संख्या या बिलकुल ही रन्ध्र न होने के कारण है।

प्रयोग ७—वाष्पोत्सर्जन धारा के वेग की माप (Measurement of the rate of transpiration current; चित्र ४४६)—यह प्रयोग **उत्स्वेदन**
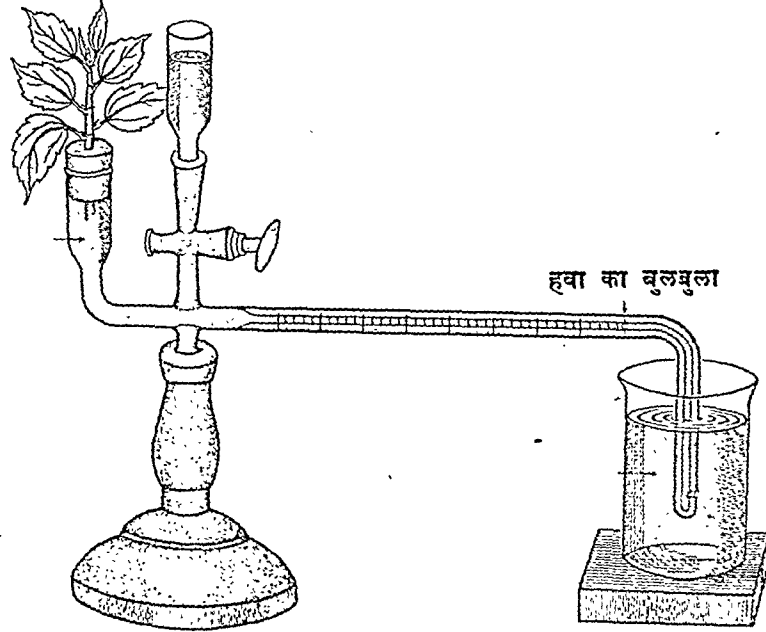
चित्र ४४६—प्रयोग जिसमें वाष्पोत्सर्जन धारा की गति दिखलाई गई है।

मापक (potometer), जैसा चित्र ४४६ में प्रदर्शित है, की सहायता से बहुत अच्छी तरह सम्पन्न किया जा सकता है। उपकरण (apparatus) पानी से भर दिया जाता है और पानी के अन्दर काटी हुई एक शाखा उपकरण के ऊपरी चौड़े सिरे से एक काग द्वारा वायुरुद्ध (air-tight) रूप में स्थित की जाती है। उपकरण के दूरस्थ (distal) सिरे को एक बीकर में रक्खे

पानी में डुबोया जाता है। बीकर का पानी इओसिन (eosin) से रंगीन बनाया जा सकता है। जब वाष्पोत्सर्जन संचालित होने लगता है तो रंगीन पानी नली में जाता दिखाई पड़ता है। इसके बाद बीकर के मुंह से नली का सिरा थोड़ी देर के लिये हटा दो और हवा को प्रवेश करने दो। उसे फिर पानी में डुबो दो। नली के दूरस्थ सिरे पर एक बुलबुला उठता दिखाई पड़ता है। यह उठता है और वाष्पोत्सर्जन के कारण चूषण (suction) के परिणामस्वरूप उत्स्वेदन मापक की क्षैतिज भुजा के मध्य से धीरे-धीरे यात्रा करता है। यह नोट करो कि अंशांकन (graduation) के एक सिरे से दूसरे सिरे तक यात्रा पूरी करने में बुलबुला कितना समय लगाता है। अंशांकित नली का आयतन ज्ञात होने पर (या पृथक ही निकाल लेने पर) वाष्पोत्सर्जन धारा का वेग सहज ही निर्धारित किया जा सकता है। रोघनी (stopcock) के खोलने से बुलबुला पीछे ढकेल कर प्रयोग फिर से प्रारंभ किया जा सकता है।

प्रयोग ८—वाष्पोत्सर्जन और अवशोषण में संबंध (Relation between transpiration and absorption; चित्र ४४७)—इस प्रयोग के लिये

चित्र ४४७—वाष्पोत्सर्जन और अवशोषण में सम्बन्ध। चित्र ४४८—संपीडन तुला।
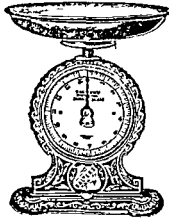
एक चौड़े मुंह की बोतल जिसमें एक अंशांकित पार्श्व नली और एक चिरा रबड़ काग लगा हो आवश्यक है। एक छोटा जड़ सहित पौधा चिरे काग द्वारा बोतल में, जो पानी से भरा होता है, पहुंचाया जाता है। पार्श्वनली में पानी के सतल को देख लिया जाता है और उसमें खुले तल से जल का वाष्पन रोकने के लिये

दो या एक बूंद तेल डाल दिया जाता है। जोड़ों को वायुरुद्ध अवश्य बना लिया जाता है। इसके बाद पूर्ण उपकरण एक संपीडन–तुला (compression balance; चित्र ४४८) में तोल लिया जाता है और तोल लिख लिया जाता है। कुछ समय बाद यह देखा जाता है कि पानी का संतल नीचे गिर गया है जो जल के उस आयतन को प्रकट करता है जो पौधे द्वारा अवशोपित किया जा चुका है। उसके बाद उपकरण को फिर तोल लिया जाता है। इन भारों का अंतर प्रत्यक्षतः पानी की वह मात्रा करता है जो पत्ती के तलों से वाष्पोत्सर्जित हुआ है। यदि प्रयोग को २४ घंटे तक संचालित रक्खा जाय तो यह देखा जायगा कि अवशोपित जल का आयतन (घन सेंटीमीटर में) वाष्पोत्सर्जन द्वारा लुप्त जल की मात्रा (ग्राम में) से कुछ अधिक है (एक घन सेंटीमीटर पानी = उसी का एक ग्राम)।

नोट—यह प्रयोग केवल दो प्रक्रमों वाष्पोत्सर्जन और अवशोपण के मध्य संबंध ही नहीं प्रकट करता, बल्कि वाष्पोत्सर्जन द्वारा 'जल की हानि' और 'अवशोपण' को पृथक रूप में सिद्ध करता है।

प्रयोग ९—वाष्पोत्सर्जन के कारण चूषण (Suction due to transpiration; चित्र ४४९)—एक दावमापी (पार्श्व भुजा युक्त नली जैसा चित्र में प्रदर्शित किया गया है) लो और उसके निचले सिरे में एक लंबी पतली कांच नली लगाओ। नलियों को पानी से पूरी तरह भर लो, और एक पत्तेदार प्ररोह (leafy shoot), जिसका कटा सिरा पानी के अन्दर रखा हो, एक रबड़ काग के मध्य से दावमापी की एक भुजा में डालो। दूसरे सिरे को काग से बंद कर दो। पिघले मोम द्वारा सब संयोजनों को वायुरुद्ध कर लो। नली के निचले सिरे को एक बीकर के अन्दर पारे में डुबो दो। जब वाष्पोत्सर्जन संचालित होने लगता है तो जल अवशोपित होता है और कुछ ही घंटों में पारा नली में कुछ ऊंचाई तक चढ़ता दिखाई पड़ता है। पारे का यह चढ़ाव वाष्पोत्सर्जन के कारण चूषण को प्रदर्शित करता है।

चित्र ४४९—वाष्पोत्सर्जन के कारण चूषण।

वाष्पोत्सर्जन का महत्व—पौधों के लिये वाष्पोत्सर्जन कई रूपों में जीवकर महत्व

का होता है। (१) प्रथमतः हम देखते हैं कि मूल भूमि से जल का सतत अवशोषण करते हैं और यह पानी पौधे की तात्कालिक आवश्यकता से कई गुना अधिक होता है; तथा अतिरिक्त जल वाष्पोत्सर्जन द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। (२) वाष्पोत्सर्जन और अवशोषण में एक निश्चित संबंध होता है। वाष्पोत्सर्जन जितना ही अधिक होता है मिट्टी से जल के अवशोषण का वेग उतना ही अधिक होता है। (३) जल का अवशोषण मिट्टी से कच्चे खाद्य पदार्थों (अकार्बनिक लवणों) के अन्तर्ग्रहण में सहायता करता है। यद्यपि यह एक तथ्य नहीं है कि जितना ही अधिक वाष्पोत्सर्जन होगा, मिट्टी से अकार्बनिक लवणों का अवशोषण उतना ही अधिक होगा, यथार्थ में लवणों का अंतर्ग्रहण अवशोषित जल की मात्रा से स्वतंत्र होता है। (४) वाष्पोत्सर्जन के कारण कोशिका रस सान्द्रित होता है और इस प्रकार रसाकर्षण में सहायता पहुंचाता है। (५) पत्र तल से वाष्पोत्सर्जन के परिणाम स्वरूप एक चूषण शक्ति (प्रयोग ९ देखिये) उत्पन्न होती है जो ऊंचे वृक्षों की चोटी तक रसारोहण में सहायता करती है। (६) पौधे के सारे शरीर में जल के वितरण में वाष्पोत्सर्जन सहायता पहुंचाता है। (७) वाष्पोत्सर्जन के परिणाम स्वरूप पौधे शीतल हो जाते हैं क्योंकि गुप्त ऊष्मा की प्रचुर मात्रा पानी को द्रव रूप से गैसीय रूप में परिवर्तित करने में लुप्त हो जाती है। (८) अंततः, वाष्पोत्सर्जन कुछ पौधों में कुछ पारिस्थितिक (ecological) सार्थकता रखता है। जब जल वाष्पित होता है तो आर्द्रताग्राही (hygroscopic) लवण पत्ती के तल पर ही छूट जाते हैं। ये लवण वायुमडल से आर्द्रता ग्रहण करते हैं और पत्ती या सारे पौधे को सूखने नहीं देते। इन सब सुविधाओं के विपरीत इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि अत्यधिक वाष्पोत्सर्जन प्रायः पौधे के जीवन के लिये संकटपूर्ण है। जब एक लम्बी अवधि तक अत्यधिक वाष्पोत्सर्जन होता है तो अनेक पौधे प्रायः सूखते और नष्ट होते दिखाई पड़ते हैं।

वाष्पोत्सर्जन को प्रभावित करने वाले कारक

(१) प्रकाश—प्रकाश सब से महत्वपूर्ण कारक है। अंधकार की अपेक्षा प्रकाश में वाष्पोत्सर्जन बहुत अधिक होता है। यह इस तथ्य के कारण होता है कि दिन के समय रन्ध्र पूर्णतः खुले रहते हैं और साधारणतः उनके द्वारा ही जल का वाष्पन घटित होता है। रात को रन्ध्र बन्द रहते हैं और परिणामतः वाष्पोत्सर्जन उल्लेखनीय रूप में अवरुद्ध होता है। दिन के समय पुन. पत्तियों पर सीधे गिरने वाली सूर्य की ऊष्मा किरणें वाष्पोत्सर्जन की गति को बहुत अधिक मात्रा में बढ़ा देती हैं।

(२) **वायु की आर्द्रता**—वायु शुष्क या आर्द्र जैसी हो उसके ही अनुसार वाष्पोत्सर्जन की गति में न्यूनता या वृद्धि होती है। जब वायुमंडल बहुत शुष्क होता है तो वह बहुत तत्परता से आर्द्रता ग्रहण करता है किन्तु जब वह नम या संतृप्त हो जाता है तो वह उसके बाद जल वाष्प ग्रहण नहीं कर सकता। उस समय वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल की हानि बहुत ही थोड़ी होती है।

(३) **वायु का ताप**—ताप जितना ही उच्च होता है उतना ही अधिक वाष्पोत्सर्जन होता है। उच्च तापों पर निम्न तापों की अपेक्षा जल अधिक स्वतन्त्रता से वाष्पित होता है। जब दोनों कारक अर्थात् वायु की शुष्कता और उच्च ताप, संयुक्त होते हैं तो वाष्पोत्सर्जन में उल्लेखनीय वृद्धि हो जाती है।

(४) **पवन**—तेज पवन में वाष्पोत्सर्जन बहुत अधिक सक्रिय हो जाता है क्योंकि जल वाष्प तत्काल ही स्थानान्तरित हो जाता है और वाष्पोत्सर्जन सतह के आस पास का क्षेत्र संतृप्त नहीं होने दिया जाता।

जल का निस्रावण (Exudation of Water)—अतिरिक्त जल अनेक शाकीय पौधों में एक प्रक्रम से दूर किया जाता है जो साधारणतया जल का निस्रावण (exudation of water) या निस्यन्दन (guttation) कहलाता है। इस प्रकार पिस्टिआ (*Pistia*), अनेक सूरन कुल के पौधों, (aroids), गार्डन नस्टरशियम और अनेक घासों आदि में यह देखा जाता है कि पूर्व प्रातः काल पत्ती की चोटी या सीमा पर पानी की बूंदें एकत्र होती हैं, यह पानी जल रन्ध्रों (water pores), जो उस क्षेत्र में विकसित हुए हैं, के मध्य से बाहर निकला होता है। यह पानी ओस की बूंदें नहीं हैं, इस तथ्य से प्रत्यक्ष होता है कि बूंदें नियमतः शिराओं के सिरे पर ही व्यवस्थित होती हैं तथा रासायनिक विश्लेषण इसमें कार्बनिक और अकार्बनिक लवणों की उपस्थिति प्रकट करता है। उष्ण और नम रात में ही साधारणतया निस्रावण घटित होता है। कुछ पौधों में प्रत्येक रात जल की यथेष्ट मात्रा निस्रावित होती है।

रसारोहण (ASCENT OF SAP)

मूल रोमों द्वारा मिट्टी से अवशोषित जल ऊपर की ओर पत्तियों, स्तम्भ के वर्धन क्षेत्रों और शाखाओं तक संवाहित होता है। लूपिन (lupin) की एक कटी शाखा, जिसमें सफेद फूल लगे हों, इओसिन के विलयन में डुबोने पर कुछ ही मिनटों में फूलों के रंग में श्वेत से हल्के गुलाबी रूप में धीरे-धीरे परिवर्तन प्रदर्शित करती है। शाकीय पौधों में यह ऊंचाई जिस तक जल को चढ़ना होता है थोड़ी होती है, किन्तु कुछ वृक्षों, जैसे यूकेलिप्टस (*Eucalyptus*), कुछ

शंकु वृक्षों (conifers) आदि, में जो ३०० फुट या उससे भी अधिक ऊंचे होते हैं, जल के इस स्तम्भ (column) द्वारा पार करने वाली दूरी बहुत अधिक होती है, और उस ऊंचाई तक पहुंचने के लिये जल को बहुत अधिक दाब का प्रतिरोध करना पड़ता है। वाहिनियों में ऊर्ध्ववर्ती (upwards) दिशा में वाष्पोत्सर्जन धारा जिस गति से प्रवाहित होती है वह भिन्न-भिन्न पौधों में और एक ही पौधे में अलग-अलग समय पर, बहुत कुछ भिन्न होती है। साधारण रूप में, स्वस्थ वृक्षों में यह गति प्रति घंटे लगभग एक या दो मीटर होती है। इस संबंध में स्वभावतः दो प्रश्न उठते है : रस की गति का मार्ग क्या है और रसारोहण के लिये उत्तरदायी कारक क्या है?

रस की गति का मार्ग (Path of Movement of Sap)—रस की गति का मार्ग निम्न दो विधियों में से एक द्वारा निर्धारित किया जा सकता है: (क) एक छोटा शाकीय पौधा (उदाहरण के लिये पिपरोमिया; *Peperomia*) या एक पौधे की एक छोटी शाखा (उदाहरणार्थ, लूपिन) इओसिन के घोल में डुबोई जा सकती है। कुछ समय बाद इस के विभिन्न ऊंचाइयों पर अनुप्रस्थ और अनुदैर्घ्य काट तैयार किये जाते हैं और सूक्ष्मदर्शी में परीक्षित किये जाते हैं। काटों द्वारा प्रदर्शित होगा कि रंगीन घोल केवल वाहिनियों और दारु वाहिनिकियों में ही उपस्थित है। अतएव ये ही वे अवयव हैं जिनके द्वारा रस की गति, या जिस का नाम वाष्पोत्सर्जन धारा (transpiration current) भी है, घटित होती है। (ख) केवल दारु को अविकल (intact) छोड़ कर किसी शाखा से फ्लोएम और एधा तक सभी परिधिस्थ (peripheral) ऊतकों को एक वलय (ring) रूप में हटाया जा सकता है। इसी प्रकार उपचारित एक कटी शाखा में मज्जा (pith) भी कुचली जा सकती है। यह देखा जाता है कि पत्तियां कुम्हलाती नहीं है, क्योंकि केवल दारु ही एक ऐसा ऊतक है जो अविकल रहता है, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि उसी के द्वारा रसारोहण घटित होता है। यह वलयीकरण (ringing) प्रयोग कहलाता है।

रसारोहण के लिये उत्तरदायी कारक—रसारोहण की व्याख्या करने के लिये समय-समय पर अनेक वादों को उपस्थित किया गया है, किन्तु कोई भी अभी तक संतोषजनक सिद्ध नहीं हो सका है। यह विश्वास किया जाता है कि मूल-दाब कुछ ऊंचाई तक जल को ढकेलता है और जल के इस स्तम्भ पर वाष्पोत्सर्जन ऊपर से चूषण शक्ति प्रयुक्त करता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मूल-दाब नीचे से एक धक्का देता है और वाष्पोत्सर्जन ऊपर से कर्षण उत्पन्न करता है। इस दृष्टि से वाष्पोत्सर्जन अधिक शक्तिशाली कारक है। रसारोहण के लिये संभाव्य वाद निम्न है:

(१) **मूल-दाब**—रसारोहरण के लिये उत्तरदायी शक्तियों में से एक मूल-दाब माना जाता है। जब जमीन के ऊपर स्तम्भ काटा जाता है तो अनेक पौधे बहुत बल के साथ पानी निकालते दिखाई पड़ते हैं। यह व्याख्या की जाती है कि यह घटना रसाकर्षण दाब के कारण होती है जो मूल-दाब उत्पन्न करने के लिये मूल-अन्तस्त्वचिका में संचालित होती है। शाकों (herbs), क्षुपों (shrubs) और छोटे वृक्षों में, और वह भी वाष्पोत्सर्जन के अभाव में, जल को ऊपर पहुंचाने के लिये मूल-दाब पर्याप्त हो सकता है। मूल-दाब केवल २ वायुमंडल का दाब ही उत्पन्न कर सकता है और इस प्रकार एक जल के स्तम्भ को २० मीटर (१ मीटर=३९·३७ इंच) की ऊंचाई तक उठा सकता है, जब कि ऊंचे वृक्षों की चोटी तक, कभी-कभी ९१ मीटर (३०० फुट) या उससे भी अधिक ऊंचाई तक रस को पहुंचाने के लिये २० वायुमंडल से भी अधिक दाब की आवश्यकता होती है। अतएव इस विचार से मूल-दाब अयोग्य है। यह प्रक्रम मंद भी है और वाष्पोत्सर्जन द्वारा लुप्त जल से होड़ नहीं ले सकता; इसके अतिरिक्त जब वाष्पोत्सर्जन अधिकतम होता है तो मूल-दाब न्यूनतम होता है; वास्तव में, सक्रिय वाष्पोत्सर्जन के समय वाहिनियों के भीतर जल एक नकारात्मक (negative) दाब में रहता है। अनेक पौधों में वर्ष के कुछ भागों में मूल-दाब शून्य या दुर्बल रहता है। इस के अतिरिक्त, यदि मूल अमुंडित (decapitated) कर दिया जाय और स्तम्भ का कटा सिरा पानी में डुबो दिया जाय तब भी जल स्तम्भ द्वारा ऊपर चढ़ता है।

(२) **केशिकत्व**—केशिका नली के अंदर जल का संतल बाहर के जल से सदा उच्चतर रहता है; नली का छिद्र जितना ही पतला होगा, उसमें जल उतना ही अधिक ऊंचाई तक चढ़ेगा। दारु वाहिनियां मूल से पत्ती तक फैली हुई उतनी संख्या की केशिका नलियां मानी जा सकती हैं; किन्तु वाहिनियों के ज्ञात व्यास से यह स्पष्ट होता है कि इनमें पानी का चढ़ाव कठिनाई से ही एक फुट से ऊपर हो सकता है।

(३) **अंतर्ग्रहण या आशोषण वाद**—साक्स (Sachs, १८७४) ने सुझाव दिया था कि आशोषण शक्ति के कारण जल दारु वाहिनियों (xylem vessels) की भित्तियों के सम्पार्श्व में [और उनकी गुहाओं (cavities) के अन्दर से नहीं] बहता है और वह ही रसारोहण (ascent of sap) के लिये उत्तरदायी होता है। किन्तु जब वाहिनियों की गुहाएं कृत्रिम रूप से तेल, हवा या जिलैटिन (gelatin) द्वारा बंद कर दी जाती है तो शाखाएं म्लान (wilt) होती दिखाई पड़ती हैं, जो इस प्रकार प्रकट करती हैं कि इस प्रक्रम से अवशोषित पानी की मात्रा वाष्पोत्सर्जन द्वारा नष्ट जल की मात्रा से समता

नहीं कर सकती। आसोषण की शक्ति निस्संदेह ही भारी होती है, किन्तु इस प्रक्रम द्वारा जल की गति मन्द होती है।

(४) जीवकर शक्तियां—(क) सजीव कोशिकाओं, जैसे दारु को परिवारित करने वाले दारु मृदूतक (wood parenchyma) और मज्जका किरण (medullary ray) की कोशिकाओं की क्रियाकलापों को गॉडल्यूस्की (Godlewski, १८८४) ने पादप काय (plant body) के मध्य रसारोहण के लिये उत्तरदायी बतलाया है। सजीव कोशिकाओं द्वारा सम्पन्न होने वाला कार्य रिले (relay) पंप की तरह का है। सजीव कोशिकाएं किसी निश्चित संतल (level) पर वाहिनियों से पानी लेती हैं और उसे फिर उच्चतर संतल पर वाहिनियों में बलात पहुंचाती हैं और इस प्रकार रस आरोहित होता है। किन्तु स्ट्रासबर्गर (Strasburger; १८९१) ने सजीव कोशिकाओं को ताप तथा विषैले रसद्रव्यों (chemicals) के प्रयोग द्वारा मृत बना कर जीवकर शक्ति की व्याख्या को निर्मूल सिद्ध कर दिया है। (ख) स्वर्गीय सर जे० सी० बोस (१९२३) के विचारानुसार रसारोहण का कारण अंतस्त्वचा (endodermis) पर प्रतिस्पर्शी अन्तस्त्वचिका (cortex) के आन्तरिक स्तर का सक्रिय स्पदन (pulsation) है। इस स्तर की सजीव कोशिकाओं की स्पंदनशील क्रियाओं के कारण एक प्रकार का पंप कार्य जारी हो जाता है और स्तम्भ (stem) के मध्य से ऊर्ध्ववर्ती दिशा में रस के क्रियात्मक नोदन (propulsion) के लिये उत्तरदायी होता है। मूल-दाब और वाष्पोत्सर्जन के अभाव में भी इस स्तर द्वारा जल का संवाहन कार्यान्वित होता है। दारु वाहिनिया मृत और निष्क्रिय होने के कारण उनमें स्पदन प्रदर्शित नहीं होता, और बोस उनको केवल जलागार (reservoir of water) मानते है। अन्तस्त्वचिका उनमें जल अतःक्षेपित करती है और परिस्थितियों के अनुसार उनसे फिर वापिस कर लेती है; किन्तु शारीरीय (anatomical) तथा प्रयोगात्मक प्रमाण इस विचार का अनुमोदन नहीं करते।

(५) वाष्पोत्सर्जन कर्षण और संसंजन का बल (Transpiration Pull and Force of Cohesion)—रसारोहण के विषय का स्पष्टीकरण अववोध १९१४ ई० में डिक्सन (Dixon) द्वारा अत्यधिक प्रकट किया गया। उस का सिद्धान्त वाष्पोत्सर्जन कर्षण और जल स्तम्भ (water column) की तनाव क्षमता (tensile strength) में निहित है। इस सिद्धान्त के अनुसार जल कण एकत्र ससजित होते हैं और मूल से पत्ती तक की वाहिनियों में एक अविच्छिन्न स्तंभ (continuous column) रूप में निर्मित होते हैं तथा इस स्तम्भ में कहीं पर वायु के बुलबुले नहीं होते। जल कण तक

दूसरे से इतनी दृढ़ता पूर्वक संसंजित होते हैं कि वाष्पोत्सर्जन कर्षण के कारण तनाव की अवस्था में होने पर भी यह स्तम्भ अपनी पूरी लम्बाई में कहीं भी बुलबुले बना कर खंडित नहीं होता। जल की संसंजक शक्ति, जैसा कि प्रयोगात्मक रूप में निर्दिष्ट हुई है, १५८ वायुमंडलीय दाब के बराबर हो सकती है और इस लिये १,५८० मीटर की ऊंचाई तक पानी को उठा सकती है। इतना अधिक ऊंचा कोई वृक्ष नहीं होता और इस कारण इस दृष्टि से यह शक्ति यथेष्ट प्रबल मानी जाती है। जब पर्ण के सतह से वाष्पोत्सर्जन होता है तो पर्णमध्य (mesophyll) कोशिकाओं का कोशिका रस सान्द्रित हो जाता है और रसाकर्षण के प्रक्रम से शिराओं की दारु वाहिनिकियों से पानी प्रत्याहृत हो जाता है। इस के फल स्वरूप जल स्तम्भ के अंतभाग पर कर्षण का प्रभाव पड़ता है और पूर्ण जल स्तम्भ सदेह ऊपर खींच लिया जाता है।

अध्याय ६

खाद्य या भोजन का निर्माण

(MANUFACTURE OF FOOD)

पौधों का खाद्य (Food of Plants)—जीवित जीवों (organism) द्वारा जो पदार्थ उनके पोषण के लिये न्यूनाधिकतया प्रत्यक्षतः प्रयुक्त होते हैं वे उनका खाद्य होते हैं। ऐसे पदार्थ **कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन,** वसा और तेल (तैल) हैं। जन्तु, अहरित पौधे, और पौधों की अहरित कोशिकाएं, हरे पौधों की हरिम कणक-धारी कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न कार्बनिक खाद्य पर ही प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः निर्भर रहने को विवश होते हैं।

१. कार्बोहाइड्रेट

प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis)—प्रकाश-संश्लेषण में हवा और मिट्टी से क्रमशः अवशोषित कार्बन-डाइआक्साइड और पानी से प्रकाश (ऊर्जा के स्रोतरूप में) में हरिम कणकों (chloroplast) द्वारा हरी पत्तियों में सरल कार्बोहाइड्रेटों जैसे शर्कराओं का संश्लेषण होता है। इस प्रक्रम के साथ ही आक्सीजन को निर्मुक्ति (liberation) होती है (देखिये प्रयोग १०)। निर्मुक्त आक्सीजन की मात्रा अवशोषित कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा के बराबर पाई गयी है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस प्रक्रम में निर्मुक्त कुल आक्सीजन

केवल पानी से ही निर्मुक्त होता है और यह कार्बन डाइआक्साइड से निर्मुक्त नहीं होता। आक्सीजन पादप काय से रन्ध्रों द्वारा बाहर निकलता है। कार्बोहाइड्रेट का यह निर्माण जो सामान्यतः **कार्बन-स्वीकरण** (carbon assimilation) कहलाता है केवल हरे पौधों का एकाधिकार होता है। इस प्रक्रम के द्वारा केवल सरल कार्बोहाइड्रेटों का ही निर्माण नहीं होता, बल्कि ऊर्जा की प्रचुर मात्रा भी उनमें सचित होती है। यह ध्यान देने की बात है कि प्रकाश-संश्लेषण केवल हरी कोशिकाओं में ही घटित होता है और इस कारण मुख्यतः पत्ती में और कुछ अश तक हरे प्ररोह मे भी घटित होता है। प्रकाश तीव्रता और ताप की अनुकूल स्थितियों मे प्रकाश-सश्लेषण की गति की प्रचड वृद्धि हो जाती है और इस प्रक्रम के लिये हवा से कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) की अत्यधिक मात्रा अवशोषित होती है, यहा तक कि शात दिन मे फसल वाले खेत के ऊपर की हवा में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा औसत ०.०३% की अपेक्षा ०.०१% ही रह जाती है।

प्रकाश-संश्लेषण का प्रक्रम (Mechanism of Photosynthesis)—प्रकाश-सश्लेषण की मध्यस्थ (intermediate) रासायनिक अवस्थायें अब भी एक रहस्य बनी हुई हैं। एक लबी अवधि तक सचालित रहने वाले अनेक अनुसंधानों ने भी कार्बन डाईआक्साइड और पानी से कार्बोहाइड्रेटो के उत्पादन में प्रयुक्त विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं को ज्ञात कर सकने में असफलता पाई है। इस विषय में अनेक कल्पनायें भी की गई हैं। इस बात का सुझाव किया गया है कि द्राक्षा-शर्करा (gluscose) का निर्माण निम्न प्रकार होता है: $6CO_2+12H_2O=C_6H_{12}O_6+6O_2+6H_2O$। किन्तु इस समावेशक (overall) प्रतिक्रिया से भी हरी कोशिकाओं में घटित होने वाले सब रासायनिक परिवर्तनों की व्याख्या नहीं होती। यथार्थ में ये परिवर्तन अभी तक निश्चित रूप से ज्ञात नही हो सके हैं। प्रकाश-सश्लेषण अनेक रासायनिक प्रतिक्रियाओं की श्रेणी (series) मे घटित होता है—कुछ तो प्रकाश-रासायनिक (photo-chemical) होते हैं जिनमे प्रकाश ऊर्जा की आवश्यकता होती है और कुछ रासायनिक या ऐन्ज़ाइमीय (enzymic) होते हैं, जिन में एक विशिष्ट ताप की आवश्यकता होती है। यह भी ज्ञात नहीं हो सका है कि पर्णहरिम का क्या निश्चित कार्य होता है। केवल यह ही ज्ञात है कि (क) यह विकीर्ण (प्रकाश, light) ऊर्जा अवशोषित करता है और संभवतः इस ऊर्जा को प्रकाश-सश्लेषी उत्पादों (photosynthetic products) में स्थानान्तर करता है, और (ख) यह एक उत्प्रेरक कारक (catalytic agent) रूप में व्यवहार करता है। यह स्वयं [illegible]दा-

कि वाष्पोत्सर्जन कर्षण के कारण
दूसरे से इतनी दृढ़ता पूर्वक संसंजित होते हैं कि वाष्पोत्सर्जन कर्षण के कारण
तनाव की अवस्था में होने पर भी यह स्तम्भ अपनी पूरी लम्बाई में कहीं भी
वुलवुले वना कर खंडित नहीं होता। जल की संसंजक शक्ति, जैसा कि प्रयोगात्मक
रूप में निर्दिष्ट हुई है, १५८ वायुमंडलीय दाव के वरावर हो सकती है और
इस लिये १,५८० मीटर की ऊंचाई तक पानी को उठा सकती है। इतना अधिक
ऊंचा कोई वृक्ष नहीं होता और इस कारण इस दृष्टि से यह शक्ति यथेष्ट प्रवल मानी
जाती है। जव पर्ण के सतह से वाष्पोत्सर्जन होता है तो पर्णमध्य (mesophyll)
कोशिकाओं का कोशिका रस सान्द्रित हो जाता है और रसाकर्षण के प्रक्रम से
शिराओं की दारु वाहिनिकियों से पानी प्रत्याहृत हो जाता है। इस के फल
स्वरूप जल स्तम्भ के अंतभाग पर कर्षण का प्रभाव पड़ता है और पूर्ण जल स्तम्भ
सदेह ऊपर खींच लिया जाता है।

अध्याय ६

खाद्य या भोजन का निर्माण

(MANUFACTURE OF FOOD)

पौधों का खाद्य (Food of Plants)—जीवित जीवों (organism) द्वारा जो पदार्थ उनके पोषण के लिये न्यूनाधिकतया प्रत्यक्षतः प्रयुक्त होते हैं वे उनका खाद्य होते हैं। ऐसे पदार्थ **कार्वोहाइड्रेट, प्रोटीन,** वसा और तेल (तैल) हैं। जन्तु, अहरित पौधे, और पौधों की अहरित कोशिकाएं, हरे पौधों की हरिम कणक-धारी कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न कार्वनिक खाद्य पर ही प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः निर्भर रहने को विवश होते हैं।

१. कार्वोहाइड्रेट

प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis)—प्रकाश-संश्लेपण में हवा और मिट्टी से क्रमशः अवशोषित कार्वन डाइआक्साइड और पानी से प्रकाश (ऊर्जा के स्रोतरूप में) में हरिम कणकों (chloroplast) द्वारा हरी पत्तियों में सरल कार्वोहाइड्रेटों जैसे शर्कराओं का संश्लेपण होता है। इस प्रक्रम के साथ ही आक्सीजन को निर्मुक्ति (liberation) होती है (देखिये प्रयोग १०)। निर्मुक्त आक्सीजन की मात्रा अवशोपित कार्वन डाइआक्साइड की मात्रा के वरावर पाई गयी है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस प्रक्रम में निर्मुक्त कुल आक्सीजन

केवल पानी से ही निर्मुक्त होता है और यह कार्बन डाइआक्साइड से निर्मुक्त नहीं होता। आक्सीजन पादप काय से रन्ध्रों द्वारा बाहर निकलता है। कार्बोहाइड्रेट का यह निर्माण जो सामान्यतः कार्बन-स्वीकरण (carbon assimilation) कहलाता है केवल हरे पौधों का एकाधिकार होता है। इस प्रक्रम के द्वारा केवल सरल कार्बोहाइड्रेटों का ही निर्माण नहीं होता, बल्कि ऊर्जा की प्रचुर मात्रा भी उनमें संचित होती है। यह ध्यान देने की बात है कि प्रकाश-संश्लेषण केवल हरी कोशिकाओं में ही घटित होता है और इस कारण मुख्यतः पत्ती में और कुछ अंश तक हरे प्ररोह में भी घटित होता है। प्रकाश तीव्रता और ताप की अनुकूल स्थितियों में प्रकाश-संश्लेषण की गति की प्रचंड वृद्धि हो जाती है और इस प्रक्रम के लिये हवा से कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) की अत्यधिक मात्रा अवशोषित होती है, यहा तक कि शांत दिन में फसल वाले खेत के ऊपर की हवा में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा औसत ०.०३% की अपेक्षा ०.०१% ही रह जाती है।

प्रकाश-संश्लेषण का प्रक्रम (Mechanism of Photosynthesis)—प्रकाश-संश्लेषण की मध्यस्थ (intermediate) रासायनिक अवस्थायें अब भी एक रहस्य बनी हुई हैं। एक लंबी अवधि तक संचालित रहने वाले अनेक अनुसंधानों ने भी कार्बन डाईआक्साइड और पानी से कार्बोहाइड्रेटों के उत्पादन में प्रयुक्त विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं को ज्ञात कर सकने में असफलता पाई है। इस विषय में अनेक कल्पनायें भी की गई हैं। इस बात का सुझाव किया गया है कि द्राक्षा-शर्करा (gluscose) का निर्माण निम्न प्रकार होता है: $6CO_2+12H_2O=C_6H_{12}O_6+6O_2+6H_2O$। किन्तु इस समावेशक (overall) प्रतिक्रिया से भी हरी कोशिकाओं में घटित होने वाले सब रासायनिक परिवर्तनों की व्याख्या नहीं होती। यथार्थ में ये परिवर्तन अभी तक निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो सके हैं। प्रकाश-संश्लेषण अनेक रासायनिक प्रतिक्रियाओं की श्रेणी (series) में घटित होता है—कुछ तो प्रकाश-रासायनिक (photo-chemical) होते हैं जिनमें प्रकाश ऊर्जा की आवश्यकता होती है और कुछ रासायनिक या ऐन्ज़ाइमीय (enzymic) होते हैं, जिन में एक विशिष्ट ताप की आवश्यकता होती है। यह भी ज्ञात नहीं हो सका है कि पर्णहरिम का क्या निश्चित कार्य होता है। केवल यह ही ज्ञात है कि (क) यह विकीर्ण (प्रकाश, light) ऊर्जा अवशोषित करता है और संभवतः इस ऊर्जा को प्रकाश-संश्लेषी उत्पादों (photosynthetic products) में स्थानान्तर करता है, और (ख) यह एक उत्प्रेरक कारक (catalytic agent) रूप में व्यवहार करता है। यह स्वतः प्रकाश-

संश्लेषी प्रक्रम में परिवर्तनशील नहीं होता। वाह्य कारक जैसे प्रकाश, कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) और ताप हरिम कणकों की समुचित कार्यकारिता (functioning) के लिये नितान्त आवश्यक होते हैं। कदाचित अनेक ऐन्जाइम भी, यद्यपि उसमें से कोई भी पृथक नहीं किया जा सका है, इस प्रक्रम की अनेक अवस्थाओं में कुछ कार्य करते हैं।

अभिनव (recent) वर्षों में रेडियधर्मी (radioactive) तत्वों, विशेषतया रेडियधर्मी कार्बन C^{14} की खोज होने से कुछ अंश तक यौगिकों का अनुक्रम ज्ञात करना संभव हो सका है जिनके मध्य कार्बन डाइआक्साइड प्रकाश-संश्लेषण के प्रक्रम में निर्मित अंतिम उत्पाद (product) तक के मार्ग में गमन करता है। यह प्रदर्शक रीति (tracer method) कहलाती है। इस अनुक्रम ने निश्चित रूप से प्रमाणित कर दिया है कि एक साधारण प्रतिक्रिया, जैसा वेअर (Baeyer) ने प्रदर्शित किया है, घटित नहीं होती, तथा फार्मेलडिहाइड की रचना नहीं होती। पानी (H_2O) में रेडियधर्मी आक्सीजन, O^{18} का उपयोग कर प्रकाश-संश्लेषण के संबंध में एक बहुत महत्वपूर्ण आरंभिक खोज यह है कि इस प्रक्रम में निर्मुक्त आक्सीजन एक मात्र पानी से आता है, और कार्बन डाइआक्साइड से नहीं आता जैसा कि अब तक विश्वास किया जाता था। इसी प्रकार कार्बन डाइआक्साइड उपयोग करने से जिसमें परमाणु भार (atomic weight) १४ का रेडियधर्मी कार्बन अर्थात् $C^{14}O_2$ रहता है, क्रमिक (successive) प्रतिक्रियाओं में ...त कार्बन का अनुरेखण करना संभव हो सका हैं। इस प्रकार ...० ई० में बेन्सन (Benson) और कैल्विन (Calvin) ने $C^{14}O_2$ (जिस में रेडियधर्मी कार्बन था) का उपयोग कर प्रकाश-संश्लेषण की कुछ मध्यस्थ अवस्थाओं में इस को अनुरेखित कर सकने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने ज्ञात किया कि जब प्रकाश-संश्लेषण की अवधि, अर्थात् प्रकाश में खुले रहने की अवधि कुछ सेकंड न्यून कर दी गई तो फॉस्फोग्लिसिरिक अम्ल (phosphoglyceric acid) की परिचयशील (detectable) मात्रा निर्मित हुई। इसलिये प्रकाश-संश्लेषण में निर्मित प्रथम स्थायी मध्यवर्ती उत्पाद फॉस्फोग्लिसिरिक अम्ल है। यह तीन-कार्बन यौगिक है और संभवतः किसी अज्ञात दो-कार्बन यौगिक से निर्मित होता है। प्रयोग में उपयोग किया हुआ रेडियधर्मी कार्बन फॉस्फोग्लिसिरिक अम्ल में और अंततः इस प्रक्रम में निर्मित शर्करा (sugar) में अनुरेखित किया जा सकता है। इस तथ्य का अनुमोदन कि ऐसी प्रतिक्रिया घटित होती है जिसमें फॉस्फोग्लिसिरिक अम्ल की रचना होती है, इस समस्या निराकरण में संलग्न अन्य कार्यकर्ताओं ने भी किया है।

किन्तु यथार्थतः शर्करा किस प्रकार प्रस्तुत होती है, यह बात स्पष्ट नहीं हो सकी है। यह सभव है कि इस प्रकार के दो ३-कार्बन यौगिकों के संयोग से एक ६-कार्बन यौगिक उत्पन्न होता है, जो शर्करा है। समावेनक (overall) प्रतिक्रिया को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है: $6CO_2+12H_2O \longrightarrow C_6H_{12}O_6+6H_2O+6O_2$। प्रकाश संश्लेषण की सम्पूर्ण प्रक्रम की प्रकृति जटिल प्रतीत होती है। यह प्रत्यक्ष है कि यह प्रक्रम अनेक सोपानों (steps) में घटित होता है जिसमें मध्यस्थ यौगिकों की एक श्रेणी उत्पन्न होती है, जिनकी प्रकृति अब तक दुर्बोध है।

पूर्ण रूप में प्रकाश-संश्लेषण दो प्रमुख प्रक्रमों में विभक्त होता है, जिसमें अनेक प्रतिक्रियायें निहित होती है—प्रथम प्रक्रम प्रकाश-रासायनिक (photo-chemical) है जिसमें प्रकाश ऊर्जा (light energy) की आवश्यकता होती है, और द्वितीय प्रक्रम रासायनिक या ऐन्ज़ाइमीय (enzymic) है जो ताप पर निर्भर करता है। प्रकाश-संश्लेषण के प्रक्रम का सूत्रपात पर्ण-हरिम (chlorophyll) द्वारा प्रकाश ऊर्जा के अवशोषण तथा पानी को आक्सीजन और हाइड्रोजन रूप में खंडित करने में इस ऊर्जा का उपयोग करने में होता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्रकाश-संश्लेषण में निर्मुक्त कुल आक्सीजन एकमात्र पानी (H_2O) से प्राप्त होता है। जहां आक्सीजन बाहर निकलता है, वहा हाइड्रोजन अल्प मात्रा में हरिम कणक (chloroplast) में किसी अज्ञात यौगिक के संयोजन में, जो हाइड्रोजन के स्वीकारक (acceptor) रूप में व्यवहार करता है, संचित होता है। इस प्रक्रम द्वारा सूर्य प्रकाश से मूलतः प्राप्त प्रकाश ऊर्जा (light energy) स्थितिज रासायनिक ऊर्जा (potential chemical energy) रूप में परिवर्तित होती है। द्वितीय प्रक्रम में एक ३-कार्बन यौगिक फॉस्फोग्लिसिरिक अम्ल बनने के लिये हाइड्रोजन का स्थानान्तरण (transfer) कार्बन डाइआक्साइड तक होता है (जो अब हाइड्रोजन के स्वीकारक के समान व्यवहार करता है)। अंततः फॉस्फोग्लिसिरिक अम्ल शर्करा रूप में रूपान्तरित हो जाता है। द्वितीय प्रक्रम अंधकार मे और अहरित कोशिकाओं में सचालित हो सकता है। प्रकाश-संश्लेषण में ग्रहण किया हुआ प्रायः सम्पूर्ण कार्बन डाइआक्साइड शर्करा की रचना में प्रविष्ट होता है।

प्रकाश-संश्लेषण में अन्तिम उत्पाद—(End Products in Photo-synthesis)—आक्सीजन और मड (स्टार्च) प्रकाश-संश्लेषण में बनने वाले अन्तिम उत्पाद (product) है। आक्सीजन पत्ती से बाहर निकलता है (देखिये प्रयोग १०) किन्तु मंड उसमें संचित होता रहता है (देखिये प्रयोग ११)। मंड निम्न विधि से मालूम हो सकता है। सन्ध्या को एक या अधिक पत्तियां

इकट्ठी करो और उसे मेथाइलित स्पिरिट से विरंजित कर लो। उसके बाद उन्हें आयोडीन विलयन में डुबो लो। वे रंग में बदल कर नीला-काला हो जाती हैं जिससे मंड कणों की उपस्थिति प्रकट होती है। मंड पानी में अविलेय होता है। जब स्थानान्तरण (translocation) आवश्यक होता है तो डायस्टेस (diastase) नामक ऐन्जाइम (enzyme) की क्रिया द्वारा यह शर्करा में परिवर्तित हो जाता है, जब शर्करा संग्रह ऊतक में पहुंच जाता है तो वह रंगहीन कणिकाओं (leucoplasts) द्वारा मंड रूप में पुनः परिवर्तित हो जाता है।

प्रयोग १०—प्रकाश-संश्लेषण में आक्सीजन निर्मुक्त होता है (चित्र ४५०)। —पानी से भरे हुए बड़े बीकर में कुछ हरे निमग्न (submerged) जलीय पादप, उदाहरणार्थ हाइड्रिला (*Hydrilla*) रक्खो। कार्बन डाइआक्साइड के स्रोत रूप में सोडा वाटर की अल्प मात्रा या सोडा बाइकार्बोनेट मिला दो। पानी के अन्दर पौधों को एक कांच की कीप से ढक दो और पानी के अन्दर कीप के ऊपर पानी से भरी एक परीक्षा नली उलट दो। अधिक अच्छा हो यदि तने काट लिये जांय और प्ररोह एक बंडल में बंधे हों। कटे हुए सिरे ऊर्ध्वमुख हों और कीप में प्रक्षिप्त (projected) हों।
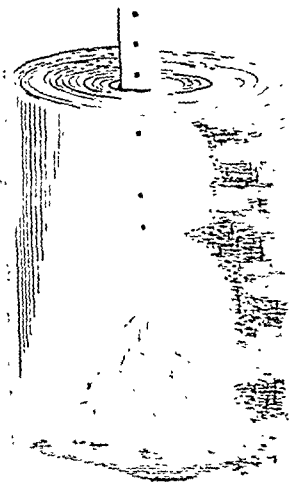
चित्र ४५०—निमग्न जल पादप (हाइड्रिला) के प्रकाश-संश्लेषण में आक्सीजन के बुलबुलों का निकास।

प्रेक्षण—दीप्त प्रकाश में रहने पर तनों के कटे सिरों के द्वारा ऊर्ध्वमुख उठते हुए गैस के छोटे बुलबुलों की धारा दिखाई पड़ती है और पानी को विस्थापित (displacing) कर परीक्षा नली के ऊपरी सिरे पर एकत्र होती है।

अनुमिति—यह गैस आक्सीजन है इसको निम्न विधि से प्रमाणित किया जा सकता है। पानी के अन्दर अंगूठे से परीक्षा नली को बंद कर दो और उसे एक तश्तरी के ऊपर उलट दो जिस में पोटाश के पाइरोगैलेट (pyrogallate of potash) की कुछ मात्रा मिली हो। फिर एक नत नली (bent [illegible]) की सहायता से परीक्षा नली में इस विलयन की कुछ मात्रा

मिलाओ। गैस के सम्पर्क में आने पर पाइरोगैलेट विलयन उसे अवशोषित कर लेगा और इस लिये ऊपर उठेगा और परीक्षा नली को पूर्णतः घेर लेगा। पाइरोगैलिक विलयन आक्सीजन अवशोषित करता है। अतएव नली में गैस आक्सीजन है।

प्रयोग ११—प्रकाश-संश्लेषण में मंड का निर्माण होता है (चित्र ४५१)। स्थितावस्था (in situ) में एक पौधे की एक हरी पत्ती चुन लो और इसके दोनों तलों पर के कुछ भाग को काले कागज के दो एक समान (uniform) टुकड़ों से या तो सूर्योदय से पूर्व प्रातःकाल या गत संध्या को ढक दो जिससे प्रयोग मंडरहित पर्ण से कार्यान्वित (performed) किया जा सके, या एक गमले के स्वस्थ हरे पौधे को एक या दो दिन तक अंधेरे कमरे में रक्खो जिससे उसकी पत्तियां मंड-रहित हो जाय और फिर इस पौधे की एक पत्ती का कुछ भाग उपर्युक्त विधि से ढक दो। कागज के टुकड़ों को नर्म काठ निर्मित क्लिपों या कागज के क्लिपों से सुचारु रूप से लगा दो। इस बात के निश्चय के लिये कि उस में मंड नहीं है प्रातःकाल निकटवर्ती कुछ पत्तियां एकत्र करो। ऐलकोहल से उन्हे विरजित करो और उन्हे आयोडीन विलयन में डुबो लो। तुम देखोगे कि वे काली नहीं होतीं। प्रत्यक्षतः सब पत्तियां मंड-रहित हैं। अब पौधे को कुछ समय तक, अच्छा हो कि संध्या तक प्रकाश में रहने दो। इस के बाद पत्ती को तोड़लो और उसे ऐलकोहल से विरजित करो। विरजित पत्ती को एक मिनट के लगभग आयोडीन विलयन में रक्खो। आलोकन करो कि खुला भाग नीला या काला हो जाता है और यह प्रकट करता है कि मंड विद्यमान है।

क ख

चित्र ४५१—स्थल पादप के प्रकाश-संश्लेषण में मंड का निर्माण। क, पत्ती काले कागज से अंशतः ढकी हुई; ख, ढका हुआ भाग मंड कणों रहित लेकिन बगैर ढका हुआ भाग असंख्य मंड कणों सहित।

इसके विपरीत ढका हुआ भाग पीताभ भूरा (yellowish brown) हो जाता है क्योंकि उसमें मंड नहीं बना होता। यह पीलापन मिश्रित भूरा रंग जीवद्रव्य और सैलूलोज पर आयोडीन विलयन की क्रिया के कारण है।

अबद्ध (loose) काले कागजों की जगह चित्र ४५२ में प्रदर्शित ढंग का प्रकाश परदा पत्ती का एक भाग ढकने में प्रयुक्त हो सकता है। इस प्रकाश-

सकता है। किन्तु अधिकतम और अनुकूलतम, दोनों ही ताप पौधों की विभिन्न स्पीशीज (species) और विभिन्न जलवायुवीय परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाले पौधों में विभिन्न होता है।

(४) **पर्णहरिम**—यह प्रकाश-संश्लेषण के लिये परमावश्यक है। पर्ण-हरिम की अनुपस्थिति में आदिलव (plastids) इस विचार से अशक्त (powerless) होते हैं। इसी कारण पौधों के अहरित भाग भी प्रकाश-संश्लेषण नहीं कर पाते। कवक (fungi) और मृतोपजीवी (saprophytic) तथा पराश्रयी (parasitic) सपुष्पोद्भिदों (phanerogams) ने इस शक्ति को पूर्णतया लुप्त कर दिया है, क्योंकि उनमें पर्णहरिम नहीं होता।

(५) **पोटासियम**—कार्वोहाइड्रेटों के संश्लेषण में पोटासियम सहायक होता है और इस कारण पोटासियम लवणों के अभाव में मंड कणों का निर्माण नहीं होता। पोटासियम कार्वोहाइड्रेटों की रचना में प्रवेश नहीं करता किन्तु उनके संश्लेषण में उत्प्रेरक (catalyst) का कार्य करता है।

(६) **पानी**—पानी प्रकाश-संश्लेषण के लिये आवश्यक है क्योंकि पानी और कार्बन डाइआक्साइड रासायनिक परिवर्तन कर प्रकाश की उपस्थिति और हरिम कणकों के प्रभाव में कार्वोहाइड्रेटों की रचना में अग्रसर होते हैं। किन्तु यह एक तथ्य है कि मूलों द्वारा अवशोषित जल का १ प्रतिशत से भी न्यून प्रकाश-संश्लेषण में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त पानी प्रकाश संश्लेषी कोशिकाओं को आशून (turgid) तथा सक्रिय (active) बनाता है।

२. प्रोटीन (Proteins)

प्रोटीनों की प्रकृति—ये पौधों में पाये जाने वाले जटिल नाइट्रोजनीय यौगिक हैं। प्रोटीनों के विश्लेषण से प्रकट होता है कि कार्बन (carbon), हाइड्रोजन (hydrogen), आक्सीजन (oxygen), नाइट्रोजन (nitrogen) और कभी-कभी गंधक (sulphur) और फ़ॉस्फ़ोरस (phosphorus) उनकी रचना में प्रविष्ट होते हैं, किन्तु उनकी अणु संरचना (molecular structure) के विषय में हमें बहुत कम जानकारी है। प्रोटीन के अणु बहुत बड़े और जटिल होते हैं और ऐमिनो अम्ल के सैकड़ों या हजारों अणुओं से संघटित होते हैं। इन परमावश्यक तत्वों के अतिरिक्त सोडियम (sodium), पोटासियम (potassium), मैग्नीशियम (magnesium) और लोहा (iron) की अल्प मात्रा भी विद्यमान होते हैं। पौधों में अनेक प्रकार की प्रोटीनें पाई जाती हैं। उनमें से अधिकांश रासायनिक संरचना में बहुत जटिल होती हैं। प्रोटीनों की रचना में ऐमाइन्स (amines) और ऐमिनो अम्ल (amino-acids) आरंभिक

अवस्थायें हैं और ये प्रोटीनों के विघटन उत्पाद (decomposition products) भी हैं।

प्रोटीनों का संश्लेषण—साधारणतया प्रोटीनों का निर्माण मिट्टी से अवशोषित नाइट्रेटों से होता है। किन्तु इन जटिल यौगिकों के निर्माण को अग्रसर करने वाली रासायनिक प्रतिक्रियायें केवल अपूर्णतः ज्ञात हैं। प्रोटीन संश्लेषण मुख्यतः विभाजी (meristematic) और संग्रह ऊतकों (storage tissues) में संचारित होता है। पादप काय की सब सक्रिय कोशिकाओं में भी कुछ प्रोटीनें बनती हैं। यह विश्वास किया जाता है कि प्रोटीन संश्लेषण का पूर्ण प्रक्रम तीन विभिन्न अवस्थाओं में संचारित होता है। (क) नाइट्रेटों का अपचयन (Reduction of Nitrates)—पादप शरीर में अवशोषित होने के बाद नाइट्रेट पहले अपचयित होकर नाइट्राइट बनाते हैं और फिर वे निम्न प्रकार अपचयित होकर ऐमोनिया (ऐमिनो वर्ग $-NH_2$) बनते हैं : $-NO_3 \longrightarrow -NO_2 \longrightarrow -NH_2$ बनाते हैं। यह अपचयन मूल या पत्ती में संचारित होता है। (ख) ऐमिनो अम्ल का संश्लेषण—यह ऐमोनिया (ऐमिनो वर्ग, $-NH_2$) फिर कार्बोहाइड्रेट उपापचयन (carbohydrate metabolism) (प्रकाश-संश्लेषण और श्वसन) के कुछ मध्यस्थ उत्पादों से संयुक्त होता है जो ऐमिनो अम्ल के निर्माण में आवश्यक कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन की पूर्ति करता है। सिस्टिन (cystine) नामक ऐमिनो अम्ल में जो सब पौधों में निर्मित होता है गंधक भी पाया जाता है। पादप प्रोटीनों के अवयवों में २० विभिन्न प्रकार के ऐमिनो अम्ल ज्ञात हुए हैं। विभिन्न ऐमिनो अम्ल अणुओं की शृंखला से मुख्यतः प्रोटीन निर्मित होते हैं। (ग) प्रोटीनों का संश्लेषण—प्रोटीन अणु बहुत बड़े और जटिल होते हैं। एक प्रोटीन अणु सैकड़ों या हजारों ऐमिनो अम्ल अणुओं से बना हो सकता है जो प्रोटीन अणु में अनन्त प्रकार से व्यवस्थित हो सकते हैं। एमिल फिशर (Emil Fischer) के अनुसार प्रोटीनों का निर्माण कुछ एन्जाइमों की क्रिया के आधीन अनेक ऐमिनो अम्लों के संघनन द्वारा होता है, जैसे जलविश्लेषक (hydrolysing) ऐन्जाइम बीजों के अंकुरण काल में प्रोटीनों को ऐमिनो अम्लों रूप में खंडित कर देते हैं, तो उसकी विपरीत विधि से ये ऐन्जाइम ऐमिनो अम्लों को पुन. प्रोटीन रूप में संघनित कर देते हैं, कुछ पौधों में ऐमिनो अम्लों का निर्माण मुख्यतः मूल में होता है। वे वहां से दूर के ऊतकों तक यात्रा करते हैं और प्रोटीनों का संश्लेषण अधिकांशतः विभाजी और संग्रह ऊतकों में ही संघटित होता है। किन्तु प्रोटीन इस तरह यात्रा नहीं करते।

३. वसा और तेल

वसा और तेल के निर्माण की विभिन्न अवस्थायें स्पष्ट नहीं हो सकी हैं। यह विश्वास किया जाता है कि वे ऐन्जाइम लाइपेज (lipase) की क्रिया के प्रभाव में ग्लिसरीन (glycerine) और वसीय अम्लों (fatty acids) द्वारा संश्लेषित होती हैं। ग्लिसरीन और वसीय अम्ल, दोनों ही कार्बोहाइड्रेटों से उत्पन्न होते हैं। यह प्रक्रम प्रकाश और पर्णहरिम से स्वतन्त्र होता है।

अध्याय ७

खाद्य प्राप्ति की विशेष रीतियां

(SPECIAL METHODS OF OBTAINING FOOD)

हरे पौधे **श्रमजीवी या स्वजीवी** (autotrophic) या स्वयं पोषी (self-nourishing) होते हैं, अर्थात् वे कच्चे या अकार्बनिक (inorganic) पदार्थों से कार्बोहाइड्रेट निर्मित करने में समर्थ होते हैं और इस प्रकार स्वयं ही अपना पोषण करते हैं। इसके विपरीत अहरित पौधे **अश्रमिक जीवी या परजीवी** (heterotrophic) होते हैं। ऐसे पौधे कार्बोहाइड्रेटों का निर्माण और अपना पोषण स्वयं नहीं कर सकते। वे कार्बोहाइड्रेटों की अपनी आवश्यकता को विभिन्न स्रोतों से पूर्ण करते हैं। अश्रमिक जीवी पौधे जब अन्य पौधों या जन्तुओं पर निर्भर रहते हैं तो वे **पराश्रयी** कहलाते हैं। जब वे मिट्टी या पौधों और जन्तुओं के मृत शरीर में उपस्थित मृत कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर रहते हैं तो वे **मृतोपजीवी** होते हैं।

१. **पराश्रयी**—आकाश बेल (*Cuscuta*) और गंठवा (*Orobanche*) समान पूर्ण पराश्रयी कभी भी हरे नहीं होते और फलतः उनमें अपना खाद्य तैयार करने की शक्ति नहीं होती। इस प्रकार वे अपना सम्पूर्ण पोषाहार (nourishment) अपने उस पोषक पौधे (host plant) से ही प्राप्त करते हैं जिस पर वे पराश्रयी होते हैं। इसके विपरीत भांगरा (mistletoe), बांदा (*Loranthus*), अमरबेल (*Cassytha*) इत्यादि आंशिक पराश्रयी हरे रंग के होते हैं और इसलिये वे पोषक पौधे पर पूर्णतः आश्रित नहीं होते (देखिये पृष्ठ ४८–५०)।

२. **मृतोपजीवी**—मृतोपजीवी ऐंजियोस्पर्म्स, जैसे मोनोट्रोपा (*Monotropa*; देखिये चित्र ७१), कुछ ऑर्किड (orchids) और मृतोपजीवी कवक जैसे म्यूकर

(*Mucor*) अरक्षित जान्तव या वानस्पतिक पदार्थों पर उगते हैं और उनसे आवश्यक खाद्य पदार्थ अवशोषित करते हैं (देखिये पृष्ठ ५१)।

३. सहजीवी—जब दो जीवधारी साथ-साथ रहते हैं और पारस्परिक रूप से एक दूसरे को लाभदायक होते हैं तो उनको सहजीवी और इस दशा को सहजीवन कहते हैं। मंकवक और लाइकेन दो उदाहरण हैं (देखिये पृष्ठ ५१)।

४. मांसाहारी पादप—ये पौधे अनेक प्रकार के क्षुद्र जन्तुओं, विशेषतया कीटों को पकड़ने के लिये प्रसिद्ध हैं। वे शिकार को पचा लेते हैं और उनके शरीर से नाइट्रोजनीय उत्पादों (प्रोटीनों) को अवशोषित कर लेते हैं। ये हरे रंग के होते हैं और इसलिये वे अपना कार्बोहाइड्रेट स्वयं निर्माण कर लेते हैं। अब तक मांसाहारी पौधों के कुल ४५० स्पीशीज या जातियों का पता लगा है जो ६ कुलों के १५ वंशों (genera) का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें से ३० से अधिक स्पीशीज भारत में पायी जाती हैं। शिकार को पकड़ने के ढंग के अनुसार वे चार श्रेणियों में विभक्त हो सकते हैं:

(१) ऐसे पौधे जिनमें विशिष्ट ग्रंथिल रोम (glandular hairs) होते हैं, जो एक मीठा, लसलसा पदार्थ स्रावण करते हैं, जैसे ड्रोसेरा (*Drosera*)।

(२) ऐसे पौधे जिनमें पत्रदल पर विशिष्ट संवेदी रोम—लिबलिबी रोम (trigger hair) होते हैं, जैसे वीनस फ्लाई-ट्रैप (Venus' fly-trap) और एल्ड्रोवेंडा (*Aldrovanda*)।

(३) ऐसे पौधे जिनमें पत्तियां घट (pitcher) रूप में परिवर्तित हो जाती हैं, जैसे घटपर्णी (pitcher plant)।

(४) ऐसे पौधे जिनमें पत्र फंक थैली रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, जैसे ब्लैडरवर्ट (bladderwort)।

इनमें ब्लैडरवर्ट और एल्ड्रोवेंडा जलीय पौधे हैं।

सनड्यू या ड्रोसेरा (Sundew—*Drosera*; चित्र ४५४)—९० स्पीशीज। इसकी केवल तीन स्पीशीज भारत में पाई जाती हैं। ये छोटे शाक (herb) हैं और कुछ इंच ऊंचे होते हैं। प्रत्येक पत्ती ऊपरी तल पर अनेक रोमवत् संरचनाओं से आवृत (covered) रहती है जिन्हें संस्पर्शक (tentacles) कहते हैं। प्रत्येक संस्पर्शक के शीर्ष पर एक ग्रंथि (gland) बनी होती है जो एक प्रकार का चिपचिपा द्रव स्रावण करती है। यह द्रव धूप में ओस की बूंदों की तरह चमकता है इसलिये इसका अंग्रेजी नाम 'सनड्यू' रक्खा गया है। ग्रंथि संवेदी होती है और केवल रासायनिक उद्दीपक (stimulus) के प्रति प्रतिक्रिया करती है; इसका यह अर्थ है कि संस्पर्शकों की गति का सूत्रपात नाइट्रोजनीय पदार्थों की उपस्थिति द्वारा ही होता है। किसी भी अन्य विजातीय

द्रव्य (foreign object) के सम्पर्क से कोई गति प्रदर्शित नहीं होती। जब कोई कीट चमकते पदार्थ को मधु समझ कर भूल से पत्ती पर बैठता है, तो वह चिपचिपे द्रव में उलझ जाता है और कीट के शरीर में विद्यमान पचनीय यौगिकों से उत्तेजित हो कर संस्पर्शक चारों ओर से उसके ऊपर झुक जाते हैं और उसे ढक लेते हैं। जब कीट दमघुटी (suffocation) से मृत हो जाता है तो पाचन प्रक्रम प्रारम्भ होता है। जब तक कीट के शरीर के सम्पूर्ण नाइट्रोजनीय यौगिक अवशोषित नहीं हो जाते तब तक संस्पर्शक उसके ऊपर झुके ही पड़े रहते हैं। सब मांसाहारी पादपों में बाह्यकोशिका पाचन होता है। ग्रन्थियां एक ऐन्ज़ाइम स्रावण करती हैं जिसे पेप्सिन हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (pepsin hydrochloric acid) कहते हैं जो कीटों पर क्रिया करता है और उसके शरीर के प्रोटीनों को विलेय तथा सरल रूप में परिवर्तित करता है। फिर पाचन के उत्पाद पत्ती द्वारा अवशोषित होते हैं। कार्बनीय पदार्थ अपशिष्ट पदार्थों (waste products) के रूप में अस्वीकृत होते हैं।
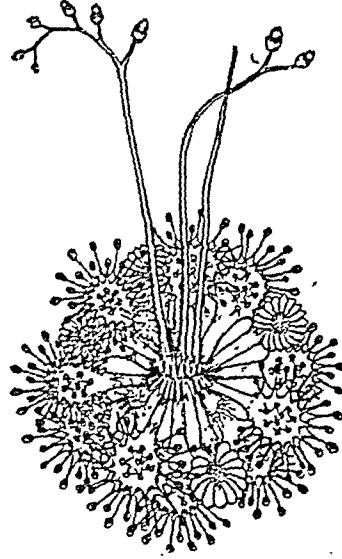
चित्र ४५४—ड्रोसेरा।

यदि संस्पर्शक किसी कठोर वस्तु से छेड़े जांय तो वे कोई क्रिया नहीं प्रदर्शित करते और न ऐन्ज़ाइम का स्रावण ही होता है। इसके विपरीत यदि कच्चे मांस का टुकड़ा पत्ती पर रख दिया जाय तो अंगक उस के ऊपर झुक जाते हैं और ग्रन्थियां ऐन्ज़ाइम स्रावण करना प्रारम्भ कर देती हैं।

वीनस फ्लाई-ट्रैप (Venus' Fly-trap—*Dionaea*; चित्र ४५५)—एक स्पीशीज़। यह पौधा संयुक्त राज्य अमेरिका का देशज (native) है। यह शाकीय प्रकृति का है और नम मौसीय स्थानों में उत्पन्न होता है। पत्र दल के प्रत्येक अर्ध भाग में तीन लंबे नोकीले रोम-लिबलिबी रोम (trigger hair) पत्र तल पर त्रिकोणीय रूप में स्थित होते हैं। रोम आधार से शीर्ष तक अत्यंत संवेदी होते हैं। इन रोमों में से किसी का तनिक भी स्पर्श होना पत्र दल को अकस्मात बंद कर देने के लिये यथेष्ट होता है। मध्य शिरा कोर (hinge) का कार्य करती है। पत्ती का ऊपरी तल रक्ताभ (reddish)

को कुछ अंशों में सूक्ष्म डायनँइया (*Dionaca*) समझा जा सकता है। यह मूलहीन स्वतंत्र-प्लवमान (free-floating) पौधा है जिसमें पत्तियां आवर्त में होती हैं। शिकार को पकड़ने की यान्त्रिकता (mechanism) व्यवहारतः डायनँइया के समान है; किन्तु केवल छः संवेदी रोमों के स्थान पर मध्य शिरा के दोनों ओर बहुसंख्यक रोम होते हैं और पत्ती कुछ दृढ़लोमों (bristles) से सुरक्षित रहती है। पत्ती के ऊपरी तल पर अनेक पाचक ग्रन्थियां होती हैं और तटों पर अंतवर्ती निर्देशित क्षुद्र दंत होते हैं।

घटपर्णी या नेपेन्थीस (Pitcher plant—*Nepenthes*; चित्र ४५८ और १५१-५२)—६० स्पीशीज। भारत में इसकी केवल एक स्पीशीज पाई जाती है और एक लंका में। यह खासी, जयंतिया और गारो पहाड़ियों में पाई जाती है। घटपर्णी बूटी (herb) या आरोही अधःक्षुप (undershrub) हैं जो प्रायः तन्तुओं (tendrils) के द्वारा आरोहण करती है। प्रत्येक घट ४ से ८ इंच या इससे अधिक लम्बाई का होता है। जब यह शिशु होता है तो घट का मुख एक आवरण से बन्द रहता है जो बाद में खुलता है और न्यूनाधिकतया खड़ा रहता है। मुख से नीचे घट का भीतरी भाग अनेक चिकने और तीक्ष्ण रोमों से आच्छादित रहता है जो सब निम्नवर्ती निर्देशित रहते हैं। उस से नीचे भीतरी तल पर बहुसंख्यक बड़ी पाचक ग्रन्थियां छितरी रहती हैं। उनमें से प्रत्येक के ऊपर एक हुड लटकी रहती है। जंतु जब उसमें प्रवेश करते हैं तो चिकने तल पर पैर फिसल जाने से नीचे लुढ़क जाते हैं और उस द्रव में डूब जाते हैं जो घट की गुहा (cavity) को अंशतः भरे रहता है। उनकी मृत्यु के बाद पाचन प्रक्रम प्रारम्भ होता है। नेपेन्थीस के घट की पाचन शक्ति की खोज सन् १८७४ ई० में हूकर (Hooker) ने की थी। ग्रंथियों द्वारा स्रावित पाचक कारक ट्रिप्सिन (trypsin) की प्रकृति का है जिसे पहले पहल वाइन्स (Vines) ने सन् १८७७ ई० में प्रकट किया था। यह प्रोटीनों को केवल पेप्टोन रूप में पचित ही नहीं करता बल्कि उसे ऐमाइन्स (amines) रूप में भी परिवर्तित कर देता है। ऐमाइन्स घट द्वारा सहज
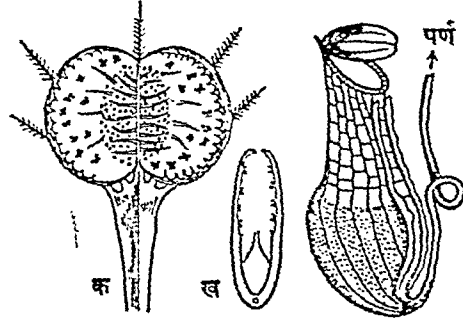
चित्र ४५७ चित्र ४५८

चित्र ४५७—ऐल्ड्रोवँडा; क, एक खुली हुई पूर्ण पत्ती; ख, एक बन्द पत्ती का काट।

चित्र ४५८—नेपेन्थीस का एक घट।
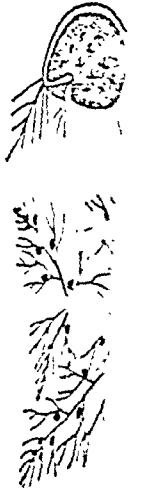
ही अवशोषित हो जाते हैं। अंडे की सफेदी (egg-white), मांस आदि के छोटे खंड यदि घट में डाले जांय तो जैसा हूकर ने सर्वप्रथम ज्ञात किया था, वे विलीन (dissolved) हो जाते हैं और अंत में ऐमाइन्स रूप में अवशोषित कर लिये जाते हैं। कार्बोहाइड्रेट और अन्य पदार्थ घट में बगैर पचे हुये अपशिष्ट पदार्थों के रूप में रह जाते हैं।

ब्लैडरवर्ट या यूट्रिक्यूलेरिया (Bladderwort—*Utricularia* ; चित्र ४५९)—२१० स्पीशीज। भारत में इसकी २० स्पीशीज से भी अधिक पाई गई हैं।

चित्र ४५९—ब्लैडरवर्ट (यूट्रिक्यूलेरिया) कई सूक्ष्म आशयों सहित ; ऊपर, एक आशय काट में (आवर्धित)।
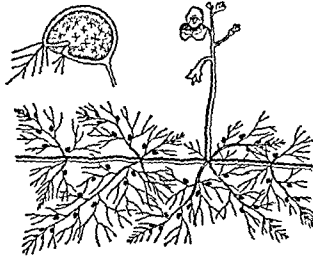
वे अधिकांशत: प्लवमान (floating) या अल्प जलनिमग्न, मूल हीन जलीय पौधे हैं। कुछ स्थलज (terrestrial) स्पीशीज भी होती हैं। पत्तियां बहुत अधिक फंकित (segmented) होती हैं और वे मूल का कार्य करती हैं, केवल इतना अंतर होता है कि इन का रंग हरा होता है। इन फंकों में से कुछ थैली रूप में रूपान्तरित हो जाते हैं। प्रत्येक थैली लगभग १/८ इंच व्यास की होती है और उसमें छद द्वार (trap door) रूप का प्रवेश मार्ग होता है। छद द्वार एक वॉल्व (valve) या कपाट का कार्य करता है जो बाहर से भीतर की ओर ढकेल कर खोला जा सकता है, किन्तु भीतर से बाहर कभी भी नहीं खुल सकता। वॉल्व के स्वतन्त्र सिरे को झुका कर, जो बहुत शीघ्र खुलता है, छोटे जल जन्तु भीतर प्रवेश करते हैं। उनके प्रवेश करने के बाद वॉल्व स्वत: बन्द हो जाता है और जन्तुओं को

बाहर आने का अवसर नहीं मिलता। थैली का भीतरी तल सर्वत्र बहुसंख्यक पाचक ग्रन्थियों से बिन्दु चिह्नित (dotted) होता है जो आकार में कुछ भिन्न होते हैं। उनका कार्य पाचक कारक (digestive agent) स्रावण करना तथा पाचित पदार्थों को अवशोषित करना है। एक कच्चे मांस की छोटी बोटी थैली के अन्दर डालने से कुछ दिनों में लुप्त हुई पाई जाती है।

अध्याय ८

खाद्य का स्थानान्तरण और संग्रह

(TRANSLOCATION AND STORAGE OF FOOD)

खाद्य पदार्थ अधिकांशतः पत्तियों में निर्मित होते हैं। वहां से वे संग्रह अंगों को स्थानान्तरित होते हैं जो प्रायः पर्याप्त दूरी पर होते हैं। कच्चे पदार्थों और खाद्य पदार्थों के स्थानान्तरण के लिये पौधों में निश्चित और स्पष्ट नालियां (channels) होती हैं—दारु वाहिनियां (xylem vessels) तथा दारु वाहिनिकियां (tracheids) कच्चे तथा अकार्बनिक पदार्थों को ऊर्ध्ववर्ती दिशा (upward direction) में मूल से पत्तियों तक स्थानान्तरण के लिये होती हैं तथा चालनी-नलिकाएं (sieve-tubes) और सहचर कोशिकाएं पत्तियों से संग्रह अंगों तक निम्नवर्ती दिशा में (downward direction) खाद्य पदार्थों के स्थानान्तरण के लिये होती हैं। इस प्रकार विलीन (dissolved) प्रोटीन, शर्करा, ऐमाइन्स (amines) और ऐमिनो अम्ल चालनी नलिकाओं और कुछ अंश तक फ्लोएम मृदूतक (phloem parenchyma) द्वारा निम्नवर्ती दिशा में स्थानान्तरित होते हैं। ऐसे पदार्थ सरलतया ही छिद्रल (perforated) चालनी पट्टिकाओं (sieve-plates) के मध्य बाहर निकल सकते हैं। जीवद्रव्यीय सूत्र (protoplasmic threads) भी चालनी पट्टिकाओं के छिद्रों में प्रवर्धित (extending) हो कर इस कार्य में सहायता प्रदान करते हैं। सहजात कोशिकाएं (companion cells) भी पार्श्ववर्ती रूप में मज्जका किरण कोशिकाओं, दारु मृदूतक तथा परिवारक (surrounding) कोशिकाओं तक खाद्य पदार्थ परिवहित करने में प्रयुक्त होती हैं।

विलेय नाइट्रोजनीय पदार्थ तथा विलेय कार्बोहाइड्रेट (शर्कराएं) पत्ती के पर्ण मध्य (mesophyll) में निर्मित होने के बाद मन्द विसरण (diffusion)

द्वारा वाहिनी बंडल (vascular bundle) की ओर प्रगति करते हैं। वे सीमान्त मृदूतक (border parenchyma) के मध्य में जाते हैं तथा फ्लोएम में प्रवेश करते हैं। फ्लोएम पादप शरीर की पूर्ण लम्बाई में प्रसारित होता है जिसमें कोई भी विलेय यौगिक पत्तियों से अधिकांश अंगों तक, विशेषतया संग्रह अंगों तक सहज ही परिवहित हो सकता है। संग्रह अंगों में जटिल प्रोटीन और मंड कण निर्मित होते हैं और उनका क्रमिक संचय (gradual accumulation) उन अंगों में संचालित होता है। बाद में सक्रिय वृद्धि—कलिकाओं और फूलों की रचना—के काल में संचित खाद्य के अनेक रूप विलेय बना दिये जाते हैं और इसलिये वे यात्रा के उपयुक्त होते हैं। अब विलेय खाद्य पदार्थों की ऊर्ध्ववर्ती गति फ्लोएम मध्य हो कर प्रारम्भ होती है और अंत में वे वर्धन अंगों (growing organs) तक लाये जाते हैं। सक्रिय वृद्धि के इस काल में खाद्य का एक भाग दारु के मध्य से भी ऊर्ध्ववर्ती गति करता है। फ्लोएम के मध्य से भी ऊर्ध्ववर्ती रूप में खाद्य की गतिशीलता के लिये उत्तरदायी शक्तियों का ज्ञान नहीं हो सका है।

खाद्य का संग्रह (STORAGE OF FOOD)

खाद्य का निर्माण पौधे के तात्कालिक आवश्यकता से अधिक मात्रा में होता है। यह अतिरिक्त खाद्य पौधों के अन्दर दो अवस्थाओं में उपस्थित रहता है—या तो परिवहन के उपयुक्त या संग्रह के उपयुक्त। परिवहन के उपयुक्त रूप में विलेयता (solubility) का गुण होता है और संग्रह वाले रूप में कोशिका-रस में अविलेयता (insolubility) का गुण होता है।

संग्रह ऊतक (Storage Tissues)—खाद्य-संग्रह के उद्देश्य वाले ऊतकों में पतली सैलूलोज भित्तियां होती हैं। कोशिकाएं अधिकांशत मृदूतकीय प्रकृति की होती हैं। यदि भित्तियां स्थूल होती हैं तो उनमें अनेक साधारण गर्त होते हैं। संग्रह कोशिकाएं सजीव होती हैं जिससे जीवद्रव्य आवश्यक एन्जाइम स्रावण कर सकें और स्थानान्तरण या संग्रह में से जो भी आवश्यक हो उसके अनुकूल खाद्य पदार्थ को विलेय या अविलेय बना सकें। दीर्घ-कोशिकीय मृदूतक से निर्मित सब भागों में सदा निश्चित मात्रा में खाद्य संचित होता है। मूल की अन्तस्त्वचिका इस में विशेषतया सम्पन्न होती है। तने की अन्तस्त्वचा, मज्जा, मज्जका किरणों और दारु मृदूतकों में भी खाद्य की मात्रा संचित होती है। पत्ती के सीमान्त मृदूतक में भी खाद्य का संग्रह होता है।

संग्रह अंग (Storage Organs)—बीज के भ्रूणपोष या स्थूल बीज पत्रों में भी भ्रूण के परिवर्धन (development) और वृद्धि के लिये खाद्य पदार्थ संचित रहता है। फल के मांसल फलावरण में भी खाद्य की प्रचुर मात्रा संचित रहती है। मांसल मूल, जैसे तर्कुरूप, कुंभीरूप, शंक्वाकार या अन्य मूलों में और भूमिगत रूपान्तरित स्तम्भों जैसे प्रकंद, कंद, घनकंद आदि में भी खाद्य विशेषतया संचित रहता है। सब मांसल स्तम्भों तथा शाखाओं, जैसे कैक्टस और स्नुहाओं (spurges) में, सरस पत्तियों जैसे कुमारी (*Aloe vera*), रामबांस (*Agave*), कुलफा (*Portulaca oleracea*) में और प्याज के मांसल शल्क—इन सब में सदा ही खाद्य भंडार निहित होता है। गांठ गोभी (kohl-rabi) के तने के फूले आधार और जैट्रोफ़ा पोडोगेरिका (*Jatropha podogarica*) के गांठ युक्त तने में भी संचित खाद्य होता है। वर्धी क्षेत्रों और पुष्पीय अंगों में भी खाद्य भंडार देखा जा सकता है।

संचित खाद्य के रूप (Forms of Stored Food)—इन नाना प्रकार के अंगों और ऊतकों में जिन विभिन्न रूपों में खाद्य पदार्थ संचित हो सकते हैं, उन पर अब विचार किया जा सकता है। खाद्य पदार्थ कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन या वसा और तेल हो सकते हैं। कार्बोहाइड्रेटों में मंड ही प्रायः सब संग्रह अंगों में सब से अधिक होता है। द्राक्षा-शर्करा इसी प्रकार अंगूर में १२-१५% तक और इक्षु-शर्करा (sucrose) ईख तथा चुकंदर में अनुक्रमतया १५-२०% और १०-२०% तक होता है। इनुलिन (inulin) डैलिया के कंदिल मूलों में, और ग्लाइकोजन कवकों में पाया जाता है। नाइट्रोजनीय पदार्थों में अनेक प्रकार के प्रोटीन, विशेषतया ऐल्यूरोन कण मंडीय (starchy) तथा वसीय (fatty) दोनों बीजों में पाये जाते हैं, किन्तु तेलीय बीजों में बड़े एल्यूरोन कण पाये जाते हैं। डालों (pulses) में प्रोटीन की बहुलता होती है। परन्तु संग्रह अंगों में ऐमिनो यौगिक दुर्लभ होते हैं। प्रायः सब सजीव कोशिकाओं में वसा और तेल पाया जाता है, किन्तु वे बीजों और फलों में विशेषतया पाये जाते हैं। तेल वाले बीजों में बहुत ही न्यून मात्रा में कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है।

बीज में संचित खाद्य (Food Stored in the Seed)—बीज के बीजपत्र और भ्रूणपोष में खाद्य की अधिक मात्रा सदा ही उपस्थित रहती है, जो भ्रूण द्वारा अपनी वृद्धि करने के समय प्रयुक्त करने के लिये होता है। वहां पर खाद्य पदार्थ अविलेय रूप में रहते हैं और वे सब से पहले पचित होते हैं अर्थात् विशिष्ट ऐन्ज़ाइम की क्रिया (देखिये अगला अध्याय) के आधीन विलेय और रासायनिकतः सरलतर बनते हैं और फिर भ्रूण के वर्धन भागों द्वारा अनेक प्रयोजनों के लिये जैसे पोषण, तथा जीवद्रव्य की वृद्धि, कोशिका-निर्माण,

भ्रूणीय भागों के परिवर्धन और प्रबल श्वसन के लिये भी प्रयुक्त होते हैं। ऐसे खाद्य पदार्थों के सामान्य रूप निम्न हैं :

(१) मंड—यह बीज में कार्बोहाइड्रेट का बहुत सामान्य रूप है। अन्न जैसे चावल, गेहूं, मक्का, जई, जौ, आदि में मंड विशेष रूप से अधिक होता है। (२) हेमीसेलुलोज (Hemicellulose)—यह अनेक ताड़ बीजों जैसे खजूर, सुपारी, गोलपत्ता या स्तंभहीन ताड़, वनस्पति दन्ति ताड़, आदि के बीज और कुछ अन्य बीजों जैसे कहवा, मंगोस्टीन (mangosteen) आदि के भ्रूणपोष की स्थूलित कोशिका भित्तियों में संचित रहता है। (३) तेल (Oils)—ये न्यूनाधिक मात्रा में अधिकांश बीजों में संचित रहते हैं, मूंगफली, तिल, नारियल, एरंड, कुसुम आदि में इस का विशेष संचय रहता है। (४) प्रोटीन (Proteins)—ये भी सब बीजों में विभिन्न मात्राओं में पाये जाते हैं। सोयबीन में प्रोटीनों का ४२–४७% होता है। तेलहन के बीजों में भी जैसे एरंड के बीज में, प्रोटीनों का प्रतिशत भारी होता है।

अध्याय ९

खाद्य का पाचन और स्वीकरण
(DIGESTION AND ASSIMILATION OF FOOD)

पाचन (Digestion)

संचित पदार्थ प्राय: पानी या कोशिका-रस में अविलेय तथा अविसारशील भी होते हैं किन्तु जब स्थानान्तरण आवश्यक होता है तो वे ऐन्जाइमों की क्रिया से विलेय (soluble) तथा विसारशील बन जाते हैं। केवल विलेय रूप होने पर ही खाद्य पदार्थ जीवद्रव्य द्वारा अवशोषित होते हैं। पादप शरीर के मध्य स्थानान्तरण और जीवद्रव्य के स्वीकरण के अनुकूल अविलेय तथा जटिल खाद्य पदार्थों को विलेय तथा सरलतर बनाना ही पाचन (digestion) कहलाता है।

पाचन का प्रक्रम मुख्यत. आन्तर कोशिक होता है, अर्थात् यह कोशिका के अन्दर कार्यान्वित होता है। कुछ दशाओं में ही बाह्यकोशिका पाचन घटित होता है जैसे मांसाहारी पौधों, पराश्रयियों और कवकों द्वारा प्रोटीनों का पाचन। ऐसी दशाओं में पाचककारक जीवद्रव्य द्वारा कोशिका के बाहर स्रावित होते हैं और यह जटिल खाद्य पदार्थ को पाचित या विघटित करता है; पाचन के [illegible]

(products) तब कोशिकाओं द्वारा अवशोषित होते हैं। पाचन अन्य सब शरीर क्रियात्मक कार्यों (functions) की भांति जीवद्रव्य द्वारा संचालित होता है। इस प्रयोजन के लिये यह ऐन्ज़ाइम (enzyme) नामक पाचक कारक उत्पन्न करता है।

ऐन्ज़ाइम (Enzymes)—ऐन्ज़ाइम अविलेय और जटिल खाद्यद्रव्यों और अन्य कार्यों पर क्रिया करने और उन्हें विलेय बनाने के लिए जीवद्रव्य द्वारा स्रावित पाचक कारक होते हैं। वे अन्य विलेय पदार्थों पर भी क्रिया करते हैं और उन्हें सरलतर यौगिक रूप में विघटित करते हैं। वे बहुत जटिल कार्बनिक पदार्थ (नाइट्रोजन अन्तर्विष्ट रखनेवाले) हैं और प्रोटीन की प्रकृति के होते हैं। वे पानी में विलेय होते हैं और शुष्क रूप में एक श्वेत अमणिभीय चूर्ण बनाते हैं।

ऐन्ज़ाइमों के गुणधर्म (Properties of Enzymes)—(१) ऐन्ज़ाइम की क्रिया न्यूनाधिकतया विशिष्ट होती है अर्थात् एक विशेष पदार्थ के लिये एक विशेष प्रकार का ऐन्ज़ाइम होता है; उदाहरणार्थ जो ऐन्ज़ाइम मंड पर क्रिया करता है, वह प्रोटीन या अन्य वस्तुओं पर क्रिया नहीं करेगा। इसे "ताला और कुंजी" (lock and key) क्रिया कहते हैं; यद्यपि यह साधारण नियम है तथापि ऐसे ऐन्ज़ाइम हैं जो एक से अधिक वस्तुओं पर क्रिया कर सकते हैं। (२) एन्ज़ाइम कभी निश्शेषित (exhausted) नहीं होता; इस की अल्प मात्रा पदार्थ की असीमित मात्रा पर क्रिया कर सकता है, यदि पाचन के उत्पाद उस की क्रिया के स्थान से हटा दिये जायं। (३) ऐन्ज़ाइम एक उत्प्रेरक रूप में कार्य करता है; इस का यह अर्थ है कि ऐन्ज़ाइम स्वयं अपना परिवर्तन किये बिना ही अपनी उपस्थिति से पदार्थ में कुछ रासायनिक क्रिया प्रेरित करता है। इस प्रकार ऐन्ज़ाइम एक कार्बनिक उत्प्रेरक (catalyst) माना जा सकता है।

ऐन्ज़ाइमों के प्रकार और पाचन का स्वरूप

(१) डायस्टेस (Diastase) मंड को डेक्सट्रिन और माल्ट शर्करा या माल्टोज रूप में परिवर्तित करता है।

(२) माल्टेज (Maltase) माल्ट-शर्करा को द्राक्षा-शर्करा में परिवर्तित करता है।

(३) इन्वरटेज (Invertase) इक्षुशर्करा को द्राक्षा-शर्करा और फल-शर्करा या फ्रक्टोज में परिवर्तित करता है।

(४) साइटेज (Cytase) हेमीसैलूलोज को द्राक्षा-शर्करा में परिवर्तित करता है।

(५) सेलूलेज (Cellulase)—सेलूलोज को द्राक्षा-शर्करा मे परिवर्तित करता है।

(६) इनूलेस (Inulase)—इनूलिन को फल-शर्करा में परिवर्तित करता है।

(७) पेपसिन—प्रोटीनों को पेप्टोन में परिवर्तित करता है।

(८) ट्रिप्सिन—प्रोटीनों को ऐमिनो अम्लों में रूपान्तरित करता है।

(९) इरेप्सिन—पेप्टोनों को ऐमिनो अम्लों में रूपान्तरित करता है।

(१०) लाइपेज—वसा को वसीय अम्लों और ग्लिसरीन में खंडित करता है।

स्वांगीकरण (ASSIMILATION)

स्वांगीकरण का अर्थ जीवद्रव्य के काय (body) में खाद्य का समावेशन (incorporation) है। पाचन के उत्पाद जीवद्रव्य द्वारा ग्रहण किये जाते है और अपने शरीर मे प्रयुक्त किये जाते हैं। स्वांगीकरण के फल-स्वरूप जीवद्रव्य स्थूलता (bulk) में वृद्धि करता है। स्वांगीकरण रचनात्मक प्रक्रम है जिसके द्वारा जीवद्रव्य पोषक पदार्थों जैसे शर्करा और सरल प्रोटीन से सतत अपना पुनर्गठन करता रहता है। अनेक प्रकार के कार्बोहाइड्रेट शर्करा के सरल रूपों में परिवर्तित किये जाते हैं और विभिन्न जटिल प्रोटीन, ऐमाइन्स तथा ऐमिनो अम्लों में परिवर्तित होते हैं जो नाइट्रोजनीय खाद्य का सरलतम रूप है। ये पाचन के सरलतम उत्पाद वर्धन क्षेत्रों तक यात्रा करते हैं जहां जीवद्रव्य बहुत सक्रिय रहता है। उसके बाद जीवद्रव्य इन पदार्थों का अपने शरीर के अन्दर स्वांगीकरण करता है।

अध्याय १०

श्वसन और किण्वन
(RESPIRATION AND FERMENTATION)

श्वसन

श्वसन सारत. सजीव कोशिकाओं में कार्बनिक यौगिकों, विशेषतया सरल कार्बोहाइड्रेटों जैसे द्राक्षा-शर्करा के ऑक्सीकरण (oxidation) और विघटन (decomposition) का प्रक्रम है; जिस से ऊर्जा निर्मुक्त होती है। श्वसन का अत्यधिक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि इस ऑक्सीकर प्रक्रम द्वारा सजीव कोशिकाओं में कार्बनिक यौगिकों में संचित स्थितिज ऊर्जा (potential energy) ऐन्जाइमों की एक श्रेणी की क्रिया द्वारा एक क्रमबद्ध विधि

से निर्मुक्त होती है, और कम से कम अंशतः जीवद्रव्य को उसके बहुमुखी क्रियाओं, जैसे विभिन्न सांश्लेषिक प्रक्रमों, वृद्धि, गति, प्रजनन और अन्य जीवकर क्रियाओं के लिये सुलभ होती है। श्वसन में संचित या स्थितिज ऊर्जा सक्रिय या गतिज (kinetic) ऊर्जा में परिवर्तित होती है। प्रायः पादप शरीर से ऊर्जा की प्रचुर मात्रा ताप रूप में पलायित होती है, जैसा अंकुरित बीजों में देखा जाता है। संचित खाद्य पदार्थ, जो ऑक्सीकृत होते हैं अधिकांशतः कार्बोहाइड्रेट, विशेषतया द्राक्षा-शर्करा के अभाव में जटिल कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा भी होते हैं। किन्तु ये पहले जलविश्लेषित (hydrolysed) होते हैं और बाद में आक्सीकृत होते हैं। श्वसन से संबंधित मुख्य तथ्य ये हैं: वायुमंडलीय आक्सीजन का उपभोग (consumption), कार्बन डाइआक्साइड और पानी की अल्प मात्रा का मोचन (liberation), संचित खाद्य के एक अंश का ऑक्सीकरण और लोप (disappearance) जिस से शुष्क भार (dry weight) का कुछ ह्रास होता है जैसा अंधकार में अंकुरित बीज में देखा जाता है, और सब के अतिरिक्त कार्बनिक खाद्य के खंडन द्वारा ऊर्जा की निर्मुक्ति। समावेशक (overall) रासायनिक प्रतिक्रिया को इस प्रकार उल्लिखित किया जा सकता है:

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 = 6CO_2 + 6H_2O + \text{ऊर्जा}$$

(शर्करा + आक्सीजन = कार्बन डाइआक्साइड + पानी + ऊर्जा)। इस से प्रकट होता है कि शर्करा के एक अणु (molecule) के आक्सीकरण के लिये आक्सीजन के छः अणु प्रयुक्त होते हैं और कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) और पानी (H_2O) में से प्रत्येक के छः अणु निर्मित होते हैं। उच्च ताप पर शर्करा के ज्वलन से भी CO_2 और H_2O निर्मित होते हैं। किन्तु सजीव कोशिकाओं में यह प्रक्रम ऐन्जाइमों की एक श्रेणी से अपेक्षाकृत निम्न ताप पर संचालित होता है, जैसा उपर्युक्त सूत्र (formula) में व्यक्त किया गया है। कार्बन डाइआक्साइड और पानी के निर्माण से आक्सीकरण पूर्ण हो सकता है, जिसमें कार्बन डाइआक्साइड पलायित हो जाता है किन्तु पानी कोशिका के पानी की साधारण मात्रा में सम्मिलित हो जाता है; या कार्बनिक अम्लों या एथिल ऐलकोहल और कार्बन डाइआक्साइड जो इस समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है: $C_6H_{12}O_6 = 2C_2H_5OH + 2CO_2$ (चीनी = एथिल ऐलकोहल + कार्बन डाइआक्साइड) की रचना के साथ अपूर्ण रह सकता है। किन्तु गैसों—आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड का केवल विनिमय (exchange) श्वसन (breathing) कहलाता है और जन्तुओं का लाक्षणिक गुणधर्म (characteristic feature) है।

पौधे की सब सजीव कोशिकाओं को, वे चाहे जितनी अंतवर्ती स्थित हों, जीवन के लिये स्वतन्त्र ही श्वसन करना पड़ता है। यदि पौधे को आक्सीजन से विहीन वायुमंडल में उगा कर उसके वायु का प्रदाय (supply) विच्छिन्न कर दिया जाय तो वह शीघ्र ही मृत हो जाता है। वर्धन अंग जैसे पुष्प और वर्धी (vegetative) कलिकाएं, अंकुरित बीज, और प्ररोह अग्र तथा मूलाग्र (root-tip) सक्रियतः श्वसन करते हैं; जब कि प्रौढ़ अंग (adult organs) अपेक्षाकृत मंदगति से यह कार्य करते हैं। गैसें साधारणतया रन्ध्र के मार्ग से पौधे में प्रविष्ट होती हैं। (किन्तु रात को ये बन्द रहते हैं। अतएव संबंधित गैसों के व्यतिहार (interchange) की सुविधा के लिये शाखाओं पर विशिष्ट संरचनायें परिवर्धित होती हैं। ये वात रन्ध्र (lenticels) कहलाते हैं। रन्ध्र के प्रतिकूल वे खुले रहते हैं। पादप काय के अंतर्भाग में गैसों के सहज विसरण के लिये वातकोष्ठों (air-cavities) और अन्तराकोशिक अवकाशों का जाल परिवर्धित होता है जो प्रत्येक खण्ड में सम्बद्ध होते हैं।

आक्सीजन और आक्सीजन इतर श्वसन (Aerobic and Anaerobic Respiration)—साधारणतया श्वसन में स्वतन्त्र आक्सीजन प्रयुक्त होती है जिसका परिणाम संचित खाद्य का पूर्ण आक्सीकरण और अन्त उत्पादों के रूप में जल तथा कार्बन डाइआक्साइड का निर्माण है। यह आक्सीजन श्वसन (aerobic respiration) कहलाता है। इस प्रक्रम से ऊर्जा की प्रचुर मात्रा निर्मुक्त होती है जो इस समीकरण से निरूपित किया जाता है—$C_6H_{12}O_6+6O_2=6CO_2+6H_2O+674$ Cal. (चीनी + आक्सीजन = कार्बन डाइआक्साइड + पानी + ६७४ कैलॉरी ऊर्जा)। कुछ निश्चित दशाओं में, जैसे स्वतंत्र आक्सीजन की अनुपस्थिति में उच्चतर पौधों के ऊतक, गोदाम के बीज, मांसल फल और कैक्टस के समान रसदार पौधे एक प्रकार के श्वसन का आश्रय लेते हैं जिसे आक्सीजन इतर श्वसन (anaerobic respiration) कहते हैं, जिसके फल स्वरूप संचित खाद्य का अपूर्ण आक्सीकरण और कार्बन डाइआक्साइड तथा एथिल ऐल्कोहल और कभी-कभी विभिन्न कार्बनिक अम्लों, जैसे मैलिक, सिट्रिक, आक्सैलिक और टार्टेरिक आदि का भी निर्माण होता है। जीवद्रव्य की सक्रियता संचालित रखने के लिये इस प्रक्रम द्वारा अत्यन्त अल्प ऊर्जा उत्पन्न होती है। इसे इस समीकरण से व्यक्त किया जा सकता है: $C_6H_{12}O_6=2C_2H_5OH+2CO_2+28$ Cal. (चीनी=एथिल एल्कोहल+कार्बन डाइआक्साइड+२८ कैलॉरी ऊर्जा)। अन्यथा यह अण्वान्तरिक श्वसन (intramolecular respiration) कहलाता है, क्योंकि इस प्रक्रम में स्वतन्त्र आक्सीजन बिना ही अण्वान्तरिक श्वसन संचालित होता है। आक्सीजन इतर श्वसन कुछ सीमित अवधि तक ही सतत

रह सकता है जिसके बाद कदाचित कुछ दशाओं में ऊर्जा के क्षीण उत्पादन और इस प्रक्रम में उत्पन्न विषाक्त (toxic) पदार्थों की उपस्थिति के कारण उनकी मृत्यु हो सकती है।

प्रयोग १४ श्वसन (Respiration; देखिये चित्र ४६०) पौधों में श्वसन प्रयोगात्मक रूप में बहुत ही सरल किन्तु उत्कृष्ट रूप में निम्न विधि से प्रमाणित किया जा सकता है। इस प्रयोग के लिये आवश्यक उपकरण ये हैं:

चित्र ४६० चित्र ४६१

श्वसन पर प्रयोग। चित्र ४६०—आक्सीजन श्वसन। चित्र ४६१—आक्सीजन इतर श्वसन।

एक वंकित बल्ब युक्त फ्लास्क जिसे श्वसनदर्शी (respiroscope) कहते हैं (एक मामूली लंबी गर्दन का फ्लास्क भी काम दे सकता है), एक बीकर, एक संधर या क्लैम्प (clamp) सहित उपयुक्त स्टैंड, पारा की कुछ मात्रा (बीकर के आकार के अनुसार), दाहक सोडा (caustic soda) के कुछ छड़, कुछ अंकुरित बीज या प्रस्फुटनशील पुष्प कलिकायें। कुछ अंकुरित बीजों को श्वसनदर्शी में डालो। बीकर में पारा की कुछ मात्रा उड़ेलो और श्वसनदर्शी उसके ऊपर उलट दो। श्वसनदर्शी इस खड़ी स्थिति में एक स्टैंड और संधर द्वारा स्थिर होता है। फ्लास्क में बंद हवा इस प्रकार परिवारित (surrounding) वायुमंडल से विच्छिन्न हो जाती है। चिमटी (forceps) की सहायता से श्वसनदर्शी में दाहक पोटाश की छड़ का एक छोटा खंड

डालो। वह श्वसनदर्शी में पारे के ऊपर तैरेगा। उपकरण को इसी स्थिति में कुछ घंटों तक रहने दो, अच्छा हो कि दूसरे दिन तक रहने दो।

प्रेक्षण (Observation)—दूसरे दिन यह देखा जायगा कि फ्लास्क में पारे का संतल कुछ उठा है। यह भी देखा जायगा कि पारे द्वारा घिरा आयतन फ्लास्क के कुल आयतन का लगभग (किन्तु यथार्थतः नहीं) पंचमांश है।

अनुमिति (Inference)—पारा उठने का कारण फ्लास्क में अन्तर्हित गैस की निश्चित मात्रा के अवशोषण द्वारा उसके अन्दर उत्पन्न आंशिक निर्वात है। दाहक पोटाश कार्बन डाइआक्साइड का अवशोषण करता है, अतएव हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अवशोषित गैस कार्बन डाइआक्साइड है।

नोट—इससे भी सरल विधि से यह प्रयोग किया जा सकता है, पारा के स्थान पर बीकर में दाहक सोडा या दाहक पोटाश उड़ेला जा सकता है और अंकुरित बीजों के साथ फ्लास्क या श्वसनदर्शी को उसके ऊपर उलटाया जा सकता है। अंतत: फ्लास्क या श्वसनदर्शी में दाहक विलयन का उठना देखा जा सकता है।

प्रयोग १५—आक्सीजन इतर श्वसन (Anaerobic Respiration; चित्र ४६१)—एक छोटी परख नली को पूर्णतया पारा (पारद) से भर दो, उसे अंगूठे से बन्द कर दो और एक बीकर में रखे हुए पारे पर उसे उलट दो। नली को एक उपयुक्त स्टैंड के साथ खड़ी स्थिति में रक्खो। कुछ अंकुरित बीज लो और बीज पत्र उनसे पृथक करो जिससे भीतर की हवा (आक्सीजन) दूर हो जाय। चिमटी की सहायता से छीले हुए बीजों को परखनली के नीचे रक्खो और उन्हें एक-एक कर छोड़ो। बीज ज्योंही छोड़े जाते हैं वे नली के बंद मुंह तक उठ आते हैं। इस प्रकार पांच-छ: बीज डालो। वे अब आक्सीजन से मुक्त हैं। उनको भीतर डालने से पहले आसुत (distilled) जल में भिगो लेना अच्छा है, या एक झुकी नली की सहायता से आसुत जल की कुछ मात्रा परख नली में डालना उचित है। इससे बीज आर्द्र (moist) बने रहते हैं। दूसरे दिन देखो कि पारे का स्तम्भ बीजों द्वारा एक गैस के उच्छ्वसन के कारण नीचे ढकेल दिया जाता है। एक चिमटी की सहायता से दाहक पोटाश की छड़ का एक छोटा टुकड़ा परख नली में डालो। वह पारे के ऊपर तैरता है और गैस के सम्पर्क में आने पर उसे शीघ्रतया अवशोषित करता है। पारा फिर ऊपर उठता है और परख नली को भर लेता है। यह गैस प्रत्यक्षत: कार्बन डाइआक्साइड है।

श्वसन एक विनाशक प्रक्रम है (Respiration is a Destructive Process)—यह एक विनाशक प्रक्रम है और जीवद्रव्य तथा खाद्य पदार्थों

रह सकता है जिसके बाद कदाचित कुछ दशाओं में ऊर्जा के क्षीण उत्पादन और इस प्रक्रम में उत्पन्न विषाक्त (toxic) पदार्थों की उपस्थिति के कारण उनकी मृत्यु हो सकती है।

प्रयोग १४ श्वसन (Respiration; देखिये चित्र ४६०) पौधों में श्वसन प्रयोगात्मक रूप में बहुत ही सरल किन्तु उत्कृष्ट रूप में निम्न विधि से प्रमाणित किया जा सकता है। इस प्रयोग के लिये आवश्यक उपकरण ये हैं:
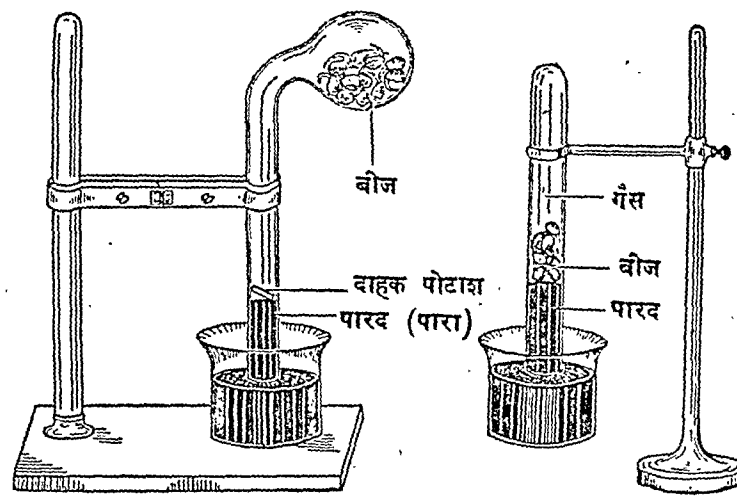
चित्र ४६० चित्र ४६१

श्वसन पर प्रयोग। चित्र ४६०—आक्सीजन श्वसन।
चित्र ४६१—आक्सीजन इतर श्वसन।

एक वंकित बल्व युक्त फ्लास्क जिसे श्वसनदर्शी (respiroscope) कहते हैं (एक मामूली लंबी गर्दन का फ्लास्क भी काम दे सकता है), एक बीकर, एक संवर या क्लैम्प (clamp) सहित उपयुक्त स्टैंड, पारा की कुछ मात्रा (बीकर के आकार के अनुसार), दाहक सोडा (caustic soda) के कुछ छड़, कुछ अंकुरित बीज या प्रस्फुटनशील पुष्प कलिकायें। कुछ अंकुरित बीजों को श्वसनदर्शी में डालो। बीकर में पारा की कुछ मात्रा उड़ेलो और श्वसनदर्शी उसके ऊपर उलट दो। श्वसनदर्शी इस खड़ी स्थिति में एक स्टैंड और संवर द्वारा स्थिर होता है। फ्लास्क में बंद हवा इस प्रकार परिवारित (surrounding) वायुमंडल से विच्छिन्न हो जाती है। चिमटी (forceps) की सहायता से श्वसनदर्शी में दाहक पोटाश की छड़ का एक छोटा खंड

डालो। वह श्वसनदर्शी में पारे के ऊपर तैरेगा। उपकरण को इसी स्थिति में कुछ घंटों तक रहने दो, अच्छा हो कि दूसरे दिन तक रहने दो।

प्रेक्षण (Observation)—दूसरे दिन यह देखा जायगा कि फ्लास्क में पारे का संतल कुछ उठा है। यह भी देखा जायगा कि पारे द्वारा घिरा आयतन फ्लास्क के कुल आयतन का लगभग (किन्तु यथार्थतः नहीं) पंचमांश है।

अनुमिति (Inference)—पारा उठने का कारण फ्लास्क में अन्तर्हित गैस की निश्चित मात्रा के अवशोषण द्वारा उसके अन्दर उत्पन्न आंशिक निर्वात है। दाहक पोटाश कार्बन डाइआक्साइड का अवशोषण करता है, अतएव हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अवशोषित गैस कार्बन डाइआक्साइड है।

नोट—इससे भी सरल विधि से यह प्रयोग किया जा सकता है, पारा के स्थान पर बीकर में दाहक सोडा या दाहक पोटाश उड़ेला जा सकता है और अंकुरित बीजों के साथ फ्लास्क या श्वसनदर्शी को उसके ऊपर उलटाया जा सकता है। अंततः फ्लास्क या श्वसनदर्शी में दाहक विलयन का उठना देखा जा सकता है।

प्रयोग १५—आक्सीजन इतर श्वसन (Anaerobic Respiration; चित्र ४६१)—एक छोटी परख नली को पूर्णतया पारा (पारद) से भर दो, उसे अंगूठे से बन्द कर दो और एक बीकर में रखे हुए पारे पर उसे उलट दो। नली को एक उपयुक्त स्टैंड के साथ खड़ी स्थिति में रखो। कुछ अंकुरित बीज लो और बीज पत्र उनसे पृथक करो जिससे भीतर की हवा (आक्सीजन) दूर हो जाय। चिमटी की सहायता से छीले हुए बीजों को परखनली के नीचे रखो और उन्हें एक-एक कर छोड़ो। बीज ज्योंही छोड़े जाते हैं वे नली के बंद मुंह तक उठ आते हैं। इस प्रकार पांच-छः बीज डालो। वे अब आक्सीजन से मुक्त हैं। उनको भीतर डालने से पहले आसुत (distilled) जल में भिगो लेना अच्छा है, या एक झुकी नली की सहायता से आसुत जल की कुछ मात्रा परख नली में डालना उचित है। इससे बीज आर्द्र (moist) बने रहते हैं। दूसरे दिन देखो कि पारे का स्तम्भ बीजों द्वारा एक गैस के उच्छवमन के कारण नीचे ढकेल दिया जाता है। एक चिमटी की सहायता से दाहक पोटाश की छड़ का एक छोटा टुकड़ा परख नली में डालो। वह पारे के ऊपर तैरता है और गैस के सम्पर्क में आने पर उसे शीघ्रतया अवशोषित करता है। पारा फिर ऊपर उठता है और परख नली को भर लेता है। यह गैस प्रत्यक्षतः कार्बन डाइआक्साइड है।

श्वसन एक विनाशक प्रक्रम है (Respiration is a Destructive Process)—यह एक विनाशक प्रक्रम है और जीवद्रव्य तथा खाद्य पदार्थ

में से कुछ, विशेषतया कार्बोहाइड्रेटों का विघटन इस में निहित होता है, और यह विघटन जीवद्रव्य द्वारा स्रावित विशिष्ट ऐन्ज़ाइमों की क्रिया से प्रस्तुत होता है; तथापि यह पौधों के जीवन के लिये अत्यधिक लाभकारी है क्योंकि श्वसन में स्वतन्त्र ऊर्जा निर्मुक्त होती है जिसके द्वारा कार्य सम्पादित होता है। यह ऊर्जा जीवद्रव्य द्वारा सम्पादित विभिन्न जीवकर प्रक्रमों के लिये नितान्त आवश्यक होती है। ऊर्जा की प्रचुर मात्रा पादप शरीर से ताप रूप में पलायित हो जाती है। प्रबल श्वसन में ताप उत्पन्न होता है। अंकुरित बीजों के पुंज में एक तापमापी प्रविष्ट कराने से ताप की विशेष वृद्धि प्रकट होगी। ताप का यह उत्पादन सहज प्रेक्षित (observed) रूप की ऊर्जा है।

श्वसन और प्रकाश-संश्लेषण (Respiration and Photosynthesis)

(१) श्वसन में पौधे आक्सीजन प्रयुक्त करते हैं और कार्बन डाइआक्साइड निष्कासित करते हैं; इसके विपरीत प्रकाश-संश्लेषण में पौधे कार्बन डाइआक्साइड प्रयुक्त करते हैं और आक्सीजन निष्कासित करते हैं, अर्थात् एक प्रक्रम दूसरे का प्रतिवर्ती (reverse) होता है।

(२) श्वसन एक विनाशक (अपचयज, catabolic) प्रक्रम है, किन्तु प्रकाश-संश्लेषण एक रचनात्मक (उपचयज, anabolic) प्रक्रम है। पूर्वोक्त (former) प्रक्रम (श्वसन) में शर्करा CO_2 और H_2O रूप में विघटित हो कर ऊर्जा मुक्त करती है, किन्तु उत्तरोक्त (latter) प्रक्रम (प्रकाश-संश्लेषण) में CO_2 और H_2O शर्करा रूप में संयुक्त (संघटित) हो कर ऊर्जा संचित करती हैं। इस प्रकार श्वसन विघटन प्रक्रम है और प्रकाश-संश्लेषण संघटन (निर्मायक) प्रक्रम है।

(३) श्वसन में शर्करा के विघटन और प्रकाश-संश्लेषण में शर्करा के संश्लेषण (synthesis) में मध्यस्थ रासायनिक प्रतिक्रियायें प्रायः समान ही हैं। दोनों प्रक्रमों में फास्फोग्लिसिरिक अम्ल (phosphoglyceric acid) निर्मित होता है, जो एक मध्यस्थ उत्पाद (intermediate product) के अनुरूप होता है।

(४) श्वसन पौधे की प्रत्येक सजीव कोशिका द्वारा प्रत्येक समय संचालित होता रहता है, अर्थात् यह प्रकाश तथा प्रकाश-संश्लेषण से स्वतंत्र होता है; इसके विपरीत प्रकाश-संश्लेषण केवल हरित कोशिकाओं द्वारा ही संचालित होता है और वह भी केवल सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में। यद्यपि प्रकाश-संश्लेषण केवल सीमित अवधि तक चालित रहता है तथापि यह प्रक्रम श्वसन की अपेक्षा बहुत अधिक प्रबल होता है।
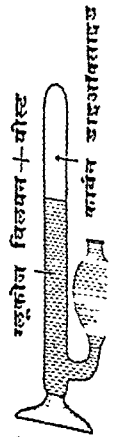
(५) खाद्य पदार्थों के विघटन और कार्बन डाइआक्साइड के निर्माण के कारण, जो पौधे से पलायित हो जाता है, श्वसन के परिणाम स्वरूप पौधे के शुष्क भार में ह्रास होता है, किन्तु शर्करा, मंड (starch) आदि की रचना के कारण जो पादप शरीर में संचित होते हैं प्रकाश-संश्लेषण के परिणाम स्वरूप शुष्क भार की वृद्धि होता है।

किण्वन (FERMENTATION)

आक्सीजन की अनुपस्थिति में कुछ निश्चित अणुजीवों (micro-organisms) द्वारा शर्करा विलयन का ऐलकोहल और कार्बन डाइआक्साइड रूप में अपूर्ण आक्सीकरण उपस्थित करना किण्वन है। यह परिवर्तन अणुजीवों द्वारा स्रावित एक ऐन्ज़ाइम जिसे ज़ाइमेस (zymase) कहते हैं, की क्रिया के कारण होता है और चीनी पर उसकी प्रत्यक्ष क्रिया के कारण नहीं होता है। ताड़ी और द्राक्षा रस (grape juice) में भी किण्वन सहज देखा सकता है जहां चीनी एककोशिक यीस्ट पौधे (yeast plant) द्वारा ऐलकोहल और कार्बन डाइआक्साइड रूप में विघटित होती है। ताड़ी में इस गैस के ही कारण फेन उठता है। किण्वन की परिभाषा यह हो सकती है कि यह आक्सीजन की अनुपस्थिति में चीनी पर एक ऐन्ज़ाइम की क्रिया है जो चीनी को कार्बन डाइआक्साइड तथा ऐलकोहल और कभी-कभी कार्बनिक अम्लों रूप में विघटित करती है। यह प्रक्रम आक्सीजन इतर श्वसन (anaerobic respiration) के अनुरूप है और समान सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है : $C_6H_{12}O_6 + Zymase = 2C_2H_6O_2 + 2CO_2 + Zymase + energy$ (चीनी+ज़ाइमेस=ऐलकोहल+कार्बन डाइआक्साइड+ज़ाईमिम+ऊर्जा)। किण्वन के प्रचलित उदाहरण ये हैं ऐलकोहली किण्वन (यीस्ट द्वारा चीनी का ऐलकोहल में रूपान्तर), लैक्टिक अम्ल किण्वन (दूध का खट्टा होना), ब्यूटिरिक अम्ल किण्वन (मक्खन की पूतिगंधिता, rancidity), ऐसीटिक अम्ल किण्वन (ऐलकोहल से सिरके का निर्माण), आदि।

ग्लूकोज़ विलयन+यीस्ट
कार्बन डाइआक्साइड

चित्र ४६२—कुह्ने के किण्वन पात्र के द्वारा किण्वन पर प्रयोग।

प्रयोग १६—उत्क्षंभण या किण्वन (Fermentation)—एक कुह्न के किण्वन पात्र (Kuhne's fermentation vessel; चित्र ४६२) को ५% द्राक्षा-शर्करा के विलयन से पूर्णतया भर लो और उसमें यीस्ट (yeast) की अल्प मात्रा मिला दो। किण्वन पात्र को किसी कवोष्ण स्थान में कुछ घन्टे तक रहने दो। कुछ घन्टे के बाद देखो कि नली के ऊपरी सिरे में एक गैस एकत्र होती है।

उसके बाद दाहक पोटाश का एक छोटा टुकड़ा किण्वन पात्र में डालो और पात्र को धीरे से हिलाओ, कुछ मिनटों में ही यह देखा जायगा कि गैस ऊपर उठकर नली को भर लेती है। गैस प्रत्यक्षत: किण्वन के समय विकसित कार्बन डाइआक्साइड है।

अध्याय ११

उपापचयन या विपचन (METABOLISM)

रासायनिक परिवर्तनों या प्रक्रमों की दो श्रेणियां साथ-साथ ही पौधों की कोशिकाओं में संचालित रहती हैं। एक तो अंततः जीवद्रव्य की रचना या निर्माण का पथ ग्रहण करती है और दूसरी उसके विघटन का पथ प्रदर्शन करती हैं। ये दोनों प्रक्रम संयुक्त रूप में **उपापचयन** (metabolism) कहलाते हैं। उपापचयन केवल सजीव कोशिकाओं में होता है और जीवन के एक लक्षणात्मक संकेतों में से है। विभिन्न खाद्य पदार्थों तथा अन्य कार्बनिक यौगिकों और अंततः जीवद्रव्य की रचना के प्रवाहक प्रक्रम संयुक्त रूप में **उपचय** (anabolism) कहलाते हैं और उनके विघटन के प्रवाहक प्रक्रम **अपचय** (catabolism) कहलाते हैं।

उपचय (Anabolism)—मुख्य उपचयक या रचनात्मक परिवर्तन ये हैं: शर्कराओं और अन्य कार्बोहाइड्रेटों की रचना, प्रोटीनों की रचना और वसाओं तथा तेलों की रचना। ये परिवर्तन या प्रक्रम उपचयक (anabolic) कहलाते हैं क्योंकि इन पोषक पदार्थों से ही जीवद्रव्य अपना पुनर्गठन करता है। उपचय द्वारा स्थितिज ऊर्जा (potential energy) की प्रचुर मात्रा उन पदार्थों में जीवद्रव्य के भावी उपभोग के लिये संचित रहती है।

अपचय (Catabolism)—उपचय के साथ पादप शरीर की सजीव कोशिकाओं में अपचयक या विघटक परिवर्तन या प्रक्रम भी संचालित रहते हैं। मुख्य अपचयक या विघटक प्रक्रम ये हैं: पाचन (digestion), श्वसन (respiration) और किण्वन (fermentation)। इन प्रक्रमों द्वारा जटिल खाद्य पदार्थ क्रमिक रूप में सरलतर उत्पादों में खंडित होते हैं, जैसे विभिन्न कार्बोहाइड्रेट द्राक्षा-शर्करा में, विभिन्न प्रोटीनें ऐमाइन्स तथा ऐमिनों अम्लों में, और वसा तथा तेल वसीय अम्लों और ग्लिसरीन में खंडित होते रहते हैं। उनमें पहले से ही संचित स्थितिज ऊर्जा अपचय द्वारा गतिज ऊर्जा (kinetic

energy) में जीवद्रव्य की बहुमुखी क्रियाओं के लिये निर्मुक्त होती हैं। श्वसन में द्राक्षा-शर्करा के पूर्ण आक्सीकरण के फल स्वरूप कार्बन डाइआक्साइड और पानी उत्पन्न होते हैं और आक्सीजनइतर श्वसन या किण्वन में द्राक्षा-शर्करा के अपूर्ण आक्सीकरण के फल स्वरूप ऐलकोहल और कार्बनिक अम्ल उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी जीवद्रव्य के विघटन से ऐमिनो अम्ल उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त स्रावक (secretory) उत्पाद जैसे ऐन्ज़ाइम, विटामिन, हारमोन, सैलूलोज, मकरंद आदि भी अपचय प्रक्रमों के परिणाम हैं। पौधे में अनेक उप-जातों (by-products) की रचना भी अपचय के फल स्वरूप होती है। विभिन्न वर्ज्य पदार्थ जैसे टैनिन, गंध तेल, गोंद, सजार्स आदि इस श्रेणी के पदार्थ हैं। ये पदार्थ जीवद्रव्य के लिये अनावश्यक या हानिकारक होते हैं इसलिये जीवद्रव्य के कार्य क्षेत्र की सीमा से बाहर कर दिये जाते हैं और अधिकांशतः विशेष कोशिकाओं, छाल, पुरानी पत्तियों, अंतःकाष्ठ और ग्रन्थियों में सचित होते हैं। इस अर्थ में वर्ज्य पदार्थों के विभिन्न प्रकार उत्सर्जन (excretions) या उत्सर्गी उत्पाद (excretory products) भी माने जा सकते हैं।

ख—वृद्धि और गति की कायिकी

अध्याय १२

वृद्धि (GROWTH)

किसी पौधे की वृद्धि उसके रचनात्मक (constructive) तथा क्षयकारी दोनों परिवर्तनों से सचित (associated) होती है। पूर्वोक्त (रचनात्मक) परिवर्तन से नाना प्रकार के पोषक पदार्थों तथा जीवद्रव्य का निर्माण होता है और पश्चादुक्त परिवर्तन से उनका विघटन होता है। जीवद्रव्य इन पोषक पदार्थों का स्वीकरण करता है तथा उसकी मात्रा में वृद्धि होती है वह जैसे-जैसे वृद्धि करता है सैलूलोज और अन्य उत्पाद स्रावित करता है जो प्रत्यक्षतः पादप काय की रचना के लिये उत्तरदायी होते हैं। कोशिकायें विभाजित होती हैं और अनेक नई कोशिकायें निर्मित होती हैं। ये आकार में वृद्धि करती हैं तथा पूर्णत. आशून (turgid) हो जाती हैं, और पूर्ण रूप में पादप की वृद्धि होती है। इस प्रकार वृद्धि जीवद्रव्य द्वारा प्रस्तुत एक जीवकर घटना (vital phenomenon) है। इसकी परिभाषा यह हो सकती है कि यह आकार

और रूप में स्थायी (permanent) तथा अनुक्रमणीय (irreversible) वर्धन है जिसके साथ-साथ भार में भी वर्धन होता है; कभी-कभी वृद्धि की आरंभिक अवस्था में भार का कुछ ह्रास देखा जाता है, जैसे जब एक आलू का कंद अंकुरित होता है तो प्रारंभ में वाष्पोत्सर्जन तथा श्वसन के कारण वह भार में ह्रास प्रकट करता है। किन्तु अंकुरित प्ररोह से नये पदार्थ ज्यों ही निर्मित होने लगते हैं, उसकी क्षति पूर्ति हो जाती है। पौधों में वृद्धि साधारणतः मन्द होती है और उपयुक्त उपकरणिका (instrument) की सहायता विना थोड़े समय की अवधि में उसका परिचय पाना तथा यथार्थ माप करना कठिन होता है। कुछ पौधे ऐसे हैं जो बहुत तीव्र वृद्धि प्रकट करते हैं किन्तु वह कुछ अंगो तक ही सीमित हैं; उदाहरणार्थ, यह देखा जाता है कि गेंहूं के पुंकेसर, कुछ वांसों के शिशु प्ररोह और कुछ क्यूकरविटा के तंतु प्रति मिनट लगभग एक मिलिमीटर की लम्बाई की औसत वृद्धि प्रकट करते हैं। पौधे की वृद्धि, चाहे, जितनी भी मंद हो, वृद्धिमापी (auxanometer) नामक उपकरणिका की सहायता से यथार्थतः मापी जा सकती है।

प्रयोग १८—प्ररोह की लम्बाई में वृद्धि—वृद्धिमापी एक उपकरणिका है जिसके द्वारा लम्बाई में अल्प वृद्धि कई गुना अधिक आर्वाधित
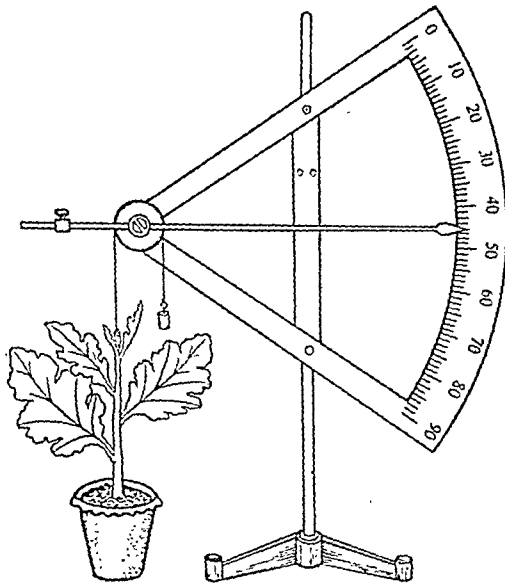
चित्र ४६३—चाप सूचक या उत्तोलक वृद्धिमापी।

(magnified) की जा सकती है। वृद्धिमापी द्वारा अभिलेखित (recorded) इस सम्पूर्ण ज्ञात आवर्धन से पौधे की उस वास्तविक लम्बाई की सरलतया गणना की जा सकती है जो वह एक नियत काल में प्रस्तुत करता है। दो प्रकार के वृद्धिमापी विशेष प्रचलित हैं; प्रथम और सरलतम प्रकार उत्तोलक वृद्धिमापी (lever auxanometer) या चाप सूचक (arc indicator; चित्र ४६३) है और द्वितीय प्रकार घिरनी वृद्धिमापी (pulley auxanometer) या केवल वृद्धिमापी कहलाता है। दोनों में सिद्धान्त एक ही है।

उत्तोलक प्रकार या चाप सूचक में एक चल उत्तोलक (movable lever) या सूचक एक चक्र में बद्ध (fixed) रहता है जिसके चारों ओर एक डोरी लगी होती है। डोरी का एक सिरा तने के अग्रक (apex) में बंधा या गोंद से चिपका रहता है, और दूसरे सिरे से डोरी को तना हुआ रखने के लिये एक छोटा बाट (weight) लटका रहता है। जैसे-जैसे तने की लम्बाई में वृद्धि होती है, चक्र मन्द गति से लटकाये हुए बाट के कारण घूमता है और सूचक अशांकित (graduated) चाप पर नीचे खिसकता है। इस प्रकार पौधे की लम्बाई में वृद्धि उपकरण द्वारा आवर्धित मापक्रम (scale) पर अभिलेखित होती है। इस प्रकार प्राप्त अभिलेख से तने की लम्बाई में वास्तविक वर्धन ज्ञात होता है। उदाहरणार्थ यदि उत्तोलक २४ घटे में ४५ सेमी० की दूरी पार कर चुका हो और आवर्धन ९० गुना हो तो उस नियत समय में वास्तविक वृद्धि ४५/९० सेमी० अर्थात् ०·५ सेमी० या ५ मिलिमीटर होगी और इस लिये एक घटे में पौधे की यथार्थ वृद्धि ५/२४ मिमी० या ०·२ मिलिमीटर होगी।

क्रेस्कोग्राफ (Crescograph)—स्वर्गीय सर जगदीश चन्द्र बसु ने एक बहुत सुकुमार (delicate) उपकरण की रचना की थी जिसका नाम क्रेस्कोग्राफ है जो एक विद्युत् युक्ति (device) है। इस उपकरण की सहायता से पौधे की वृद्धि एक हजार से दस हजार गुना तक आवर्धित की जा सकती है और यथार्थतः मापी जा सकती है। इस उच्च आवर्धन पर वृद्धि की प्रगति सेकंडों तक भी मापा जा सकना सम्भव है।

वृद्धि की कलायें (Phases of Growth; चित्र ४६४)—पादप काय की पूर्ण लम्बाई भर में वृद्धि संचालित नहीं होती बल्कि यह विशेष क्षेत्रों में स्थानिक होती हैं जिन्हें विभज्यायें (meristems) कहते हैं जो अग्रस्थ, पार्श्विक या आन्तर्निविष्ट हो सकते हैं। लम्बाई में वृद्धि अग्रस्थ विभज्या (मूल अग्रक और स्तम्भ अग्रक) की कोशिकाओं के क्रमिक अपवृद्धि (enlargement) और दीर्घीकरण (elongation) के कारण होती

है, और द्विबीजपत्री पौधों, और जिम्नोस्पर्म्स (gymnosperms) में चौड़ाई में वृद्धि पार्श्विक विभज्या अर्थात् अन्तःसंघाती (interfascicular) एधा (cambium), संघाती एधा (fascicular cambium) और काग एधा (cork cambium) की सक्रियता के कारण होती है। यदि पौधे के किसी अंग की वृद्धि के इतिहास का अवलोकन किया जाय तो उस में तीन कलायें पहचानी जा सकती हैं। (१) **निर्माणावस्था** (The formative phase)–यह मूल और स्तम्भ के अग्रस्थ विभज्या में ही सीमित रहती है। इस क्षेत्र की कोशिकायें सतत विभाजित होती और संख्या में बढ़ती रहती है। जीवद्रव्य की प्रचुरता, एक बड़ा नाभिक (nucleus) और सैलूलोज भित्ति इनका लक्षण होता है। (२) **दीर्घीकरण की अवस्था** (The phase of elongation)—यह निर्माणावस्था के ठीक पीछे स्थित होती है। इस अवस्था में कोशिकाओं का विभाजन नहीं होता। किन्तु आकार में उनका वृहदन (increase) होता है; वे अधिकतम विस्तार तक पहुंचने तक दीर्घीकरण और वृहदन संचालित रखते हैं। मूल में इस अवस्था का कुछ मिलिमीटरों की लम्बाई में ही प्रसार होता है और स्तंभ में कुछ सेंटिमीटरों में रहता है। कुछ आरोही पौधों (climbers) में इससे बहुत लम्बे स्थान में इस का प्रसार हो सकता है। (३) **परिपक्वता की अवस्था** (The phase of maturation)—यह अवस्था अधिक पीछे स्थित होती है। यहां पर कोशिकायें अपने स्थायी आकार पर पहुंच गई रहती हैं। इस कला में कोशिका भित्ति का स्थूलन घटित होता है।
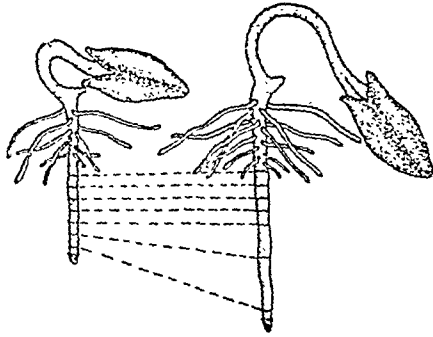
चित्र ४६४—मूल के वृद्धि की अवस्थायें।

वृद्धि की समग्र अवधि (Grand Period of Growth)—पादप काय का प्रत्येक अंग, यथार्थ में प्रत्येक कोशिका जिससे अंग की रचना हुई रहती है अपनी वृद्धि की गति में विभिन्नता प्रकट करती है। वृद्धि पहले मंद होती है, उसके बाद यह त्वरित होती है जब तक अधिकतम की प्राप्ति नहीं होती। उसके बाद वह कुछ शीघ्रता ही से गिर जाती है और क्रमशः उस समय तक मंद होती जाती है जब तक वह पूर्ण स्थगित नही हो जाती। अंग या कोशिका या पूर्ण पौधे की यह वृद्धि पूर्ण काल में

प्रसारित रहने पर वृद्धि की समग्र अवधि (grand period of growth) कहलाती है।

हारमोन (Hormone)—यह अब निश्चित रूप से ज्ञात है कि पादप शरीर के अंतर्गत उपापचयन के फल स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में उत्पन्न कुछ नियत संश्लेषणात्मक उत्पादों का यथेष्ट प्रभाव पौधों के अंगों की वृद्धि तथा इन अंगो द्वारा प्रदर्शित अनेक प्रकार की अभिवक्र गतियां (tropic movement) पर पड़ता है। कुछ नियत क्रियात्मक प्रक्रमों पर भी उनका विशेष प्रभाव रहता है। इन को हारमोन (hormone) कहते हैं। वे पादप काय के एक भाग, मुख्यत. अग्रस्थ विभज्या में निर्मित होते हैं और वहां से अन्य भाग को वहाँ एक विशेष क्रियात्मक प्रभाव (physiological effect) उत्पन्न करने के लिये परिवाहित होते हैं। हारमोनों की उपस्थिति सर्वप्रथम प्रायोगिक विधि से प्रदर्शित की गई थी। उपयुक्त रासायनिक विधियों से उन्हें पौधों से निस्सारित (extract) करना अब संभव हो सका है। निम्न सान्द्रण (concentration) पर वे वृद्धि उद्दीप्त करते हैं परन्तु उच्च सान्द्रण पर वे वृद्धि मन्द करते हैं। अब तक अनेक हारमोनों की खोज हो चुकी है।

अध्याय १२

गति (MOVEMENT)

सजीव प्राणी अपनी गति की शक्ति द्वारा निर्जीव पदार्थों से पहचाने जा सकते हैं। जीवद्रव्य अनेक बाह्यकारकों के प्रति संवेदी (sensitive) होता है जो उद्दीपन (stimulus) का कार्य करते हैं, जैसे ताप (heat), प्रकाश (light), विद्युत् (electricity), गुरुत्व (gravity) और कतिपय रस द्रव्य (chemicals) आदि, और पौधे तथा पौधों के अंग प्रायः एक विशेष दिशा में अपने शरीर की गति द्वारा इन उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया (response) करते हैं और उसके कारण एक सुविधाजनक स्थिति ग्रहण करते हैं। पौधों या पौधों के अंगों की बाहर से उद्दीपन ग्रहण करने और उनके प्रति अनुक्रिया करने की क्षमता उत्तेज्यता (irritability) कहलाती है। उत्तेज्यता गति के किसी प्रकार से अपने को व्यक्त करती है और पौधों के लिये एक निश्चित सुविधा है क्योंकि इस गति के द्वारा यह वातावरण की अवस्थाओं के अनुकूल अपने को समंजित कर सकते हैं।

गतियों के प्रकार (Types of Movements)—पौधे विभिन्न प्रकार की गतियां प्रदर्शित करते हैं और वे स्थूलतः इस प्रकार वर्गीकृत किये जा सकते हैं। (१) संचलन गति (movement of locomotion) और (२) वक्रता गति (movements of curvature)।

संचलन गतियां (Movements of Locomotion) कोशिका के अंतर्गत जीवद्रव्य की गति, जीवद्रव्य की नग्न संहतियों और एक एककोशिक या बहुकोशिक अंगों और पूर्ण जीवों की निर्बाध गतियों को संचलन गतियां कहते हैं। ये गतियां पुनः (अ) स्वतःप्रेरित (spontaneous) या स्वप्रेरित (autonomic) और (ब) परप्रेरित (induced or paratonic) हो सकती हैं।

वक्रता गतियां (Movements of Curvature)—उच्चतर पादप भूमि में स्थिर होने के कारण संचलन गति नहीं कर सकते हैं, किन्तु उनके कुछ अंग विभिन्न प्रकार की गतियां प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार ये अंग वक्रता के द्वारा अपनी स्थिति या दिशा परिवर्तित कर सकते हैं या गति कर सकते हैं। पौधों के अंगों की ये सब गतियां वक्रता गतियां कहलाती हैं। जब ये अंग गति करते हैं तो वे अपने कार्यों को प्रभावोत्पादक रूप में निष्पन्न करने के लिये एक सुविधाजनक स्थिति ग्रहण कर लेते हैं। वक्रता गति यान्त्रिक या जीवकर हो सकती है। जीवकर गति स्वतःप्ररित या परप्रेरित होती है।
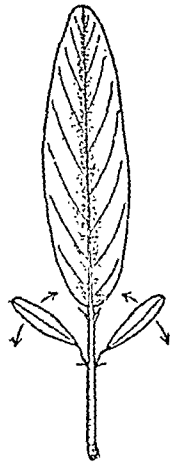
चित्र ४६५—वनचल दो पार्श्व पर्णकों के स्वतःप्रेरित गति को प्रदर्शित हुये।

स्वतःप्रेरित गतियां (Spontaneous Movements)—स्वतःप्रेरित गतियां पौधे के अंगों की स्वेच्छा गतियां, हैं अर्थात् वे बाह्य कारकों के प्रभाव बिना ही होती हैं। ऐसी गतियां दो प्रकार की होती हैं—(१) विभिन्नता गति (movement of variation) और (२) वृद्धि गति (movement of growth)।

(१) **विभिन्नता गति** (Movement of Variation)—विभिन्नता गति प्रौढ़ अंगों की गति है जो उन अंगों की कोशिकाओं की आशूनता (turgidity) में विभिन्नता के कारण उत्पन्न होती है। यह कुछ तीव्र होती है। स्वतःप्रेरित विभिन्नता गति दुर्लभ सी होती है। अधिकांश पौधों में कोशिक अंगों की गति बाह्य कारकों द्वारा प्रेरित (induced) होती है। किन्तु स्वतःप्रेरित गति वनचल (Indian telegraph plant) के स्पंदन (pulsation)

अर्थात् पार्श्व (lateral) पर्णकों (leaflets) के ऊपर नीचे उठने और गिरने उल्लेखनीय रूप में प्रदर्शित होती हैं। यह ध्यान देने की बात है कि पर्णक साधारणतया प्रातःकाल से सायंकाल तक, अर्थात् जब तक सूर्य प्रकाश सुलभ रहता है उठते तथा गिरते हैं।

(२) वृद्धि गति (Movement of Growth)—वृद्धि गति वर्धन (growing) अंगों की गति है जो उन अंगों के विभिन्न भागों में असमान वृद्धि के कारण होती है। यह बहुत मन्द होती है। कुछ ट्रेलरों (trailers) और अधोलताओं (creepers) में देखा जाता है कि किसी समय तने के एक भाग में वृद्धि अपेक्षाकृत तीव्र होती है और फिर वृद्धि दूसरी ओर हटकर होने लगती है। ऐसी अवस्था में जब तना दीर्घीकृत (elongates) होता है तो टेढ़े-मेढ़े (zigzag) मार्ग से गति करता है। इस प्रकार की गति (१) शिखावर्तन (nutation) कहलाती है। यदि वृद्धि नियमिततः तने के चारों ओर घूमती है तो वह इस विधि से घूमती है, जिससे सर्पिल (spiral) बन जाता है, जैसे तन्तुओं (tendrils) और वल्लियों (twiners) में पाया जाता है। इस प्रकार की गति (२) चक्र शिखावर्तन (circum-nutation) कहलाती है। दूसरे प्रकार की वृद्धि गति शिशु (young) पत्तियों द्वारा प्रदर्शित होती है। इसका एक प्रमुख उदाहरण पर्णांग की पत्तियों की गति है।

परप्रेरित गतियां (Induced Movements)—पौधे के अंगों की गतियां बाह्य कारकों द्वारा प्रेरित हो सकती हैं जो उद्दीपन का कार्य करते हैं। उद्दीपन निम्न प्रकार के हो सकते हैं: (१) सम्पर्क (contact), (२) प्रकाश (light), (३) गुरुत्व (gravity), और (४) आर्द्रता या नमी (moisture)। परप्रेरित गतियां दो प्रकार की होती हैं: (अ) अभिवक्र (tropic) और आदिश प्रेरित (nastic)।

(अ) अभिवक्र गति या अभिवर्तन (Tropic Movement or Tropism)—पौधों के अंगों की अभिवक्र गतियां अनुचलन (taxism) की भांति सदा निर्देशित होती हैं अर्थात् गति की दिशा उद्दीपन की दिशा में निर्धारित होती है और अंग या तो उद्दीपन के स्रोत की ओर या उस से दूर की ओर गति करते हैं। उद्दीपनों की प्रकृति जैसे (१) सम्पर्क, (२) प्रकाश इत्यादि और तदनुरूपी अभिवक्र गतियां निम्न प्रकार की हो सकती हैं:

(१) विजातीय काय से सम्पर्क (Contact with a Foreign Body)—किसी विजातीय काय से एक अंग का सम्पर्क होना स्पर्शाभिवर्तन (haptotropism) कहलाता है। वलयन स्तम्भ (twining stem) और तन्तु (tendrils) स्पर्शाभिवर्तन प्रदर्शन करने के उत्तम उदाहरण हैं। ऐसी

अवस्थाओं में प्रतिक्रिया (reaction) मंद होती है अतएव गति उत्पन्न करने के लिये सम्पर्क दीर्घ अवधि तक होना चाहिये। जब ऐसे अंग किसी कठोर वस्तु के सम्पर्क में आते हैं तो सम्पर्क पार्श्व की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है किन्तु दूसरा पार्श्व वृद्धि करता है। फल यह होता है कि अंग शनैः शनैः उस पदार्थ के चारों ओर कुंडलित (coiled) होते हैं। आरोहण (climbing) के लिये यह एक विरचना है।

(२) प्रकाश (Light)—किरणों के आपतन (incidence) की दिशा द्वारा निर्धारित पौधे के अंग की गति को प्रकाशाभिवर्तन (phototropism) या सूर्याभिवर्तन (heliotropism) कहते हैं। कुछ अंग उसकी ओर वृद्धि करते हैं और वे प्रकाशाकृष्ट (positively heliotropic) कहलाते हैं, जैसे प्ररोह (shoot); और अन्य उससे दूर वृद्धि करते हैं और वे प्रकाशापवर्ती (negatively heliotropic) कहलाते हैं, जैसे मूल। पृष्ठ-प्रतिपृष्ठी अंग जैसे पत्तियां, भूप्रसारी आदि किरण के आपतन की दिशा से समकोण की ओर वृद्धि करती हैं जिससे उनका ऊर्ध्व तल प्रकाश के सम्मुख पड़ता है। ऐसे अंग डायहीलिओट्रोपिक (diaheliotropic) कहलाते हैं। प्रकाशाकृष्टन (positive heliotropism) स्पष्टतः पौधों में विशेषतया नवोद्भिजों (seedlings) में देखा जाता है जब वे किसी बन्द कमरे या बक्स (सूर्याभिवर्त कक्ष; चित्र ४६६) में उगाये जाते हैं जिसमें केवल एक पार्श्व में एक खुली खिड़की होती है। वे सब खिड़की की ओर, अर्थात् प्रकाश के स्रोत की ओर वृद्धि करने में प्रवृत होते हैं, और बक्स की दशा में अंततः वे उसके मार्ग से बाहर निकल आते हैं। एक गमले के पौधे को क्लाइनोस्टैट (clinostat; चित्र ४६७) पर ऊर्ध्वाधर (vertical) दिशा में रखने और उस को घूर्णित (rotate) करने से एक पार्श्विक (unilateral) प्रकाश के प्रभाव को मिटाया जा सकता है। पौधा ऊर्ध्वाधर दिशा में ऊपर वृद्धि करता दिखाई पड़ता है और खिड़की की ओर नहीं झुकता। यह भी देखा जाता है, जैसे यूकेलिप्टस (*Eucalyptus*) में, कि पत्ती का किनारा तीव्र प्रकाश की ओर झुक जाता है और जब प्रकाश विस्तृत (diffused) हो जाता है तो तल उस के सम्मुख हो जाता है।

चित्र ४६६—सूर्याभिवर्त कक्ष।
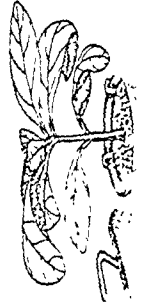
(३) गुरुत्व की शक्ति (Force of Gravity)—गुरुत्व की शक्ति की
अनुक्रिया के प्रति पौधे के अगों की गति को भू-अभिवर्तन (geotropism)
कहा जाता है। पौधे के अगों की वृद्धि की दिशा पर भू-अभिवर्तन का उल्लेखनीय
प्रभाव पड़ता है। प्राथमिक मूल गुरुत्व-केन्द्र की ओर वृद्धि करता दिखाई पड़ता
है और प्राथमिक प्ररोह उससे दूर की ओर वृद्धि करता है। अतएव प्राथमिक
मूल को भूम्याकृष्ट (positively geotropic) और प्राथमिक प्ररोह को
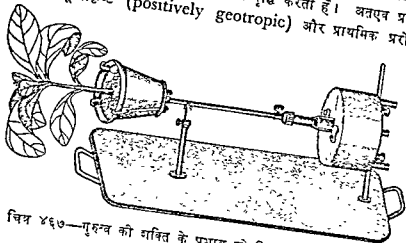
चित्र ४६७—गुरुत्व की शक्ति के प्रभाव को निरसन करने के लिये क्लाइनोस्टैट क्षैतिज स्थिति मे।

भूअपवर्ती (negatively geotropic) कहते है। पार्श्विक मूल और
शाखाये साधारणत गुरुत्व शक्ति से समकोण बनाते हुये वृद्धि करते है और वे
डायाजिओट्रोपिक (diageotropic) कहलाते है। वृद्धि की दिशा गुरुत्व शक्ति
की उद्दीपन क्रिया द्वारा निर्धारित होती है। इस बात को उस बीजाकुर
(seedling) में स्पष्टत देखा जा सकता है जो प्रकाश से दूर क्षैतिज
स्थिति में रक्खा हो। स्तम्भ तथा मूल दोनो ही अपने अग्रक के वर्धन क्षेत्र मे
९० अश के कोण के मार्ग वक्रता का अनुगमन करते है। मूल वक्रित होना है
और उदग्रत. अधोवर्ती वृद्धि करता है और वैसे ही स्तभ ऊर्ध्ववर्ती वृद्धि
करता है। मूल का बिलकुल सिरा ही, एक से दो मिलिमीटर की लम्बाई
तक, उद्दीपन के प्रति सवेदी होता है। किन्तु वास्तविक झुकाव सिरे से कुछ
दूर दीर्घतम वृद्धि के क्षेत्र मे होता है। यदि मूल का सिरा शिरश्छेदित
(decapitated) कर दिया जाय, तो झुकाव नही उत्पन्न होता।
इसके अतिरिक्त यह देखा जाता है कि अकुरित बीज का मूल, गुरुत्व [illegible]
आधीन अधोवर्ती रूप मे पारा के मध्य मे यथेष्ट दाब का सामना [illegible]
वृद्धि करता है। क्लाइनोस्टैट (चित्र ४६७) की सहायता से [illegible]

(centrifugal) शक्ति का प्रवेश करा कर मूल तथा प्ररोह पर भूअभिवर्त उद्दीपन के प्रभाव को मिटाना संभव हो सका है (देखो प्रयोग १९)।

प्रयोग १९—**भूअभिवर्तन**—एक **क्लाइनोस्टैट** (चित्र ४६७) का उपयोग भूअभिवर्तन के प्रदर्शन के लिये किया जा सकता है। क्लाइनोस्टैट एक उपकरणिका (instrument) है जिसके द्वारा पौधे के अंग—मूल या प्ररोह पर पार्श्विक प्रकाश (lateral light) और गुरुत्व शक्ति का प्रभाव निरसन किया जा सकता है। इस में एक छड़ होती है, जिस पर एक बिम्ब लगा होता है, जिसके साथ गमले का पौधा संबद्ध किया जा सकता है और छड़ तथा बिम्ब को घूर्णन (rotate) करने के लिये एक घड़ी समान यान्त्रिकता होती है। क्लाइनोस्टैट मन्दतः कार्य करता है। उसका घूर्णन (rotation) साधारणतः प्रति घंटा १/४ से ४ फेरा (turn) तक होता है। कोई पौधा, अच्छा हो कि गमले का पौधा हो, क्लाइनोस्टैट में किसी भी स्थिति में उदग्र (vertical), क्षैतिज (horizontal) या किसी कोण पर आबद्ध किया जा सकता है और क्लाइनोस्टैट की घड़ीवत् यान्त्रिकता द्वारा घूर्णित किया जा सकता है। जब पौधा क्षैतिज होता है तो मूल और प्ररोह क्षैतिजतः ही, वृद्धि करते हैं और मूल नीचे की ओर और स्तम्भ ऊपर की ओर नहीं मुड़ता। यह इस तथ्य के कारण होता है कि वर्धन अक्षों के सब पार्श्व बारी बारी से अधोवर्ती, ऊर्ध्ववर्ती और पार्श्ववर्ती निर्देशित होते रहते हैं जिससे गुरुत्व की शक्ति किसी निश्चित स्थिति में क्रिया नहीं कर सकती। इस के परिणाम स्वरूप इस शक्ति का प्रभाव पूर्णतः मिट जाता है। अतएव मूल तथा प्ररोह नहीं मुड़ते। किन्तु यदि पौधा उदग्रतः स्थित हो और क्लाइनोस्टैट घूर्णित किया जाय तो यह देखा जायगा कि पौधा उदग्र दिशा में—मूल अधोवर्ती दिशा में और स्तम्भ ऊर्ध्ववर्ती (upwards) दिशा में वृद्धि करता है।

(४) **आर्द्रता या नमी** (Moisture)—आर्द्रता के उद्दीपन के अनुक्रिया के फलस्वरूप किसी अंग की गति को **जलाभिवर्तन** (hydrotropism) कहते हैं। आर्द्रता की मात्रा में विभिन्नता के प्रति मूल संवेदी होते हैं। वे आर्द्रता के स्रोत की ओर वृद्धि करने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं और जलाकृष्ट (positively hydrotropic) कहलाते हैं। यह देखा जाता है कि तार की जाली से बनी हुई लटकती टोकरी में उगाने पर और उस में आर्द्र बुरादा भर देने पर पौधे के मूल सर्व प्रथम गुरुत्व की शक्ति के प्रभाव से बाहर आकर निम्नवर्ती बढ़ते हैं किन्तु आर्द्रता (टोकरी में रक्खा आर्द्र बुरादा) के उद्दीपन के अनुक्रिया के फल स्वरूप वे पीछे घूम जाते हैं और लूप बना कर फिर टोकरी में प्रवेश कर जाते हैं।
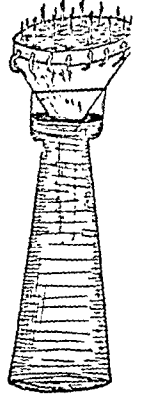
चित्र ४६८-जलाभि... पर प्रयोग।

प्रयोग २०–जलाभिवर्तन—एक चिकनी मिट्टी के छिद्रिल (porous) कोप को चारों ओर एक फिल्टर-पत्र से ढक कर एक चौड़े मुंह की कांच की बोतल जिसमें पानी भरा रहता है, के ऊपर रखते हैं जैसा चित्र ४६८ में प्रदर्शित है। इस प्रकार कागज आर्द्र बना रहता है। छिद्रिल कोप सूखे बुरादे से भर दी जाती है और भिगोये बीज गोलाई में, प्रत्येक एक छिद्र के पास, रख दिये जाते हैं। अंकुरण में सहायता पहुंचाने के लिये बीजों पर जब-तब कुछ बूंद पानी गिराते रहना आवश्यक है। वे जब अंकुरित होते हैं तो देखा जाता है कि मूल गुरुत्व शक्ति के अनु-क्रिया के फलस्वरूप उदग्रतः अधोवर्ती जाने के स्थान पर छिद्रों के मार्ग आर्द्र फिल्टर-पत्र की ओर जाते हैं और कागज पर से बोतल में अधोवर्ती रूप में वृद्धि करते हैं। इस प्रकार मूल आर्द्रता की ओर गति प्रदर्शित करते हैं या दूसरे शब्दों में वे जलाकृष्ट होते हैं।

चित्र ४६८–जलाभिवर्तन पर प्रयोग।

(ब) अदिश प्रेरित गतियां या अदिश-प्रेरण (Nastic Movements or Nasties)—अभिवर्तन की भांति पौधों के अगों की अदिश प्रेरित गतियां सम्पर्क, प्रकाश और ऊष्मा समान उद्दीपनों से प्रेरित होती हैं किन्तु ये गतियां दिशिक (directive) नहीं होती, अर्थात् इन अवस्थाओं में गति की दिशा उद्दीपन प्रयुक्त करने की दिशा द्वारा निर्धारित नहीं होती, या दूसरे शब्दों में उद्दीपन चाहे जिस दिशा से प्रयुक्त किया जाय वह अगों के सब पार्श्वों को एक समान ही प्रभावित करता है, और वे सदा एक विधि से और एक दिशा में ही गति करते हैं। उनमें दिशा का निर्धारण मुख्यत. संबंधित अगों के शारीर संरचना द्वारा होता है। अदिश प्रेरित गतियों का प्रदर्शन अधिकांशत पत्तियां और पखुड़ियां (petals) समान चपटे अंगों द्वारा होता है। अदिश-प्रेरण (nasties) के निम्न उदाहरण सामान्य हैं:

(१) स्पर्श अदिश प्रेरण (Seismonasty)—यान्त्रिक उद्दीपन जैसे किसी विजातीय (foreign) वस्तु से सम्पर्क, किसी कठोर वस्तु से छेड़ना, वर्षा की बूंदें, हवा के झोके, आदि द्वारा उत्पन्न गति स्पर्श अदिश प्रेरण (seismonasty) कहलाती हैं। छुईमुई (sensitive plant; चित्र ४७०), लज्जालु (sensitive wood sorrel; चित्र ४६९), जल लज्जावंती (*Neptunia*), कमरख (*Averrhoa*) की पत्तियों (पर्णकों, leaflets) की गति परिचित उदाहरण हैं। ऐसे पौधों के पर्णक (leaflets) स्पर्श करने पर बंद हो जाते हैं। यह

भी ध्यान देने की बात है कि गति की मात्रा प्रयुक्त उद्दीपन की तीव्रता के अनुसार विभिन्न होती है। उदाहरणतः जब छुईमुई का पर्ण अग्रक (leaf apex) धीरे से स्पर्श किया जाता है तो पर्णकों के केवल ऊपरी जोड़े ही बंद होते हैं; जब कुछ जोर से स्पर्श किया जाता है या दबाया जाता है तो सब पर्णक
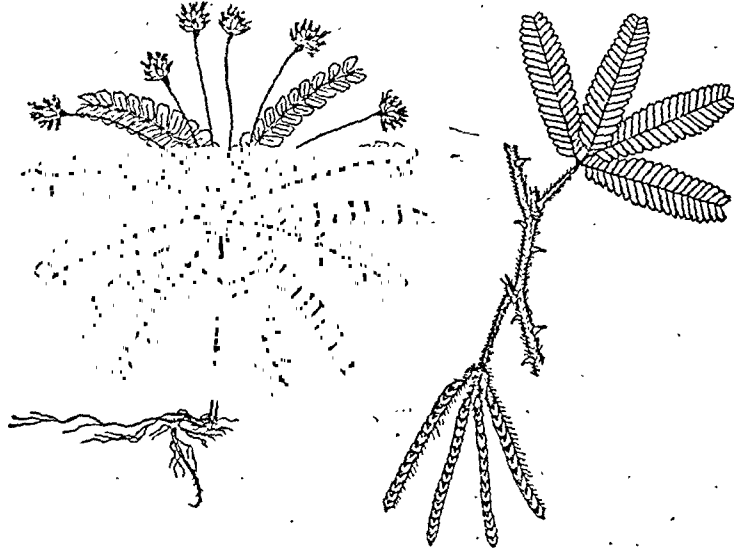
चित्र ४६९—लज्जालु। चित्र ४७०—छुईमुई।

अग्रक से लेकर नीचे तक एक समान ही अनुक्रिया करते हैं और जब बहुत जोर से छेड़ा जाता है तो सब पर्णक एक साथ ही बन्द हो जाते हैं और पूरी पत्ती झुक जाती है।

(२) **नक्त अदिश प्रेरण** (Nyctinasty)—दिन और रात के एकान्तरण द्वारा प्रेरित गति को **नक्त अदिश प्रेरण** (nyctinasty) या **निद्रा गति** कहते हैं। पत्तियां और फूल विशेषतः पत्तियां उल्लेखनीय रूप में नक्त अदिश प्रेरण द्वारा प्रभावित होती हैं। इस प्रकार की गति लेग्यूमीनोसी कुल के पौधों द्वारा अत्यधिक उल्लेखनीय रूप में प्रदर्शित होती है। इन पौधों के पर्णक सन्ध्या को प्रकाश कम होने पर बन्द होते हैं और प्रायः पूर्ण पत्ती झुक जाती है; और जब प्रातःकाल पुनः प्रकाश होता है तो वे खुलते हैं। बथुआ (*Chenopodium*), कमरख (*Averrhoa*), चुकत्रिपत्ती (wood sorrel), लज्जालु (sensitive wood-sorrel) और मार्सीलिया (*Marsilea*) आदि भी

ऐसी ही घटना प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार की गति स्थूलाधार (pulvinus) की कोशिकाओं की आशूनता में विभिन्नता के कारण होती हैं। नक्त अदिश प्रचलन प्रदर्शित करने वाले फूलों में जरबेरा (*Gerbera*), कुल्फा साग (*Portulaca*) का नाम लिया जा सकता है।

ग—प्रजनन की कार्यिकी

अध्याय १४

प्रजनन (REPRODUCTION)

प्रत्येक पौधे का जीवन सीमित अवधि का होता है, इस कारण इसने अपनी जाति सन्तनन सतत रखने तथा अपनी सख्या-वृद्धि करने के लिये भी अनेक विरचनाये (mechanisms) परिवर्धित की हैं। निम्नांकित मुख्य विधियां हैं जिनके द्वारा एक पौधा अपना प्रजनन करता है। ये विधियां वर्धी (vegetative), अलिंगी (asexual) और लिंगी (sexual) हैं।

१. वर्धी प्रजनन Vegetative Reproduction —

(क) प्रचारण की प्राकृतिक विधियां (Natural Methods of Propagation)—इन में से किसी भी विधि में मातृ पादप (mother plant) के काय से एक अंश अलग हो जाता है और यह अलग किया हुआ भाग अनुकूल अवस्थाओं में स्वतन्त्र नवीन पौधे के रूप में वृद्धि करता है। जिन विधियों से वर्धी प्रचारण कार्यान्वित होता है, वे अनेक हैं।

(१) मुकुलन (Budding)—यीस्ट (Yeast) के उदाहरण में (देखिये चित्र ५२०) शर्करा विलयन (sugar solution) में निमज्जित (immersed) वर्धी कोशिका के एक या अधिक पार्श्वों पर एक या अधिक क्षुद्र उद्वर्ध प्रकट होते हैं। शीघ्र ही ये उद्वर्ध मातृ कोशिका से अलग हो जाते हैं और नई कोशिका का निर्माण करते हैं। उद्वर्ध रचना की यह रीति मुकुलन कहलाती है। प्राय. मुकुलन एक के बाद एक सतत रहता है जिससे अंत में कोशिकाओं की एक शृंखला की सब एकल कोशिकायें एक दूसरे से पृथक हो जाती हैं और नवीन यीस्ट पादप का निर्माण करती हैं।

(२) पर्ण अग्र (Leaf-tip)—कुछ फर्न या पर्णांग (ferns) ऐसे होते हैं, जिन्हें, साधारणतया गमन फर्न (walking ferns) कहते हैं, जैसे

ऐडिएन्टम कौडेटम (*Adiantum caudatum*), जो पर्ण के शीर्ष पर एक कलिका (bud) उत्पन्न कर वर्धी रूप में प्रचारित होते हैं (देखिये चित्र ४७१)। जब पत्ती नीचे झुकती है और भूमि स्पर्श करती है, उसका शीर्ष मूल उत्पन्न
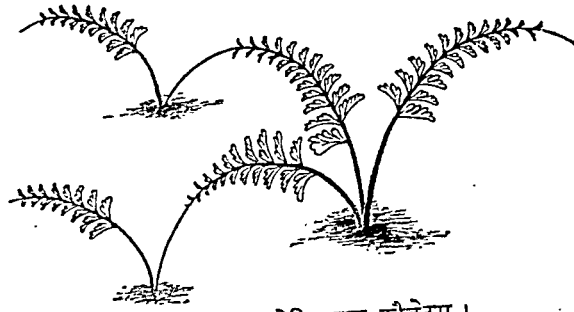
चित्र ४७१—ऐडिएन्टम कौडेटम।

करता है और एक कलिका उत्पन्न करता है। यह कलिका एक नवीन स्वतन्त्र फर्न पौधे के रूप में वृद्धि करता है। किन्तु फर्न साधारणतया अपने प्रकंद (rhizome) के द्वारा वर्धी रूप में प्रजनित होते हैं।

(३) **भूमिगत स्तम्भ** (Underground Stems)—अनेक पुष्पी पादप प्रकंद, कंद, बल्ब और घनकंद के साधन द्वारा अपना प्रजनन करते हैं। इन रूपान्तरित स्तम्भों पर नई कलिकायें उत्पन्न होती हैं जो क्रमशः नवीन पौधों के रूप में वृद्धि करती हैं। इसके साधारण उदाहरण अदरक (ginger), आलू प्याज, और केशर (saffron) हैं।

(४) **अधःवायवीय स्तम्भ** (Sub-aerial Stems)—भूप्रसारी, विरोहक,
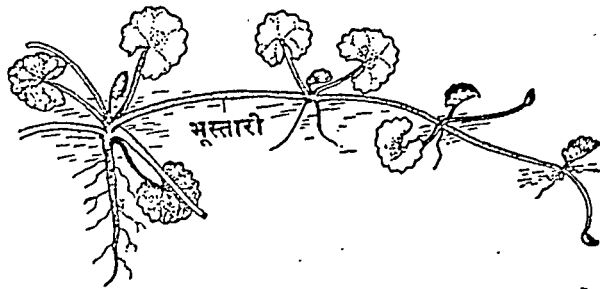
चित्र ४७२—ब्राह्मी का भूस्तारी वर्धी प्रचारण प्रदर्शित करते हुये।

भूस्तारिका और भूस्तारी भी वर्धी प्रचारण के लिये खट्टी पत्ती (wood sorrel or *Oxalis*; चित्र ७७), ब्राह्मी (*Centella*=*Hydrocotyle*;

देखिये चित्र ४७२), कचालू (*Colocasia*; देखिये चित्र ७८,) पिस्टिआ (*Pistia*; देखिये चित्र ७९) और गुलदाउदी (*Chrysanthemum*; देखिये चित्र ८०) समान पौधों द्वारा प्रयुक्त होते है।

(५) अस्थानिक कलिकायें (Adventitious Buds)—ब्रायोफिलम पिनेटम (*Bryophyllum pinnatum*;; देखिये चित्र ३४) में पर्ण सीमा पर कलिकायें उत्पन्न होती है, जिनमें से प्रत्येक शिरा के सिरे पर होती हैं। ये कलिकायें नवीन पौधों के रूप में बढ़ती हैं। कैलेन्चू (*Kalanchoe*; देखिये चित्र
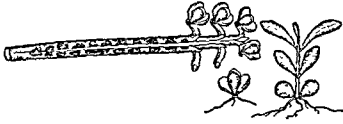
चित्र ४७३—कैलेन्चू का पर्ण अस्थानिक कलिकाओं सहित।

४७३) में पौधे पर ही पत्ती से नवीन बहुसंख्यक कलिका निर्माण होता है। बीगोनिया (*Begonia*; देखिये चित्र ३५) में कुछ अस्थानिक कलिकायें पत्ती के तल पर शिराओं से और वृन्त से भी उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार कुछ पौधों के मूल इसी प्रयोजन के लिये अस्थानिक मूल (radical) कलिकायें उत्पन्न कर सकते है जैसे शकरकन्द (sweet potato), परवल (*Trichosanthes*), बेल (*Aegel*) और इपीकाकुआन्हा (ipecacuanha), आदि में।

(६) पत्रकंद (Bulbils)—ग्लोबा वल्बिफेरा (*Globba bulbifera*; देखें चित्र ४७४) और लहसुन (garlic) में पुष्पक्रम के नीचे स्थित पुष्पों में से कुछ बहुकोशिक कायों के रूप में रूपान्तरित हो जाते हैं जिन्हे पत्रकंद कहते हैं। ये भूमि पर गिर जाते हैं और नवीन पौधो के रूप में बढते हैं। कभी-कभी वे पौधे पर ही बढ़ते पाये जाते हैं। ऐगेवी (*Agave*; चित्र ४७६) और कैसुला की कुछ जातियों में पुष्पक्रम के अनेक पुष्पों के स्थान पर वहीं प्रजनन कार्य प्रजनक कलिकाओं द्वारा, जिन्हे पत्रकन्द कहते हैं, कार्यान्वित होता है। कचालू (*Dioscorea bulbifera*; चित्र ४ ीर

चित्र ४७४—ग्लोबा वल्बिफेरा।

लिलियम बल्बिफेरम (*Lilium bulbiferum*) के पर्ण कक्ष (leaf axil) में भी छोटे या बड़े पत्रकन्द उत्पन्न होते हैं; खट्टी पत्ती (*Oxalis*; चित्र ४७७)
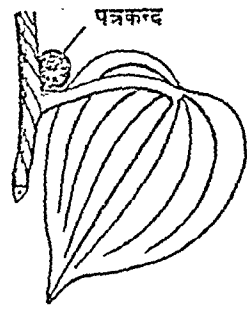
चित्र ४७५

चित्र ४७६
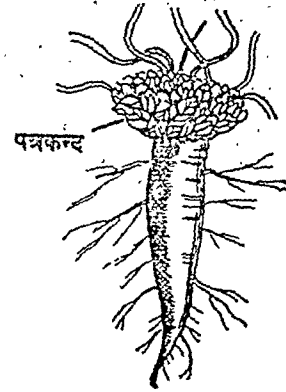
चित्र ४७७

पत्रकन्द। चित्र ४७५—डायोसकोरिया बल्बिफेरा। चित्र ४७६—एगेवी का पत्रकन्द। चित्र ४७७—ऑक्सेलिस।

में फूले हुये कन्दिल मूल के सिरे पर अनेक क्षुद्र कलिकायें (पत्रकंद) उत्पन्न पायी जा सकती हैं। ये कलिकायें आधार में भंगुर (brittle) होने के कारण आसानी से गिर जाती हैं और नवीन पौधे रूप में बढ़ती हैं। अनन्नास (pine-apple) में पुष्पक्रम का अन्त प्रायः एक प्रजनक कलिका रूप में होता है किन्तु अनन्नास के कुछ किस्मों में (चित्र ४७८) पुष्पक्रम अपने आधार पर ऐसी कलिकाओं के एक आवर्त से परिवारित हो जाता है और उनमें से कुछ उसके शीर्षस्थ भी हो जाते हैं।
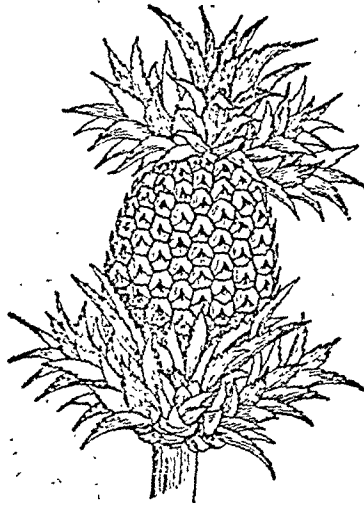
चित्र ४७८—अनन्नास पत्रकन्दों का मुकुट और आवर्त सहित।

(ख) प्रचारण की कृत्रिम विधियां (Artificial Methods of Propagation)—इन विधियां में से किसी में भी मातृ पादप के काय से एक विशेष विधि द्वारा एक अंश पृथक किया जा सकता है और उसे स्वतंत्रतः उगाया जा सकता है। इस प्रकार की अनेक रीतियां हैं।
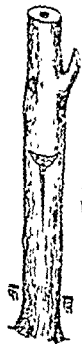
(१) कलम (Cuttings)—(अ) धड़ कलम (stem-cuttings)—गुलाब, ईख, टेपिओका (tapioca), क्रोटन (croton), गुड़हल, सहिजन
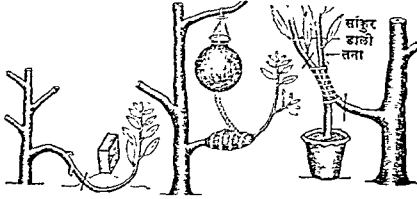
चित्र ४७९ चित्र ४८० चित्र ४८१

प्रचारण की कृत्रिम विधियां। चित्र ४७९—दाब कलम। चित्र ४८०—गूटी। चित्र ४८१—भेंट कलम।

(*Moringa*), दुरैन्टा, कोलियस (चित्र ३२) आदि अनेक पौधे धड़ कलम द्वारा आसानी से लगाये जा सकते हैं। जब ऐसे पौधों की कलम आर्द्र मिट्टी में रक्खी जाती हैं तो उन के आधार से जड़ फूट निकलती हैं और अस्थानिक
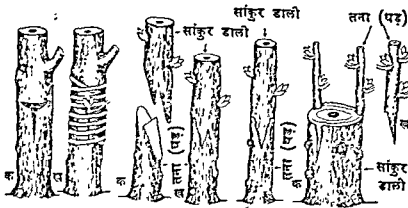
चित्र ४८२ चित्र ४८३ चित्र ४८४ चित्र ४८५

प्रचारण की कृत्रिम विधियां। चित्र ४८२—आन्त्र कलम बांधना। चित्र ४८३—जीभी कलम बांधना। चित्र ४८४—फन्नी कलम बांधना। चित्र ४८५—मुकुट कलम बांधना।

कलिकायें उत्पन्न करती हैं जो वृद्धि करती हैं। (आ) **जड़ कलम** (root-cuttings)—कभी-कभी जड़ कलम जब नम मिट्टी में रक्खी जाती है तो वह अंकुरित हो कर जड़ और प्ररोह उत्पन्न करती है, जैसे नीबू (lemons), गलगल या तुरंज (citron) और इमली (tamarind), आदि में।

(२) **कलम बांधने** या **कलमन** की विभिन्न विधियों से भी फल और फूल के पेड़ों का प्रचारण किया जाता है (देखिये चित्र ४७९–८५)।

२. अलिंगी प्रजनन

यह क्रिया नये पादपों के रूप में स्वयं उत्पन्न होने के लिये जनक पादप द्वारा विशेष कोशिकाओं या अलिंगी प्रजनक इकाइयों रूप में पृथक करने द्वारा घटित होती है। इस क्रिया में दो कोशिकाओं का सायुज्यन नहीं होता जैसा लिंगी प्रजनन में होता है। अलिंगी प्रजनन दो विधियों द्वारा सम्पन्न होता है। विभंजन (fission) द्वारा और बीजाणु निर्माण (spore formation) द्वारा।

(क) **विभंजन द्वारा** (By Fission)—सरलतम अवस्थायों में, जैसे अनेक एक कोशिक शैवालों और कवकों तथा जीवाणुओं में मातृ कोशिका दो नई कोशिकायों के रूप में विभाजित होती है। इस तरह निर्मित नई कोशिकायें मातृ कोशिका के सब पदार्थों से युक्त होती हैं और शीघ्र उसके आकार की हो जाती हैं और नया स्वतन्त्र पादप बन जाता है। मातृ कोशिका के विभाजन द्वारा प्रजनन की यह रीति **विभंजन** कहलाती है।

(ख) **बीजाणु निर्माण द्वारा** (By Spore Formation)—बीजाणु अलिंगी प्रजनक इकाइयां हैं जो स्वतः, अर्थात् दूसरी इकाई से सायुज्यन बिना ही नवीन पादपों को उत्पन्न कर सकते हैं और सदा एक कोशिक तथा आकार में सूक्ष्मदर्शीय (microscopic) होते हैं। वे चर (motile) या अचर (non-motile) हो सकते हैं।

(१) शैवालों और कवकों के चर बीजाणु केवल कोशिका भित्तिहीन जीव द्रव्य की संहति (mass) होते हैं. किन्तु प्रत्येक संहति एक या अधिक कशा रूप (whip-like) संरचना युक्त होते हैं जिन्हे पक्ष्म या रोमक कहते हैं। पक्ष्मी या रोमाभी बीजाणु (ciliated spores) चलजन्यु (zoospores) कहलाते हैं। चलजन्यु जलीय जन्तुकों (animalcules) की भांति जल में अपने पक्ष्मों की सहायता से कुछ देर तक तैरते हैं और तब प्रत्यक्ष नवीन पादपों के रूप में विकसित होते हैं।

(२) अधिकतया स्थलज (terrestrial) कवकों द्वारा वाहित बीजाणु बहुत हल्के होते हैं। ऐसे बीजाणु वायु द्वारा विकिरण के लिये यथेष्ट अनुकूल

होते हैं, तथा साथ ही वायुमंडल को सतत परिवर्तनशील स्थितियों का सामना करने योग्य होते हैं। वे विभिन्न प्रकार के होते हैं और अपनी उत्पत्ति के ढंगों के अनुसार विशेष नाम धारण किये होते हैं।

(३) सत्य बीजाणु सदा बीजाणुजनक (sporophyte) द्वारा धारण किये जाते हैं। मॉसों (moss) और पर्णागों (ferns) में स्पष्ट पीढ़ी एकान्तरण (alternation of generations) होता है और प्रजनन कार्य अलिंगी और लिंगी दोनों विधियों से सचालित होता है। बीजाणुजनक बीजाणुओं द्वारा अलिंगी रीति से प्रजनन करता है जो अकुरण के बाद युग्मक-सू (gametophyte) उत्पन्न करते है, और युग्मक-सू लिंगी रीति से युग्मकों द्वारा जनन करता है जो युग्मकों (नर व मादा) में सायुज्यन द्वारा पुनः बीजाणुजनक को जन्म देते हैं।

२. लिंगी प्रजनन

यह **युग्मक** नाम से ज्ञात दो लिंगी प्रजनक इकाइयों के सायुज्यन (fusion) से निहित होता है। युग्मक (gametes) सदा ही एक कोशिक और आकार में सूक्ष्म-दर्शीय होते हैं। वे बीजाणुओ की भांति स्वतः वृद्धि नहीं कर सकते, परन्तु विपरीत लिंगों के दो युग्मक जब सायुज्यित हो जाते हैं तब वे वृद्धि की शक्ति प्राप्त करते हैं। सायुज्यन का उत्पाद (product) निषेचनज् या युग्मज (zygote) कहलाता है। निषेचनज् एक नये पादप रूप में विकसित होता है। यह ध्यान में रखना चाहिये कि अलिंगी प्रजनन में केवल एक जनक रूप आवश्यक होता है, किन्तु लिंगी प्रजनन मे दो जनक रूप भाग लेते हैं। लिंगी प्रजनन जिस में युग्मकारी (pairing) युग्मक समरूप होते हैं संयुग्मन (conjugation) कहलाता है, जैसे स्पाइरोगाइरा (*Spirogyra*) और म्यूकर (*Mucor*) में, और जिन में युग्मकारी युग्मक असमरूप (dissimilar) होते हैं उसे निषेचन कहते हैं, जैसे उच्चतर शैवालों (higher algae) और कतिपय कवकों (fungi), मॉसों तथा पुष्पी पादपों (flowering plants) में।

युग्मक सदा युग्मक-सू (gametophyte) द्वारा धारण किये जाते हैं। मॉस का हरा पौधा युग्मक-सू है। यह प्रत्यक्षत: युग्मक धारण करता है। टेरीडोफाइटा (Pteridophyta) में युग्मक एक छोटे हरे काय (body) द्वारा धारण किये जाते हैं जिसे सूकायक (prothallus) कहते हैं। इसलिये सूकायक ही युग्मक-सू होता है। दो युग्मकों के उत्पाद को निषेचनज् कहते हैं। निषेचनज् जब दो समरूप युग्मकों के सायुज्यन (fusion) या संयुग्मन (conjugation) का उत्पाद होता है तो उसे **युग्मनज** (zygospore) कहते हैं, जब यह दो असम रूप—नर व मादा, युग्मकों के सायुज्यन (fusion) या निषेचन (fertilization) का उत्पाद होता है तो **शुक्तिांड** (oospore) कहलाता है।

कलिकायें उत्पन्न करती हैं जो वृद्धि करती हैं। (आ) **जड़ कलम** (root-cuttings)—कभी-कभी जड़ कलम जब नम मिट्टी में रक्खी जाती है तो वह अंकुरित हो कर जड़ और प्ररोह उत्पन्न करती है, जैसे नीबू (lemons), गलगल या तुरंज (citron) और इमली (tamarind), आदि में।

(२) **कलम बांधने** या **कलमन** की विभिन्न विधियों से भी फल और फूल के पेड़ों का प्रचारण किया जाता है (देखिये चित्र ४७९–८५)।

२. अलिंगी प्रजनन

यह क्रिया नये पादपों के रूप में स्वयं उत्पन्न होने के लिये जनक पादप द्वारा विशेष कोशिकाओं या अलिंगी प्रजनक इकाइयों रूप में पृथक करने द्वारा घटित होती है। इस क्रिया में दो कोशिकाओं का सायुज्यन नहीं होता जैसा लिंगी प्रजनन में होता है। अलिंगी प्रजनन दो विधियों द्वारा सम्पन्न होता है। विभंजन (fission) द्वारा और बीजाणु निर्माण (spore formation) द्वारा।

(क) **विभंजन द्वारा** (By Fission)—सरलतम अवस्थायों में, जैसे अनेक एक कोशिक शैवालों और कवकों तथा जीवाणुओं में मातृ कोशिका दो नई कोशिकायों के रूप में विभाजित होती है। इस तरह निर्मित नई कोशिकायें मातृ कोशिका के सब पदार्थों से युक्त होती हैं और शीघ्र उसके आकार की हो जाती हैं और नया स्वतन्त्र पादप बन जाता है। मातृ कोशिका के विभाजन द्वारा प्रजनन की यह रीति **विभंजन** कहलाती है।

(ख) **बीजाणु निर्माण द्वारा** (By Spore Formation)—बीजाणु अलिंगी प्रजनक इकाइयां हैं जो स्वतः, अर्थात् दूसरी इकाई से सायुज्यन बिना ही नवीन पादपों को उत्पन्न कर सकते हैं और सदा एक कोशिक तथा आकार में सूक्ष्मदर्शीय (microscopic) होते हैं। वे चर (motile) या अचर (non-motile) हो सकते हैं।

(१) शैवालों और कवकों के चर बीजाणु केवल कोशिका भित्तिहीन जीव द्रव्य की संहति (mass) होते हैं, किन्तु प्रत्येक संहति एक या अधिक कशा रूप (whip-like) संरचना युक्त होते हैं जिन्हे पक्ष्म या रोमक कहते हैं। पक्ष्मी या रोमाभी बीजाणु (ciliated spores) चलजन्यु (zoospores) कहलाते हैं। चलजन्यु जलीय जन्तुकों (animalcules) की भांति जल में अपने पक्ष्मों की सहायता से कुछ देर तक तैरते हैं और तब प्रत्यक्ष नवीन पादपों के रूप में विकसित होते हैं।

(२) अधिकतया स्थलज (terrestrial) कवकों द्वारा वाहित बीजाणु बहुत हल्के होते हैं। ऐसे बीजाणु वायु द्वारा विकिरण के लिये यथेष्ट अनुकूल

(form) और संरचना का सबंध है उस पर ताप का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कुछ परिस्थितियों में पौधे के कुछ अंग ऊष्माभिवर्ती (thermotropic) होते हैं। उदाहरणार्थ पुष्पों और रन्ध्रों के खुलने और बन्द होने और रात में पत्तियों के लटक पड़ने की क्रिया का कारण ताप है। अनेक अवस्थाओं में फलों के स्फुटन में ताप सहायक होता है और इस कारण बीजों का विकिरण घटित होता है। साधारणतया पौधों के लिये २०° सें० से लेकर ४०° सें० तक का ताप रुचिकर होता है। जल से पूर्ण क्रियाशील ऊतकों की ताप की पराकाष्ठाओं (extremes) को सहन करने की शक्ति शुष्क बीजों तथा बीजाणुओं से बहुत न्यूनतर होती है। अधिकांश पुष्पी पादप ०° सें० से निम्न और ४५° सें० से ऊपर के ताप पर मृत हो जाते हैं, जब कि बीज इस सीमा से बहुत परे के ताप पर अक्षत बने रहते हैं। हिमांक या तुषार (frost) पौधों को मृत कर देता है, किन्तु उच्च तुंगता (altitudes) पर, जहां प्रायः तुषार पात होता रहता है वहां पौधे प्रायः प्रतिरोधी (resistant) हो जाते हैं। पादप भूगोल (plant geography) पर ताप का विशेष प्रभाव होता है। उष्ण कटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय, समशीतोष्ण कटिबंधीय, ध्रुवीय और आल्पीय क्षेत्रों के पौधों में यथेष्ट विभिन्नता पाई जाती है।

(२) प्रकाश—क्रियात्मकतया (physiologically) प्रकाश बहुत महत्वपूर्ण कारक है। यह पर्ण हरिम की रचना और कार्बन स्वीकरण (carbon assimilation) के लिये उत्तरदायी है। यह वाष्पोत्सर्जन (transpiration) को त्वरित (accelerate) करता है। यद्यपि तीव्र प्रकाश वृद्धि का अवरोध करता है, तथापि यह पौधों पर बल्य (tonic) प्रभाव डालता है। प्रकाश कुंचन प्रेरण (photonasty) और प्रकाशाभिवर्तन (phototropism) गमन गतियों को प्रकाश प्रेरित करता है। दिन और रात की आपेक्षिक अवधि का उल्लेखनीय प्रभाव पुष्पों के विकास पर पड़ता है। पौधों के सब अंगों की अपेक्षा पत्तियां प्रकाश के प्रभावाधीन सब से अधिक रूपान्तर उपस्थित करती हैं। छायादार स्थानों में उत्पन्न होने वाले पौधों, जिन्हें छायोद्भिज (sciophytes) कहते हैं प्रायः लम्बे पर्ण वाले होते हैं जो पतले बयन (texture) की होती हैं और स्तंभ पर दूर-दूर स्थित रहती हैं। स्तंभ लम्बा होता है जिसमें लम्बे पर्व होते हैं; स्तंभ और पत्तियां दोनों ही अरो-मिल होती हैं; लम्ब ऊतक क्षीणतः विकसित होता है; पत्ती अधिकांशतः या पूर्ण स्पंजी ऊतक की होती है; बाह्यत्वचा में प्रायः पर्णहरिम अंतर्विष्ट होते हैं और बाह्यचर्म पतला होता है। रंध्र दोनों तलों पर हो सकते हैं। साधारण उदाहरण बेगोनिया, सूरन कुल के पौधे (aroids), खट्टी पत्ती, पर्णांग,

मॉस और लिवरवर्ट्स (liverworts)। इसके विपरीत वे पौधे जो केवल प्रकाश में ही उत्पन्न हो, सकते हैं, जिन्हें आतपोद्भिद (heliophytes) कहते हैं, छोटी पत्तियों वाले होते हैं जो स्थूलतर और स्तंभ पर सघन उत्पन्न होती है; स्तंभ स्थूलतर तथा क्षुद्र पर्वों युक्त होता है; स्तंभ और कभी-कभी पत्तियों भी बहुत रोयेंदार होती हैं; लंब ऊतक यथेष्ट विकसित होता है; बाह्यत्वचा में स्थूल बाह्यचर्म होता है किन्तु पर्ण हरिम नहीं होता; रन्ध्र निचले तल पर होते हैं और प्रायः निमज्जित (sunken) या अधिवारित (occluded) होते हैं; जलीय ऊतक (aqueous tissue) प्रायः विद्यमान रहता है। अधिकांश स्थूल पर्ण वाले पौधे आतपोद्भिद होते हैं।

(३) जल—यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक है। यह पौधों के अनेक संरचनात्मक रूपान्तरों के लिये उत्तरदायी हैं। जल पौधे के समस्त जीव कार्यों के लिये अपरिहार्य (indispensible) है। जीवद्रव्य जल से संतृप्त होता है, और हम देखते हैं कि सक्रिय ऊतकों के सम्पूर्ण भार का ९०% से अधिक जल होता है। स्थलज पौधों के लिये जल का स्रोत वर्षा है। पौधों के भौगोलिक वितरण पर वर्षा का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। वर्षा के जल की प्राप्यता मिट्टी की जल प्रतिवारण शक्ति तथा प्रायः स्वयं पौधों पर ही निर्भर करती हैं। भूमि की शीत अवस्था या उसमें लवण की बहुप्रचुरता के कारण भूमि भौतिकतया शुष्क (physically dry) या कभी-कभी क्रियात्मक शुष्क (physiologically dry) हो सकती है। इस संबंध में स्थलाकृतिक (topographical) कारक भी बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। खासी पहाड़ियों पर चेरापूंजी, जो ४५० इंच वार्षिक वर्षा के कारण संसार में सबसे अधिक वर्षा का स्थान हैं, अत्यंत हरी भरी वनस्पति का स्थान है, किन्तु राजपूताना अत्यंत न्यून वर्षा या वर्षा के पूर्ण अभाव का स्थान होने से अत्यंत शुष्क है। यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि प्राप्य जल की प्रचुरता या दुर्लभता पौधों के कुछ स्पष्ट लक्षित उल्लक्षणों के अतिरिक्त पौधों का जीवन चक्र (life-cycle), वृद्धि की अवधि और प्रजनन का समय निर्धारित करती है। दो चरम सीमायें (extremes) मरुद्भिद (xerophytes) और जलोद्भिद् (hydrophytes) हैं।

(४) पवन—वनस्पति (vegetation) पर पवन की प्रायः नाशकारी क्रिया होती हैं। यह वाष्पोत्सर्जन को बढ़ाता है; बहुत प्रबल, शुष्क पवन पौधों, विशेषतया तरुण नवोद्भिजों (seedling) के लिये प्रायः घातक होता है। वनों में यह देखा गया है कि कुछ पौधे अन्य पौधों की अपेक्षा पवन के प्रभाव को अच्छी तरह प्रतिरोधित कर सकते हैं। समुद्र तट पर नारियल पवन के

प्रबल झोंकों के थपेड़ में रहता है। यह पादप उनका इस कारण सामना कर लेता है कि इसकी पत्तियां दृढ़ मध्यशिरा के साथ संकीर्ण खंडों में कटी होती हैं; बाह्यत्वचा भी बहुत स्थूल होता है। बीजों और फलों, विशेषतया कुछ प्रकार उपांगों (appendages) युक्त वाले, के विकिरण में पवन उपयोगी होता है। मरुस्थल में कुछ ऐसी स्पीशीज होती हैं जो, वायु शुष्क होने पर, गेंद रूप में वेल्लित (roll up) हो जाती हैं, और पवन द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को परिवाहित होती हैं। जब अवस्थायें अनुकूल होती हैं तो वे जड़ उत्पन्न करती हैं और वृद्धि करती हैं।

(ख) भूमि संबंधी कारक (Edaphic Factors)—मिट्टियाँ (Soils) देखिये पृष्ठ २८२–२८६।

अध्याय २

पारिस्थितिक वर्ग (ECOLOGICAL GROUPS)

यद्यपि पौधे कभी-कभी एकाकिन (isolated) इकाइयों के रूप में पाये जाते हैं, तथापि अधिकतया हम देखते हैं कि वे एक ही पर्यावरण के अनुकूल बन जाते हैं और वर्गों रूप में परस्पर सहित (associated) होते हैं। वर्गों में विभिन्न कुलों (families) से सम्बन्ध रखने वाली विभिन्न स्पीशीज अन्तर्विष्ट हो सकती हैं और वे आकृति, आकार, रूप और संबंध में विभिन्न हो सकती हैं किन्तु वे मिट्टी, आर्द्रता, ताप और प्रकाश की समान स्थितियों में रहती हैं। साधारण वर्गों में से कुछ का वर्णन निम्न है।

(१) जलोद्भिद (Hydrophytes)—जलोद्भिद वे पौधे हैं जो जल में या बहुत आर्द्र स्थानों में उत्पन्न होते हैं। वे जल निमग्न या आंशिक जलनिमग्न या उभयचर (amphibious) हो सकते हैं। उनके संरचनात्मक अनुकूलन मुख्यतः जल की उच्चमात्रा और ऑक्सीजन की न्यून प्रदायता के कारण हैं। जलोद्भिदों में दिखाई पड़ने वाले अनुकूलन निम्न हैं।

अनुकूलन (Adaptations)—जलीय उद्भिदों के मुख्य लक्षण संरक्षी ऊतक (यहां पर बाह्यत्वचा) का उपयोग अवशोषण के लिये होता है, सुरक्षण के लिये नहीं होता) आधार ऊतक (दृढ़ोतक का अभाव), संवा[illegible]नक, (वाहिनी ऊतक का न्यूनतम विकास), और अवशोषक ऊतक (मूल [illegible] (anchors) का कार्य करते हैं और मूलरोमों का अभाव होता है।

होता है, और आन्तरिक ऊतकों के वायु-संचारण के लिये वातावकाशों का विशेष विकास होता है।

जलोद्भिदों में मूल तंत्र का क्षीण विकास रहता है और मूल रोम तथा मूल छद का अभाव होता है। कुछ प्लवमान जलोद्भिदों, जैसे ब्लैडरवर्ट या यूट्रिक्यूलेरिया और हार्नवर्ट या सिरैटोफिलम (*Ceratophyllum*) में मूल का नितान्त अभाव होता है। जलनिमग्न पौधों में जैसे वैलिसनेरिया (*Vallisneria*), हाइड्रिला (*Hydrilla*), नैयास (*Naias*) इत्यादि में पानी, विलीन खनिज लवण और गैसें उनके पूर्ण तल द्वारा अवशोषित होती हैं। पिस्टिआ (*Pistia*), वाटर हाइसिन्थ, लेम्ना (*Lemna*; चित्र २३), आदि में मूल छद उत्पन्न नहीं होते, किन्तु इसके स्थान पर एक समवृति संरचना निर्मित होती है जिसे मूल गोह (root pocket) कहते हैं।

स्तम्भ के अंतर्गत और पत्तियों में भी बहुसंख्यक वातावकाश विकसित होने से और उनमें गैस भरे होने से स्तम्भ मृदु और न्यूनाधिकतया स्पंजी होता है। एक ओर तो ये वातावकाश पौधों को प्लवन के लिये उत्प्लावकता (buoyancy) प्रदान करते हैं और दूसरी ओर वे हवा (आक्सीजन और कार्बन डाइआक्साइड) संचित रखने का कार्य करते हैं। श्वसन में जो कार्बन डाइआक्साइड निकसित होती है इन वातावकाशों में प्रकाश-संश्लेषण के लिये संचित रहती है और फिर दिन को प्रकाश-संश्लेषण में जो आक्सीजन निकसित होती है उनमें श्वसन के लिये संचित रहती है। यांत्रिक और संवाहन ऊतकों का न्यूनतम विकास हुआ रहता है। दारु केवल कुछ तत्वों तक लघुकृत रहता है, तथा फ्लोएम थोड़ी सी पतली चालनी नलिकाओं के रूप में लघुकृत रहता है, वाह्यत्वचा पर वाह्यचर्म नहीं रहता किन्तु उसमें कुछ हरिम कणक रहते हैं। कुछ स्थितियों में स्तम्भ और पर्ण वृन्त पर जल जंतुओं के प्रहार से रक्षा के लिये शिताग्र और कंटक होते हैं।

जलीय पौधे अधोस्तर (substratum) में आबद्ध (fixed) हो सकते हैं या वे स्वतंत्ररूपेण प्लवमान रह सकते हैं। इसी प्रकार पत्तियां जलनिमग्न या प्लवमान रह सकती हैं। जलनिमग्न पत्तियां पतली होती हैं और पानी के अन्दर धीमे (subdued) प्रकाश के कारण दीर्घीकृत हो जाती हैं; वे प्रायः पट्टिकाकार सूक्ष्मतः विच्छेदित या रेखीय होती हैं। वाह्यचर्म लुप्त होता है और वैसे ही प्रायः रन्ध्र भी लुप्त होते हैं; यदि रन्ध्र विद्यमान भी होते हैं तो क्रियाहीन होते हैं। गैसों का विनिमय और जल तथा खनिज लवणों का अवशोषण पत्ती के वाह्यचर्म द्वारा कार्यान्वित होता है। पर्ण मध्य पतला होता है और लंब ऊतक और स्पंजी ऊतक रूप में विभिन्नित नहीं होता और वाह्यचर्म में पानी के अन्दर क्षीण प्रकाश के उपयोग के लिये हरिमकणक विद्यमान होते हैं। प्लवमान

पत्तियां यथेष्ट विकसित होती हैं और उनमें स्थूल बाह्यत्वचा होती है और ऊर्ध्वतल पर बहुसंख्यक रन्ध्र होते हैं; निम्नतल पर या तो रन्ध्र होते ही नहीं या होते हैं तो क्रियाहीन होते हैं। गैसों का विनिमय ऊर्ध्व तल द्वारा कार्यान्वित होता है और जल का अवशोषण निम्न तल द्वारा होता है। वायु संचारण और आवश्यक उत्प्लाविकता के लिये उनमें अनेक वातावकाश विकसित रहते हैं। द्विचर पादप (amphibious plants) एकान्तरित आप्लावन (flooding) और शोषण (drying) के अधीनित होते हैं। वे प्रायः पानी के तट पर निचली पत्तियां जलनिमग्न और ऊपरी पत्तियां पानी से ऊपर रख कर पैदा होते हैं। ऐसे अनेक पौधे प्रायः विषम पर्णता (heterophylly) प्रकट करते हैं अर्थात् एक ही पौधे पर विभिन्न प्रकार की पत्तियां धारण करते हैं।

कुछ साधारण जलीय पौधे--(क) जलनिमग्न पौधे (Submerged plants)—वैलिसनरिया, हाइड्रिला, नैयास, आदि। (ख) प्लवमान पौधे (Floating plants)—वोल्फ़ीया, सैल्विनिया, हाइड्रोकेरिस, यूट्रिक्यूलेरिया, लेम्ना, सिरैटोफिलम, पिस्टिआ, सिंघाडा इत्यादि। (ग) प्लवमान पत्तियों वाले पौधे—कुमुदिनी या निम्फिया (*Nymphaea*), कमल (*Nelumbium*), तालमखाना (*Euryale*), लिमनैनथिमम (*Limnanthemum*), आदि। (घ) विषम पर्णता दिखाने वाले द्विचर पादप (Amphibious plants showing heterophylly)—एलिस्मा प्लैंटेगो, सेजीटेरिया, लिम्नोफिला हेटरोफिला, कार्डेनथेरा ट्राइफ्लोरा (*Cardenthera triflora*), इत्यादि।

(२) मरुद्भिद (Xerophytes)—ये ऐसे पौधे हैं जो मरुभूमि या बहुत शुष्क स्थानों में उत्पन्न होते हैं; वे शुष्कता की दीर्घित अवधि को अक्षत रूप में सहन कर सकते हैं। इस उद्देश्य के लिये उन में कुछ विचित्र अनुकूलन होते हैं। मरुद्भिद यथार्थत. शुष्कता-रोधी पौधे हैं। यह बात नहीं है कि वे मरुभूमि की अवस्था में पनपते हैं। उनका शुष्कता प्रतिरोधी गुण शारीरीय लक्षणों के कारण नहीं होता किन्तु प्रायः क्षतिहीन रूप में उच्च मात्रा की शुष्कता को सहन करने के लिये जीवद्रव्य की क्षमता के कारण होता है। मरुभूमि या बहुत शुष्क क्षेत्र के प्रमुख कारक ये हैं: मिट्टी में आर्द्रता की न्यूनता और अधिकतम वायुमंडलीय अवस्थायें जैसे तीव्र प्रकाश, उच्च ताप, वेगगामी पवन और वायु की शुष्कता (aridity)। ऐसा होने के कारण मरुद्भिदीय पौधों को जल के अतिशय वाष्पन के विरुद्ध रक्षा का प्रबन्ध रखना पड़ता है। शीत क्षेत्रों, जैसे समशीतोष्ण और उपध्रुवीय कटिबंधों और उच्च पुंगता पर्वतीय क्षेत्र, रेतीले क्षेत्र, विरल वर्षा के शुष्क स्थान तथा लवणीय दलदलों (marshes) में उत्पन्न होने वाले पौधों में भी मरुद्भिदी लक्षण पाये जाते हैं।

अनुकूलन (Adaptations)—पौधे एक लम्बा मूसला जड़ उत्पन्न करते हैं जो आर्द्रता की खोज में अवभूमि (sub-soil) में गहराई तक जाते हैं; अनेक मरुभूमीय पौधे जो अल्प अवधि तक जीवित रहते हैं एक धरातलीय (superficial) मूलतंत्र उत्पन्न करते हैं जो वर्षा की किसी झड़ी के बाद तलीय भूमि से आर्द्रता अवशोषण करते हैं। मूलों द्वारा अवशोषित जल को धारण किये रहने के लिये कुछ पौधों की पत्तियों और स्तम्भ बहुत स्थूल और मांसल बन जाते हैं, जैसे भारतीय एलो (Indian aloe) और अमेरिकन एलो (American aloe) में, कभी-कभी मूल भी मांसल बन जाते हैं, जैसे शतावरी (*Asparagus*) में। जल के संग्रह के लिये उनमें जलीय ऊतक विकसित होता है; उन में स्थित क्लेद (mucilage) की प्रचुरता से और भी सुविधाजनक अवस्था हो जाती है। इसी उद्देश्य के लिये कभी-कभी बहुल बाह्यत्वचा उत्पन्न हो जाती है, जैसे कनेर (*Nerium*) में। जल और खाद्य का संग्रह तथा साथ ही पत्तियों का कार्य सम्पादन करने के लिये स्तंभ का पर्ण-कार्यस्तंभ (phylloclade) रूप में रूपान्तर अनेक मरुभूमीय पौधों का लक्षण है, जैसे कैक्टस (चित्र ८७)।

पत्तियों तथा स्तंभों में स्थूल बाह्यचर्म होता है, वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल की हानि रोकने के लिये बाह्यत्वचीय कोशिकायें प्रायः दृढ़तया क्यूटिनीभूत हो जाती हैं। अनेक स्थितियों में स्तंभ आकार में लघुकृत हो जाता है और उस में कंटक उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे यूफोर्बिया स्पाइनोजा (*Euphorbia spinosa*) में। पत्तियां भी अपना वाष्पन तल न्यून करने के लिये आकार में लघुकृत हो जाती हैं। इस प्रकार वे क्षुद्र खण्डों में विभाजित हो सकती हैं, जैसे बबूल (*Acacia*) में, या कंटक रूप में रूपान्तरित हो सकती हैं, जैसे अनेक कैक्टसों (cacti) और यूफोर्बिया (*Euphorbia*) में, या कभी-कभी केवल क्षुद्र शल्कों रूप में लघुकृत हो सकती हैं, जैसे टमेरिक्स (*Tamarix*) और शतावरी (*Asparagus*) में। कुछ पौधों में जैसे नैफेलियम (*Gnaphalium*) और ऐरुआ (*Aerua*) में रोमों का एक सघन आलेप (coating) होता है। रन्ध्र अपेक्षाकृत न्यून संख्या में होते हैं—प्रायः प्रति वर्ग सेमी० में १०–१५ होते हैं, और ये प्रसीता में निमग्न रहते हैं और अविवारित (occluded) रहते हैं। मरुद्भिदों में दृढ़ोतक का प्रबल विकास होता है। आस्ट्रेलियन बबूल (Australian *Acacia*) में वाष्पोत्सर्जन को न्यूनतम करने के लिये पत्ती का पर्णायित वृंत (phyllode) में रूपान्तर और तीव्र धूप में उसके सिरे का उदग्र दिशा में घूम जाना विशेषता है (देखिये चित्र १५०)। चरम शुष्कता की अवस्थाओं में अधिकांश मरुद्भिदों

घासों की पत्तियां और अनेक अन्य पौधों की पत्तियां वेल्लित हो जाती हैं जिस से उनका वाष्पन तल यथेष्ट न्यून हो जाता है। ऐसी दशाओं में रंध्र भी बन्द हो जाते हैं।

अनेक मरुद्भिदी शाक भूमि पर भूशायी हो जाते हैं और थोड़ी अवधि में अपना जीवन चक्र समाप्त कर देते हैं, उदाहरणार्थ कटियारी (*Solanum xanthocarpum*), गोखरू (*Tribulus terrestris*) आदि। कुछ स्वभावतः वर्षानुवर्षी होते हैं। अनेक मरुद्भिद कंटकों और शिताग्रों से सज्जित रहते हैं।

कुछ साधारण मरुद्भिदी पौधे (Some Common Xerophytic Plants)—यूफ़ोर्बिया की अनेक स्पीशीज़, जैसे थोर या यूफ़ोर्बिया रौयलिआना (*Euphorbia royleana*), सिज या यूफोर्बिया नेरीफ़ोलिया (*Euphorbia neriifolia*) आदि, अनेक कैक्टस, जैसे नागफनी (*Opuntia*), सीरियस (*Cereus*), आदि; यक्का (*Yucca*), भारतीय एलो या कुमारी (Indian aloe), रामबांस या एगेवी (*Agave*), वन झाऊ या टैमेरिक्स (*Tamarix*), चौलाई (*Amaranthus*), कटियारी (*Solanum xanthocarpum*), गोखरू, (*Tribulus terrestris*), इत्यादि।

३. लवणोद्भिद (Halophytes)

ये वे पौधे हैं जो खारी मिट्टी या पानी में उत्पन्न होते हैं जहां पर मिट्टी में लवण का बाहुल्य होता है; इसलिये लवणोद्भिद कुछ विशेष संलक्षण प्रकट करते हैं। अधिकांश लवणोद्भिदों में सरस पत्तियां होती हैं; कुछ में सरस स्तंभ भी होते हैं। पत्तियां कंटकों के रूप में रूपान्तरित या कंटकों से युक्त हो सकती हैं। लवणोद्भिदों के प्रारूपीय उदाहरण सुइडा मैरिटीमा (*Suaeda maritima*), साल्सोला (*Salsola*), ऐकैन्थस इलिसीफोलियस (*Acanthus ilicifolius*), बथुआ (*Chenopodium*), पोई या बासेला (*Basella*) और ऐस्कलेपिएडेसी कुल की अनेक स्पीशीज़ हैं।

समुद्र तट के निकट दलदल वाले स्थानों, जैसे सुन्दरबन में, एक विशेष प्रकार की वनस्पति होती है जिसे कच्छ वनस्पति (mangrove) कहते हैं, कच्छ वनस्पति वाले पौधे मुख्य स्तंभ और शाखाओं से बहुसंख्यक जटा मूल (stilt roots) उत्पन्न करते हैं। अनेक दशाओं में, इनके अतिरिक्त, विशेष मूल, जिन्हें श्वसन मूल (respiratory roots or pneumatophores) कहते हैं, बहुसंख्या में उत्पन्न होते हैं। वे भूमिगत मूल से विकसित होते हैं और जल की सतह के ऊपर निकल कर वृक्ष के तने के चारों ओर उतनी ही संख्या के शंक्वाकार शूकिया (conical spikes) समान

प्रतीत होते हैं। कुछ स्थानों में वे इतने सघन होते हैं कि उनके मध्य से मार्ग मिलना कठिन होता हैं। इनमें ऊर्ध्व भाग में बहुसंख्यक छिद्र या श्वसन अंतराल होते हैं जिनके द्वारा श्वसन के लिये गैसों का विनिमय होता हैं। कच्छ वनस्पति वाली स्पीशीज अंकुरण की एक विशेष विधि भी प्रदर्शित करते हैं।

चित्र ४८६—कच्छ वनस्पति के पौधे (क) श्वसन के लिये श्वसन मूल, (ख) आलंब के लिये जटामूल और उत्तरजीविता के लिये जरायुज अंकुरण प्रदर्शित करते हुये।

जब फल वृक्ष पर ही रहता है तभी उस के अन्दर बीज अंकुरित होता है और जनक वृक्ष द्वारा ही उसका पोषण होता रहता है। किसी प्रकार के विराम

काल बिना ही अंकुरण प्रायः तत्काल होता है, मूलांकुर कुछ सीमा तक दीर्घीकृत होता है और निम्न भाग में फूलता है, अन्त में नवोद्भिज वृक्ष से पृथक हो जाता है और उदग्रतः नीचे गिरता है। मूलाकुर नर्म पंक (mud) में दबता
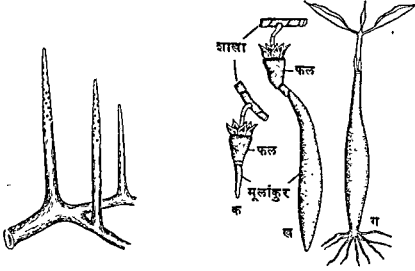
चित्र ४८७

चित्र ४८८

चित्र ४८७—भूमिगत मूल से ऊर्ध्वाधर दिशा में निकलते हुये श्वसन मूल।
चित्र ४८८—जरायुज अंकुरण।

है और प्रांकुर और बीजपत्रों को लवणीय जल से स्पष्टतः ऊपर रखता है। उपयुक्त लांगलन (anchorage) के लिये पार्श्विक मूल शीघ्र निर्मित होते हैं। इस से यह लाभ होता है कि ज्वारभाटीय तरंगों द्वारा फल अपवाहित नहीं हो सकता। पौधे में संबद्ध ही रहने पर फल के अन्दर बीज की अंकुरण विधि को जरायुजता (vivipary) कहते हैं। प्रारूपिक कच्छ वनस्पति वाले पौधे राइज़ोफोरा (*Rhizophora*), सिरियोप्स (*Ceriops*), सानेरेशिया (*Sonneratia*) आदि हैं।

भाग ५

क्रिप्टोगमस् (CRYPTOGAMS)

अध्याय १

विभाग और साधारण विवेचन

क्रिप्टोगमस वे पौधे हैं जिनमें प्रत्यक्षतः पुष्प नहीं होते, अतएव वे साधारणतया पुष्पहीन (flowerless) पौधे कहलाते हैं। उनको बीज-हीन (seedless) कहना अधिक उपयुक्त है क्यों कि वे कभी बीज धारण नहीं करते। ऐसे पौधों में प्रजनन विधि बहुत अधिक दिनों तक अज्ञात रही और इसी कारण उनका नाम क्रिप्टोगमस (क्रिप्टो—गुप्त; गैमोज–विवाह) पड़ा। वे स्थूलतः निम्न प्रकार से वर्गीकृत हैं:

(१) **थैलोफाइटा** (Thallophyta)—इनमें पादप-काय सूकाय (thallus) होता है, अर्थात् स्तम्भ और पर्ण रूप में भिन्नित नहीं होता। इनमें ये सन्निविष्ट हैं: (१) **शैवाल** (Algae)—अर्थात् थैलोफ़ाइटा जिनमें पर्णहरिम और कभी-कभी अन्य रंग द्रव्य (pigments) भी होते हैं और (२) **कवक** (Fungi)—अर्थात् पर्णहरिम-हीन थैलोफ़ाइटा।

(२) **ब्रायोफाइटा** (Bryophyta)—इनमें पादप काय सूकायाभ (thalloid) या पर्णाभ (leafy) होता है; नियमित पीढ़ी एकान्तरण (alternation of generations) होता है; बीजाणुजनक (sporophyte) सदा युग्मक-सू या गैमीटोफाइट (gametophyte) के साथ एक आश्रित काय रूप में संबद्ध रहता है। इन में ये सन्निविष्ट हैं: **लिवरवर्ट्स** (liverworts) अर्थात् अधिकांशत सूकायाभ (thalloid) पादप काय युक्त ब्रायोफ़ाइटा और **मॉस** (mosses) अर्थात् पर्णाभ स्तंभ युक्त ब्रायोफ़ाइटा।

(३) **टेरीडोफाइटा** (Pteridophyta)—पादप काय स्तंभ, पत्ती और मूल रूप में विभिन्नित रहता है; नियमित पीढ़ी एकान्तरण होता है; बीजाणु जनक और युग्मक-सू एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं; मुख्य पादप सदा बीजाणु जनक होता है; वाहिनी ऊतक सुसंवर्धित होते हैं और इस कारण इनको वाहिनी क्रिप्टोगमस (vascular cryptogams) भी कहते हैं। इनमें पर्णाग (ferns) और उनके समित्र (allies) सन्निविष्ट होते हैं।

थैलोफ़ाइटा आद्य या पूर्वक (primitive) पादप हैं और निम्न क्रिप्टोगमस माने जाते हैं, किन्तु ब्रायोफाइटा और टेरीडोफाइटा प्रगत (advanced) पादप हैं और उच्च क्रिप्टोगमस माने जाते हैं। पर्णाग (ferns) से ऊपर

के पादपों में सुसंवर्धित वाहिनी तंत्र (vascular system) होता है ; इसलिये ऐसे पादप अन्यथा वाहिनी पादप (vascular plants) कहलाते हैं।

प्रजनन—प्रजनन की तीन विधियों अर्थात् वर्धी, अलिंगी और लैंगिक में कोई पौधा एक या अधिक का अनुसरण कर सकता है। वर्धी प्रजनन साधारणतया कोशिका भाजन या सविभजन (fragmentation) द्वारा निष्पादित होता है। अलिंगी प्रजनन विभंजन (fission) या पौधों के विभिन्न समूहों में विभिन्न प्रकार के बीजाणुओं द्वारा निष्पादित होता है। लिंगी प्रजनन दो युग्मकों के सायुज्यन द्वारा निष्पादित होता है, और लिंगिता (sexuality) की मात्रा अनुक्रमिक अवस्थाओं में समयुग्मन (isogamy) से असम युग्मन (anisogamy) और वहां से विलिंगता या विषम लिंगता (oogamy) में गमन करती है।

पीढ़ी एकान्तरण (Alternation of Generations)—अनेक पौधों (उच्चतर शैवालों, लिवरवर्ट्स, मॉस, पर्णांग और उनके समित्र) का जीवन वृत दो अवस्थाओं या पीढ़ियों में एक दूसरे के साथ एकान्तरित हो कर पूर्ण होता है। ये दोनों पीढ़ियां केवल अपने आकारिकीय लक्षणों में ही विभिन्न नहीं होती बल्कि अपनी प्रजनन विधियों में भी, विभिन्न होती हैं। एक पीढ़ी अलिंगी विधि से अर्थात् बीजाणुओं द्वारा प्रजनन करती है और दूसरी लिंगी विधि अर्थात् युग्मकों द्वारा। इसलिये पहली बीजाणु जनकीय या अलिंगी (sporophytic or asexual) पीढ़ी कहलाती है और पश्चादुक्त सूयिक या लैंगिक (gametophytic or sexual) पीढ़ी कहलाती है। किसी विशेष पौधे के जीवन चक्र या वृत को पूर्ण करने के लिये एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को जन्म देती है। युग्मक-भू बीजाणु जनक को और बीजाणु जनक युग्मक-भू को जन्म देता है, या दूसरे शब्दों में दोनों पीढ़ियां एक दूसरे में एकान्तरण करती हैं। युग्मक-भू का बीजाणु जनक से एकान्तरण और इसकी विलोमतः स्थिति को पीढ़ी एकान्तरण कहते हैं।

पीढ़ी एकान्तरण का कोशिकात्मक साक्ष्य (Cytological Evidence of Alternation of Generations)—अनुक्रमिक पीढ़ियों के मध्य गुणसूत्रों (chromosomes) की संख्या समान रखने के लिये पौधे लैंगिक विधि से (निषेचन) दो युग्मकों के सायुज्यन के फलस्वरूप प्रजनन करने में निषेचनज् (zygote) में द्विगुण गुणसूत्र होने की एक प्रतिलोम अवस्था (counter-stage) अर्थात् अर्धसूत्रण (meiosis) होनी चाहिये जिस से गुणसूत्रों का ह्रास (reduction) हो सके। यह एक स्थापित सत्य है कि युग्मक-भू सदा बीजाणु-जनक की अपेक्षा आधी संख्या के ही गुणसूत्र रखते हैं, या दूसरे शब्दों में,

बीजाणु-जनक द्विगुणित ($2n$ or diploid) गुणसूत्र धारण किये रहता है तो युग्मक-सू अगुणित गुणसूत्र (n or haploid chromosomes) ही धारण किये रहेगा (n गुणसूत्रों की संख्या प्रदर्शित करता है)। प्रजनन के समय बीजाणु-जनक बीजाणु मातृ कोशिका (प्रत्येक में द्विगुणित $2n$ गुणसूत्र होते हैं) धारण किये रहती है। ये अर्ध सूत्रण (meiosis) या ह्रास विभाजन (reduction division) की क्रिया करती है और बीजाणुओं में गुणसूत्र संख्या अर्ध में ह्रासित हो जाती है जिसमें स्पष्टतः n या अगुणित (haploid) गुणसूत्र होते हैं। बीजाणु अंकुरित होता है और युग्मक-सू को जन्म देता है। अतएव बीजाणु युग्मक सूयिक (gametophytic) पीढ़ी के आरंभ का प्रतिनिधित्व करता है। स्पष्टतः n अगुणित गुणसूत्र युक्त युग्मक-सू उचित काल में युग्मक धारण करता है। जब दोनों युग्मक (नर व मादा—प्रत्येक n अगुणित गुणसूत्र युक्त) निषेचनज् उत्पन्न करने के लिये सायुज्यित होते हैं तो गुणसूत्र संख्या द्विगुण हो जाती है, अर्थात् वह $2n$ द्विगुणित हो जाती है। निषेचनज् बीजाणु-जनक रूप में संवर्धित होता है जिसके प्रत्येक कोशिका में द्विगुणित ($2n$) गुणसूत्र होते हैं। अतएव निषेचनज् बीजाणु-जनकीय पीढ़ी के आरंभ का प्रतिनिधित्व करता है जो सीधे बीजाणु मातृ कोशिका तक सतत रहता है।

अतएव हम संक्षेप में कह सकते है कि बीजाणु, युग्मक-सू, लैंगिक अंग, और युग्मक, ये सब जिनमें n गुणसूत्र हों [अर्थात् निषेचन तथा अर्ध सूत्रण (meiosis) के मध्य अन्तर्वेशी अवस्था] युग्मक-सूयिक पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं और निषेचनज्, बीजाणु-जनक, बीजाणुधानी (sporangium) और बीजाणु मातृ कोशिका, ये सब जिनमें $2n$ द्विगुणित गुणसूत्र हों (अर्थात् अर्ध सूत्रण और निषेचन के मध्य की अन्तर्वेशी अवस्था) बीजाणु जनकीय पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। अगुणित या युग्मक-सूयिक पीढ़ी बीजाणु से प्रारम्भ होती है तथा युग्मक में समाप्त होती है। इसके विपरीत $2n$ द्विगुणित या बीजाणु जनकीय पीढ़ी निषेचनज् से प्रारंभ होती है तथा बीजाणु मातृ कोशिका में समाप्त होती है।

उच्च क्रिप्टोगम्स—लिवरवर्ट्स, मॉस, पर्णांग, और उनके समित्रों (allies) में पीढ़ी एकान्तरण बिलकुल नियमित होता है।

अध्याय २
शवाल (ALGAE)

शैवाल और कवक में अन्तर (Differences between Algae and Fungi)—(१) शैवाल हरित थैलोफाइट हैं जिनमें हरा रंग द्रव्य पर्ण हरिम अन्तर्विष्ट रहता है। अनेक शैवालों में हरा रंग अन्य रंगों द्वारा आच्छादित (masked) हो सकता है, किन्तु उन सब मे पर्ण हरिम सदा उपस्थित रहता है। इसके विपरीत कवकों में पर्ण हरिम नही होता। (२) शैवाल स्वजीवी (autotrophic) पौधे हैं, अर्थात् वे अपने अंतर्गत उपस्थित पर्ण हरिम की सहायता से अपना खाद्य स्वय निर्मित करते हैं; इसके विपरीत कवक परजीवी या इतर जीवी (heterotrophic) होते है, अर्थात् उनकी पोषाहार विधि भिन्न होती है, उनको निर्मित खाद्य पदार्थ के प्रदाय पर निर्भर रहना पड़ता है। वे स्वभावतः पराश्रयी या मृतोपजीवी होते हैं। (३) शैवाल का काय सत्य मृदूतकीय ऊतक का बना होता है किन्तु कवक का काय कूट ऊतक या मृदूतकाभ (pseudo-parenchyma) का बना होता है, जो कवक तंतु (hyphae) नामक सूक्ष्म कोमल सूत्रों की अंतर्वयित (interwoven) संहति (mass) होता है। (४) शैवाल की कोशिका भित्ति सत्य सैलूलोज़ से निर्मित होती है किन्तु कवक की कोशिका भित्ति काइटिन (chitin) के सैलूलोज़, कैलोज़, पैक्टोज़ आदि से विभिन्न अनुपातों मे मिश्रित होने से निर्मित होती हैं। (५) शैवाल पानी में या नम अधोस्तर (substratum) में रहते हैं, किन्तु कवक पराश्रयी रूप में दूसरे पौधे पर या मृतोपजीवी रूप में अपक्षयी (decaying) जन्तु या वनस्पति पदार्थ पर रहता है। शैवाल में आरक्षित पदार्थ (reserve material) प्राय: मड होता है किन्तु कवक में यह ग्लाइकोजन (glycogen) या तेल गुलिका (oil globule) होता है।

संरचना मे दोनों ही वर्ग एककोशिक, बहुकोशिक, तन्तुमय (filamentous) या सूकायाभ (thalloid) हो सकते हैं और उनमें प्रजनन कोशिका भाजन द्वारा वर्धी रूप से या मातृ पादप के एक भाग के पृथक्करण द्वारा, या बीजाणुओं द्वारा अलिंगी विधि से, या युग्मकों द्वारा लैंगिक विधि से निष्पन्न हो सकता है।

(१) क्लैमिडोमोनास (*CHLAMYDOMONAS*) (४३ स्पीशीज)

प्राप्ति स्थान (Occurrence)—क्लैमिडोमोनास एक एककोशिक शैवाल है जो तालाबों, खन्दकों, और स्थिर पानी के कुण्डों में पाया जाता है। कुछ स्पीशीज

विभिन्न प्रदेशों में वर्फ में पायी जाती है और रक्त-लाल धब्बे वनाती है जो उनमें लाल रंग द्रव्य के परिवर्धन के कारण होता है।

संरचना—क्लैमिडोमोनास की कोशिकायें एककोशिक होती हैं और वे आकार में अंडाकार या गोलाकार होती हैं तथा उनमें तनु भित्ति होती है। क्लैमिडोमोनास कशाभी शैवालों और उच्चतर शैवालों के मध्यस्थ रूप माना जा सकता है। कोशिका के अग्र भाग की ओर जीवद्रव्य स्वच्छ रहता है। इससे दो पक्ष्म निकलते

चित्र ४९०

क्लैमिडोमोनास। चित्र ४८९—एक प्रौढ़ कोशिका। चित्र ४९०—पैलमेला अवस्था। चित्र ४९१—अलिंगी विधि से निर्मित चार अनुजात कोशिकायें। चित्र ४९२—बाहर निकलने के पश्चात एक अनुजात कोशिका।

हैं और इसमें दो आंकुची रसधानियां (contractile vacuoles) होती हैं जो स्पन्दमान प्रकृति की होती हैं और एकान्तर प्रसार और आकुंचन प्रदर्शित करती हैं। इनका कार्य श्वसन या उत्सर्जन हो सकता है। उसमें एक पार्श्व नारंगी या लाल रंगद्रव्य विन्दु होता है जिसको सामान्यतः दृष्टि विन्दु या

नेत्र विन्दु (eye spot) व
होता है। पश्च भाग में एक
प्रोभूजक होता है। प्रोभूजक
सूक्ष्म मंड कणों से घिरा
होता है। पक्ष्मों के
करती हैं।

अलिंगी प्रजनन—क्लैमिड
है। चल जन्युओं के निर्मा
और अंतर्वस्तु २, ४, ८ या
हैं। प्रत्येक कोशिका वृद्धि
बन जाती है। मातृ कोशि
निकल आते हैं।

पैलमेला अवस्था (P
अनुजात कोशिकायें चल
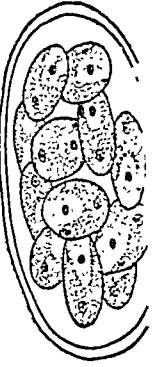
चित्र ४९३
क्लैमिडोमोनास।

असंख्य कोशिकायें बन
मातृ कोशिका की श्लेष
कोशिकायें एक श्लेष्मी
कहलाती है। अनुज
श्लेषी आधार द्रव्य
जाती हैं।

नेत्र विन्दु (eye spot) कहते हैं। यह प्रकाश की तीव्रता के लिये संवेदी होता है। पश्च भाग में एक प्याले के आकार का हरिमकणक होता है जिसमें एक प्रोभूजक होता है। प्रोभूजक में एक केन्द्रीय प्रोटीन काय होता है जो असंख्य सूक्ष्म मंड कणों से घिरा रहता है। कोशिका के लगभग बीच में एक नाभिक होता है। पक्ष्मों के कशाघाती गति के कारण कोशिकायें जल में तेजी से गति करती हैं।

अलिंगी प्रजनन—क्लैमिडोमोनास चल जन्युओं द्वारा अलिंगी प्रजनन करता है। चल जन्युओं के निर्माण में प्रत्येक कोशिका के पक्ष्म सिकोड़ लिये जाते हैं और अंतर्वस्तु २, ४, ८ या कभी-कभी अधिक कोशिकाओं में विभाजित हो जाती हैं। प्रत्येक कोशिका वृद्धि करती है, दो पक्ष्म परिवर्धित करती हैं, और चलजन्यु बन जाती है। मातृ कोशिका की भित्ति विलीन हो जाती है और चल जन्यु बाहर निकल आते हैं।

पैलमेला अवस्था (Palmella Stage)—कुछ विशेष परिस्थितियों में अनुजात कोशिकायें चल जन्यु बनाने के बजाय पुनरावृत्त विभाजन के फलस्वरूप
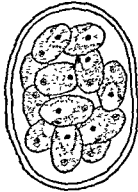
चित्र ४९३ चित्र ४९४
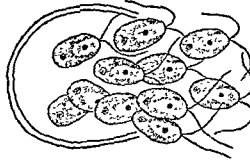
क्लैमिडोमोनास। चित्र ४९३—युग्मक निर्मित। चित्र ४९४—युग्मक बाहर निकलते हुए।

असंख्य कोशिकायें बनाती हैं। उनकी भित्तिया श्लेषीय हो जाती हैं और कोशिकायें मातृ कोशिका को श्लेषीय आवरण द्वारा एक दूसरे से चिपकी रहती हैं। अतः असंख्य कोशिकायें एक श्लेषी आधार द्रव्य में पड़ी रहती हैं। यह पैलमेला अवस्था कहलाती है। अनुकूल परिस्थिति में कोशिकायें पक्ष्म परिवर्धित करती हैं और श्लेषी आधार द्रव्य से बाहर निकल कर तैरने लगती हैं और पुनः चर हो जाती हैं।

विभिन्न प्रदेशों में बर्फ में पायी जाती है और रक्त-लाल धब्बे बनाती है जो उनमें लाल रंग द्रव्य के परिवर्धन के कारण होता है।

संरचना—क्लैमिडोमोनास की कोशिकायें एककोशिक होती हैं और वे आकार में अंडाकार या गोलाकार होती हैं तथा उनमें तनु भित्ति होती है। क्लैमिडोमोनास कशाभी शैवालों और उच्चतर शैवालों के मध्यस्थ रूप माना जा सकता है। कोशिका के अग्र भाग की ओर जीवद्रव्य स्वच्छ रहता है। इससे दो पक्ष्म निकलते
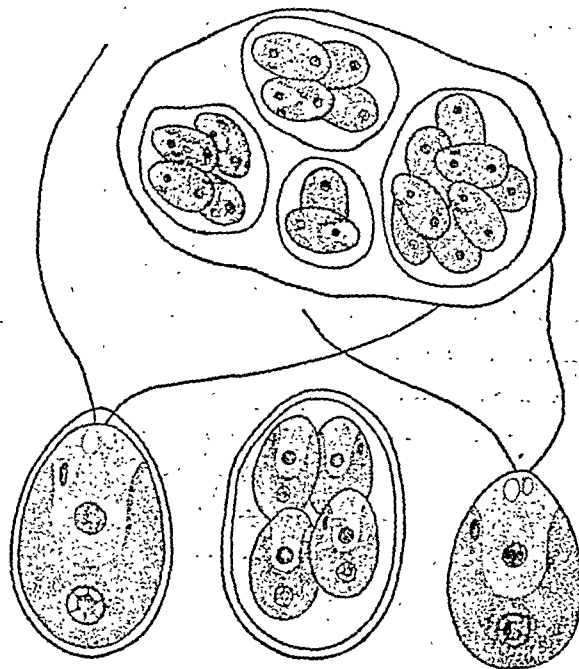
चित्र ४९०

चित्र ४८९ चित्र ४९१ चित्र ४९२

क्लैमिडोमोनास। चित्र ४८९—एक प्रौढ़ कोशिका। चित्र ४९०—पैलमेला अवस्था। चित्र ४९१—अलिंगी विधि से निर्मित चार अनुजात कोशिकायें। चित्र ४९२—बाहर निकलने के पश्चात एक अनुजात कोशिका।

हैं और इसमें दो आंकुची रसधानियां (contractile vacuoles) होती हैं जो स्पन्दमान प्रकृति की होती हैं और एकान्तर प्रसार और आकुंचन प्रदर्शित करती हैं। इनका कार्य श्वसन या उत्सर्जन हो सकता है। उसमें एक पार्श्व नारंगी या लाल रंगद्रव्य बिन्दु होता है जिसको सामान्यतः दृष्टि बिन्दु या

नेत्र बिन्दु (eye spot)
होता है। पश्च भाग में एक
प्रोभूजक होता है। प्रोभूजक
सूक्ष्म मंड कणों से घिरा
होता है। पक्ष्मों के कशाघात
करती हैं।

अलिंगी प्रजनन—क्लैमिडोमो
है। चल जन्युओं के निर्माण
और अंतर्वस्तु २, ४, ८ या कभी
है। प्रत्येक कोशिका वृद्धि करती
बन जाती है। मातृ कोशिका की
निकल आते हैं।

पैलमेला अवस्था (Palmell
अनुजात कोशिकायें चल जन्यु बना

चित्र ४९३
क्लैमिडोमोनास। चित्र ४९३—यु
बाहर निकलते

बनाती हैं। उनकी भित्ति
श्लेष्मीय आवरण द्वारा एक
श्लेषी आधार द्रव्य में पड़
अनुकूल परिस्थिति में कोशि
द्रव्य से बाहर निकल कर

नेत्र बिन्दु (eye spot) कहते हैं। यह प्रकाश की तीव्रता के लिये संवेदी होता है। पश्च भाग में एक प्याले के आकार का हरिमकणक होता है जिसमें एक प्रोभूजक होता है। प्रोभूजक में एक केन्द्रीय प्रोटीन काय होता है जो असंख्य सूक्ष्म मंड कणों से घिरा रहता है। कोशिका के लगभग बीच में एक नाभिक होता है। पक्ष्मों के कशाघाती गति के कारण कोशिकायें जल में तेजी से गति करती हैं।

अलिंगी प्रजनन—क्लैमिडोमोनास चल जन्युओं द्वारा अलिंगी प्रजनन करता है। चल जन्युओं के निर्माण में प्रत्येक कोशिका के पक्ष्म सिकोड़ लिये जाते हैं और अंतर्वस्तु २, ४, ८ या कभी-कभी अधिक कोशिकाओं में विभाजित हो जाती हैं। प्रत्येक कोशिका वृद्धि करती है, दो पक्ष्म परिवर्धित करती है, और चलजन्यु बन जाती है। मातृ कोशिका की भित्ति विलीन हो जाती है और चल जन्यु बाहर निकल आते हैं।

पैलमेला अवस्था (Palmella Stage)—कुछ विशेष परिस्थितियों में अनुजात कोशिकायें चल जन्यु बनाने के बजाय पुनरावृत विभाजन के फलस्वरूप

चित्र ४९३ चित्र ४९४

क्लैमिडोमोनास। चित्र ४९३—युग्मक निर्मित। चित्र ४९४—युग्मक बाहर निकलते हुए।

असंख्य कोशिकायें बनाती हैं। उनकी भित्तियां श्लेषीय हो जाती हैं और [illegible] मातृ कोशिका की श्लेषीय आवरण द्वारा एक दूसरे से चिपकी रहती हैं। [illegible] कोशिकायें एक श्लेषी आधार द्रव्य में पड़ी रहती हैं। यह पैलमेला अवस्था कहलाती है। अनुकूल परिस्थिति में कोशिकायें पक्ष्म परिवर्धित करती हैं और श्लेषी आधार द्रव्य से बाहर निकल कर तैरने लगती हैं और [illegible] हो जाती हैं।

लिंगी प्रजनन—लिंगी प्रजनन चर पक्ष्मी युग्मकों के द्वारा सम्पन्न होता है जो उसी प्रकार बनते हैं जिस प्रकार चल जन्यु और उनके ही समान होते हैं,
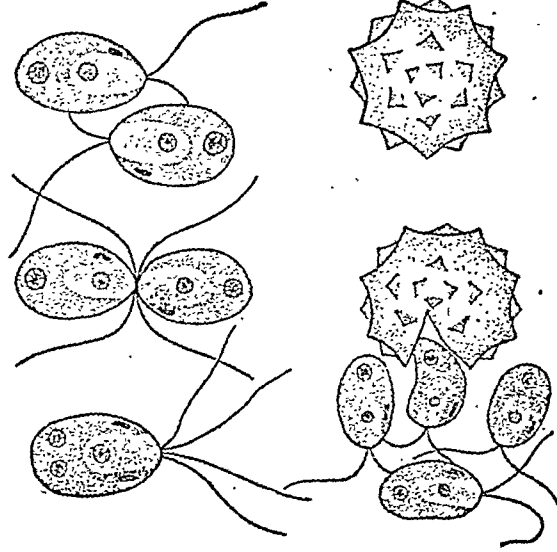
चित्र ४९५ चित्र ४९६

क्लैमिडोमोनास। चित्र ४९५—स्वतन्त्र तैरते हुए युग्मक और संयुग्मन। चित्र ४९६—ऊपर, एक सुप्त निषचनज्; नीचे; निषेचनज् से निर्मित चार कोशिकायें।

केवल वे आकार में छोटे होते हैं और संख्या में १६, ३२, ६४ या उससे भी अधिक हो सकते हैं। सब युग्मक समरूप होते हैं और समयुग्मक कहलाते हैं और उनका सायुज्य समयुग्मन (isogamy) कहलाता है। विभिन्न जनकों के युग्मक सामान्यतः युग्मों में संयुग्मित होते हैं। दो समरूप युग्मकों के सायुज्य का उत्पाद युग्मनज (zygospore) कहलाता है। उनके पक्ष्मी छोर पहले संयुग्मित होते हैं। सायुज्य के तुरन्त बाद ही पक्ष्म हटा लिये जाते हैं और युग्मनज चारों ओर एक स्थूल भित्ति से घिर जाता है। कुछ काल तक विश्राम करने के पश्चात युग्मनज अपने अंतर्वस्तुओं के विभाजन द्वारा दो या चार अनुजात कोशिकायें उत्पन्न करता है। वे आकार में वृद्धि करते हैं और मातृ कोशिका से बाहर निकल कर अलग-अलग क्लैमिडोमोनास कोशिकायें बन जाते हैं।

(२) युलोथ्रिक्स

युलोथ्रिक्स (चित्र ४९७) ...
मंद सरिताओं चश्मों आदि ...
में उत्पन्न होती हैं। युलोथ्रि...
आयताकार कोशिकाओं की एक
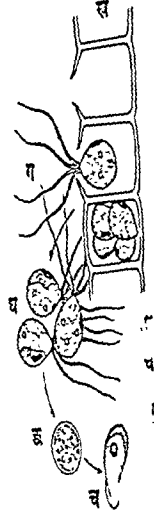
युलोथ्रिक्स। चित्र ४९७
का निर्माण; ग, तैरते
ज, युग्मनज; ...
ट, एक तरुण तन्तु; ...
का निर्माण दिखलाया
हुये; ड, एक चल

दीर्घीकृत रंगहीन कोशि...

(२) युलोथ्रिक्स (*ULOTHRIX*) (३० स्पीशीज)

युलोथ्रिक्स (चित्र ४९७) एक हरा तन्तु शैवाल है जो तालाब, खंदक, जलाशय, मंद सरिताओं चश्मों आदि में ताजे जल में मिलता है। कुछ स्पीशीज समुद्र में उत्पन्न होती हैं। युलोथ्रिक्स का तन्तु शाखाहीन होता है और न्यूनाधिकतया आयताकार कोशिकाओं की एक पंक्ति का बना होता है। यह पानी में आधारलग्न,
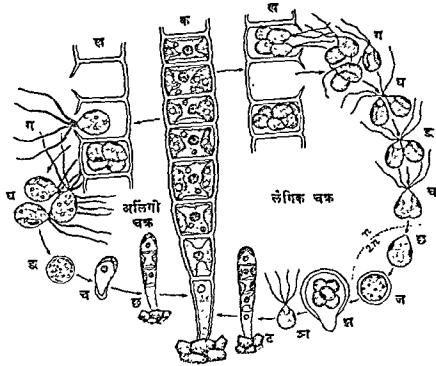
युलोथ्रिक्स। चित्र ४९७—जीवन वृत : लिंगी प्रजनन—क, वर्धी तन्तु; ख, युग्मकों का निर्माण; ग, तैरते हुये युग्मक; घ-छ, युग्मकों के संयुग्मन की अवस्थायें; ज, युग्मनज; झ, चल जन्युओं सहित जनित्र पादप, ञ, एक चल जन्यु (चतुष्पक्ष्मी); ट, एक तरुण तन्तु; अलिंगी प्रजनन—ख, तन्तु का एक भाग जिसमें चल जन्युओं का निर्माण दिखलाया गया है; ग, एक चतुष्पक्ष्मी चल जन्तु, घ, चल जन्यु तैरते हुये; ङ, एक चल जन्यु जो गोल हो गया है; च, अंकुरित चल जन्यु; छ, एक तरुण तन्तु।

दीर्घीकृत रंगहीन कोशिका द्वारा, जिसे स्थापित्र (holdfast) कहते हैं, अधोस्तर

या किसी भी कठोर वस्तु के साथ आवद्ध रहता है। यदि तंतु पृथक हो जाता है तो स्वतंत्रतया पानी में तैर सकता है। आधारलग्न कोशिका को छोड़ कर तंतु की प्रत्येक कोशिका में एक नाभिक और एक परिधिस्त (peripheral) पट्टवत हरिम कणक होता है जिसकी पूर्ण या पिंडकीय (lobed) सीमा होती है। एक या अधिक प्रोभूजक हरिम कणक में रहते हैं। ये गोलाकार प्रोटीन काय होते हैं, जिनमें मंड का आवरण होता है।

प्रजनन अलिंगी विधि से चल जन्युओं द्वारा, लिंगी विधि से युग्मकों द्वारा और वर्धी विधि से तन्तु के संविभजन द्वारा होता है।

अलिंगी प्रजनन—चार पक्ष्म युक्त चल जन्यु, गुरु चल जन्यु (megazoospores), स्थापित्र कोशिका को छोड़कर तंतु के किसी भी कोशिका के प्रोटोप्लास्ट के विभाजन द्वारा अलिंगी प्रजनन के प्रक्रम के लिये उत्पन्न होते हैं। वे युग्मकों से बड़े होते हैं किन्तु प्रत्येक कोशिका में न्यून संख्या में २, ४, ८ या कभी १ या दुर्लभतः १६ या कभी-कभी ३२ तक भी उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक चल जन्यु न्यूनाधिकतया नाशपाती के आकार का होता है और उन में एक पार्श्व में एक स्पष्ट लाल नेत्र बिन्दु (eye spot) और कशाभी सिरे के निकट एक स्पन्दी रसधानी होती है। इसके अतिरिक्त उनमें एक बड़ा हरिम कणक भी होता है। चल जन्यु पार्श्व भित्ति के एक छिद्र द्वारा बाहर निकल जाते हैं और पानी में कुछ घंटों या कुछ दिनों तक भी तीव्र गति से तैरते रहते हैं। उसके बाद वे विश्राम करते हैं और अपने रंग हीन सिरे द्वारा किसी भी कठोर वस्तु से अपने को आवद्ध कर लेते हैं। पक्ष्म प्रत्याहृत हो जाते हैं और प्रत्येक चल जन्यु के चारों ओर एक कोशिका भित्ति निर्मित हो जाती है। तत्पश्चात वह सीधे एक नवीन तन्तु में अंकुरित होता है।

लिंगी प्रजनन—लिंगी प्रजनन समयुग्मी (isogamous) होता है जिसमें दो समरूप द्विपक्ष्मी युग्मकों (समयुग्मकों) का सायुज्य होता है। स्थापित्र कोशिका को छोड़कर तंतु की किसी भी कोशिका में युग्मक निर्मित हो सकते हैं। वे चल जन्युओं से क्षुद्रतर और द्विपक्ष्मी होते हैं तथा प्रत्येक कोशिका में ८, १६, ३२ या ६४ तक की संख्या में हो सकते हैं। प्रत्येक युग्मक में एक लाल नेत्र बिन्दु (eye spot) और एक हरिम कणक पट्ट होता है। युग्मक कोशिका से ठीक चल जन्यु के समान ही निर्मुक्त होते हैं और अपने पक्ष्म की सहायता से पानी में कुछ समय तक तैरते रहते हैं। दो विभिन्न तंतुओं से आये हुये युग्मक अपने पक्ष्मों द्वारा उलझ जाते हैं और दोनों का पूर्ण सायुज्यन या संयुग्मन (conjugation) पार्श्वतः निष्पन्न होता है। प्रक्रम के अंत में पक्ष्म प्रत्याहृत (withdrawn) हो जाते हैं और सायुज्य उत्पाद अब भी कुछ समय तक गति करता

रहता है किन्तु वह शीघ्र ही विश्राम करता है। यह अपने को गोल रूप में बना लेता है और एक स्थूल कोशिका भित्ति से आवरित कर लेता है तथा एक युग्मनज बन जाता है। कुछ विश्राम अवधि के पश्चात युग्मनज एक-कोशिक जनित्र पादप रूप मे अंकुरित होता है जो ४ से १६ तक की संख्या मे चल जन्यु या अचल बीजाणु उत्पन्न करता है। वे चतुष्पक्ष्मी या पक्ष्महीन होते हैं और प्रत्येक एक नये पादप रूप में परिवर्धित होता है।

वर्धी प्रजनन—यह तंतु के छोटे खडों मे सविभजन द्वारा होता है और प्रत्येक खड मे थोडी कोशिकायें होती हैं। प्रत्येक खड कोशिकाओं के अनुप्रस्थ विभाजन और उनके परिवर्धन (enlargement) द्वारा एक लम्बे तंतु रूप मे वृद्धि करता है।

टिप्पणी (Note)—युलोथ्रिक्स में हमे लैंगिक भेदीकरण का पूर्वतम संकेत मिलता है जो उच्चतर पौधों मे अति प्रमुख हो जाता है। युग्मक या लिंगी कोशिकाओं और चल जन्यु या अलिंगी कोशिकाओं का व्यवहार इंगित करता है कि युग्मक मूलत चल जन्यु से उत्पन्न हुआ।

(३) स्पाइरोगाइरा (*SPIROGYRA*) (१०० स्पीशीज)

प्राप्तिस्थान—स्पाइरोगाइरा (चित्र ४९८) उलझी सहति (tangled mass) मे पाया जाने वाला एक हरा तंतुमय शैवाल है जो पानी मे स्वतंत्र तैरता हुआ देखा जा सकता है। यह अलवण जल का सर्वदेशीय (cosmopolitan) पौधा है और तालाबों, खदकों और मदगामी स्रोतों आदि मे प्रचुरता से पाया जाता है। किन्तु कुछ स्पीशीज में जो बहते पानी मे पाई जाती हैं, एक-कोशिक संयोजन अंग निर्मित होता है जिसे सधारिणी (haptera) कहते हैं।

संरचना—प्रत्येक स्पाइरोगाइरा पौधा एक शाखाहीन तंतु है जो कुछ इंच लम्बा होता है, और बेलनाकार कोशिकाओं की एक पंक्ति का बना होता है। भित्तियां सैलूलोज और पेक्टिन की बनी होती हैं। पेक्टिन पानी में फूल कर श्लेषी छाद (gelatinous sheath) बन जाता है और स्पाइरोगाइरा तंतु इस छाद से आवृत हो जाता है। तंतु आधार और चोटी में भेदीकरण प्रकट नहीं करता। प्रत्येक कोशिका में जीवद्रव्य की एक अस्तर परत (lining layer) होती है जिसमें हरित कणकों की एक या प्रायः अधिक सर्पिल पट्टियां, जो स्पाइरोगाइरा का लाक्षणिक लक्षण है, सन्निहित रहती हैं। नाभिक जीवद्रव्य के कोमल वलयकों (strands) से आलंबित रह कर कहीं केन्द्र में पड़ा रहता है, और वहा एक अकेली रसधानी होती है। प्रत्येक कोशिका में

१ से १४ तक विभिन्न संख्या में होते हैं, और कोशिका की पूर्ण लम्बाई में फैले होते हैं। प्रत्येक हरिम कणक की सीमा बिलकुल चिक्कण या तरंगवत् या आरावत् हो सकती है। इसके काय में प्रोभूजक नाम के कई पिण्डाकार (nodular) जीवद्रव्यीय काय रहते हैं। प्रोभूजक एक प्रकार के कूटक (ridge) द्वारा योजित (connected) होते हैं जो हरिम कणक के अंतर्वर्ती पार्श्व में परिवर्धित होता है तथा उनके चारों ओर सूक्ष्म मंड कण निक्षेपित (deposited) होते हैं।

स्पाइरोगाइरा—चित्र ४९८—तन्तु की एक कोशिका जिसमें हरिम कणकों के दो सर्पिल पट्ट प्रोभूजकों सहित, और जीवद्रव्य के कोमल वलयकों द्वारा निलंबित एक नाभिक दिखलाया गया है।

जनन—स्पाइरोगाइरा में यह लिंगी विधि से सम्पन्न होता है। इस में दो समरूप प्रजनक इकाइयों या युग्मकों का सायुज्य होता है। दो समरूप युग्मकों (संयुग्मकों) के सायुज्य को **संयुग्मन** (conjugation) कहते हैं। प्रायः दो तंतुओं या तीन तक की भी कोशिकाओं के मध्य संयुग्मन होता है। यह सोपानवत् संयुग्मन (scalariform conjugation) कहलाता है। **सोपानवत् संयुग्मन**—जब दो तंतु समानान्तर दिशा में सम्पर्क में पड़े होते हैं तो वे एक दूसरे को प्रतिकर्षित (repel) करते हैं। इस प्रतिकर्षण के परिणाम स्वरूप दोनों तंतुओं के सम्पर्क के संगत या विरुद्ध बिन्दुओं से नलिकाकार उद्वर्ध (outgrowth) परिवर्धित होते हैं। ये नलिकाकार उद्वर्ध **संयुग्मन नलिकाएं** (conjugation tubes) कहलाते हैं और जब दोनों तंतुओं की सब या अधिकांश कोशिकायें ऐसी नलिकायें निर्मित कर लेती हैं तो सम्पूर्ण संरचना न्यूनाधिकतया एक सोपान समान दिखाई पड़ती है, इसलिये इसे सोपानवत् या सीढ़ीवत् संयुग्मन नाम दिया गया है। उनकी प्रान्त यां विभाजन भित्तियां विलीन हो जाती हैं और एक खुली संयुग्मन नलिका निर्मित होती है। तब तक प्रत्येक कोशिका की जीवद्रव्यीय अन्तर्वस्तु जल लुप्त करती है, आकुंचित (contracts) होती है और केन्द्र में गोलाकार पुंज जैसी हो जाती है। प्रत्येक आकुंचित जीवद्रव्य संहति एक **युग्मक** (gamete) निर्मित करती है। सब युग्मक समरूप होते हैं और इस कारण वे समयुग्मक कहलाते हैं। एक तंतु के युग्मक संयुग्मक नलिका के बीच से होते हुये संलग्न तंतु के युग्मक से सायुज्यित होते हैं। दोनों युग्मकों के सायुज्य

के फलस्वरूप एक निषेचनज् बनता है। निषेचनज् अपने को एक स्थूल भित्ति से आवृत कर लेता है और युग्मनज (zygospore) कहलाता है (चित्र ५००)। कुछ अवस्थाओं में युग्मक संयुग्मन नलिका में सायुज्यित हो सकते हैं। युग्मनज की भित्ति स्थूल और काली या बभ्र कृष्ण (brownish black) होती है। पार्श्व संयुग्मन (Lateral Conjugation)—यह एक ही तंतु के कोशिकाओं में
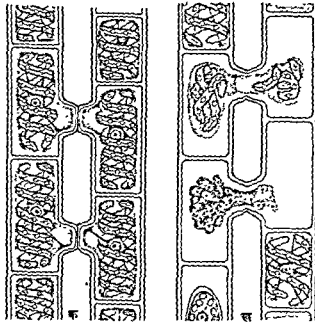
स्पाइरोगाइरा—चित्र ४९९—सोपानवत् संयुग्मन। क–ख इस प्रक्रम की अवस्थायें हैं।

निष्पन्न होता है। विभाजन भित्ति के एक पार्श्व में एक उद्वर्ध या संयुग्मन नलिका निर्मित होती है और इस प्रकार निर्मित मार्ग के मध्य से एक कोशिका का युग्मक पड़ोसी कोशिका में प्रवेश करता है। संयुग्मन नलिका के स्थान पर विभाजन भित्ति में एक छिद्र निर्मित हो सकता है जिस के मार्ग से युग्मक जा सकता है। पार्श्व संयुग्मन में एकान्तर कोशिकाओं के युग्मक केवल पड़ोसी कोशिकाओं तक गति करते हैं और इस प्रकार बाद में निषेचनज्धारी कोशिकायें उसी तंतु की खोखली कोशिकाओं के साथ एकान्तर होती हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि संयुग्मन निष्पन्न नहीं होता और तब युग्मक सीधे बीजाणु रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार के बीजाणु अयु

(azygospore) कहलाते हैं। यह प्रक्रम अनिषेकजनन (partheno-

स्पाइरोगाइरा चित्र ५००—संयुग्मनज के पश्चात युग्मनज का निर्माण।
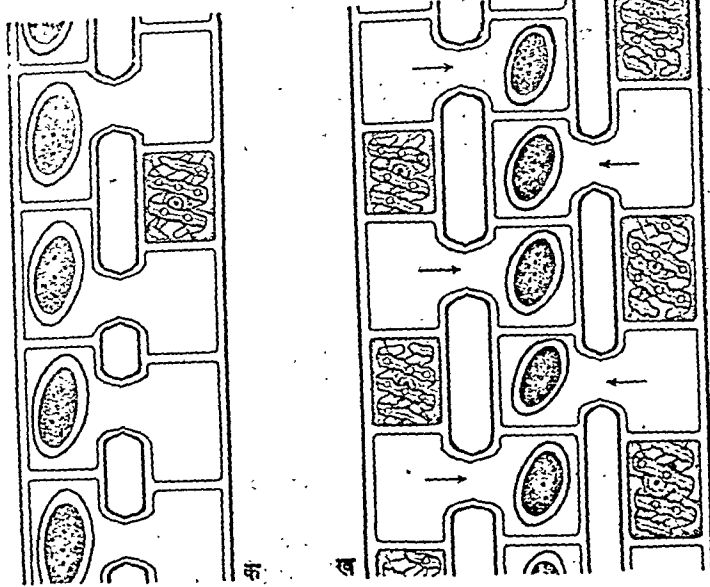
स्पाइरोगाइरा। चित्र ५०१—तीन तन्तुओं में सोपानवत् संयुग्मन (अर्ध-आरेखीय)।

genetic) कहलाता है। ये युग्मनज की भांति अंकुरित होते हैं।
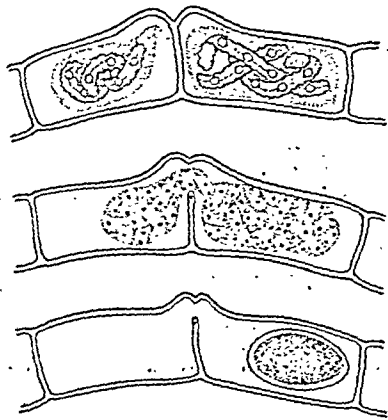
स्पाइरोगाइरा। चित्र ५०२—पार्श्व संयुग्मन और युग्मनज का निर्माण।

स्पाइरोगाइरा। चित्र ५०३—अंकुरित युग्मनज।

युग्मनज का अंकुरण (Germination of Zygospore ; चित्र ५०३) युग्मनज में एक स्थूल सैलूलोज भित्ति तीन स्तरों को बनी होती है, जिनमें से मध्यवर्ती में कुछ काइटिन होता है। यह जिस तालाब या पानी में उत्पन्न होता है उसके पेंदे में बैठ जाता है। यह कुछ काल तक विश्राम करता है और बाद में अंकुरित होता है। युग्मनज का प्रोटोप्लास्ट सर्व प्रथम आकार में वृद्धि करता है, फिर उसकी बाह्य भित्ति विस्फोटित हो जाती है और आन्तर भित्ति प्रोटोप्लास्ट के साथ एक लघु नलिका रूप में वृद्धि करती है जो अंततः नवीन तनु में निमित होती है। तनु निर्मुक्त हो जाता है और जल के तल पर तैरता है। कोशिकायें विभाजित होती हैं और तंतु लम्बाई में वृद्धि करता है।

अध्याय ३

जीवाणु (BACTERIA)

संक्षिप्त ऐतिहासिक वर्णन—हालैंड के डेल्फ निवासी एँटोनी वान ल्यूवेनहाक (Leeuwenhoek—१६३२-१७२३) सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी आविष्कृत और यथेष्ट सुसंस्कृत सूक्ष्मदर्शी से जीवाणुओं की खोज की (१६५३-१६७३)। फ्रांस के लुई पास्चुर (Louis Pasteur—१८३१-१८९५) ने जीवाणु-विज्ञान को सम्यक रूप में स्थापित किया। उसने किण्वन, क्षय (decay) तथा जलभीति (hydrophobia) के कारण पर विस्तृत शोध किया। १८७६ ई० के लगभग पास्चुर ने जीवाणुओं के महत्व को संसार के सम्मुख रक्खा। वह वैक्सीन (vaccine) तैयार करने और रोग निवारण के लिये उस का प्रयोग करने वाला सर्वप्रथम व्यक्ति था। इस के प्रयोग द्वारा जलभीति से अनेक रूसियों की उसने प्राण रक्षा की और रूस के ज़ार ने उसके अद्भुत आविष्कार के उपलक्ष में उस के पास हीरक स्वस्तिक भेजा तथा पेरिस में एक अनुसंधानशाला, जिसका नाम आजकल पास्चुर इन्स्टिट्यूट है, स्थापित करने के लिये एक लाख फ्रैंक प्रदान किया। उसी वर्ष के लगभग जर्मनी के राबर्ट काख (Robert Koch) ने सिद्ध किया कि ढोरों में बहुत प्रचलित ऐंथ्रक्स या गिल्टी रोग का कारण एक जीवाणु है। उसने १८८२ ई० में यह भी सिद्ध किया कि क्षय और एशियाई हैज़ा (विसूचिका) के कारण भी जीवाणु हैं।

साधारण संलक्षण—जीवाणु (शाइजोमाइसीटीस) हमें ज्ञात जीवों में लघुतम और आद्यतम हैं और उनकी लगभग १,५०० स्पीशीज़ हैं। उनमें से अधिकांश एक कोशिक साधारणतया गोलाकार, दंडवत् या शाखायुक्त होते हैं। इन अणुजीवों में से अनेक विशेषतया गोलाकार अणुजीव एक माइक्रोन या ०.५ माइक्रोन लम्बाई तक ही होते है, किंतु दंडवत् या तंतुमय रूपों की लम्बाई १० माइक्रोन तक या इस से भी अधिक हो सकती हैं (एक माइक्रोन=१/१,००० मिमी० या लगभग १/२५,००० इंच)। आकार में इतने सूक्ष्म होने के कारण वे सूक्ष्मदर्शी के उच्चतम आवर्धन (magnification) में भी अपूर्णतः दिखाई पड़ते हैं।

उन का निवास प्रायः सर्वत्र—पानी, हवा, मिट्टी और खाद्य, द्रव्य, फल तथा सब्जियों में होता है। उनमें से अनेक वायु में तैरते हैं; अनेक जल में प्रचुर मात्रा में रहते हैं और अनेक मिट्टी में, विशेषतया एक फुट गहराई तक
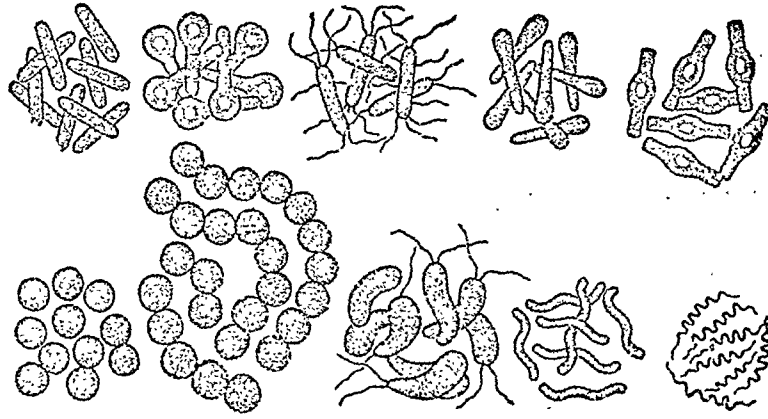
जीवाणु। दण्डाणु: चित्र ५०४—बैसिलस ट्यूबर्क्युलोसिस। चित्र ५०५—बैसिलस टिटैनी। चित्र ५०६—बैसिलस टाइफी। चित्र ५०७—बैसिलस डिपथीरियाई। चित्र ५०८—बैसिलस ऐन्थ्रैसिस। गोलाणु: चित्र ५०९—स्टैफिलोकोकस। चित्र ५१०—स्ट्रेप्टोकोकस। कोमा: चित्र ५११—विब्रिओ कोलरी। सर्पिल दण्डाणु: चित्र ५१२—स्पाइरिलम (जल मे प्रायः पाया जाने वाला)। चित्र ५१३—स्पाइरोकीट।

रहते हैं, और गन्दे नाले के पानी में भी पाये जाते हैं। एक घन सेमी० जल में उन की कुछ हजार संख्या हो सकती है और एक ग्राम मिट्टी में कई लाख

हो सकते हैं। अनेक सजीव पौधों और जन्तुओं के शरीर के अन्दर और ऊपर रहते हैं। सब जन्तुओं की आंतों में अनेक प्रकार के जीवाणुओं की पर्याप्त संख्या अवश्य रहती है।

जीवाणु अधिकांशतः विभिन्न आकृतियों और आकारों के एककोशिक जीव हैं। उन में से कुछ विभिन्न अवस्थाओं में आकृति परिवर्तन कर देते हैं और इस कारण सरलतया पहचाने नहीं जा सकते। अनेक अवस्थाओं में कोशिकायें एक लघु समूह, श्रृंखला या तंतु में शाखा युक्त या शाखाहीन रूप में संसक्ति (adhered) हो सकते हैं। प्रत्येक कोशिका समस्त जीव कार्यों को निष्पन्न करते हुये आत्मपूर्ण होती है यद्यपि वह आकार में अत्यंत सूक्ष्म होती है तथा उस की संरचना सरल होती है। उस में काइटिन से निर्मित कोशिका भित्ति द्वारा पारिवारित, जिस में नाइट्रोजन कभी-कभी एक छाद में समावृत रहता है, जीवद्रव्य का एक बिन्दु होता है। उसमें कोई निश्चित नाभिक नहीं होता जिस का प्रतिनिधित्व अनेक अवस्थाओं में केवल रंज्या कण (chromatin granules) करते हैं।

प्रजनन—जीवाणुओं में लिंगी विधि द्वारा प्रजनन नहीं होता। व्यक्तिगत कोशिका, प्रायः बारबार विभाजित हो सकती है और संख्या वृद्धि कर सकती है। कुछ जीवाणु बीजाणु निर्माण द्वारा प्रजनन कर सकते हैं, किन्तु इस विधि से वे संख्या में वृद्धि नहीं कर सकते।

(१) विभंजन द्वारा (By Fission)—अनेक जीवाणु विभंजन प्रक्रम द्वारा विभाजित होते हैं (देखिये पृष्ठ ३६०)। कोशिका के मध्य में एक संकुचन (constriction) प्रकट होता है और कोशिका दो भागों में विभाजित हो जाती है। ये भाग आकार में वृद्धि करते हैं और प्रौढ़ जीवाणु कोशिकायें उत्पन्न करते हैं। संख्या वृद्धि का दर स्पीशीज तथा परिस्थान अवस्थाओं पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये परागज बैसिलस (बैसिलस सबटिलिस) अनुकूल अवस्थाओं में प्रति घंटे दो या तीन बार विभाजित होता है। विभाजन के न्यूनतम दर से एक एकाकी कोशिका १२ घंटे के अंत में १६,७७७,२१६ संतान उत्पन्न कर सकती है।

(२) बीजाणु निर्माण द्वारा (By Spore Formation; चित्र ५१४)—कुछ जीवाणु बीजाणु निर्मित करते हैं जो सदा सुप्त बीजाणु (resting spores) होते हैं। बीजाणुओं का विशेष लाभ यह है कि वे बहुत अधिक प्रतिकूल अवस्थाओं जैसे उच्च ताप, हिमीकरण (freezing), चरम शुष्कता, तथा अनेक विषैले रसायनों की विद्यमानता आदि को सहन कर सकते हैं। जीवद्रव्य का एक भाग कोशिका के किसी भाग में क्षुद्र संहति रूप में समुञ्चित हो जाता है और एक स्थूल झिल्ली बना कर अपने को उस से आवृत करता है और मातृ कोशिका

के अंदर एक आन्तर बीजाणु (endospore) निर्मित करता है तथा मातृ कोशिका शीघ्र विलीन हो जाती है। आन्तर बीजाणु महीनों तक या कई वर्षों तक जीवन की विषम परिस्थितियों का प्रतिरोध करते हुये सुषुप्त रह सकता है। फिर आर्द्रता और ताप की अनुकूल अवस्था में एक उपयुक्त माध्यम में आन्तर बीजाणु दीर्घित होता है। भित्ति अंशतः विघटित हो जाती है और अन्तर्वस्तुएं पूर्ण विकसित जीवाणु कोशिका निर्मित कर लेती हैं।

चित्र ५१४—दो प्रकार के जीवाणुओं बीजाणु निर्माण।

वर्गीकरण—जीवाणुओं के शाखाहीन, एक कोशिक रूप निम्न वर्गों में वर्गीकृत किये जा सकते हैं। (१) बैसिलस या दण्डाणु (bacilli)—ये दंड आकृति के जीवाणु हैं, जैसे बैसिलस टाइफी, बैसिलस टिटैनी, बैसिलस ट्यूबर्क्युलोसिस आदि; (२) कोक्काइ या गोलाणु (cocci)—ये गोलाकार जीवाणु हैं, जैसे स्टैफिलोकोक्कस या गुच्छ गोलाणु, स्ट्रेप्टोकोक्कस या मनका गोलाणु, माइक्रोकोक्कस या एकल गोलाणु, एज़ोटोबैक्टर, इत्यादि; (३) स्पाइरिला या सर्पिल दण्डाणु (spirilla)—ये सर्पिलाकार कुंचीयित (spirally wound) काय के होते हैं, जैसे स्पाइरिलम (*Spirillum*), स्पाइरोकीट या तरंगिल दण्डाणु; और (४) कोमा या पुच्छ विन्दु जीवाणु (comma)—ये पूंछ लगे हुये एक विन्दु की भांति (या लिखावट में अर्द्ध विराम चिन्ह की तरह थोड़ा सा मरोड़ युक्त) होते हैं, जैसे विब्रिओ कोलरी।

जीवाणु की कार्यिकी—जीवाणु पर्णहरिम से विहीन होते हैं और इस प्रकार अपने खाद्य के लिये कार्बनिक यौगिकों के संश्लेषण के लिये कार्बन डाइआक्साइड का उपयोग करने में असमर्थ होते हैं। वे स्वभाव से अधिकांशतः परजीवी (heterotrophic; देखिये पृष्ठ ३२४) होते हैं और मृतोपजीवी या पराश्रयी जीवन बिताते हैं। तथापि, उनकी अल्प संख्या स्वजीवी (autotrophic) होती है जिन में आनीलारुण (purplish) या हरा रंग द्रव्य होता है। ऐसे जीवाणु कार्बन डाइआक्साइड और मिट्टी में उपस्थित अन्य सरल कार्बनिक पदार्थों से कार्बनिक खाद्य यौगिक निर्मित करने में समर्थ होते हैं।

मृतोपजीवी या क्षय जीवाणु (Saprophytic or Decay Bacteria)—ये पादपीय या जान्तव उद्गम के कार्बनिक यौगिकों युक्त माध्यम (प्रायः मिट्टी और पानी) में रहते हैं। कुछ जीवाणुओं में कार्बोहाइड्रेट के लिये रुचि होती है तथा दूसरों में प्रोटीन, वसा या एमिनो अम्ल के लिये रुचि होती है तथापि,

मृतोपजीवी जीवाणुओं के साधारण प्ररूपों में से अधिकांश कार्बनिक यौगिकों के अनेक रूपों पर क्रिया करते हैं। उच्च पादपों की भांति अविलेय और संकुल कार्बनिक यौगिकों को विलेय और सरल रूपों में पाचन करने के लिये वे एन्ज़ाइम स्रावण करते हैं। उनमें से अनेक मृत पौधों और जन्तुओं और उनके उत्पाद के क्षय के लिये उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार सब्जियों और फलों के विशेष रुप में संग्रहण करने में गलित होना, खाद्य का किण्वन, दूध का खट्टा होना, सिरका बनना आदि जीवाणुओं की सक्रियता का परिणाम होता है।

पराश्रयी जीवाणु या रोगाणु (Parasitic or Pathogenic Bacteria)—अनेक जीवाणु सजीव पौधों और जन्तुओं, विशेषकर जन्तुओं को संक्रमण करते हैं और पोषक के ऊतकों से कार्बनिक खाद्य यौगिक प्राप्त करते हैं। मृतोपजीवी जीवाणुओं के विपरीत पराश्रयी जीवाणु प्रत्यक्षतः एक विशेष प्रकार के खाद्य के लिये अपने पोषक या प्राय. उसके विशेष भाग के निर्वाचन में अत्यधिक बलातग्राही होते हैं। उनमें से कई विभिन्न तथा भयानक रोगों को उत्पन्न करते हैं जो कभी-कभी महामारी का रूप धारण कर लेते हैं। वे अनेक प्रकार के संक्रामक (infectious) और छूत के रोगों (contagious) के लिये उत्तरदायी होते हैं तथा अदृश्य शत्रु की भांति लोग उन से भय खाते हैं। साधारणतया वे पोषक को घावों (wounds) के मार्ग संक्रमित करते हैं या श्वास के साथ प्रविष्ट हो सकते हैं या खाद्य, जल या दूध के साथ शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। ये जीवाणु वातजीवी (aerobic) या वात-निरपेक्षी (anaerobic) हो सकते हैं। शरीर के संक्रमण के पश्चात वे जीवविष या टाक्सिन उत्पन्न करते हैं और शरीर उस के विपरीत जीवविष का प्रतिकरण (counteract) करने के लिये जीव विषहर (antitoxin) उत्पन्न करता है। जीवाणु द्वारा होने वाले रोगों के समाघात (combating) का यही सिद्धान्त है और प्रतिजीवविष सीरम (antitoxic serum) का शरीर के अन्दर प्रवेश करना ऐसे रोगों के रोकथाम (preventing) और रोगोपचार (treating) की आधुनिक विधि है। यह देखा जाता है कि किसी विशेष रोग, जैसे चेचक से ग्रस्त व्यक्ति उस रोग से अस्थायी रूप से या कभी-कभी स्थायी रूप से प्रतिरक्षित (immune) हो जाता है। इसका कारण संक्रमित शरीर में जीव विषहर (antitoxin) का निर्माण है। कुछ साधारण रोगोत्पादक जीवाणु निम्न हैं : बैक्टीरियम डिसेंटिरियाई (*Bacterium dysenteriae*) जिस से पेचिश या आमातिसार उत्पन्न होता है। बैक्टीरियम इन-फ्लूएंजे से इनफ्लूएंजा रोग होता है। बैक्टीरियम डिपथीरियाई जिस से डिपथीरिया रोग उत्पन्न होता है, बैक्टीरियम न्युमोनिये जिस से न्युमोनिया होता है;

के अंदर एक आन्तर बीजाणु (endospore) निर्मित करता है तथा मातृ कोशिका शीघ्र विलीन हो जाती है। आन्तर बीजाणु महीनों तक या कई वर्षों तक जीवन की विषम परिस्थितियों का प्रतिरोध करते हुये सुषुप्त रह सकता है। फिर आर्द्रता और ताप की अनुकूल अवस्था में एक उपयुक्त माध्यम में आन्तर बीजाणु दीर्घित होता है। भित्ति अंशतः विघटित हो जाती है और अन्तर्वस्तुएं पूर्ण विकसित जीवाणु कोशिका निर्मित कर लेती हैं।

चित्र ५१४—दो प्रकार के जीवाणुओं बीजाणु निर्माण।

वर्गीकरण—जीवाणुओं के शाखाहीन, एक कोशिक रूप निम्न वर्गों में वर्गीकृत किये जा सकते हैं। (१) बैसिलस या दण्डाणु (bacilli)—ये दंड आकृति के जीवाणु हैं, जैसे बैसिलस टाइफी, बैसिलस टिटैनी, बैसिलस ट्यूबर्क्युलोसिस आदि; (२) कोक्काइ या गोलाणु (cocci)—ये गोलाकार जीवाणु हैं, जैसे स्टैफिलोकोक्कस या गुच्छ गोलाणु, स्ट्रेप्टोकोक्कस या मनका गोलाणु, माइक्रोकोक्कस या एकल गोलाणु, एज़ोटोबैक्टर, इत्यादि; (३) स्पाइरिला या सर्पिल दण्डाणु (spirilla)—ये सर्पिलाकार कुंचीयित (spirally wound) काय के होते हैं, जैसे स्पाइरिलम (*Spirillum*), स्पाइरोकीट या तरंगिल दण्डाणु; और (४) कोमा या पुच्छ विन्दु जीवाणु (comma)—ये पूंछ लगे हुये एक विन्दु की भांति (या लिखावट में अर्द्ध विराम चिन्ह की तरह थोड़ा सा मरोड़ युक्त) होते हैं, जैसे विब्रिओ कोलरी।

जीवाणु की कायिकी—जीवाणु पर्णहरिम से विहीन होते हैं और इस प्रकार अपने खाद्य के लिये कार्बनिक यौगिकों के संश्लेषण के लिये कार्बन डाइआक्साइड का उपयोग करने में असमर्थ होते हैं। वे स्वभाव से अधिकांशतः परजीवी (heterotrophic; देखिये पृष्ठ ३२४) होते हैं और मृतोपजीवी या पराश्रयी जीवन बिताते हैं। तथापि, उनकी अल्प संख्या स्वजीवी (autotrophic) होती है जिन में आनीलारुण (purplish) या हरा रंग द्रव्य होता है। ऐसे जीवाणु कार्बन डाइआक्साइड और मिट्टी में उपस्थित अन्य सरल कार्बनिक पदार्थों से कार्बनिक खाद्य यौगिक निर्मित करने में समर्थ होते हैं।

मृतोपजीवी या क्षय जीवाणु (Saprophytic or Decay Bacteria)—ये पादपीय या जान्तव उद्गम के कार्बनिक यौगिकों युक्त माध्यम (प्रायः मिट्टी और पानी) में रहते हैं। कुछ जीवाणुओं में कार्बोहाइड्रेट के लिये रुचि होती है तथा दूसरों में प्रोटीन, वसा या एमिनो अम्ल के लिये रुचि होती है तथापि,

मृतोपजीवी जीवाणुओं के साधारण प्ररूपों में से अधिकांश कार्बनिक यौगिकों के अनेक रूपों पर क्रिया करते हैं। उच्च पादपों की भांति अविलेय और संकुल कार्बनिक यौगिकों को विलेय और सरल रूपों में पाचन करने के लिये वे ऐन्ज़ाइम स्रावण करते हैं। उनमें से अनेक मृत पौधों और जन्तुओं और उनके उत्पाद के क्षय के लिये उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार सब्जियों और फलों के विशेष रूप में संग्रहण करने में गलित होना, खाद्य का किण्वन, दूध का खट्टा होना, सिरका बनना आदि जीवाणुओं की सक्रियता का परिणाम होता है।

पराश्रयी जीवाणु या रोगाणु (Parasitic or Pathogenic Bacteria)—अनेक जीवाणु सजीव पौधों और जन्तुओं, विशेषकर जन्तुओं को संक्रमण करते हैं और पोषक के ऊतकों से कार्बनिक खाद्य यौगिक प्राप्त करते हैं। मृतोपजीवी जीवाणुओं के विपरीत पराश्रयी जीवाणु प्रत्यक्षतः एक विशेष प्रकार के खाद्य के लिये अपने पोषक या प्राय. उसके विशेष भाग के निर्वाचन मे अत्यधिक बलातग्राही होते हैं। उनमें से कई विभिन्न तथा भयानक रोगों को उत्पन्न करते हैं जो कभी-कभी महामारी का रूप धारण कर लेते हैं। वे अनेक प्रकार के संक्रामक (infectious) और छूत के रोगों (contagious) के लिये उत्तरदायी होते हैं तथा अदृश्य शत्रु की भांति लोग उन से भय खाते हैं। साधारणतया वे पोषक को घावों (wounds) के मार्ग संक्रमित करते हैं या श्वास के साथ प्रविष्ट हो सकते हैं या खाद्य, जल या दूध के साथ शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। ये जीवाणु वातजीवी (aerobic) या वात-निरपेक्षी (anaerobic) हो सकते हैं। शरीर के संक्रमण के पश्चात वे जीवविष या टाक्सिन उत्पन्न करते हैं और शरीर उस के विपरीत जीवविष का प्रतिकरण (counteract) करने के लिये जीव विषहर (antitoxin) उत्पन्न करता है। जीवाणु द्वारा होने वाले रोगों के समाघात (combating) का यही सिद्धान्त है और प्रतिजीवविष सीरम (antitoxic serum) का शरीर के अन्दर प्रवेश करना ऐसे रोगों के रोकथाम (preventing) और रोगोपचार (treating) की आधुनिक विधि है। यह देखा जाता है कि किसी विशेष रोग, जैसे चेचक से ग्रस्त व्यक्ति उस रोग से अस्थायी रूप से या कभी-कभी स्थायी रूप से प्रतिरक्षित (immune) हो जाता है। इसका कारण संक्रमित शरीर में जीव विषहर (antitoxin) का निर्माण है। कुछ साधारण रोगोत्पादक जीवाणु निम्न हैं. बैक्टीरियम डिसेंटिरियाई (*Bacterium dysenteriae*) जिस से पेचिश या आमातिसार उत्पन्न होता है। बैक्टीरियम इनफ्लुएंजे से इनफ्लुएंजा रोग होता है। बैक्टीरियम डिफ्थीरियाई जिस से डिफ्थीरिया रोग उत्पन्न होता है, बैक्टीरियम न्युमोनियै जिस से न्युमोनिया होता है,

बैक्टीरियम ट्यूबर्क्युलोसिस जिस से क्षय रोग होता है; बैसिलस टाइफी जिस से टाइफाइड ज्वर उत्पन्न होता है; बैसिलस टिटैनी जिस से धनुर्वात (tetanus) रोग होता है। स्ट्रेप्टोकोकाइ या मनका गोलाणु (रुधिर विषायण जीवाणु) की कुछ स्पीशीज संभवतः मानव समाज के घातक शत्रु हैं। उनमें मानव रक्त के लाल कणिकाओं को विलीन करने की शक्ति होती है और वे अरुण चर्म (erysepelas) तथा रुधिर विषायण के चरम घातक प्रकारों के लिये उत्तरदायी होते हैं।

पराश्रयी जीवाणु पौधों पर भी आक्रमण करते हैं तथा अनेक रोग, जैसे सेव व नाशपाती की अंगमारी (blight), और आलू की वृताकार सड़न (ring disease of potato), गोभी का काला विगलन (black rot of cabbage), सिट्रस कैंकर तथा फलों और सब्जियों के रोग उत्पन्न करते हैं। किन्तु पौधों में जीवाणु रोगों की अपेक्षा कवकीय रोग बहुत अधिक होते हैं। इसके विपरीत जन्तुओं में प्रतिलोम अवस्था है।

विषाणु या वाइरस (Viruses)—कुछ जीवाणुओं से भी छोटे जीव हैं जो सूक्ष्मदर्शीय अभिव्यक्तिकरण का उल्लंघन कर देते हैं; ये विषाणु हैं। पौधों और जन्तुओं के शरीर पर वे जो प्रभाव उत्पन्न करते हैं उस से उन के अस्तित्व का पता चलता है। कुछ मानव रोग जैसे मम्प्स, चेचक, पीत ज्वर, छोटी माता, लोहित ज्वर (scarlet fever), बाल संस्तम्भ (infantile paralysis), कैन्सर, जलभीति (hydrophobia) आदि रोगों का कारण विषाणु माने जाते हैं। पौधों में आलू, टमाटर, तंबाकू, लौकी, ककड़ी, मूंगफली आदि का चित्ती रोग, आड़ू का पीत रोग, चुकन्दर, मूली, पत्ता गोभी, शलजम आदि का कुंचिताग्र रोग तथा आलू और टमाटर के ऊति-क्षय (necrosis) रोग विषाणुओं के कारण उत्पन्न माने जाते हैं।

जीवाणु के हितकारी प्रभाव—यद्यपि कुछ जीवाणु (रोगाणु) अत्यधिक हानिकर होते हैं तथापि यह तथ्य है कि उन में से बहुसंख्यक अनेक प्रकार, विशेषतया कृषि और कुछ उद्योगों में अधिकतम हितकारी हैं।

(१) कृषि—(क) कार्बनिक पदार्थों का क्षय (Decay of Organic Substances)—अनेक जीवाणुओं के अधिकतम हितकारी कार्य के न होने पर पौधों और जन्तुओं के मृत कायों में निहित कार्बनिक पदार्थ स्थायी रूप से उन में बंद पड़े रहते। यथार्थ में बात यह है कि पौधों और जन्तुओं के मृत कायों पर विभिन्न प्रकार के जीवाणु क्रिया करते हैं और उन से प्रोटीन मुक्त होती है जो हरे पौधों को अनुकूल रूप में सुलभ बनाई जाती है। इस प्रकार यह देखा जाता है कि आक्सीजन की अनुपस्थिति में प्रोटीन ऐमोनियम यौगिकों के रूप

में रूपान्तरित (ऐमोनियाकरण) होते हैं और बाद में नाइट्राइट तथा नाइट्रेट रूप में आत्मीकृत होते हैं (नाइट्रीकरण) जो हरे पौधों के लिये अवशोषण के उपयुक्त होता है। कार्बोहाइड्रेट कार्बन डाइआक्साइड तथा पानी रूप में विघटित होते हैं। (ख) नाइट्रोजन विनिवेशन (Nitrogen Fixation)—एजोटोबैक्टर और क्लोस्ट्रीडियम नामक भूमि जीवाणुओं द्वारा सीधे अपने शरीर में और राइज़ोबियम (ग्रंथा जीवाणु) द्वारा शिंबीय पौधों के मूल के साहचर्य (association) में वायु के स्वतंत्र नाइट्रोजन का विनिवेशन कृषीय दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। (ग) उर्वरक (Fertilizers)—गोबर, जन्तुओं का उत्सर्ग (excreta) का खाद में परिवर्तन और ह्यूमस या पत्ती की खाद का निर्माण जीवाणु क्रिया के परिणाम हैं। मिट्टी में उसे उर्वर बनाने वाले अनेक रासायनिक परिवर्तन अधिकांशतः जीवाणुओं की (और मिट्टी के अन्य अनेक जीवों की भी) सक्रियता के परिणाम हैं। यथार्थतः मिट्टी की उर्वरता बहुत कुछ अंश तक उस में विद्यमान जीवाणुओं के कारण हो सकती है।

(२) औद्योगिक (Industrial)—औद्योगिक दृष्टिकोण से भी अनेक जीवाणु अधिकतम लाभदायक होते हैं। विशिष्ट महक के लिये तम्बाकू की पत्तियों का सुखाना (curing) और पकाना, चाय की पत्तियों का किण्वन, पनीर का पकना, रेशों का सड़ना, ऐसीटिक अम्ल जीवाणु (माइकोडर्मा) द्वारा ऐल्कोहल से सिरका (vinegar) का निर्माण, यीस्ट और कतिपय जीवाणुओं द्वारा शर्करा का ऐल्कोहल रूप में किण्वन, दुग्धाम्ल जीवाणु द्वारा दूध का दही जमना और किण्वन की अन्य अवस्थायें विशेषतया महत्वपूर्ण हैं।

(३) औषधीय (Medical)—हम लोग घातक रोगाणुओं के विरुद्ध अनेक कल्याणप्रद जीवाणुओं द्वारा साधारणतया सुरक्षित रहते हैं जो हमारे शैशव काल से हमारे विभिन्न अंगों में स्थायी उद्भिद समुदाय के रूप में जीवित रहते आते हैं। इस प्रकार ऐसे जीवाणुओं के विभिन्न तथा स्पष्ट प्ररूपों ने हमारे मुख, श्वसन प्रणाली, अंत्र आदि में अपना स्थायी निवास बना लिया है और वे रोगाणुओं के आक्रमण के विरुद्ध उन से रासायनिक युद्ध कर इन मार्गों की रक्षा करते हैं और हमें इन घातक प्ररूपों का शिकार बनने से बचाते हैं। वे अपने शरीर से कतिपय विशिष्ट रासायनिक विष—प्रतिजीवाणु पदार्थ (antibiotics) स्रावण कर इन विजातीय आक्रामक रोगाणुओं का ध्वंस करते हैं।

अध्याय ४

कवक (FUNGI)

(१) म्यूकर (*MUCOR*)—५० स्पीशीज

प्राप्तिस्थान—म्यूकर जिन्हें साधारणतया 'पिन फफूंद', कहते हैं एक मृतोपजीवी कवक है। यह घोड़े की लीद, गीले जूते, बासी नम रोटी, सड़े फलों, नीचे गिरे फूलों और अन्य कार्बनिक जीवाणु पोष पदार्थों पर मकड़ी के जाले के समान उत्पन्न होता है। यह प्रयोगशाला में एक कोष्ण स्थान में एक परिच्छादक (bell-jar) के नीचे ३-४ दिन तक रक्खी नम रोटी के टुकड़े पर सरलतया उत्पन्न कराया जा सकता है।

संरचना—पादप काय एक श्वेत, कोमल, रुई के समान सूत्रों की संहति से निर्मित होता है जिन्हें सामुहिकतः कवक जाल (mycelium; चित्र ५१५) कहते हैं। कवक जाल का प्रत्येक व्यक्तिगत सूत्र कवक तंतु कहलाता है। कवक सदा वहु शाखा विन्यस्त किन्तु पटहीन (unseptate) और अखंड-कोशिकीय (coenocytic) होता है। कवक तंतु के कोशिका द्रव्य में कई सूक्ष्म नाभिक, वहु-संख्यक रस धानियां होती हैं जिनमें प्रायः शर्करा, ग्लाइ-कोजन, और वसा तथा तेल की छोटी बूंदे होती हैं, किन्तु मंड नहीं होता।

म्यूकर। चित्र ५१५—वहुशाखित कवक जाल कुछ बीजाणुधानियों सहित।

प्रजनन—यह दो विधियों से निष्पन्न होता है, अर्थात् अलिंगी और लिंगी।

अलिंगी विधि—यह प्रजनन विधि बीजाणुओं (या स्थिर युग्मकों) द्वारा निष्पन्न होती है, जो आर्द्रता और ताप की अनुकूल स्थितियों में एक धानी में परिवर्धित होते हैं जिसे बीजाणु धानी (sporangium) कहते हैं। यह देखा जाता है कि कवक जाल जहां तहां वहुसंख्यक कवक तंतु फेंकते हैं, जो सीधे

वायु में ऊपर उठते हैं। इन कवक तन्तुओं में से प्रत्येक का अग्रस्थ भाग फूल कर एक गोलाकार सिर बन जाता है (चित्र ५१६)। केन्द्रीय भाग जो गुम्बदाकार (dome-shaped) और वन्ध्य (sterile) अर्थात् बीजाणु हीन होता है मध्यका (columella) कहलाता है। अब परिधिस्थ

म्यूकर। चित्र ५१६—बीजाणुधानी, बीजाणुओं और मध्यका का परिवर्धन। क, कवक-तन्तु का अंत फूलता है; ख, दो प्रदेश—सघन और हल्का-प्रत्यक्ष हैं और उनके बीच में रसधानियों का एक स्तर है, और ग, प्रौढ़ बीजाणुधानी बीजाणुओं और गुम्बदाकार मध्यका सहित।

जीवद्रव्य विदरण (cleavage) द्वारा अनेक छोटे बहुनाभिकीय और कोणीय संहतियां उत्पन्न करता है। प्रत्येक बहुनाभिकीय संहति गोल बन जाती है और भित्ति द्वारा आच्छादित हो कर एक बीजाणु बनाती है। इसकी भित्ति स्थूलित होती है और असित रंग की हो जाती है। बीजाणुधानी की भित्ति तनु और भंगुर (brittle) होती है। अन्त में जब मध्यका अपने अन्दर द्रव की मात्रा के संचय के कारण फूलती है तो वह बीजाणुधानी की भित्ति पर यथेष्ट दबाव डालती है जो इसके परिणाम स्वरूप विस्फोटित (bursts) हो जाती है और बीजाणुओं को निर्मुक्त करती है। बीजाणु हवा द्वारा बहा लिये जाते हैं। बीजाणु वायु में इधर-उधर उड़ते रहते हैं और अनुकूल स्थिति में उपयुक्त जीवाणु पोष में म्यूकर पादप रूप में अंकुरित होते हैं।

लिंगी विधि—लिंगी प्रजनन युग्मन विधि द्वारा (चित्र ५१७) केवल निश्चित अवस्थाओं में, विशेषतया जब खाद्य समाप्त हो जाता है, निष्पन्न होता है। युग्मन में दो समरूप युग्मकों अर्थात् समयुग्मकों (जैसे स्पाइरोगाइरा में) का सायुज्यन होता है। प्रक्रम इस प्रकार है: जब दो विरुद्ध लिंगों के दो विभिन्न पादपों [जिन्हे +प्रभेद (strain) और −प्रभेद कहते है] द्वारा धारण किये दो कवक तंतु सम्पर्क में आते हैं तो दो छोटे फुल्लित प्रोद्वर्ध (swollen protuberances) जिन्हे युग्मक नलिकायें या प्रयुग्मक (progamete) कहते हैं अपने अग्रों

अध्याय ४

कवक (FUNGI)

(१) म्यूकर (*MUCOR*)—५० स्पीशीज़

प्राप्तिस्थान—म्यूकर जिन्हें साधारणतया 'पिन फफूंद', कहते हैं एक मृतोपजीवी कवक है। यह घोड़े की लीद, गीले जूते, बासी नम रोटी, सड़े फलों, नीचे गिरे फूलों और अन्य कार्बनिक जीवाणु पोष पदार्थों पर मकड़ी के जाले के समान उत्पन्न होता है। यह प्रयोगशाला में एक कोष्ण स्थान में एक परिच्छादक (bell-jar) के नीचे ३-४ दिन तक रक्खी नम रोटी के टुकड़े पर सरलतया उत्पन्न कराया जा सकता है।

संरचना—पादप काय एक श्वेत, कोमल, रुई के समान सूत्रों की संहति से निर्मित होता है जिन्हें सामुहिकतः कवक जाल (mycelium; चित्र ५१५) कहते हैं। कवक जाल का प्रत्येक व्यक्तिगत सूत्र कवक तंतु कहलाता है। कवक सदा बहु शाखा विन्यस्त किन्तु पटहीन (unseptate) और अखंड-कोशिकीय (coenocytic) होता है। कवक तंतु के कोशिका द्रव्य में कई सूक्ष्म नाभिक, बहुसंख्यक रस धानियां होती हैं जिनमें प्रायः शर्करा, ग्लाइकोजन, और वसा तथा तेल की छोटी बूंदे होती हैं, किन्तु मंड नहीं होता।

म्यूकर। चित्र ५१५—बहुशाखित कवक जाल कुछ बीजाणुधानियां सहित।

प्रजनन—यह दो विधियों से निष्पन्न होता है, अर्थात् अलिंगी और लिंगी।

अलिंगी विधि—यह प्रजनन विधि बीजाणुओं (या स्थिर युग्मकों) द्वारा निष्पन्न होती है, जो आर्द्रता और ताप की अनुकूल स्थितियों में एक धानी में परिवर्धित होते हैं जिसे बीजाणु धानी (sporangium) कहते हैं। यह देखा जाता है कि कवक जाल जहां तहां बहुसंख्यक कवक तंतु फेंकते हैं, जो सीधे

वायु में ऊपर उठते हैं। इन कवक तन्तुओं में से प्रत्येक का अग्रस्थ भाग फूल कर एक गोलाकार सिर बन जाता है (चित्र ५१६)। केन्द्रीय भाग जो गुम्बदाकार (dome-shaped) और वन्ध्य (sterile) अर्थात् बीजाणु हीन होता है मध्यका (columella) कहलाता है। अब परिधिस्थ

म्यूकर। चित्र ५१६—बीजाणुधानी, बीजाणुओं और मध्यका का परिवर्धन। क, कवक-तन्तु का अंत फूलता है; ख, दो प्रदेश—सघन और हल्का-प्रत्यक्ष हैं और उनके बीच में रसधानियों का एक स्तर है; और ग, प्रौढ बीजाणुधानी बीजाणुओं और गुम्बदाकार मध्यका सहित।

जीवद्रव्य विदरण (cleavage) द्वारा अनेक छोटे बहुनाभिकीय और कोणीय संहतियां उत्पन्न करता है। प्रत्येक बहुनाभिकीय सहति गोल बन जाती है और भित्ति द्वारा आच्छादित हो कर एक बीजाणु बनाती है। इसकी भित्ति स्थूलित होती है और असित रंग की हो जाती है। बीजाणुधानी की भित्ति तनु और भंगुर (brittle) होती है। अन्त में जब मध्यका अपने अन्दर द्रव की मात्रा के संचय के कारण फूलती है तो वह बीजाणुधानी की भित्ति पर यथेष्ट दबाव डालती है जो इसके परिणाम स्वरूप विस्फोटित (bursts) हो जाती है और बीजाणुओं को निर्मुक्त करती है। बीजाणु हवा द्वारा बहा लिये जाते हैं। बीजाणु वायु में इधर-उधर उड़ते रहते हैं और अनुकूल स्थिति में उपयुक्त जीवाणु पोष में म्यूकर पादप रूप में अंकुरित होते हैं।

लिंगी विधि—लिंगी प्रजनन युग्मन विधि द्वारा (चित्र ५१७) केवल निश्चित अवस्थाओं में, विशेषतया जब खाद्य समाप्त हो जाता है, निष्पन्न होता है। युग्मन में दो समरूप युग्मकों अर्थात् समयुग्मकों (जैसे स्पाइरोगाइरा में) का सायुज्यन होता है। प्रक्रम इस प्रकार है: जब दो विरुद्ध लिंगों के दो विभिन्न पादपों [जिन्हें +प्रभेद (strain) और −प्रभेद कहते हैं] द्वारा धारण किये दो कवक तन्तु सम्पर्क में आते हैं तो दो छोटे फुल्लित प्रोद्वर्ध (swollen protuberances) जिन्हें युग्मक नलिकायें या प्रयुग्मक (progamete) कहते हैं अपने अग्रो

पर एक सम्पर्क निर्मित कर परिवर्धित होते हैं। जब वे दीर्घीकृत होते हैं तो वे जनक कवक तंतु को एक दूसरे से पृथक कर देते हैं। प्रत्येक प्रयुग्मक दीर्घित होता है और मुद्गराकार हो जाता है। शीघ्र ही यह एक विभाजक भित्ति द्वारा निलम्बी या सस्पेन्सर (suspensor) तथा अग्रस्थ युग्मकधानी (gametangium) रूप में विभाजित होता है (चित्र ५१७
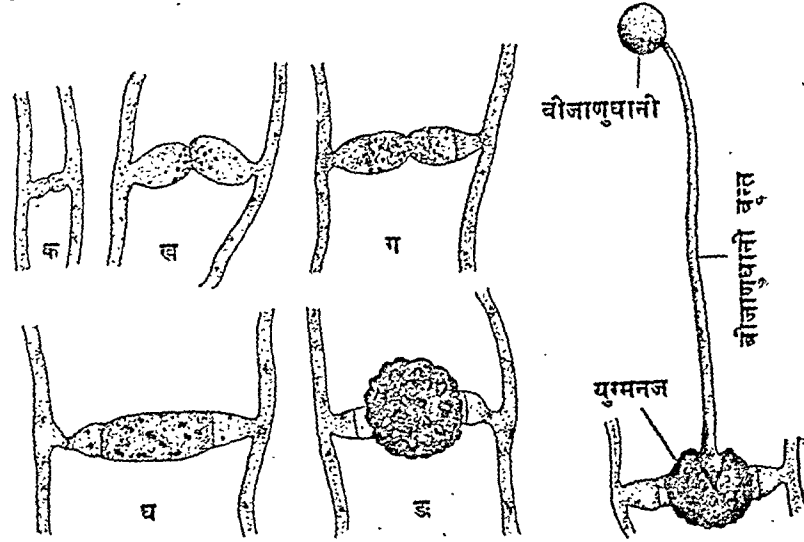
चित्र ५१७ चित्र ५१८

म्यूकर। चित्र ५१७—संयुग्मन: क-ङ: इस प्रक्रम की अवस्थायें हैं। ङ में स्थूल-भित्तीय युग्मनज का आलोकन करो। चित्र ५१८—युग्मनज का अंकुरण।

ग-घ)। प्रत्येक युग्मकधानी की अन्तर्वस्तुयें युग्मक संस्थापित करती हैं। युग्मक बहुनाभिकीय होते हैं और बहु नाभिक युग्मक (coenogamete) कहलाते हैं। दोनों युग्मक प्रत्येक प्रकार से एकसम (identical) होते हैं। दोनों युग्मक धानियों की अन्त्य या उभयनिष्ठ (end- or common) भित्तियां विलीन हो जाती हैं तथा दोनों युग्मक एकत्र सायुज्यित हो जाते हैं एवं युग्मनज की रचना करते हैं। युग्मनज (zygospore) गोलाकार काय रूप में फुल्लित हो जाता और उसकी भित्ति स्थूलित हो जाती है, रंग में काली पड़ जाती है और चर्मकीलित (warted) हो जाती है। उसमें खाद्य विशेषतया वसा गोलिकाओं की प्रचुरता होती है।

म्यूकर की कुछ स्पीशीज में ऐसा होता है कि यद्यपि युग्मन कवक तंतु सम्पर्क में आते हैं किन्तु युग्मकों का सायुज्यन नहीं होता। तब ये स्थूल भित्तीय बीजाणु

चित्र ५१९

रूप में संवर्धित होते हैं जिन्हें अयुग्मनज (azygospores) कहते हैं। कभी-कभी किसी कवक तंतु का स्वतंत्र अन्त्य (end) एक एकाकी अयुग्मजन उत्पन्न कर सकता है।

युग्मनज का अंकुरण (चित्र ५१८)—युग्मनज कुछ काल तक विश्राम करता है और तब अंकुरित होता है। बाह्यभित्ति विस्फोटित होती है और आन्तर भित्ति नलिका रूप में वृद्धि करती है जिसे बीजाणुधानी वृन्त या प्रकवक (sporangiophore or promycelium) कहते हैं जो एक एकाकी बीजाणुधानी में अन्त होता है। बीजाणुधानी वृन्त शाखीय हो सकता है जिसकी प्रत्येक शाखा एक बीजाणुधानी धारण करती है। बीजाणुधानी में अनेक छोटे बीजाणु होते हैं किन्तु मध्यका (columella) नहीं होती। बीजाणु अंकुरित होता है और म्यूकर पादप को जन्म देता है।

(२) सैकैरोमाइसीज़ (*SACCHAROMYCES*) (४० स्पीशीज)

प्राप्तिस्थान—यीस्ट (सैकैरोमाइसीज) शर्करा की बहुलता वाले कार्बनिक पदार्थों जैसे खजूर के रस, अंगूर के बागों की मिट्टी, और अंगूर में प्रचुरता से पाया जाता है। इस में शर्करा को ऐलकोहल रूप में परिवर्तित करने का गुण होता है। ताड़ी, ऐलकोहल, मदिरा, बीयर के निर्माण में यीस्ट की इस विशिष्ट
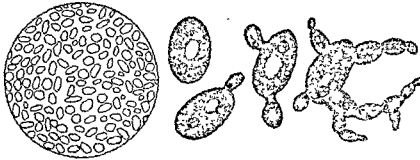
चित्र ५१९ चित्र ५२०

यीस्ट। चित्र ५१९—यीस्ट कोशिकायें जैसे सूक्ष्मदर्शी के नीचे दिखाई देती हैं। चित्र ५२०–समुद्भवन।

शक्ति से लाभ उठाया जाता है। पाव रोटी बनाने में भी यीस्ट का उपयोग होता है। उसकी स्पंजीयता का कारण किण्वन के समय में कार्बन डाइआक्साइड का उत्पादन है। उच्च विटामिन अंश के कारण इस का उपयोग औषधि के रूप में भी होता है।

संरचना (चित्र ५२१)—इसकी संरचना बहुत सरल है। एक एकाकी कोशिका पादप के पूर्ण काय का प्रतिनिधित्व करती है। यह आकार में अत्यन्त सूक्ष्म होती है और सूक्ष्मदर्शी के नीचे आलपीन के सिर समान दिखाई पड़ती है। प्रत्येक कोशिका अंडाकार या प्रायः गोलाकार और एक स्पष्ट कोशिका भित्ति युक्त होती है जो संभवतः काइटिन द्वारा निर्मित होती है और उस में एक या दो रसधानी युक्त एक कोशिका द्रव्य की संहति और एक एकाकी नाभिक अंतर्विष्ट होता है। नाभिक में एक बड़ी रसधानी होती है और यह नाभिकीय रसधानी यीस्ट की विलक्षणता है। रसधानी में नाभिक जालिका (nuclear reticulum) होती है जिस में एक पार्श्व में अणु नाभिक होता है। कोशिका द्रव्य में ग्लाइकोजन की कणिकायें, अनेक तैल गोलिकायें और प्रोटीन यौगिक भी न्याविष्ट होते हैं।
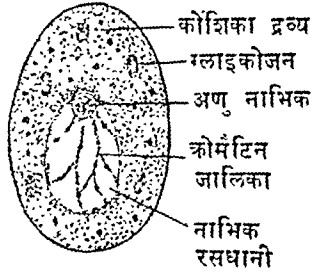
चित्र ५२१—एक यीस्ट कोशिका आवर्धित जिसमें नामिकीय-रसधानी दिखाई गई है।

प्रजनन—यह दो विधियों से निष्पन्न होता है, अर्थात् (१) वर्धी और (२) अलिंगी। लिंगी प्रजनन केवल थोड़ी स्पीशीज में ही निष्पन्न होता है।

वर्धी प्रजनन (चित्र ५२०)—जब खाद्य प्रचुर मात्रा में सुलभ होता है तो यह सामान्य परिस्थितियों में निष्पन्न होता है। प्रत्येक कोशिका एक या अधिक नन्हे उद्वर्धों (outgrowths) को उत्पन्न करती हैं जो क्रमशः आकार में वृद्धि करते हैं और अन्ततः मातृ-कोशिका से विच्छिन्न हो जाते हैं। तब ये स्वतंत्र जीवन यापन करते हैं। नाभिक असूत्रि संविभाजनतः (amitotically) विभाजित होता है तथा प्रत्येक उद्वर्ध में एक नाभिक चला जाता है। प्रजनन की यह विधि वर्धी समुद्भवन (budding) या जेम्मा समुद्भवन (gemmation) कहलाती है। समुद्भवन पुनारावृत (repeated) हो सकता है जिस के परिणाम स्वरूप मणिकामय कोशिकाओं की एक या अधिक शृंखला या उपशृंखला निर्मित होती हैं। ये कोशिकायें अन्ततः एक दूसरे से पृथक्कृत हो कर व्यक्तिगत एक कोशिक यीस्ट पादप बनाते हैं।

अलिंगी प्रजनन (चित्र ५२२)—प्रतिकूल स्थितियों में, विशेषतया जब खाद्य पदार्थ समाप्त हो चुका हो यीस्ट कोशिका दीर्घतर हो जाती है और स्वयं बीजाणु-धानी के रूप में कार्य करती है जिसे ऐस्कस (ascus) कहते हैं। जब आक्सीजन का बाहुल्य होता है तो ऐस्कस का नाभिक चार भागों में विभाजित

हो जाता है। जीवद्रव्य प्रत्येक नाभिक के चारों ओर एकत्र होता है और इस प्रकार ऐस्कस बीजाणु (ascospores) नामक चार बीजाणु निर्मित होते हैं जिनमें प्रत्येक में एक दृढ़ भित्ति होती है। चार बीजाणुओं के स्थान पर कभी-कभी २ या ८ भी निर्मित हो सकते हैं। ये सुप्त बीजाणु होते हैं और
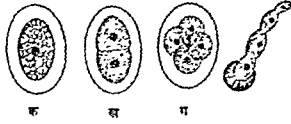
चित्र ५२२ चित्र ५२३

यीस्ट। चित्र ५२२—बीजाणुओं का निर्माण। चित्र ५२३—एक अंकुरित बीजाणु।

जीवन की विषम अवस्थाओं का सामना कर सकते हैं। ऐस्कस की भित्ति विदीर्ण होती है और बीजाणु हवा द्वारा उड़ा लिये जाते हैं। जब वे एक अनुकूल माध्यम पाते हैं तो वे अंकुरित होते हैं और समुद्भवन प्रक्रम से प्रजनन करते हैं (चित्र ५२३) आधुनिक अनुसंधानों की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि यह विधि यथार्थत अनिषेकजनक (parthenogenetic) है और अलिंगी नहीं है।

लिंगी प्रजनन (चित्र ५२४)—यीस्ट की कुछ स्पीशीज युग्मन द्वारा लिंगी विधि से भी प्रजनन करती हैं। युग्मन के प्रक्रम में दो आसन्न (adjacent) कोशिकायें क्षुद्र प्रोद्वर्ध फेंकती हैं जो एक दूसरे से संयुक्त हो जाते हैं। तब दो नाभिक युग्मन नलिका में चले जाते हैं और एक दूसरे से सायुज्यित हो जाते हैं। इस प्रकार निर्मित निषेचनज् (ऐस्कस) आठ नाभिक निर्मित करने के लिये विभाजित होता है। प्रत्येक नाभिक एक भित्ति से अपने को आवृत कर लेता है, दीर्घित होता है और ऐस्कस बीजाणु नाम से ज्ञात होता है। यह ऐस्कस बीजाणु समुद्भवन (budding) या अनुप्रस्थत (transversely) विभाजित हो कर अंकुरित होता है। कभी-कभी अंकुरण प्रारम्भ

यीस्ट। चित्र ५२४—यीस्ट कोशिकाओं का संयुग्मन और ऐस्कस बीजाणुओं का निर्माण।

करने के ठीक पूर्व या पश्चात ऐस्कस बीजाणु क्षुद्र, पतली युग्मन नलिकाओं द्वारा युग्म रूप में युग्मित होते हैं।

ऐलकोहली किण्वन (Alcoholic Fermentation)—जब यीस्ट कोशिकायें शर्करा विलयन में, जैसे खजूर के रस, ताड़ के रस या अंगूर के रस में उत्पन्न होती है तो वे एक ऐन्ज़ाइम (जाइमेस) द्वारा उस में किण्वन उत्पन्न करती है। शर्करा विघटित होती है और ऐलकोहल तथा कार्बन डाइआक्साइड मुख्य उत्पाद निर्मित होते हैं। कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकलता है और प्राय: विलयन के तल पर झाग उत्पन्न होता है। जब आक्सीजन का प्रदाय प्रचुर मात्रा में होता है तो अपेक्षतया थोड़ा ऐलकोहल निर्मित होता है। किन्तु जब आक्सीजन नहीं दिया जाता तो ऐलकोहल अधिक स्वतंत्रता से निर्मित होता है। शर्करा में निम्नलिखित रासायनिक परिवर्तन निष्पन्न होता है।

$C_6H_{12}O_6$+जाइमेस=$2C_2H_5OH+2CO_2$+जाइमेस+ऊर्जा

शर्करा+जाइमेस=ऐलकोहल+कार्बन डाइआक्साइड+जाइमेस+ऊर्जा
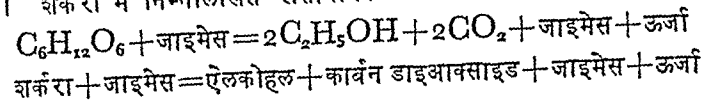
अध्याय ४

मॉस (MOSS)

मॉस (चित्र ५२५)—साधारणतया पुरानी नम दिवालों, पेड़ के स्तम्भों और नम भूमि पर वर्षा ऋतु में पाया जाता है, लेकिन जाड़े में यह सूख जाता है। यह वृन्द वृति (gregarious habit) का पौधा है, अर्थात् ये पौधे बहुत अधिक संख्या में एक साथ समूह में उगते हैं। यह जहां कहीं भी उत्पन्न होता है वहां एक हरा सिध्म (patch) या एक कोमल मखमल नुमा हरा गलीचा सा बनाता है। मॉस की तथा उसके संमित्रों की लगभग १४,२०० स्पीशीज हैं।

मॉस पादप एक छोटा, लगभग १ इंच से कुछ न्यूनाधिक ऊंचा होता है और इस में एक क्षुद्र अक्ष में सर्पिलाकार विन्यस्त सूक्ष्म हरी पत्तियां होती हैं जो अग्रक की ओर सघन होती हैं। सत्य मूल अविद्यमान (absent) होते हैं और इस में अनेक दुर्बल, बहुकोशिक, शाखावत मूलांग (rhizoids) होते हैं जो मूल का कार्य करते हैं। अक्ष शाखावत् या शाखाहीन हो सकता है।

जीवन-चक्र—मॉस का जीवन-चक्र जो निम्न वर्णित है दो अवस्थाओं—युग्मक-सू (gametophyte) और बीजाणुजनक (sporophyte) में पूर्ण होता है (चित्र ५३०)।

चित्र ५२५

युग्मक-भू (Gametophyte)—मॉस पादप युग्मक-भू है, अर्थात् यह युग्मक धारण करता है और लिंगी विधि से प्रजनन करता है। इस प्रयोजन के लिये प्ररोह के अग्रक पर अत्यन्त अवकलित नर और मादा अंग संवधित होते हैं। नर अंग पुंधानी (antheridium) कहलाता है तथा मादा अंग अंडधानी
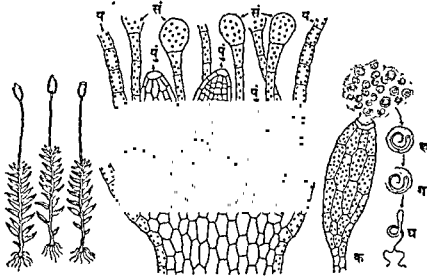
चित्र ५२५ चित्र ५२६ चित्र ५२७

मॉस। चित्र ५२५—दो मॉस पौधे। चित्र ५२६-नर प्ररोह का शीर्ष; पु, पुंधानी; प, पत्तियां; ससूत्र। चित्र ५२७—क, पुंधानी (विस्फोटित); स, पुम्-अणु मातृकोशिका; ग, द्वि-पक्ष्मी पुम्-अणु।

(archegonium) कहलाता है। ये अंग कभी-कभी ससूत्र (para-physes) नामक कुछ बहुकोशिक रोमवत् संरचना से अन्तर्मिश्रित होते हैं। पुंधानी और अंडधानी दोनों ही एक ही शाखा या प्ररोह पर [illegible] ही पौधे की दो शाखाओं पर (एकक्षयक) या दो विभिन्न पौधों पर [illegible] स्थित हो सकते हैं।

पुंधानी (Antheridium; चित्र ५२६-२७)—एक [illegible] मुद्गराकार काय है जिस के अन्दर प्रसुक्त जन्तु मातृ [illegible] क्षुद्र कोशिकायें भरी रहती हैं। पुंधानी अग्रक पर [illegible] कोशिकायें उस के मार्ग से एक श्लेष्म की संहति [illegible] हैं। मातृ कोशिका की श्लेष्मी भित्तियां [illegible] जन्तु या नर युग्मक (चित्र ५२७) निर्मुक्त हो जाते हैं [illegible]

सूक्ष्म, सर्पिलाकार कुंडलित और द्विकक्षी होते हैं; निर्मुक्त होने के पश्चात वे वर्षा के बाद मॉस पादप के अग्रक के समीप संगृहीत जल में तैरते हैं।

अंडधानी (Archegonium; चित्र ५२८-२९) भी एक बहुकोशिक काय है किन्तु यह रूप में फ्लास्क के आकार की होती है। यह एक क्षुद्र, बहु-कोशिक वृन्त से युक्त होती है तथा इस में दो भाग होते हैं: निचला फुल्लित भाग अंडधानी आधार (venter) कहलाता है और उपरला नलिकावत भाग
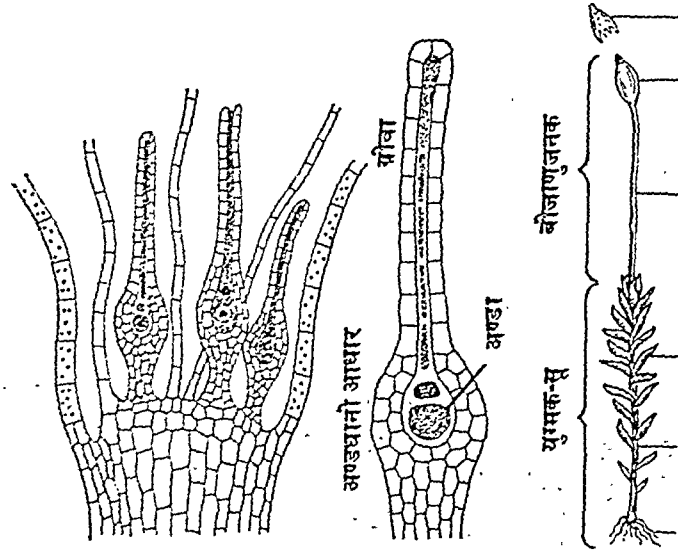
चित्र ५२८ चित्र ५२९ चित्र ५३०

मॉस। चित्र ५२८—मादा प्ररोह का शीर्ष जिसमें तीन अंडधानियां, तीन संसूत्र और दो पत्तियां दिखाई गई हैं। चित्र ५२९—एक अंडधानी। चित्र ५३०—एक मॉस पादप।

ग्रीवा (neck) कहलाता है। ग्रीवा लम्बी, पतली और सीधी होती है। अंडधानी आधार के अन्तर्गत एक दीर्घ कोशिका होती है जो अण्डाणु (अंड कोशिका) या मादा युग्मक कहलाती है; इस से ऊपर एक क्षुद्र प्रतिपृष्ठ नाल कोशिका (ventral canal cell) होती है और उस से ऊपर ग्रीवा में कुछ ग्रीवा नाल कोशिकायें (neck canal cell) होती हैं। अंड के अतिरिक्त उपरोक्त अन्य कोशिकायें कार्यहीन होती हैं और शीघ्र विघटित (disorganized) हो जाती हैं। ग्रीवा प्रथमतः एक पिधानक के समान संरचना से अग्रक पर बन्द

रहती है किन्तु जब अंडधानी परिपक्व होती है तो पिधानक खुल जाता है और प्रगुकजन्युओं को अंतर्प्रवेश करने और उस मार्ग जाने देता है।

निषेचन निम्न विधि से निष्पन्न होता है: जब अंडधानी परिपक्व होती है तो यह श्लेष्म के साथ इक्षु शर्करा स्रावण करती है। यह प्रगुकजन्युओं के एक समूह को आकर्षित करता है जो ग्रीवा नाल (neck canal) के मार्ग प्रवेश करते हैं तथा अंडधानी आधार में चले जाते हैं। उनमें से एक अंड से सायुज्यित हो जाता है और शेष मृत हो जाते हैं। निषेचन के पश्चात निषेचनज् अपने को भित्ति से आवृत कर लेता है और तब शुकाण्ड या शुक्तिांड (oospore) नाम से पुकारा जाता है। शुक्तिांड अपने ही स्थान पर अंकुरित होता है तथा मॉस पादप पर स्पोरोगोनियम को जन्म देता है (चित्र ५३०)।

बीजाणु जनक—स्पोरोगोनियम बीजाणु जनक है अर्थात् यह बीजाणु धारण करता है और अलिंगी विधि से प्रजनन करता है। स्पोरोगोनियम में पाद (foot), संपुटिका वृन्त (seta) और संपुटिका (capsule) होते हैं। संपुटिका वृन्त दुर्बल वृन्त होता है जो सपुटिका धारण करता है। पाद एक क्षुद्र शंक्वाकार संरचना है जो मॉस पादप के ऊतक में अपने को गाड़ देती है। स्पोरोगोनियम स्वतंत्र पादप नहीं है। यह मॉस पादप पर अर्ध पराश्रयी रूप में उगता है। यह अंशत: मॉस पादप (युग्मकन्सू) से अपना खाद्य लेता है और अंशत: अपना खाद्य स्वयं निर्मित करता है। शुक्तिांड ऊपरी और निचले दो कोशिकाओं में विभाजित होता है; निचली कोशिका बारबार विभाजन द्वारा पाद के साथ संपुटिका वृन्त निर्मित करती है और ऊपरी कोशिका सपुटिका के बहुकोशिक संकुल (complex) काय को निर्मित करती है। जब शुक्तिांड वृद्धि करता है तो अंडधानी कहीं पर मध्य में स्फोटित होती है। स्फोटित अंडधानी का ऊपरी अर्ध भाग तब संपुटिका के अग्रक को आवृत करती हुई एक प्रकार की टोपी निर्मित करती है जो कैलिप्ट्रा (calyptra) कहलाता है। कैलिप्ट्रा एक शिथिल टोपी रूप में होता है और बाद में उड़ा दिया जाता है।

संपुटिका (capsule; चित्र ५३१) एक संकुल (complex) काय है और न्यूनाधिकतया नासपाती के आकार का होता है। इसके अनुलम्ब काट में निम्न प्रदेश दिखाई देते हैं:

(१) पिधानक या पुट (Operculum)—यह सपुटिका का ढक्कन या पिधान है और उसकी चोटी पर रहता है। यह कुछ स्तरों युक्त मोटाई का होता है। जब संपुटिका स्फोटित होती है तो पिधानक एक वृत्तीय, चपकाकार पिधान रूप में बाहर निकल आता है।

(२) वलय (Annulus)—यह बाह्यत्वचीय कोशिकाओं का विशेष वलयवत्

स्तर है जो पिधानक के आधार में संपुटिका के चारों ओर स्थित होता है। वलय के स्फोटन से संपुटिका स्फोटित होती है।

(३) परितुण्डिका (Peristome)—जब पिधानक गिर जाता है तो संपुटिका का शिखर स्थूलित दंतवत् प्रक्षेपों की एक या दो पंक्तियों से युक्त प्रदर्शित होता है जो परितुण्डिका निर्मित करते हैं। ये दंत आर्द्रताग्राही (hygroscopic) होते हैं और जब वे शुष्क हो जाते हैं तो वे खुल जाते हैं तथा बीजाणुओं के विकिरण में सहायता करते हैं।
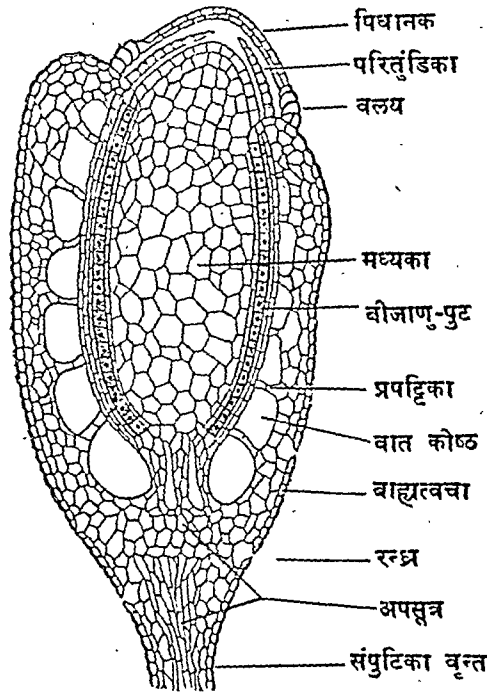
चित्र ५३१—मॉस का सम्पुटिका अनुदैर्घ्य काट में।

(४) मध्यका (Columella)—यह संपुटिका का ठोस केन्द्रीय स्तंभ (column) है। यह वन्ध्य होता है अर्थात् इस में बीजाणु नहीं होते। इस में बीजाणुओं के परिवर्धन के लिये जल तथा खाद्य पदार्थ संचित रहता है।

(५) बीजाणु-पुट (Spore-sac)—यह मध्यका के चारों ओर स्थित होता है तथा इस में अनेक क्षुद्र कोशिकायें अंतर्विष्ट होती हैं। यह बाह्यतः कोशिकाओं के कुछ स्तरों से आवद्ध होता है और आन्तरिकतः एक स्तर से आवद्ध

होता है। बीजाणु पुट की प्रत्येक कोशिका बीजाणु मातृ कोशिका होती है। यह चार बीजाणु निर्मित करने के लिये शीघ्र ह्रास विभाजन करती है। संपुटिका वलय पर स्फोटित होती है और पिधान गिर जाता है। एक लम्बे वृन्त पर आसीन होने के कारण संपुटिका पवन द्वारा उद्वेलित (disturbed) होती है और बीजाणु बीजाणु-पुट से बाहर फेंक दिये जाते हैं।

(६) वात-कोष्ठ (Air-cavity)—यह बीजाणु पुट को परिवारित करता हुआ बेलनाकार कोष्ठ रूप में स्थित रहता है तथा ट्रेबेक्यूला या प्रपट्टिका नाम से ज्ञात कोशिकाओं के कोमल वलयकों द्वारा पारगमित (traversed) रहता है।

(७) संपुटिका भित्ति (Capsule Wall)—इस की रचना इन से होती है: (क) वात कोष्ठ के ठीक बाहर हरिम कणकधारी कुछ स्तर; (ख) जल अंतर्विष्ट रखने वाली दीर्घतर कोशिकाओं के कुछ स्तर–उपबाह्यत्वचा (sub-epidermis), और (ग) बाह्यत: एक स्पष्ट स्तर–बाह्यत्वचा (epidermis)।

(८) अपसूत्र या एपोफाइसिस (Apophysis)—यह संपुटिका का ठोस आधारीय भाग है जिसमें ये प्रदेश होते हैं: (क) कुछ रन्ध्र धारण करने वाली एक स्पष्ट बाह्यत्वचा, (ख) हरिम कणक अंतर्विष्ट रखने वाली उप बाह्यत्वचा और (ख) जल अंतर्विष्ट रखने वाली दीर्घीकृत कोशिकाओं का एक केन्द्रीय मंडल—जल संवाहक ऊतक (water-conducting tissue)।

बीजाणु का अंकुरण—संपुटिका के स्फुटन के पश्चात् बीजाणु हवा द्वारा विकिरित होते हैं और वे अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित होते हैं। बीजाणु एक क्षुद्र नलिका रूप में वृद्धि करता है जो लम्बाई में बढ़ती है और अतत. एक हरित, बहुशाखी तंतु (filament) निर्मित करती है। यह प्रतन्तु (protonema) कहलाता है (चित्र ५३२)। यह जहां तहां लम्बे, कोमल और भूरे मूलांग और कुछ क्षुद्र पार्श्विक कलिकायें उत्पन्न करता है। ये पार्श्विक कलिकायें नवीन मॉस पादप रूप में परिवर्धित होती हैं जो पुन एक मंडल (colony) स्थापित करता है। इस प्रकार मॉस का जीवन-चक्र पूर्ण होता है।

चित्र ५३२—मॉस का प्रतन्तु (कलिकाओं और मूलांगों का आलोकन करो)।

पीढ़ी एकान्तरण (Alternation of Generations; चित्र ५३३)—मॉस पादप इस प्रकार दो पीढ़ियां प्रदर्शित करता है जो नियमित रूप से एक दूसरे से एकान्तरण करते हैं और जब पौधा इन दोनों पीढ़ियों के मार्ग जाता है तभी

जीवन वृत पूर्ण होता है। माँस पादप स्वयं युग्मक-सू (युग्मक धारी पादप) और स्पोरोगोनियम वीजाणु जनक (वीजाणुधारी पादप) है। युग्मक-सू युग्मकों
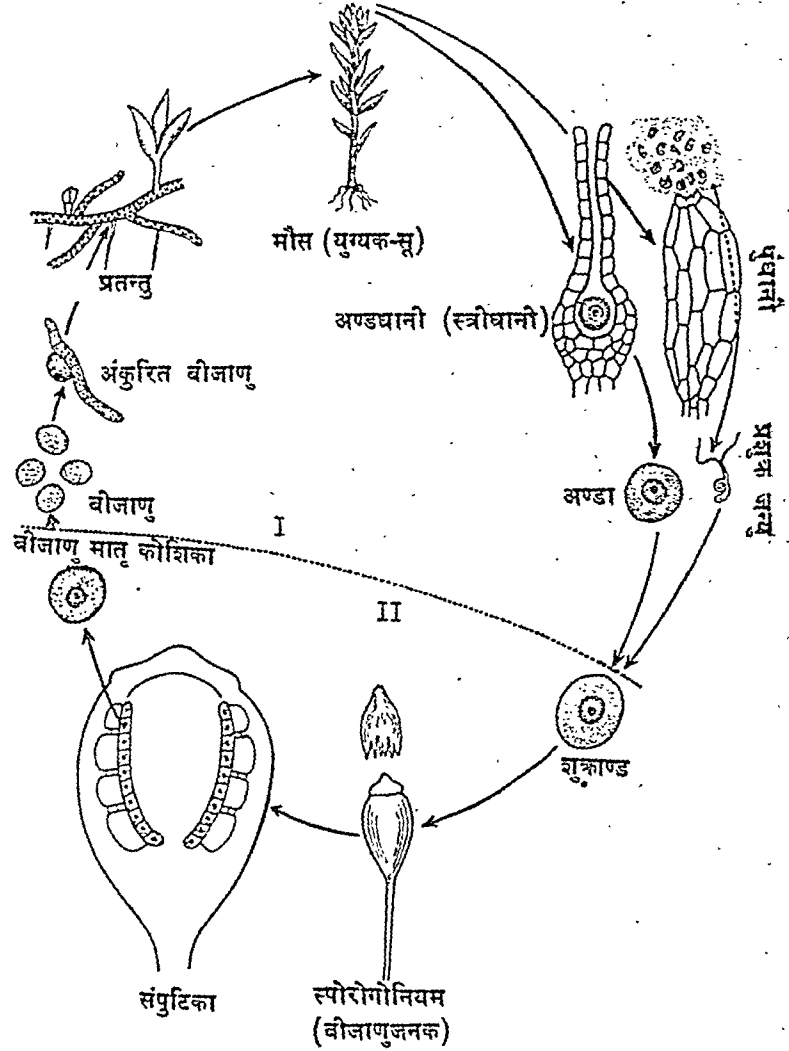
चित्र ५३३—माँस का जीवन-चक्र। *I* युग्मक-सू पीढ़ी (अगुणित) और *II* वीजाणु जनक पीढ़ी (द्विगुणित)

(प्रपुंजन्यु और अंडा) द्वारा लिंगी प्रजनन के मार्ग वीजाणु जनक को जन्म देता है तथा वीजाणु जनक वीजाणुओं द्वारा अलिंगी प्रजनन के मार्ग युग्मक-सू को जन्म

देता है। मॉस के जीवन वृत में बीजाणु मातृ कोशिका से बीजाणु की रचना में सर्व प्रथम गुणसूत्रों का अर्ध या अगुणित n संख्या में ह्रास निष्पन्न होता है। अतएव बीजाणु लिंगी या युग्मक-भू पीढ़ी का प्रारम्भ है और बीजाणु से प्रशुक्रजन्यु और अंड तक विभिन्न अवस्थायें युग्मक-भू या लिंगी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है, क्यों कि उन सब में गुणसूत्र संख्या अगुणित (n) होती है। प्रशुक्रजन्यु और अंडा सायुज्यित होते है और गुण सूत्रों की संख्या दुगुनी हो जाती है अर्थात् द्विगुणित ($2n$) संख्या शुक्रिताड में पुनःस्थापित हो जाती है। अतएव शुक्रितांड अलिंगी या बीजाणु जनक पीढ़ी के प्रारम्भ का प्रतिनिधित्व करता है और शुक्रितांड, स्पोरोगोनियम और बीजाणु मातृ कोशिकाएं बीजाणुजनक या अलिंगी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि इन सब में गुणसूत्रों की संख्या द्विगुणित ($2n$) होती है।

अध्याय ५

पर्णांग (FERN)

पर्णांग (चित्र ५३४) अत्यन्त परिवर्धित क्रिप्टोगम्स का एक वर्ग है और संसार भर में वितरित हैं। ये प्रायः शीतल, छायादार नम स्थलो में पहाड़ों और मैदानों दोनों में ही बहुतायत से उत्पन्न होते हैं।

इनमें स्तम्भ मुख्यतः प्रकद होता है किन्तु कभी-कभी यह ऊर्ध्व और वायवीय होता है, जैसे वृक्ष पर्णांगों (tree ferns) में। इनके मूल अस्थानिक (रेशेदार) होते हैं तथा प्रायः प्रकन्द से गुच्छ रूप में उत्पन्न होते हैं। पत्तियां प्रायः पक्षवत् संयुक्त होती हैं, और तरुण अवस्था में कुण्डलाकार होती हैं (चित्र ५३४), और अग्रस्थ वृद्धि इनका एक विशिष्ट लक्षण हैं। अक्ष या प्राक्ष (rachis) द्वारा धारण की हुई पार्श्व पत्तियां पक्षक (pinnae) कहलाती हैं; कभी-कभी ये न्यूनाधिकता गंभीर पक्षवत पिंडकीय (lobed) होते हैं तथा तब प्रत्येक पिंडक पक्षकी (pinnule) कहलाती हैं। स्तम्भ तथा वृन्त शल्कावरण (ramenta) नाम से ज्ञात अनेक भूरे शल्कों से आच्छादित रहते हैं।

जीवन-चक्र—पर्णांग का जीवन-चक्र, जैसे नीचे वर्णित हैं, दो अवस्थाओं—बीजाणु जनक और युग्मक-भू, में पूर्ण होता हैं। पर्णांग पादप बीजाणु जनक है और इसका अनुवर्तन सूकायक नामक दूसरी संरचना करती है जो पर्णांग पादप से स्वतन्त्रतः भूमि में उत्पन्न होती है और युग्मक-भू हैं।

बीजाणु जनक—पर्णांग पादप (चित्र ५३४) बीजाणु जनक है, अर्थात् यह बीजाणु धारण करता है और अलिंगी विधि से प्रजनन करता है।

चित्र ५३४—एक पर्णांग पादप; दाहिने, पक्षक का एक भाग धानीगुच्छ सहित।

बीजाणु धानियाँ और बीजाणु (Sporangia and Spores)—साधारण वर्धी पर्ण या विशेषतः रूपान्तरित सत्य पत्र, अर्थात् बीजाणु पर्ण (जैसा कि बीजाणु-धारी पर्ण कहा जाता है) के अधःपृष्ट पर अनेक गहरी भूरी या तरुण अवस्था में पीलापन लिये हुये हरित संरचनायें दिखाई देती हैं। ये **धानीगुच्छ (sori)** कहलाते हैं। ये शिराओं पर होते हैं और पत्ती के प्रत्येक पर्णक या पक्षक में दो पंक्तियों में विन्यस्त होते हैं। प्रत्येक धानीगुच्छ में वृहत संख्या में लघुवृन्तीय बीजाणुधानियां होती हैं जो **पुंजच्छद (indusium)** नामक वृक्काकार कवच द्वारा आच्छादित होते हैं। बीजाणु धानियां और पुंजच्छद पर्ण के प्राग्रक (papilla) समान उद्वर्ध से संवर्धित होते हैं। यह उद्वर्ध **जरायु (placenta)** कहलाता है। [टेरिस (*Pteris*) नामक पर्णांग में बीजाणुधानियां पक्षकों के दोनों किनारों पर निचली सतह में दो पंक्तियों

में विन्यस्त रहती हैं। इस प्रकार के धानीगुच्छ को सीनोसोरस (cocnosorus) कहते हैं। पक्षक के किनारे नीचे की ओर मुड़ कर धानीगुच्छ को ढके रहते हैं। इस प्रकार का पुंजच्छद कूट पुंजच्छद (false indusium) कहलाता है।]
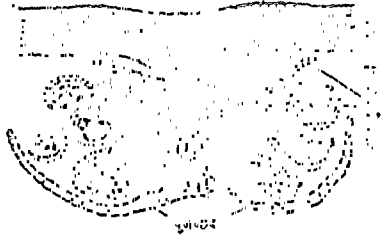
पर्णांग। चित्र ५३५—धानी गुच्छ का काट।

प्रत्येक बीजाणु धानी (sporangium; चित्र ५३६) में एक लघु, बहुकोशिक वृन्त तथा एक संपुटिका (capsule) होती है जो उभयोत्तल (biconvex) होती है। संपुटिका के अन्दर अत्यन्त क्षुद्र कणकों की संहति होती है, ये बीजाणु हैं। सर्व प्रथम संपुटिका में १६ बीजाणु मातृ कोशिकायें होती हैं; ये ह्रास विभाजन कर ३२ अपत्य कोशिकायें (daughter-cells) बनाती हैं। अपत्य कोशिकायें फिर सम विभाजन द्वारा ६४ बीजाणु बनाते हैं। संपुटिका की भित्ति में तनुभित्तीय (thin-walled) कोशिकाओं का एकल स्तर होता है। संपुटिका के तट के चारों ओर विशिष्टत स्थूलित और क्यूटिनीकृत पट्टी या वलय होती है। यह वलय जो एक पार्श्व में अपूर्ण और तनु भित्तीय होती है वलय (annulus) कहलाती है और इस का अस्थूलित भाग स्फुटन-मुख (stomium) कहलाता

पर्णांग। चित्र ५३६—बीजाणु-धानियां (संपुटिका और वृन्त); क, संपुटिका स्फुटन-मुख पर थोड़ा खुली हुई, ख, संपुटिका विस्फोटित हो गई है और वलय पीछे मुड़ रहा है।

है। जब बीजाणु परिपक्व होते हैं तो वे आकार में बड़े हो जाते हैं और शुष्क अवस्था में संपुटिका स्फुटन-मुख पर स्फोटित होती है, और बीजाणुओं को निर्मुक्त करती हैं। जब संपुटिका स्फोटित होती है तो वलय पीछे झुक जाता है और फिर अपनी पूर्व अवस्था में आता है तथा इस प्रक्रम में बीजाणुओं को निष्कासित करता है। पर्णांग पादप समबीजाणु (homosporous) होता है अर्थात वह केवल एक प्रकार के बीजाणु धारण करता है।

युग्मक-सू (Gametophyte)—सूकायक (prothallus; चित्र ५३७) युग्मक-सू है, अर्थात् यह युग्मक धारण करता है और लिंगी विधि से प्रजनन करता है। ताप और आर्द्रता की अनुकूल अवस्थाओं में बीजाणु अंकुरित होता है। प्रथमतः यह

चित्र ५३७—पर्णांग का सूकायक।

एक लघु हरित तंतु को जन्म देता है जो शैवाल या मॉस प्रतन्तु से सादृश्य रखता है। तत्पश्चात कोशिकाओं के अतिरिक्त विभाजन द्वारा यह एक क्षुद्र, हरित, चपटा, लगभग एक-तृतीयांश इंच चौड़ा हृदयाकार काय उत्पन्न करता है। यह सूकायक कहलाता है। परिपक्वता पर सूकायक एक सूक्ष्म, चपटी ऊतक संहति होती है। इसके तट पर कोशिकाओं का एकल स्तर होता है जब केन्द्रीय भाग कोशिकाओं के अनेक स्तरों की मोटाई से निर्मित अपेक्षाकृत मोटा होता है। सूकायक के अधर पृष्ठ से मूलांग नाम के एककोशिक रोमिल प्रवर्ध (processes) उत्पन्न होते हैं। ये सूकायक को मिट्टी

में स्थिर कर देते हैं तथा जल
के लिये सूकायक के अधर पृष्ठ
ये पुंधानी या नर अंग और अंड
और अंडधानियां जातिका (
पुंधानी (Antheri
हैं जिस के अंतर्गत अनेक प्रचुक

पर्णांग। चित्र ५३
मातृ कोशिका
के

में एक एकल सर्पिलाकार
अधिकांशतः नाभिकीय
रूप की संरचनायें धारण
अंडधानी (Archego
है। इसका फूला हुआ आध

चित्र ५३९—अण्डधानी
निषेचन के लिये

में स्थिर कर देते हैं तथा जल और खनिज लवण अवशोषित करते हैं। प्रजनन के लिये सूकायक के अधर पृष्ठ पर उच्चतः विशिष्ट संरचनायें उत्पादित होती हैं; ये पुंधानी या नर अंग और अंडधानी या स्त्री अंग होते हैं। पुंधानियां मूलांगों के मध्य और अंडधानियां खातिका (groove) के निकट सर्वधित होते हैं।

पुंधानी (Antheridium; चित्र ५३८)—एक गोलाकार या अंडाकार काय है जिस के अंतर्गत अनेक प्रशुक्रजन्यु मातृ कोशिकायें होती हैं। प्रत्येक मातृ कोशिका

पर्णांग। चित्र ५३८—पुंधानी। क, एक तरुण पुंधानी पुम्-अणु मातृ कोशिका सहित; ख, एक प्रौढ़ पुंधानी विस्फोटित होने के बाद; ग, एक पुम्-अणु।

में एक एकल सर्पिलाकार कुंडलित प्रशुक्रजन्यु या पुम्-अणु परिवर्धित होता है जो अधिकांशतः नाभिकीय पदार्थ का बना होता है। यह अपने अग्र पर अनेक सूक्ष्म सूत्र रूप की संरचनायें धारण करता है जिनको पक्ष्म कहते हैं।

अंडधानी (Archegonium, चित्र ५३९)—एक फ्लास्क के आकार का काय है। इसका फूला हुआ आधारीय भाग अंडधानी आधार (venter) कहलाता है तथा

चित्र ५३९—अण्डधानी। क, एक तरुण अण्डधानी; और ख, एक प्रौढ़ अण्डधानी निषेचन के लिये तैयार। अण्डधानी आधार और ग्रीवा का आलोकन करो।

है। जब बीजाणु परिपक्व होते हैं तो वे आकार में बड़े हो जाते हैं और शुष्क अवस्था में संपुटिका स्फुटन-मुख पर स्फोटित होती है, और बीजाणुओं को निर्मुक्त करती हैं। जब संपुटिका स्फोटित होती है तो वलय पीछे झुक जाता है और फिर अपनी पूर्व अवस्था में आता है तथा इस प्रक्रम में बीजाणुओं को निष्कासित करता है। पर्णांग पादप समबीजाणु (homosporous) होता है अर्थात वह केवल एक प्रकार के बीजाणु धारण करता है।

युग्मक-सू (Gametophyte)—सूकायक (prothallus; चित्र ५३७) युग्मक-सू है, अर्थात् यह युग्मक धारण करता है और लिंगी विधि से प्रजनन करता है। ताप और आर्द्रता की अनुकूल अवस्थाओं में बीजाणु अंकुरित होता है। प्रथमतः यह

चित्र ५३७—पर्णांग का सूकायक।

एक लघु हरित तंतु को जन्म देता है जो शैवाल या मॉस प्रतन्तु से सादृश्य रखता है। तत्पश्चात कोशिकाओं के अतिरिक्त विभाजन द्वारा यह एक क्षुद्र, हरित, चपटा, लगभग एक-तृतीयांश इंच चौड़ा हृदयाकार काय उत्पन्न करता है। यह सूकायक कहलाता है। परिपक्वता पर सूकायक एक सूक्ष्म, चपटी ऊतक संहति होती है। इसके तट पर कोशिकाओं का एकल स्तर होता है जब केन्द्रीय भाग कोशिकाओं के अनेक स्तरों की मोटाई से निर्मित अपेक्षाकृत मोटा होता है। सूकायक के अधर पृष्ठ से मूलांग नाम के एककोशिक रोमिल प्रवर्ध (processes) उत्पन्न होते हैं। ये सूकायक को मिट्टी

में स्थिर कर देते हैं तथा जल और खनिज लवण अवशोषित करते हैं। प्रजनन के लिये सूकायक के अधर पृष्ठ पर उच्चत: विनिष्ट संरचनायें उत्पादित होती हैं ; ये पुंधानी या नर अंग और अंडधानी या स्त्री अंग होते हैं। पुंधानियां मूलांगों के मध्य और अंडधानियां खातिका (groove) के निकट संवर्धित होते हैं।

पुंधानी (Antheridium; चित्र ५३८)—एक गोलाकार या अंडाकार काय है जिस के अंतर्गत अनेक प्रशुक्रजन्यु मातृ कोशिकायें होती हैं। प्रत्येक मातृ कोशिका

पर्णांग। चित्र ५३८–पुंधानी। क, एक तरुण पुंधानी पुम्-अणु मातृ कोशिका सहित; ख, एक प्रौढ़ पुंधानी विस्फोटित होने के बाद ; ग, एक पुम्-अणु।

में एक एकल सर्पिलाकार कुंडलित प्रशुक्रजन्यु या पुम्-अणु परिवर्धित होता है जो अधिकांशत. नाभिकीय पदार्थ का बना होता है। यह अपने अग्र पर अनेक सूक्ष्म सूत्र रूप की संरचनायें धारण करता है जिनको पक्ष्म कहते हैं।

अंडधानी (Archegonium; चित्र ५३९)—एक फ्लास्क के आकार का काय है। इसका फूला हुआ आधारीय भाग अंडधानी आधार (venter) कहलाता है तथा

चित्र ५३९—अण्डधानी। क, एक तरुण अण्डधानी; और ख, एक प्रौढ़ अण्डधानी निषेचन के लिए तैयार। अण्डधानी आधार और ग्रीवा का आलोकन करो।

पतला नलिकावत ऊर्ध्व भाग ग्रीवा (neck) कहलाता है। अंडधानी आधार के अंतर्गत एक एकल दीर्घ कोशिका होती है; यह अंड या अंड कोशिका या **स्त्री युग्मक** (ovum) है और इसके ऊपर प्रतिपृष्ठ नाल कोशिका (ventral canal-cell) स्थित होती है। ग्रीवा में एक पंक्ति में कुछ ग्रीवा नाल कोशिकाओं युक्त एक अनुदैर्घ्य कुल्या (canal) और चार पंक्तियों में विन्यस्त कुछ कोशिकाओं द्वारा निर्मित एक भित्ति होती है। ग्रीवा क्षुद्र और वक्रित होती है तथा अंडधानी आधार सूकायक में अंशतः या पूर्णतः न्याविष्ट होती है।

निषेचन—जब पुंधानी परिपक्व होती है तो वह स्फोटित होती है और प्रशुक्रजन्यु निर्मुक्त होते हैं। वे अपने पक्ष्मों द्वारा जल में इधर उधर तैरते हैं। जब अंडधानी परिपक्व होती है तो वह श्लेष्म और मैलिक अम्ल स्रावण करती है। इन पदार्थों से आकर्षित हो कर बहुसंख्यक प्रशुक्रजन्यु अंडधानी तक तैर आते हैं और ग्रीवा के मार्ग उस में प्रवेश करते हैं तथा अंडधानी आधार में पहुंच जाते हैं। वे उसके चारों ओर तीव्रतया कंपित होते हैं तथा उनमें से एक अंड के साथ शीघ्र सायुज्यित हो जाता है। इस सायुज्यन (निषेचन) के पश्चात अवशिष्ट प्रशुक्रजन्यु मृत हो जाते हैं। निषेचित अंडा एक कोशिका भित्ति द्वारा अपने को परिवेष्टित कर लेता है और शुक्तितांड या शुकाण्ड (oospore) बन जाता है। शुक्तितांड विभाजित होता है और भ्रूण को जन्म देता है (चित्र ५४०)। भ्रूण अंशतः पर्णांग पादप रूप में संवर्धित होता है।
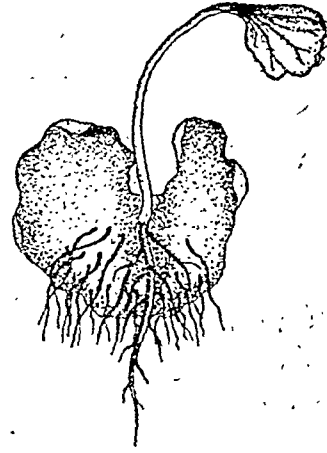
चित्र ५४०—पर्णांग का सूकायक तरुण वीजाणु जनक सहित।

पीढ़ी एकान्तरण—जैसा कि जीवन वृत से प्रकट है पर्णांग पादप दो अवस्थाओं या पीढ़ियों के मार्ग जाता है। पौधा स्वयं वीजाणु जनक है और सूकायक युग्मक-सू है। वीजाणु जनक या पर्णांग पादप वीजाणुओं द्वारा अलिंगी विधि से प्रजनन करता है और युग्मक-सू या सूकायक को जन्म देता है; और सूकायक युग्मकों (प्रशुक्रजन्यु और अंडा) द्वारा लिंगी विधि से प्रजनन करता है, तथा वीजाणु जनक या पर्णांग पादप को जन्म देता है। इस प्रकार दो पीढ़ियां नियमिततः परस्पर एकान्तरण करती हैं। पर्णांग के जीवन चक्र में प्रथमतः शुक्तितांड में द्विगुणित गुणसूत्र मिलते हैं, और इस कारण यह वीजाणु जनक पीढ़ी का प्रारंभ होता है और शुक्तितांड से वीजाणु मातृ कोशिका तक सब अवस्थायें वीजाणु जनक या अलिंगी पीढ़ी का

प्रतिनिधित्व करती हैं। बीजाणु मातृ कोशिका से बीजाणुओं के निर्माण में गुणसूत्रों का अगुणित संख्या में ह्रास होता है और इस कारण बीजाणु युग्मक-भू या लिंगी पीढ़ी का प्रारम्भ होता है और बीजाणु से युग्मकों (प्रपुंजन्यु और अंडा) तक सब अवस्थायें युग्मक-भू या लिंगी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि बीजाणु जनक (पर्णांग पादप) परिवर्धन और संकीर्णता का उच्च पद प्राप्त कर चुका है और मूल तथा हरिमकणकों युक्त पत्तियां उत्पन्न करने के कारण यह युग्मक-भू से स्वतंत्र हो गया है। वास्तव में पर्णांग का बीजाणु जनक सर्व महत्वपूर्ण काय है जब कि इसका युग्मक-भू बहुत उपेक्ष्य है।

भाग ६

जिम्नोस्पर्म्स (GYMNOSPERMS)

अध्याय १

साधारण वर्णन

✓ स्पर्मेटोफाइट्स (या बीजधारी पादप) या फैनीरोगैम्स (या पुष्पी पादप) दो उप विभागों में विभाजित हैं—ऐन्जियोस्पर्म्स (angiosperms) और जिम्नोस्पर्म्स (gymnosperms)। जिम्नोस्पर्म्स एक ओर तो उच्च क्रिप्टोगम्स से और दूसरी ओर ऐन्जियोस्पर्म्स से निकटतः संबंधित हैं और इस प्रकार दोनों के मध्य वे एक मध्यवर्ती वर्ग निर्मित करते हैं। यह ध्यान में रखना चाहिये कि साइकैड समान निम्न जिम्नोस्पर्म्स उच्च क्रिप्टोगम्स से अधिक बन्धुता रखते हैं। किन्तु चीड़ (pine) और नीटम (*Gnetum*) समान उच्च जिम्नोस्पर्म्स ऐन्जियोस्पर्म्स से बन्धुता रखते हैं। जिम्नोस्पर्म्स ७०० स्पीशीज हैं।

साधारण जिम्नोस्पर्मीय लक्षण

(१) बीजाण्ड और बीज (Ovule and Seed)—बीजाण्ड और बीज सर्व प्रथम जिम्नोस्पर्म्स में प्रकट होते हैं (क्रिप्टोगम्स में ये अविद्यमान होते हैं)। ये संरचनायें अंडाशय में और फल में परिवेष्टित (enclosed) नहीं होती लेकिन सीधे अनावृत (open) स्त्री केसर (carpel) द्वारा धारण की गई होती हैं [ऐन्जियोस्पर्म्स में स्त्री केसर एक बन्द कक्ष (chamber) अर्थात् अंडाशय निर्मित करने के लिये वलित रहती हैं]।

(२) पुष्प (Flower)—परिदल पुंज (perianth) के बिना पुष्प के सरल तथा आद्य (primitive) विकसित प्ररूप का विकास; पृथक शंकुओं (strobili) में धारण किये हुये नर और मादा पुष्प; लघु और गुरु बीजाणु पर्ण सारतः पर्णीय (foliar) प्रकृति के।

(३) नर युग्मक-सू (Male Gametophyte)—उपजनन कोशिकाओं का २–१ में ह्रास (ऐन्जियोस्पर्म्स में बिलकुल भी नहीं होती); पराग नलिका का परिवर्धन; नर युग्मकों का २ में ह्रास; पक्ष्मी पुम्-अणुओं (sperms) (साइकैड्स के अतिरिक्त) का विलोपन; पुंधानियों का विलोपन।

(४) मादा युग्मक-सू (Female gametophyte)—मादा युग्मक-सू का विभिन्न क्रमिक अवस्थाओं में ह्रास।

Palace, Re.

क्रिप्टोगम्स और स्पर्मेटोफाइटा में समजात संरचनायें निम्न प्रकार हैं :

गुरु बीजाणु पर्ण	=	स्त्री केसर	लघु बीजाणुपर्ण	= पुंकेसर
गुरु बीजाणुधानी	=	बीजाण्ड का प्रदेश	लघु बीजाणु धानी	= पराग धानी या पराग कोश
गुरु बीजाणु	=	भ्रूणकोष मातृ-कोशिका	लघु बीजाणु	= पराग कण
			नर युग्मक-भू	= अंकुरित पराग कण (पराग नलिका और उसमें तीन नाभिक)
स्त्री युग्मक-भू	=	भ्रूण-कोष		

अध्याय २

साइकस (*CYCAS*)—१६ स्पीशीज

साइकेडेसी (*Cycadaceae*) कुल (जिनको सामान्यतः साइकेड्स कहते हैं) में ९ वंश (genera) और लगभग ७५ स्पीशीज समाविष्ट हैं। साइकस वंश भारतवर्ष में कुछ स्पीशीज द्वारा निरूपित हैं जिनमें साइकस रिवोल्यूटा (*Cycas revoluta*) और साइकस सर्सिनेलिस (*Cycas circinalis*) पहाड़ों में सामान्यतः पाये जाते हैं, और इन दोनों से साबूदाना प्राप्त होता है। साइकस पेक्टीनेटा (*Cycas pectinata*) असम की पहाड़ियों में पाया जाता है।

चित्र ५४१—साइकस सर्सिनेलिस का मादा पौधा स्त्री केसर सहित।

साइकस (*Cycas*; चित्र ५४१)—का स्तम्भ अशाखी, ऊर्ध्व, स्थूल तथा ताड़ सदृश होता है। इसके शीर्ष के चारों ओर पक्षवत् पर्णों का एक मुकुट सर्पिलतः विन्यस्त रहता है।

इसके अतिरिक्त इसमें छोटे शुष्क शल्क सदृश पर्ण हरी पक्षवत् पर्णों के एकान्तरण में पाई जाती हैं। पर्णांगों के समान पर्ण का पत्र पारस्पर्य (vernation) कुण्डलाकार होता है। इस पौधे में एक लम्बा प्राथमिक (मूसला) मूल होता है।

साइकैड्स द्विक्षयक (dioecious) होते हैं अर्थात् नर व मादा पुष्प दो अलग-अलग पौधों में पाये जाते हैं। नर पुष्प एक शंकु (cone) है और स्तम्भ के शीर्ष पर स्थित रहता है और स्तम्भ तब एक पार्श्व कलिका द्वारा वृद्धि करता है (स्तम्भ तब एक संयुक्ताक्ष हो जाता है)। नर शंकु **पुंकेसरों** या **लघु बीजाणुपर्णों** का संचयन (collection) होता है जो एक अक्ष के चारों ओर सर्पिलतः विन्यस्त रहते हैं। प्रत्येक बीजाणु पर्ण एक शल्क के रूप का होता है जो नीचे संकीर्ण और ऊपर विस्तृत होता है। यह अपने अधर पृष्ठ पर अनेक **लघुबीजाणुधानियां** या **पराग कोश** धारण करता है जो धानीगुच्छ में एकत्रित रहते हैं। साधारणतः प्रत्येक धानीगुच्छ में २ से ६ पराग कोश रहते हैं। प्रत्येक पराग कोश में असंख्य पराग कण या लघुबीजाणु रहते हैं। लघुबीजाणुधानी से बाहर निकलने से पहले ही प्रत्येक लघुबीजाणु अपने अन्दर एक नर सूकायक बनाता है। यह नर युग्मक-सू है। इसमें से एक वर्धी (उपजनन) कोशिका, एक जनन कोशिका और एक नली कोशिका होती है।

साइकस। चित्र ५४२—साइकस पेक्टीनेटा का एक नर शंकु अनेक लघुबीजाणुपर्णों सहित जो स्थूल अक्ष पर सर्पिलतः विन्यस्त हैं।

साइकस में कोई स्पष्ट स्त्री पुष्प नहीं होता। पौधा अपने अग्रक के निकट गुलाववत् **गुरुबीजाणुपर्णों** या **स्त्री केसरों** का समूह धारण करता है जो एक शंकु नहीं बनाते, लेकिन पर्णों के एकान्तरण में विन्यस्त रहते हैं। वे प्रायः ६ से १२ इंच लम्बे होते हैं और या तो चपटे या हुड के समान ऊपर की ओर मुड़े रहते हैं और प्रायः ऊपर की ओर विस्तारित रहते हैं। बहुत सी स्पीशीज में वे चारों ओर कोमल भूरे रोमों से ढके रहते हैं। उनका तट पूर्ण, दन्तिल या कंघाकार (पक्षवत् विभाजित) होता है। इसके वृन्त के दोनों पार्श्वों में भंगिकाओं में बीजाण्डों के २ या ३ या कभी-कभी ५ युग्म एकान्तर

या विपरीत रूप में लगे रहते हैं। जिम्नोस्पर्म्स में स्त्री केसर सदा खुला (विवृत) रहता है, अर्थात् ऐंजियोस्पर्म्स के समान यह बन्द होकर अण्डाशय, वर्तिका और वर्तिकाग्र नहीं बनाता, और बीजाण्ड स्त्री केसर के दो तटों पर खुले रहते हैं। निषेचन के पूर्व ही बीजाण्ड (चित्र ५४६) काफी बड़ा हो जाता है। इसमें एक एकल स्थूल
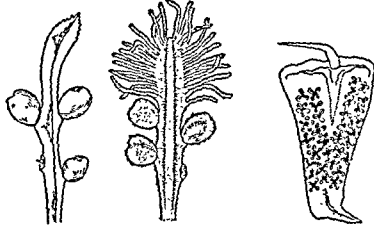
चित्र ५४३ चित्र ५४४ चित्र ५४५

साइकस: स्त्री केसर और पुंकेसर। चित्र ५४३—साइकस सर्सिनेलिस का एक स्त्री केसर या गुरुबीजाणुपर्ण। चित्र ५४४—साइकस रिवोल्यूटा का स्त्री केसर या गुरुबीजाणुपर्ण। चित्र ५४५—साइकस पेक्टीनटा का एक पुंकेसर या लघुबीजाणुपर्ण। अधर पृष्ठ कई पराग कोशों या लघुबीजाणुधानियों सहित (थोड़ा तिर्यक् दृश्य)।

आवरण (कवच) और एक प्रदेह या गुरुबीजाणुधानी होता है और प्रदेह आवरण से लगभग सायुज्यित रहता है। आवरण में एक अग्रस्थ द्वार होता है जिसको अण्डद्वार कहते हैं। आवरण में तीन स्तर होते हैं—एक मध्य अश्मिल स्तर और इसके दोनों ओर दो मांसल स्तर। गुरुबीजाणुधानी के अन्दर एक गुरुबीजाणु मातृ कोशिका बनती है और यह विभाजित होकर चार गुरुबीजाणु की एक पंक्ति बनाते हैं। इनमें से केवल एक गुरुबीजाणु क्रियाशील होता है; और अन्य विघटित हो जाते हैं। क्रियाशील गुरुबीजाणु तीव्रता से वृद्धि करता है और प्रदेह को पूर्णत. भर देता है। गुरुबीजाणु के अन्दर एक ऊतक की कोशिका-संहति निर्मित होती है। यह मादा युग्मकोद्भिद् कहलाता है और इसको भ्रूणपोष नाम दिया गया है। निषेचन के पश्चात भ्रूणपोष तीव्रता से वृद्धि करता है और बीज का मुख्य भाग बनाता है। यह मादा युग्मक-भू है। यह अण्डद्वार की ओर ३–६ अण्डधानियां उत्पन्न करता है। प्रत्येक अण्डधानी में दो ग्रीवा कोशिकायें

और एक मुक्त बड़ा अण्ड-नाभिक होता है लेकिन ग्रीवा नाल कोशिकायें नहीं होती। प्रतिपृष्ठ नाल कोशिका केवल एक नाभिक से निरूपित होती है जो तुरन्त ही विघटित
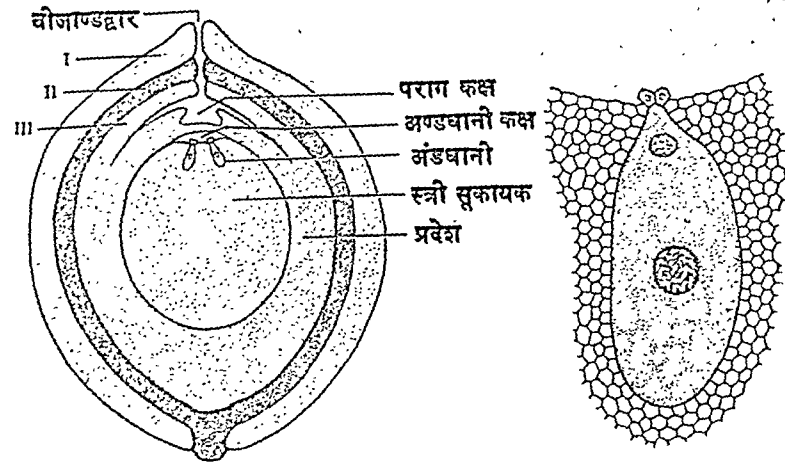
चित्र ५४६ चित्र ५४७

साइकस। चित्र ५४६—बीजाण्ड अनुदैर्घ्य काट में; *I, II, III* आवरण के वाह्य, मध्य (अष्ठिल) और आन्तर स्तर। चित्र ५४७—एक अंडधानी।

हो जाती है। अण्डद्वार के ठीक नीचे प्रदेश की कुछ कोशिकाओं के विघटन से एक गुहा या कोष्ठ बन जाता है। इस कोष्ठ को पराग कक्ष (pollen chamber) कहते हैं। इसके ठीक नीचे सूकायक में एक दूसरा कक्ष बनता है जिसको अंडधानी कक्ष कहते हैं।

परागण और निषेचन—पराग कण हवा द्वारा ले जाये जाते हैं। वे अण्डद्वार पर गिरते हैं और अण्डद्वार द्वारा स्रावित श्लेष्म में चिपक जाते हैं। जब श्लेष्म सूखता है तो परागकण पराग कक्ष में खींच लिये जाते है। नली कोशिका एक लम्बी शाखीय पराग नलिका के रूप में दीर्घित होती है जो प्रदेश में प्रवेश करती है। साइकस की पराग नलिका एक आचोषांग का कार्य करती है और यह प्रदेश से भोजन अवशोषण करती है; तथा यह शुक्राणु वाहक नहीं है। जनन कोशिका दो कोशिकाओं—वृन्त कोशिका और अंग कोशिका में विभाजित होती है। वृन्त कोशिका वन्ध्य है और अंग कोशिका दो वड़े लट्टू के आकार के बहुपक्ष्मी नर युग्मकों (पुम्-अणुओं) में विभाजित होती है। पराग नलिका अग्र भाग पर फटती है और पुम्-अणु निर्मुक्त हो जाते हैं। वे अंडधानी में प्रवेश करते है और उनमें से एक अंड नाभिक से सायुज्यित हो जाता है। इस प्रकार निषेचन सम्पन्न होता है।

बीज—निषेचन के पश्चात
पूर्णतः बीज में वृद्धि करता
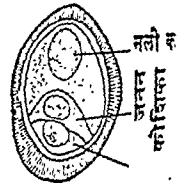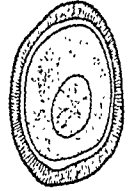
क
चित्र ५४८
साइकस। चित्र ५४८
सूकायक। चित्र ५४९—
बीजपत्र होते हैं जो
द्वारा घिरा रहता है।
है जो भ्रूण द्वारा अंकुरण
२७

बीज—निषेचन के पश्चात अंड कोशिका एक भ्रूण में वृद्धि करती है और बीजाण्ड पूर्णतः बीज में वृद्धि करता है। परिपक्व बीज में केवल एक भ्रूण और दो
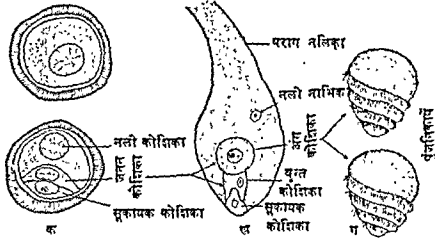
चित्र ५४८ चित्र ५४९ चित्र ५५०

साइकस। चित्र ५४८—ऊपर, एक पराग कण या लघु बीजाणु; नीचे, नर सूकायक। चित्र ५४९—पराग नलिका (एक भाग)। चित्र ५५०—दो पुम् अणु।

बीजपत्र होते हैं जो मूकायक (भ्रूणपोष) में सन्निहित रहते हैं और यह आवरण द्वारा घिरा रहता है। मूकायक के अन्दर काफी मात्रा में भोजन संगृहीत रहता है जो भ्रूण द्वारा अंकुरण के समय उपयोग में लाया जाता है।

भाग ७

ऐन्जियोस्पर्म्स (ANGIOSPERMS)

अध्याय १

वर्गीकरण के सिद्धान्त और पद्धतियाँ
(PRINCIPLES AND SYSTEMS OF CLASSIFICATION)

वर्गीकृत वनस्पति-विज्ञान या वर्गीकरण विज्ञान (Systematic Botany or Taxonomy)—यह पौधों के वर्णन (description), अभिज्ञान (identification) और नामकरण तथा उन के मुख्यतः आकारिकीय उल्लक्षणों (morphological characteristics) में साम्यों (resemblances) तथा भिन्नताओं के अनुसार विभिन्न समूहों में वर्गीकरण की चर्चा करता है। जहां तक ऐन्जियोस्पर्म्स या उच्चतर पुष्पी पादपों का सम्बंध है यह अनुमान किया गया है कि १९९,००० से अधिक स्पीशीज़ (द्विबीजपत्री १५९,००० और एकबीजपत्री ४०,०००) हम को अब तक ज्ञात हो चुके हैं और अन्य अनेक हजारों का अनुसंधान और अभिलेखन करना शेष है। अतः पौधे बहुसंख्यक ही नहीं हैं, बल्कि वे विभिन्न रूपों के भी हैं और उन का अध्ययन उस समय तक संभव नही है जब तक कि वे कुछ क्रमबद्ध पद्धति में व्यवस्थित न कर लिये जांय। वर्गीकृत वनस्पति विज्ञान का उद्देश्य पौधों का वर्णन, नामकरण, और वर्गीकरण इस विधि से करना है कि सार्व पितृ परम्परा (ancestry) से उन के वंशक्रम (descent) के संबंध में उन के संबंधों को सरलतया ज्ञात किया जा सके। वर्गीकरण का अन्तिम लक्ष्य पौधों को ऐसे रूप में व्यवस्थित करना है जिस से उन के सरलतर, पूर्वतर और आद्यतर प्ररूपों से जटिलतर, आधुनिकतर और प्रगत प्ररूपों रूप में पृथ्वी के विभिन्न कालों में विकास के अनुक्रम का हमें कुछ आभास मिल सके। पौधों के पूर्वतन वर्गीकरण उन के आर्थिक उपयोगों, जैसे धान्यों (cereals), भेषजीय पौधे (medicinal plants), रेशे-प्रदायक पौधे, तिलहन (तेल-प्रदायक पौधे) आदि पर, या सकल संरचनात्मक साम्यों, जैसे शाकों या क्षुपों (shrubs) और आरोही (climbers), आदि पर आधारित थे। ये वर्गीकरण अपूर्ण और खंडीय थे, क्योंकि जो पौधे वर्गों में ठीक नहीं बैठते थे या आर्थिक मूल्य के नहीं थे, वे प्रायः उपेक्षित रहते थे। अतएव वर्गीकरण की आदर्श पद्धति ऐसी होनी चाहिये

जो केवल आनुवंशिक संबंध को ही व्यक्त न करें बल्कि व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये सुविधा की उचित सीमा के अन्दर रहें।

वर्गीकरण की इकाइयाँ
(UNITS OF CLASSIFICATION)

स्पीशीज (Species)—स्पीशीज शब्द से हमारा अभिप्राय व्यक्ति विशेषों (पौधों) का एक संग्रह है जो एक दूसरे से प्रायः सम्पूर्ण आवश्यक आकारिकीय लक्षणों —वर्धी और जननीय दोनों ही में इतना अधिक साम्य रखते हों कि वे एक ही जनक से व्युत्पन्न (derived) माने जा सकें। उदाहरण के लिये मटर (pea) लो। किसी खेत के पौधों के आकार, या फल की आकृति या कुछ गौण लक्षणों में वे एक दूसरे से विभिन्न हो सकते हैं किन्तु साधारण रूप, पत्तियों, पुष्पों, फलों और बीजों की संरचना में वे एक दूसरे से उल्लेखनीय साम्य प्रकट करते हैं। प्रत्येक पौधे में इतना अधिक साम्य होता है कि सब मटर के पौधे एक ही जनक से उत्पन्न माने जा सकते हैं। इस प्रकार सब मटर के पौधे एक स्पीशीज निर्मित करते हैं। इसी प्रकार सब बरगद के पादप, सब पीपल के पादप, सब आम के पादप विभिन्न और स्पष्ट स्पीशीज बनाते हैं।

यदा-कदा जलवायु तथा भूमि सबन्धी विभिन्नताओं के कारण स्पीशीज के प्रत्येक पौधे आकृति, आकार, रंग, और अन्य गौण संलक्षणों में कुछ अंश तक विभिन्नता प्रदर्शित कर सकते हैं। ऐसे पादप किस्में (varieties) निर्मित करने वाले कहलाते हैं। एक स्पीशीज में एक या अधिक किस्में हो सकती हैं या बिलकुल ही नहीं हो सकती। इस प्रकार हम साधारण मटर, धान, आम आदि की विभिन्न किस्में पाते हैं, किन्तु किस्में स्थायी नहीं होती। वे जिस स्पीशीज से उत्पन्न हुई रहती हैं, उस मूल स्पीशीज को ही प्रतिवर्ती (revert) होने की प्रवृत्ति रखती हैं।

जीनस या वंश (Genus)—जीनस स्पीशीज का संग्रह है जो पुष्प या जननीय अंगों के आकारिकीय लक्षण में परस्पर निकट साम्य रखती हैं। उदाहरणार्थ बरगद, पीपल और अंजीर पृथक स्पीशीज हैं क्योंकि वे अपने वर्धी लक्षणों, जैसे पादप की प्रकृति, आकृति, आकार और पत्ती के पृष्ठ आदि में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। किन्तु ये तीनों स्पीशीज समवर्गी हैं क्योंकि वे जननीय अंगों, अर्थात् पुष्पक्रम, पुष्प, फल और बीज में परस्पर साम्य रखते हैं। अतएव बरगद, पीपल, और अंजीर एक ही जीनस के अंतर्गत आते हैं और वह फाइकस (*Ficus*) है।

नाम पद्धति (Nomenclature)—किसी पादप के नाम के दो भाग होते हैं। पहला जीनस निर्देशित करता है और दूसरा स्पीशीज। प्रत्येक प्रकार के

पौधे की द्विनाम युक्त नामकरण पद्धति, अर्थात् एक नाम में दो भाग होना, द्विनाम पद्धति (binomial nomenclature) कहलाती है। प्रथमतः लिनियस ने इसे प्रचारित किया था और १९३५ ई० में ऐम्सटर्डम में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय वनस्पति वैज्ञानिक कांग्रेस ने अन्ततः निश्चित किया। इस तरह मटर का नाम पाइसम सैटाइवम (*Pisum sativum*); धान का ओराइज़ा सेटाइवा (*Oryza sativa*); आम का मैंगीफेरा इंडिका (*Mangifera indica*); बरगद का फाइकस बंगालेंसिस (*Ficus bengalensis*); पीपल का फाइकस रिलीजियोसा (*Ficus religiosa*) और अंजीर का नाम फाइकस ग्लोमीरेटा (*Ficus glomerata*) पड़ा है। कपास के निर्देश करने पर हम देखते हैं कि वे सब एक ही जीनस गौसीपियम (*Gossypium*) से संबंध रखते हैं जिस में १२ या अधिक स्पीशीज़ होती हैं जैसे भारत की वनी कपास गौसीपियम इंडिकम (*G. indicum*), दक्षिणी मराठा प्रदेश की कुम्पटा कपास गौसीपियम हर्बेसियम (*G. herbaceum*), अमेरिकीय कपास गौसीपियम बर्बेडेंस (*G. barbadense*), असम की किल कपास गौसीपियम सेर्नुअम (*G. cernuum*), बरी कपास—अमरीकी कपास जो भारत में देशीकृत हो गई है गौसीपियम हिरसुटम (*G. hirsutum*), आदि। जिस लेखक या रचनाकार ने सर्व प्रथम किसी स्पीशीज को वर्णित किया उस का नाम भी संक्षिप्त रूप में स्पीशीज के नाम के बाद लिखा जाता है, जैसे मैंगीफेरा इंडिका लिन। (यहां पर लिन रचनाकार लिनियस को निर्देश करता है, जिस ने सर्व प्रथम इस पौधे को वर्णित किया)।

कुल (Family)—कुल जीनस का एक समूह है जो उन की साधारण संरचनात्मक, मुख्यतः पुष्पीय अंगों का पारस्परिक साम्य प्रकट करते हैं। इस प्रकार गौसीपियम, हिबिस्कस, थेस्पीसिया, साइडा, ऐब्यूटिलॉन आदि जीनसों में हम अलग्न पार्श्विक अनुपत्र, अनुवाह्यदल, दलपुंज का व्यावृत पुष्पदल विन्यास, एकसंलाग पुंकेसर, एक कोष्ठी परागकोश, अक्षवर्ती जरायुन्यास आदि पाते हैं। इस लिये सब उपर्युक्त जीनस एक कुल से ही संबंध रखते हैं और वह है माल्वेसी (*Malvaceae*)।

वर्गीकरण की पद्धतियाँ
(SYSTEMS OF CLASSIFICATION)

वर्गीकरण की दो पद्धतियां हैं—कृत्रिम और प्राकृतिक।

कृत्रिम पद्धति (Artificial System)—कृत्रिम पद्धति में एक या अधिक से अधिक कुछ लक्षण स्वेच्छ अवचित कर लिए जाते हैं और ऐसे लक्षणों के अनुसार पौधे समूहों में व्यवस्थित कर लिये जाते हैं, किन्तु बिलकुल विभिन्न पौधे भी प्रायः उसी समूह में रख लिये जाते हैं क्यों कि कुछ विशेष लक्षण उन में उपस्थित या अनुपस्थित रहते हैं। यह पद्धति हमें तुरन्त पौधों का नाम निश्चित करने में सहायक

होती हैं किन्तु उस प्राकृतिक संबंध को प्रदर्शित नहीं करती जो समूह के विशेष पौधों में विद्यमान होता है। इस प्रकार इस की तुलना कोश में शब्दों की व्यवस्था के ढंग से की जा सकती है, जिस में केवल वर्णक्रम के अतिरिक्त निकटवर्ती शब्द एक दूसरे से कोई आवश्यक अन्वय नहीं रखते। इस प्रकार कृत्रिम वर्गीकरण पद्धति का दोष यह है कि एक दूसरे से निकटत: साम्य रखने वाले पौधे एकत्र समूहीकृत होने के स्थान पर विस्तीर्णत: पृथक हो जाते हैं। तथापि, इस तथ्य की दृष्टि से कृत्रिम पद्धति बहुत बड़े लाभ की है कि इस वर्गीकरण पद्धति का अनुसरण करने से कोई आदमी बिना कठिनाई के ही किसी अज्ञात पौधे का नाम जान सकता है या दूसरे शब्दों में इस पद्धति द्वारा किसी अज्ञात पौधे की पहचान बहुत सरल बन जाती है।

लिनियन पद्धति (१७३५ ई०)—सबसे उत्तम कृत्रिम पद्धति वह है जो लिनियस द्वारा संकलित है और उस के द्वारा १७३५ ई० में प्रकाशित हुई थी। लिनियस ने पौधों का वर्गीकरण जननेंद्रियों, जैसे पुंकेसर और स्त्री केसर के लक्षणों के अनुसार किया था। ये पौधों के लिंगी अंग माने जाते हैं अतएव लिनियस की यह कृत्रिम पद्धति साधारणत: "लिंगी पद्धति" कहलाती है। इस पद्धति के अनुसार पौधे मुख्यत: २४ वर्गों में विभाजित हैं जिन में २३ वर्ग फेनीरोगैम्स के हैं और १ वर्ग क्रिप्टोगम्स के हैं। फेनीरोगैम्स का पुन: विभाजन एक लिंगी और द्विलिंगी पुष्पों युक्त समूहों में किया गया है। एकलिंगी पुष्प युक्त पौधे पुन: इस दृष्टि से विभाजित किये गये थे कि वे एकक्षयक (monoccious) हैं या द्विक्षयक (dioecious)। इस के आगे विभाजन पुंकेसर की संख्या पर आधारित था, द्विलिंगी पुष्प युक्त पौधे इस के अनुसार विभाजित थे कि उन में पुंकेसर स्त्री केसर से संयुक्त थे या उनसे पृथक थे। अन्य विचार यह था कि पुंकेसर स्वतंत्र थे या संयुक्त। फिर पुंकेसरों की संख्या, उन की लंबाई और अंतत: स्त्री केसरों की संख्या विवेचन के अन्तर्गत आती थी।

प्राकृतिक पद्धति (Natural System)—प्राकृतिक पद्धति में सब महत्व-पूर्ण संलक्षण विचाराधीन होते हैं और पौधे उनके सबंधित लक्षणों के अनुसार वर्गीकृत होते हैं। इस प्रकार अपने साम्य और विभिन्नता—अधिकांशत: अपने आकारिकीय लक्षणों के अनुसार पौधे प्रथमत: थोड़े से बड़े समूहों में वर्गीकृत होते हैं। ये पुन: लघुतर और लघुतर समूहों में उस समय तक विभाजित और उपविभाजित किये जाते हैं जब तक कि लघुतम विभाग नहीं पहुंच जाता और वह है स्पीशीज। सब आधुनिक वर्गीकरण की पद्धतियां प्राकृतिक हैं और वे कृत्रिम पद्धतियों को इस तथ्य के कारण विस्थापित कर देती हैं कि एक ओर तो लक्षणों के विस्तृत वर्णन पर आधारित विभिन्न पौधों के मध्य वर्तमान प्राकृतिक संबंधों और पृथ्वी के विभिन्न कालों में उन के सरल से अधिक संकुल प्ररूपों में उनके विकास के अनुक्रम का यथार्थ विचार हमारे सामने रखते हैं और दूसरी ओर कृत्रिम पद्धतियों की भांति अज्ञात पौधों की पहचान की व्यावहारि

आवश्यकता पूर्ण करते हैं। इन पद्धतियों के अनुसार व्यवस्थित या समूहीकृत पौधे पुनः अधिकांश अवस्थाओं में एक ही या समरूप. गुण धर्म (properties) धारण किये दिखाई पड़ते हैं।

प्राकृतिक पद्धति के अनुसार पादप जगत दो विभागों में विभाजित हैं अर्थात् क्रिप्टोगम्स (cryptogams) या पुष्पहीन पौधे और फैनीरोगैम्स (phanerogams) या पुष्पी पौधे। फेनीरोगैम्स पुनः दो उपविभागों (sub-divisions) में विभाजित हैं अर्थात् जिम्नोस्पर्म्स (gymnosperms) या विवृत बीजी पौधे (देखें भाग ६) और ऐन्जियोस्पर्म्स (angiosperms) या आवृतबीजी पौधे। ऐन्जियोस्पर्म्स पुनः दो वर्गों या क्लासों (classes) में विभाजित हैं अर्थात् द्विबीजपत्री या डाइकोटीलेडन्स और एकबीजपत्री या मोनोकोटीलेडन्स। ये वर्ग पुनः ऑर्डर या गणों (orders) में विभाजित हैं। गण कुलों में, कुल जीनस में और स्पीशीज में विभाजित हैं और कभी-कभी स्पीशीज किस्मों (varieties) में विभाजित होती हैं। यदि अधिक संख्या में मध्यवर्ती श्रेणियों (categories) की आवश्यकता होती है तो उप (sub) उपसर्ग विशिष्ट शब्दों में जोड़ दिया जाता है।

बेंथम और हूकर की पद्धति (१८६२–८३ ई०)—भारत में जो प्राकृतिक पद्धति प्रचलित है वह बेंथम और हूकर की है। इन लेखकों के अनुसार द्विबीजपत्री तीन उपवर्गों में निम्न प्रकार विभाजित हैं।

(१) **पृथकदली या पोलीपेटेली (Polypetalae)**—वाह्यदल पुंज (calyx) और दल पुंज (corolla) दोनों ही विद्यमान होते हैं; दल स्वतंत्र होते हैं; पुंकेसर और स्त्रीकेसर साधारणतः विद्यमान होते हैं। पुंकेसर प्रायः अनिश्चित होते हैं और स्त्रीकेसर पृथक्-अंडपी (apocarpous) या युक्तांडपी (syncarpous) होती है। उपवर्ग के अंतर्गत पृथक वाह्यदली वाह्यदलपुंज (polysepalous calyx) से युक्त-वाह्यदली वाह्यदलपुंज (gamosepalous calyx) तक और पुंकेसर की अनिश्चित संख्या से निश्चित संख्या तक और अधोजायता (hypogyny) और परिजायता (perigyny) से ऊर्ध्वस्थता (epigyny) तक प्रगति प्रदर्शित होती है।

(२) **युक्तदली या गैमोपेटेली (Gamopetalae)**—वाह्य दलपुंज और दलपुंज दोनों विद्यमान; दलपुंज युक्तदली; पुंकेसर लगभग सर्वदा निश्चित और दललग्न (epipetalous), स्त्रीकेसर साधारणतः दो या कभी-कभी अधिक, स्वतंत्र या युक्त; अंडाशय अधोवर्ती (inferior) या उत्तरीय (superior)। यह उपवर्ग कोरोलीफ्लोरी (Corolliflorae) भी कहलाता है।

(३) **एक परिदल पुंजी (Monochlamydeae)**—पुष्प अपूर्ण; या तो वाह्यदल पुंज या दलपुंज अविद्यमान, या कभी-कभी दोनों ही आवर्त अविद्यमान; पुष्प

साधारणतया एकलिंगी। इस में साधारणतः वे कुल अन्तर्विष्ट होते हैं जो उपर्युक्त दो उपवर्गों के अन्तर्गत नहीं आते। बेंथम और हूकर द्वारा यह उपवर्ग आठ श्रेणियों में विभाजित है।

बेंथम और हूकर के अनुसार एकबीजपत्री सात श्रेणियों में विभाजित हैं। इंगलैण्ड में वाइन्स (Vines) ने इस से अति सरलतर वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इस लेखक के अनुसार एकबीजपत्री तीन उपवर्गों में निम्न प्रकार विभाजित हैं:

(१) पेटालोएडी (Petaloideae)—परिदलपुंज साधारणतया दलाभ होता है।

(२) स्पेडिसिफ्लोरी (Spadiciflorae)—पुष्पक्रम एक स्थूलमंजरी (spadix) होता है और एक या अधिक पृथुपर्णों (spathe) में समावृत होता है।

(३) ग्लूमिफ्लोरी (Glumiflorae)—पुष्प विशेष निपत्रों में समावृत होता है जिन्हें तुष निपत्र (glumes) कहते हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण की योजना के अनुसार कोई भी पौधा अपने वर्गीकृत स्थान के लिये निर्देशित किया जा सकता है। वनी कपास का हम उदाहरण लेते हैं।

विभाग (Division)	..	फैनेरोगैम
उप विभाग (Sub-division)	..	ऐन्जियोस्पर्म
वर्ग (Class)	..	द्विबीजपत्री
उपवर्ग (Sub-class)	..	पृथकदली
श्रेणी (Series)	..	थैलेमिफ्लोरी
ऑर्डर (Order)	..	माल्वेलीज
कुल (Family)	..	माल्वेसी
जीनस (Genus)	..	गोसीपियम
स्पीशीज (Species)	..	इंडिकम

पौधे का नामकरण सदा जीनस और स्पीशीज नामों के द्वारा और अन्त में रचनाकार का नाम रख कर होता है। इस प्रकार वनी कपास गोसीपियम इंडिकम लिन है।

द्विबीजपत्री और एकबीजपत्री (Dicotyledons and Monocotyledons)—ऐन्जियोस्पर्म विभाग का दो बड़े वर्गों में विभाजन निम्न लक्षणों पर आधारित है:

	द्विबीजपत्री	एकबीजपत्री
(१) भ्रूण	इसमें दो बीजपत्र	इसमें एक बीजपत्र
(२) मूल	अधिमूल (tap root)	अस्थानिक रेशेदार मूल (fibrous root)
(३) शिरा-विन्यास	जालिकावत् (reticulate)	समान्तर (parallel)
(४) पुष्प	पंचशंक या पंचतयी (pentamerous)	त्रयी (trimerous)
(५) वाहिनी बंडल	स्तंभ में संलग्न (collateral) तथा खुले (open), एक वलय में व्यवस्थित, स्फानवत् (wedge-shaped) और अल्पसंख्यक होते हैं; मूल में त्रिज्यक (radial), दारु बंडल साधारणतः २–६।	स्तंभ में संलग्न तथा आवृत (closed), बिखरे हुये (scattered), अंडाकार (oval) और बहुसंख्यक; मूल में त्रिज्यक, दारु बंडल साधारणतः बहुसंख्यक।
(६) परवर्ती वृद्धि	स्तंभ और मूल दोनों में होती है।	अनुपस्थित (कुछ अपवादों को छोड़कर)।

पुष्प चित्र (Floral Diagram)—पुष्प के अंगों की संख्या, उनकी साधारण संरचना, विन्यास, वे एक दूसरे से जो संबंध रखते हैं (पुष्प दल विन्यास) एक
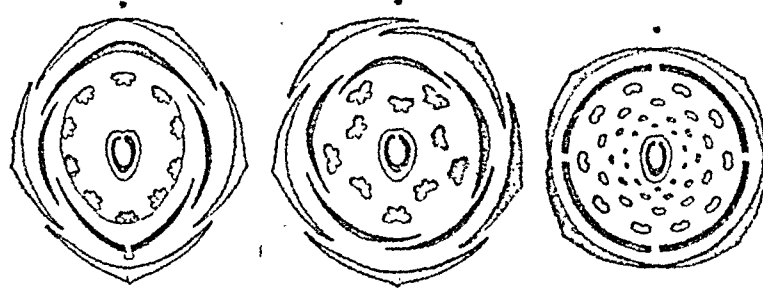
चित्र ५५१ चित्र ५५२ चित्र ५५३

पुष्प चित्र (तीन प्रकार के)। चित्र ५५१—रैनिलिओनेसी। चित्र ५५२—सिजलपिनी। चित्र ५५३—माइमोसी।

चित्र द्वारा निरूपित किया जा सकता है जिसको पुष्प चित्र कहते हैं। पुष्प चित्र पुष्प का चित्र होता है। चित्र में वाह्यदलपुंज वाह्यतम स्थित होता है; दलपुंज वाह्यदल पुंज से अंतवर्ती होता है। पुमंग मध्य में तथा जायांग केन्द्र में स्थित

होता है। विभिन्न आवर्तों के सदस्यों का अभिलाग (adhesion) और संलाग (cohesion) स्वकीय भागों को रेखाओं द्वारा संबद्ध करने से स्पष्टतः प्रकट किया जा सकता है, जैसे उदाहरणार्थ चित्र ५५१ प्रकट करता है कि कुल दस पुंकेसर हैं जिन में से ९ एक बंडल में संयुक्त हैं और बाकी एक अलग्न है। चोटी पर वाला बिन्दु उस मातृ अक्ष (mother axis) (पुष्प वृन्त नहीं) की स्थिति निरूपित करता है जो पुष्प धारण करता है। अक्ष पुष्प के पीछे स्थित होता है और इस कारण अक्ष के निकटतम पुष्प का पार्श्व पश्च पार्श्व (posterior side) कहलाता है तथा अक्ष से दूर का दूसरा पार्श्व अग्र पार्श्व (anterior side) कहलाता है। किसी कुल या जीनस के लक्षण एक या अनेक चित्रों से निरूपित किये जा सकते हैं।

पुष्प सूत्र (Floral Formula)—किसी पुष्प के विभिन्न आवर्त उनकी संख्या, अभिलाग और संलाग एक सूत्र द्वारा निरूपित किये जा सकते हैं जिसे पुष्प सूत्र (floral formula) कहते हैं। पुष्प सूत्र में K बाह्यदल पुंज के लिये; C दलपुंज के लिये; P परिदलपुंज के लिये; A पुमंग के लिये, G जायांग के लिये निर्धारित है। $K, C, P, A,$ और G अक्षरों का अनुगमन करनेवाले अंक उन आवर्तों के अंगों की संख्या प्रदर्शित करते हैं। किसी आवर्त का संलाग अंक को कोष्ठक में समावृत कर प्रकट किया जाता है और अभिलाग दो सबंधित आवर्तों को चोटी पर एक रेखा खींच कर प्रदर्शित किया जाता है। जायांग में अंडाशय की स्थिति G अक्षर या अंक के ऊपर या नीचे एक रेखा खींच कर प्रदर्शित की जाती है। यदि अंडाशय उत्तरीय हो तो रेखा उस के नीचे होनी चाहिये तथा यदि वह अधोवर्ती हो तो रेखा उस के ऊपर होनी चाहिये। इस प्रकार किसी पुष्प के सब भाग एक साधारण रूप में पुष्प सूत्र द्वारा निरूपित होते हैं। किसी कुल के पुष्प लक्षण भी एक या अधिक निम्न प्रकार निरूपित हो सकते हैं :

क्रूसीफेरी (*Cruciferae*) — $K_{2+2}\ C_4\ A_{2+4}\ \underline{G}_{(2)}$

माल्वेसी (*Malvaceae*) — $K_{(5)}\ \overline{C_5\ A_{(\infty)}}\ \underline{G}_{(5-\infty)}$

पैपिलिओनेसी (*Papilionaceae*) — $K_{(5)} C_5 A_{(9)+1} \underline{G}_1$

सोलेनेसी (*Solanaceae*) — $K_{(5)} \overline{C_{(5)} A_5} \underline{G}_{(2)}$

लिलिएसी (*Liliaceae*) — $P_{(3+3)} A_{3+3} \underline{G}_{(3)}$

एक ऐन्जियोस्पर्मी पौधे के वर्णन करने में प्रयुक्त लक्षण (Features used to describe an Angiospermic Plant)

निवास स्थल (Habitat): पौधे की प्राकृतिक निवास भूमि।

स्वरूप (Habit) शाक [ऊर्ध्व, भूशायी, अवरोही (decumbent), प्रसृत

(diffuse), सर्पी, वल्ली (twining) या आरोही (climbing), क्षुप [ऊर्ध्व, हिंडक (straggling), वल्ली या आरोही] या वृक्ष या स्वरूप में कोई अन्य विशेषता।

मूल (Root): मूल की प्रकृति ; कोई विशेष रूप।

स्तंभ (Stem) : स्तंभ का प्रकार-शाकीय या काष्ठीय, बेलनाकार या कोणीय; रोयेंदार या चिकना ; संधिमान या नहीं ; सुषिर (खोखला) या ठोस; ऊर्ध्व, भूशायी, वल्ली या आरोही; रूपान्तर की प्रकृति, यदि कोई हो।

पर्ण (Leaf) : विन्यास—एकांतरित या विपरीत (आच्छादित; superposed) या चतुष्क (decussate) या आवर्तरूप (whorled) ; अनुपत्री या अननुपत्री ; अनुपत्र की प्रकृति, यदि विद्यमान हो ; सरल या संयुक्त; संयुक्त पर्ण की प्रकृति और पर्णकों की संख्या ; रूप और आकार ; रोयेंदार या चिकना ; पर्णपाती या चिरलग्न ; शिरा विन्यास ; तट ; अग्रक ; और वृन्त।

पुष्पक्रम (Inflorescence) : पुष्पक्रम का प्ररूप (व्याख्या की जाय)।

पुष्प (Flower) : अवृन्त या सवृन्त ; पूर्ण या अपूर्ण ; एकलिंगी या द्विलिंगी ; नियमित, एक युग्म या अनियमित ; अधोजाय, परिजाय या ऊर्ध्वस्थ ; निपत्रयुक्त या अनिपत्री; निपत्रों और निपत्रिकाओं की प्रकृति, यदि विद्यमान हों; पुष्प का रूप ; उस का रंग और आकार।

वाह्यदलपुंज (Calyx) : पृथक वाह्यदली या युक्त वाह्यदली, वाह्यदल या पिंडकों की संख्या; उत्तरीय या अधोवर्ती; पुष्पदल विन्यास; रूप, आकार और रंग।

दलपुंज—(Corolla) पृथकदली या युक्तदली; दलों और पिंडकों की संख्या; उत्तरीय या अधोवर्ती, पुष्पदलविन्यास; रूप, आकार, रंग और गंध, मुकुट या कोई विशेषता। (जब वाह्यदलपुंज और दलपुंज में अधिक भिन्नता न हो तो उस के लिये परिदलपुंज शब्द प्रयुक्त करना चाहिये; वह वाह्यदलाभ या दलाभ, पृथकदली या युक्तपरिदली हो सकता है।

पुमंग (Androecium): पुंकेसरों की संख्या—निश्चित (दस से कम) या अनिश्चित (दस से अधिक); अलग्न या युक्त (संलग्न); संलाग की प्रकृति—एक संलाग, द्विसंलाग, बहुसंलाग, संपराग ; अभिलाग की प्रकृति—दललग्न या पुंजायांग या कोई विशेष रूप ; यह कि वह दलों (या दलपुंज पिंडकों) से एकान्तरित है या उस के विपरीत है। पुंकेसर की लम्बाई-साधारण लम्बाई; निविष्ट या उत्क्षिप्त; द्विदीर्घक या चतुर्दीर्घक; पुंकेसर की स्थिति—अधोजाय, परिजाय या ऊर्ध्वस्थ; पराग कोश का संयोजन और उस का स्फुटन; पराग कोश पिण्डक या पालियां या उपांग, यदि हों।

जायांग (Gynoecium) या स्त्री केसर (Pistil)—स्त्री केसर की संख्या, युक्ताण्डप या पृथक्अण्डप, वर्तिका की प्रकृति—लम्बी या छोटी, वर्तिकाग्र—एकदल, पिंडकीय या शाखीय; उनकी संख्या और प्रकृति। चिकनी या प्राग्रकाभ; गर्भाशय

उत्तरीय या अधोवर्ती; पालियां या पिंडकों की संख्या; कोष्ठों या विवरों की संख्या; जरायुन्यास की प्रकृति; गर्भाशय के प्रत्येक विवर या कोष्ठो में बीजाण्डों की संख्या और रूप।

फल (Fruit): फल का प्रकार (व्याख्या की जाय)।

बीज (Seeds): फल में बीजों की संख्या; रूप और आकार, ऐल्ब्यूमिनी या अऐल्ब्यूमिनी, ऐल्ब्यूमिन की प्रकृति यदि विद्यमान हो।

अध्याय २

द्विबीजपत्री के कुछ वरित कुल (SELECTED FAMILIES OF DICOTYLEDONS)

कुल या फैमिली १—रैननकुलैसी (*Ranuncula ceae*; १,२०० स्पीसीज—भारतवर्ष में १५७ स्पीसीज)।

स्वरूप—वार्षिक या वर्षानुवर्षी शाक या आरोही क्षुप, साधारणतया एक तीक्ष्ण रस युक्त। पत्तियां सरल या एकदल (simple) या संयुक्त या बहुदल (compound), एकान्तरित या विरलत विपरीत, मूल (radical) और स्तम्भीय (cauline), साधारणतया छादीय आधार युक्त (sheathing base)। पुष्पक्रम एकवर्ध्यक्षीय या बहुवर्ध्यक्षीय। पुष्प अधिकांशतः नियमित (बहुयुग्म) कभी-कभी एक युग्म (zygomorphic) जैसे निविषी या लार्कस्पर में; द्विलिंगी और अधोजाय; पुष्पीय सदस्य दीर्घीकृत पुष्पाक्ष पर प्राकृपिकतः सर्पिल या आवर्तों (whorl) में। बाह्यदल पुंज—बाह्यदल ३ से ∞ साधारणतया ५, अलग्न, कभी-कभी चमकीले रंगीन। दलपुंज दल—५ या अधिक, अलग्न, कभी-कभी अनुपस्थित, प्रायः मकरन्द कोष युक्त, अनियमछादी (imbricate); परिदलपुंज पत्र (जब बाह्यदल पुंज और दलपुंज भेदकरणीय न हों) अलग्न और दलाभ। पुमंग—पुंकेसर बहुसंख्यक, अलग्न, और साधारणतया सर्पिल। जायांग—स्त्रीकेसर साधारणतः बहुसंख्यक, कभी-कभी अल्प

चित्र ५५४—रैननकुलेसी का पुष्प चित्र।

(diffuse), सर्पी, वल्ली (twining) या आरोही (climbing), क्षुप [ऊर्ध्व, हिड्क (straggling), वल्ली या आरोही] या वृक्ष या स्वरूप में कोई अन्य विशेषता।

मूल (Root): मूल की प्रकृति ; कोई विशेष रूप।

स्तंभ (Stem) : स्तंभ का प्रकार-शाकीय या काष्ठीय, बेलनाकार या कोणीय; रोयेंदार या चिकना ; संधिमान या नहीं ; सुषिर (खोखला) या ठोस; ऊर्ध्व, भूशायी, वल्ली या आरोही; रूपान्तर की प्रकृति, यदि कोई हो।

पर्ण (Leaf) : विन्यास—एकांतरित या विपरीत (आच्छादित; superposed) या चतुष्क (decussate) या आवर्तरूप (whorled) ; अनुपत्री या अननुपत्री ; अनुपत्र की प्रकृति, यदि विद्यमान हो ; सरल या संयुक्त; संयुक्त पर्ण की प्रकृति और पर्णकों की संख्या ; रूप और आकार ; रोयेंदार या चिकना ; पर्णपाती या चिरलग्न ; शिरा विन्यास ; तट ; अग्रक ; और वृन्त।

पुष्पक्रम (Inflorescence) : पुष्पक्रम का प्ररूप (व्याख्या की जाय)।

पुष्प (Flower) : अवृन्त या सवृन्त ; पूर्ण या अपूर्ण ; एकलिंगी या द्विलिंगी ; नियमित, एक युग्म या अनियमित ; अधोजाय, परिजाय या ऊर्ध्वस्थ ; निपत्रयुक्त या अनिपत्री; निपत्रों और निपत्रिकाओं की प्रकृति, यदि विद्यमान हों; पुष्प का रूप ; उस का रंग और आकार।

बाह्यदलपुंज (Calyx) : पृथक बाह्यदली या युक्त बाह्यदली, बाह्यदल या पिंडकों की संख्या; उत्तरीय या अधोवर्ती; पुष्पदल विन्यास; रूप, आकार और रंग।

दलपुंज—(Corolla) पृथकदली या युक्तदली; दलों और पिंडकों की संख्या; उत्तरीय या अधोवर्ती, पुष्पदलविन्यास; रूप, आकार, रंग और गंध, मुकुट या कोई विशेषता। (जब बाह्यदलपुंज और दलपुंज में अधिक भिन्नता न हो तो उस के लिये परिदलपुंज शब्द प्रयुक्त करना चाहिये; वह बाह्यदलाभ या दलाभ, पृथकदली या युक्तपरिदली हो सकता है।

पुमंग (Androecium): पुंकेसरों की संख्या—निश्चित (दस से कम) या अनिश्चित (दस से अधिक); अलग्न या युक्त (संलग्न); संलाग की प्रकृति–एक संलाग, द्विसंलाग, बहुसंलाग, संपराग ; अभिलाग की प्रकृति—दललग्न या पुंजायांग या कोई विशेष रूप ; यह कि वह दलों (या दलपुंज पिंडकों) से एकान्तरित है या उस के विपरीत है। पुंकेसर की लम्बाई-साधारण लम्बाई; निविष्ट या उत्क्षिप्त; द्विदीर्घक या चतुर्दीर्घक; पुंकेसर की स्थिति—अधोजाय, परिजाय या ऊर्ध्वस्थ; पराग कोश का संयोजन और उस का स्फुटन; पराग कोश पिण्डक या पालियां या उपांग, यदि हों।

जायांग (Gynoecium) या स्त्री केसर (Pistil)—स्त्री केसर की संख्या, युक्ताण्डप या पृथक्अण्डप, वर्तिका की प्रकृति—लम्बी या छोटी, वर्तिकाग्र—एकदल, पिंडकीय या शाखीय; उनकी संख्या और प्रकृति। चिकनी या प्राग्रकाभ; गर्भाशय

उत्तरीय या अधोवर्ती; पालियों या पिंडकों की संख्या; कोष्ठों या विवरों की संख्या; जरायुन्यास की प्रकृति; गर्भाशय के प्रत्येक विवर या कोष्ठों में बीजाण्डों की संख्या और रूप।

फल (Fruit): फल का प्रकार (व्याख्या की जाय)।

बीज (Seeds): फल में बीजों की संख्या; रूप और आकार, ऐल्ब्यूमिनी या अऐल्ब्यूमिनी, ऐल्ब्यूमिन की प्रकृति यदि विद्यमान हो।

अध्याय २

द्विबीजपत्री के कुछ वरित कुल

(SELECTED FAMILIES OF DICOTYLEDONS)

कुल या फैमिली १—रैननकुलेसी (*Ranuncula ceae*; १,२०० स्पीशीज—भारतवर्ष में १५७ स्पीशीज)।

स्वरूप—वार्षिक या वर्षानुवर्षी शाक या आरोही क्षुप, साधारणतया एक तीक्ष्ण रस युक्त। पत्तियां सरल या एकदल (simple) या संयुक्त या बहुदल (compound), एकान्तरित या विरलत विपरीत, मूल (radical) और स्तम्भीय (cauline), साधारणतया छादीय आधार युक्त (sheathing base)। पुष्पक्रम एकवर्ध्यक्षीय या बहुवर्ध्यक्षीय। पुष्प अधिकांशत: नियमित (बहुयुग्म) कभी-कभी एक युग्म (zygomorphic) जैसे निर्विषी या लार्कस्पर में; द्विलिंगी और अधोजाय, पुष्पीय सदस्य दीर्घीकृत पुष्पाक्ष पर प्राकृतिक: सर्पिल या आवर्ती (whorl) में। बाह्यदल पुंज—बाह्यदल ३ से ∞ साधारणतया ५, अलग्न, कभी-कभी चमकीले रंगीन। दलपुंज दल—५ या अधिक, अलग्न, कभी-कभी अनुपस्थित, प्राय: मकरन्द कोष युक्त,

चित्र ५५४—रैननकुलेसी का पुष्प चित्र।

अनियमछादी (imbricate); परिदलपुंज पत्र (जब बाह्यदल पुंज और दलपुंज भेदकरणीय न हों) अलग्न और दलाभ। पुमंग—पुंकेसर बहुसंख्यक, अलग्न, और साधारणतया सर्पिल। जायांग—स्त्रीकेसर साधारणत बहुसंख्यक, कभी-कभी अल्प

संख्यक (३ से ७), अलग्न (पृथक अण्डप), साधारणतः सपिल, प्रत्येक में एक से कई तक बीजाण्ड; कलोंजी या नाइजेला (*Nigella*) में स्त्रीकेसर आधार पर जुड़े होते हैं। फल एकीनों (achenes) या एकसेवनियों (follicle) का समूह फल (etaerio); यदा-कदा ही भरी (berry) या स्फोटिका (capsule)। बीज ऐल्ब्यूमिनी। पुष्प सूत्र (Floral formula)—$K_{3-\infty}C_{5-\infty}A_{\infty}\underline{G}_{\infty}$।

उदाहरण—उपयोगी पौधे—अतीस या अतिविपा (*Aconitum ferox*)—भेषजीय (medicinal) अति विषाक्त एलकालायड युक्त कंदिल मूल; कलोंजी (*Nigella sativa*)—बीज मसाले के रूप में प्रयोग किये जाते हैं; शोभाकारी (ornamental)—निर्विपी या लार्कस्पर (*Delphinium*)—एक वाटिका वार्षिक पादप; एनीमोन (*Anemome*)—एक छोटा कन्दिल पौधा जिस में वायु विकिरण के लिये ऊनी एकीन होते हैं; क्लीमेटिस (*Clematis*) एक आरोही क्षुप; जलधनिया (*Ranunculus*), इत्यादि।

इस कुल या फैमिली के कुछ अन्य सामान्य पौधे—रैननकुलस (३०० स्पीशीज़;
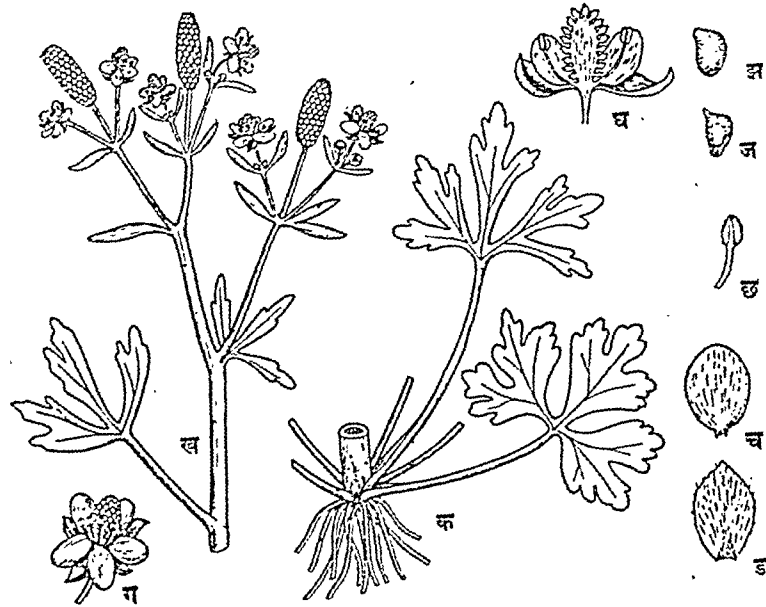
रैननकुलेसी। चित्र ५५५—जलधनिया (*Ranunculus sceleratus*)। क, पौधे का आधार भाग पत्तियों और जड़ों सहित; ख, पौधे का ऊपरी भाग पुष्पक्रम सहित; ग, एक पुष्प; घ, पुष्प अनुदैर्घ्य रूप में कटा हुआ; ङ, एक बाह्यदल; च, एक दल; छ, एक पुंकेसर; ज, एक स्त्री केसर और झ, एक फल (एकीन)।

भारतवर्ष मे १५७), उदाहरणार्थ जलधनिया या रैननकुलस स्केलेरेटस (*Ranunculus sceleratus*) साधारणतया नदी तथा कच्छ तटों पर उत्पन्न होता है; रैननकुलस ऐक्वाटैलीस जो जल में उत्पन्न होता है और असमपर्णिता (heterophylly) प्रदर्शित करता है; छागल वटी या नारावेलिया (*Naravelia*)—एक आरोही क्षुप; इत्यादि।

कुल या फैमिली २—क्रूसीफेरी (*Cruciferae*; २,००० स्पीसीज—भारत में १७४ स्पीसीज)।
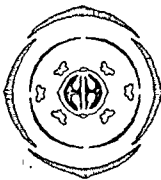
स्वरूप—शाक। पत्तियाँ मूल पत्र और स्तंभीय, सरल और एकान्तरित। पुष्पक्रम एकवर्ध्यक्ष या रेसीम। पुष्प नियमित और स्वस्तिकाकार (cruciform), द्विलिंगी और पूर्ण (complete), अधोजाय। बाह्यदल पुंज—बाह्यदल २+२, अलग या मुक्त, दो आवर्तों में। दलपुंज—दल ४, अलग, एक आवर्त मे, स्वस्तिकाकार, स्पष्ट बाहु (limb) और नखर (claw) युक्त। पुमंग—पुंकेसर ६, दो आवर्तों में, दो बाह्यवर्ती छोटे और ४ आन्तर (inner) लम्बे (चतुर्दीर्घक—tetradynamous)। जायांग—स्त्रीकेसर (२), युक्ताण्डपी (syncarpous), अण्डाशय उत्तरीय (superior); प्रथमत एककोष्ठी (unilocular), लेकिन बाद मे कूट पटी (replum) नामक कूट पट (false septum) के बनने से द्विकोष्ठी (bilocular) हो जाता है, प्रत्येक कोष्ठ में प्राय: अनेक बीजाण्ड, कभी-कभी केवल दो ही होते हैं; जरायुन्यास भित्तिलग्न। फल—कूटपटीक (siliqua) या कूटपटीका (silicula)। बीज—अप्रेन्ध्यमिनी (exalbuminous)। पुष्प सूत्र—$K_{2+2}\ C_4\ A_{2+4}\ \underline{G}_{(2)}$।

चित्र ५५६—क्रूसीफेरी का पुष्प चित्र।

उदाहरण—उपयोगी पौधे—तैल और मसाले: सरसों (*Brassica campestris*), राई (*B. juncea*), तोरिया (*B. napus*), सफेद राई (*B alba*), काली सरसों (*B. nigra*), इत्यादि; साग भाजी: मूली (*Raphanus sativus*), बंदगोभी (*Brassica oleracea* var. *capitata*), फूलगोभी (*B. oleracea* var. *botrytis*), शलजम (*B. rapa*), गांठगोभी (*B. caulorapa*), लाईसाग (*B. rugosa*), हलीम (garden cress,

Lepidium sativum), नर्स्टाशियम ऑफिसिनेल (*Nasturtium officinale*),
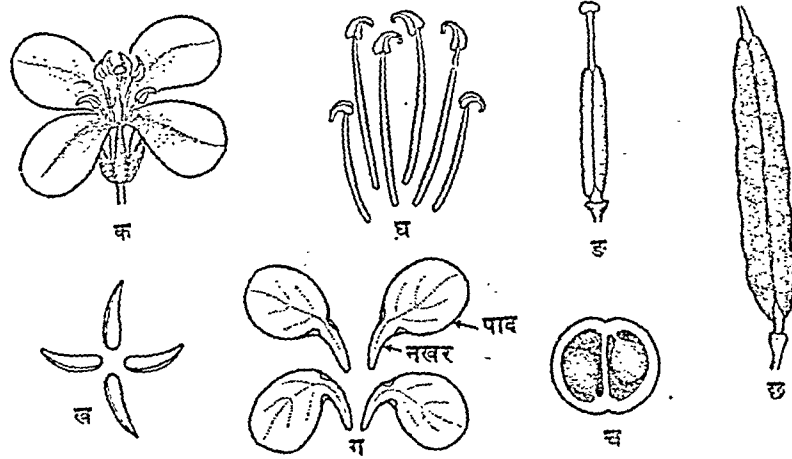
क्रूसीफेरी। चित्र ५५७—सरसों (*Brassica campestris*) का पुष्प। क, एक पुष्प (स्वस्तिकाकार); ख, वाह्य दल; ग, दल भाजित किया हुआ; घ, पुमंग चतुर्दीषक पुंकेसर प्रदर्शित करते हुये; ङ, जायांग दो युक्त स्त्रीकेसर प्रदर्शित करते हुये; च, अण्डाशय अनुप्रस्थ काट में भित्तिलग्न जरायुन्यास और कूटपटी (रेप्लम) प्रदर्शित करते हुये; और छ, एक फल—कूटपटीक (चित्र १ भी देखिये)

इत्यादि; शोभाकारी: चांदनी या कैन्डीटफ्ट (*Iberis*), तोदरी सुर्ख या वाल फ्लावर (*Cheiranthus*), इत्यादि।

इस कुल के कुछ अन्य साधारण पौधे—नर्स्टाशियम इंडिकम (*Nasturtium indicum*), तारा मीरा या एरूका सेटाइवा (*Eruca sativa*), कार्डेमीन हिर्सुटा (*Cardamine hirsuta*), केप्सेला बर्सापेस्टोरिस (*Capsella bursa-pastoris*)।

कुल या फैमिली ३—माल्वेसी (*Malvaceae*; १००० स्पीशीज—भारत में १०५ स्पीशीज)।

स्वरूप—शाक, क्षुप और वृक्ष। पत्तियां सरल, एकान्तरित और पाणिवत् शिराविन्यास युक्त (palmately-veined); अनुपत्र २, अलग्न पार्श्व। पुष्प नियमित, द्विलिंगी, अधोजाय, प्रचुरत: श्लेष्मी (mucilaginous), अनुवाह्यदल (epicalyx) नामक निपत्रिकाओं (bracteoles) के एक आवर्त युक्त। वाह्यदल पुंज—वाह्यदल (५), युक्त। दलपुंज—दल ५

पृथक या आधार पर अन्ततः युक्त, पुष्पदल विन्यास व्यावृत (twisted)। पुमंग—पुंकेसर प्रायः बहुसंख्यक, एकसंघाग (monadelphous) अर्थात् एक बंडल (पुंकेसरीय नली) में युक्त; दललग्न (epipetalous); पुंकेसरीय नली आधार में दलों से लग्न (adnate); पराग कोश एककोष्ठी (unilocular)। जायांग—स्त्रीकेसर ५–∞, युक्ताण्डप (syncarpous); अण्डाशय उत्तरीय (superior), बहुकोष्ठी, प्रत्येक कोष्ठ में एक से अनेक बीजाण्ड तक, जरायुन्यास अक्षवर्ती (axile), वर्तिका पुंकेसरीय नली के मध्य हो कर जाती है; वर्तिकाग्र अलग्न, संख्या में उतनी ही जितने स्त्रीकेसर। फल स्फोटिका या कभी-कभी वेश्मस्फोटी। पुष्प-सूत्र—
$K_{(5)}\overline{C_5 A_{(\infty)}}\,\underline{G}_{(5-\infty)}$।

चित्र ५५८—माल्वेसी का पुष्प चित्र।

उदाहरण—उपयोगी पौधे—कपास (*Gossypium*) के पेड़ से व्यवसाय का कपास प्राप्त होता है; लाल अम्बाडी या पटवा (*Hibiscus subdariffa*) और अम्बाडी या हिबिस्कस कैनेबिनस (*Hibiscus cannabinus*) दृढ़ रेशों (fibres) के स्रोत हैं; सेमल या बाम्बैक्स मालाबारिकम (*Bombax malabaricum*) और श्वेत कपास वृक्ष या इरियोडेन्ड्रोन (*Eriodendron*) की कपास तकिया और गद्दे में भरने के काम आती है, भिंडी (*Hibiscus esculentus*) के हरे कोमल फल तरकारी के रूप में खाये जाते हैं, सोनचाल या माल्वा (*Malva*) की हरी पत्तियां सब्जी के काम आती हैं। शोभाकारी: हिबिस्कस की अनेक स्पीशीज, जैसे जसुम या गुड़हल (*Hibiscus rosa-sinensis*), गुल अजायब (*H. mutabilis*) आदि, और गुलखैरा (*Althaea rosea*), छायादार वृक्ष: भेंडी या पारस पीपल (*Thespesia*)।

इस कुल के अन्य साधारण पौधे—बरियारी या साइडा कोर्डीफोलिया (*Sida cordifolia*), बन कपास (*Hibiscus vitifolius*), बनभेंडा या बचेटा (*Urena lobata*), कंघी या ऐब्यूटिलान इन्डिकम (*Abutilon indicum*), बन भिंडी (*Malachra capitata*), माल्वैस्ट्रम (*Malvastrum*)—बंजर स्थानों की एक घास, आदि।

टिप्पणी—यह ध्यान रखना चाहिये कि सेमल (*Bombax*) और श्वेत कपास वृक्ष (*Eriodendron*) में पत्तियां पाणिवत् होती हैं और पुंकेसर बहुसंघाग (poly-

adelphous) होते हैं; अब ये एक नये कुल में पृथक कर दिये गये हैं जिस का नाम बाम्बैकेसी (*Bombacaceae*) है।
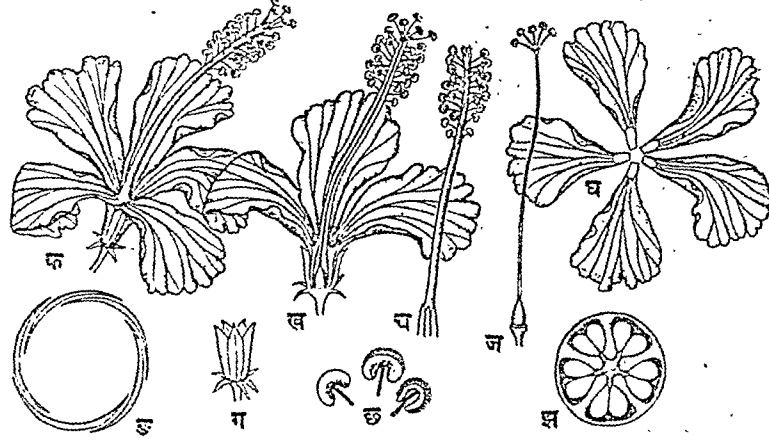
माल्वेसी। चित्र ५५९—जसुम या गुड़हल (*Hibiscus rosa-sinensis*) का पुष्प। क, सम्पूर्ण पुष्प ; ख, पुष्प अनुदैर्घ्य रूप में विपाटित किया हुआ जिसमें चार आवर्त और विशेष रूप से पुंकेसर स्तम्भ से होती हुई वर्तिका दिखलायी गई है ; ग, वाह्यदल पुंज अनुवाह्यदल पुंज सहित ; घ, दलपुंज भाजित किया हुआ ङ, दलपुंज का व्यावृत दल विन्यास ; च, पुमंग एकसंलाग पुंकेसर प्रदर्शित करते हुये ; छ, एक-कोष्ठी पराग कोश—तरुण और पक्व (स्फुटित होते हुये) ; ज, जायांग पांच युक्त स्त्री केसर प्रदर्शित करते हुये ; और झ, अण्डाशय अनुप्रस्थ काट में अक्षवर्ती जरायुन्यास प्रदर्शित करते हुये।

कुल या फैमिली ४—लेग्यूमीनोसी (*Leguminosae*; १२,००० स्पीशीज़ —भारत में ९५१ स्पीशीज़)।

स्वरूप—शाक, क्षुप, वृक्ष और आरोही। मूल—अनेक स्पीशीज़ के, विशेष कर पैपिलिओनेसी (*Papilionaceae*) के, मूल में गुटिकायें होती हैं (देखिये चित्र ४३८)। पत्तियां—एकान्तरित, पक्षवत् संयुक्त, दुर्लभतः सरल जैसे झुनझुनिया (क्रोटालेरिया सेरिसिआ), कचनार (camel's foot tree—*Bauhinia*) और डेस्मोडियम (*Desmodium*) की कुछ स्पीशीज़ जिन में स्थूलाधार (pulvinus) नाम से ज्ञात एक फूला हुआ पर्णाधार (leaf base) होता है; अनुपत्र २, प्रायः अलग्न। पुष्प द्विलिंगी और पूर्ण, नियमित या अनियमित या एकयुग्म (zygomorphic), अधोजाय या अल्पतः परिजाय (perigynous)। वाह्यदल पुंज—वाह्यदल साधारणतः (५), कभी-कभी (४), पृथक या युक्त।

पुमंग—पुंकेसर साधारणतः १० या बहुसंख्यक, कभी-कभी अवर्धन (abortion) द्वारा १० से न्यून, अलग्न या युक्त। जायांग—१ स्त्रीकेसर, अंडाशय एककोष्ठी, एक या अनेक बीजाण्डों युक्त; जरायुन्यास सीमान्त (marginal)। फल शिंब (legume) या फली (pod)।

यह विभिन्न लक्षणों युक्त सबसे बड़े कुलों में से एक है और इस कारण यह निम्न तीन उपकुलों (sub-families) में विभाजित किया गया है। यह विभाजन मुख्यतः दलपुंजों और पुंकेसरों के लक्षणों पर आधारित है (देखिये चित्र ५५१-५३)। ये सब उपकुल भारत में विशदतः निरूपित (represented) हैं। आर्थिक दृष्टि से यह एक अधिकतम महत्व का कुल है। कदाचित् यह महत्व के विचार से ग्रैमिनेसी (*Graminaceae*) से द्वितीय स्थान पर है।

(१) पैपिलिओनेसी (*Papilionaceae*; भारत में ७५४ स्पीशीज)—शाक, क्षुप, वृक्ष और आरोही। पत्तियाँ एकपक्षवत्, विरलतः सरल; अनुपत्रक प्रायः उपस्थित। पुष्पक्रम प्रायः एकवर्ध्यक्ष (raceme)। पुष्प एकयुग्म (zygomorphic), पृथकदली (polypetalous) और आगस्तिक (papilionaceous), पुष्पदल विन्यास प्रायः अनियमछादी, कभी-कभी धारास्पर्शी। बाह्यदल पुंज—बाह्यदल प्रायः (५), युक्तबाह्यदली, प्रायः अनियमछादी, कभी-कभी धारास्पर्शी। दलपुंज—दल प्रायः ५, पृथक, विषम आकार के, पश्च सबसे बड़ा ध्वजक (vexillum) कहलाता है, पार्श्व के दो दल पक्षक (wings) और सबसे अन्दर के दो दल (आभासतः युक्त) नौतल (keel) कहलाते हैं; दल पुंज का पुष्पदल विन्यास ध्वजकीय (vexillary)। पुमंग—पुंकेसर दस, द्विसलाग (diadelphous)—(९)+१, दुर्लभतः पृथक या एकसलाग जैसे पांगरा (एरिथ्रिना इंडिका) में। पुष्प सूत्र—$K_{(5)} C_5 A_{(9)+1} G_1$।

(२) सिजलपिनी (*Caesalpinieae*; भारत में ११० स्पीशीज)—क्षुप या वृक्ष विरलतः आरोही या शाक। पत्तियाँ एकपक्षवत् या द्विपक्षवत्, विरलतः सरल जैसे कचनार में; अनुपत्रक अनुपस्थित। पुष्पक्रम साधारणतः एकवर्ध्यक्ष। पुष्प एकयुग्म या असममित और पृथकदली। बाह्यदल पुंज—बाह्यदल प्रायः ५, पृथक बाह्यदली (कभी-कभी युक्त बाह्यदली), अनियमछादी। दलपुंज—दल प्रायः ५, पृथक, उपसमान या विषम, पश्च दल (कभी-कभी बहुत छोटा) हमेशा सबसे अन्दर; दलपुंज का पुष्पदल विन्यास अनियमछादी। पुमंग—पुंकेसर दस या अवर्धन (abortion) द्वारा न्यून संख्यक, अलग्न। पुष्प सूत्र—$K_5 C_5 A_{10} G_1$।

(३) माइमोसी (*Mimoseae*; भारत में ८९ स्पीशीज)—क्षुप या वृक्ष, कभी-कभी शाक। पत्तियाँ द्विपक्षवत्; अनुपत्रक उपस्थित या अनुपस्थित। पुष्पक्रम

मुण्डक (head) या शूकी (spike)। पुष्प नियमित, प्रायः सूक्ष्म और गोलीय मुण्डकों में एकत्रित। वाह्यदल पुंज—वाह्यदल (५) या (४), प्रायः युक्तवाह्यदली, धारास्पर्शी। दलपुंज—दल (५) या (४), प्रायः युक्तदली, दलपुंज का पुष्पदल-विन्यास धारास्पर्शी। पुमंग—पुंकेसर वहुसंख्यक या १०,८ या ४, पृथक या आधार पर युक्त। पराग कण प्रायः छोटे पुंजों में युक्त। पुष्प सूत्र—$K_{(4-5)}\, C_{(4-5)}\, A_{\infty \text{ or few}}\, \underline{G}_1$।
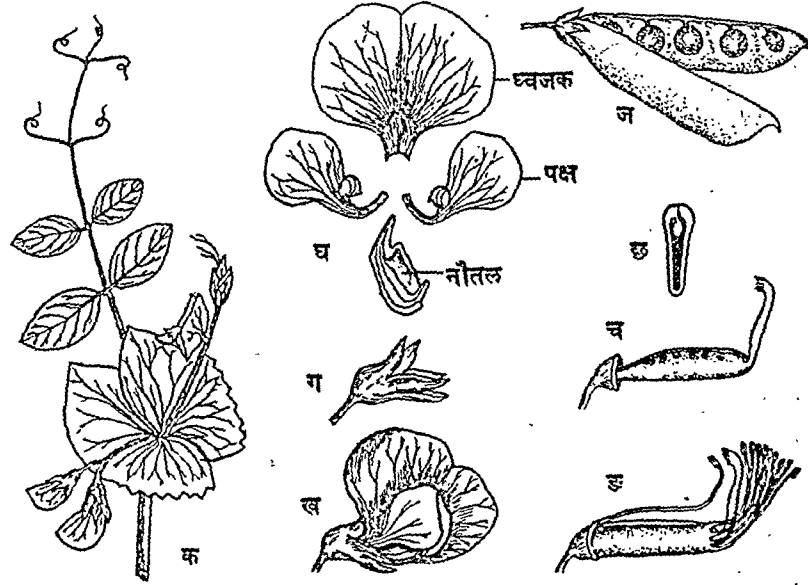
पैपिलिओनेसी। चित्र ५६०—मटर (*Pisum sativum*)। क, एक शाखा; ख, एक पुष्प—आगस्तिक; ग, वाह्यदल पुंज; घ, दलपुंज- दल भाजित, ङ, पुंकेसर (९)+१, और स्त्रीकेसर; च, स्त्रीकेसर—एक स्त्रीकेसर (अण्डाशय, वर्तिका और वर्तिकाग्र का अवलोकन करो); छ, अण्डाशय काट में सीमान्त जरायुन्यास प्रदर्शित करते हुये; और ज, एक फल—शिम्ब।

पैपिलिओनेसी के उदाहरण—दालें जिनमें प्रचुर प्रोटीन होती हैं: चना (*Cicer arietinum*), मसूर (*Lens culinaris*), अरहर (*Cajanus cajan*), मटर (*Pisum sativum*), मूंग (*Phaseolus aureus*), उर्द (*P. mungo*), खेसारी या चटरी-मटरी (*Lathyrus sativus*), सोयाबीन (*Glycine max*), इत्यादि; साग-भाजी: सेम (*Dolichos lablab*), बड़ी सेम (*Canavalia gladiata*), फ्रेंचबीन (*Phaseolus vulgaris*), इत्यादि; **प्राकृतिक उर्वरक:**

डैंचा (*Sesbania cannabina*), जयंत (*S. sesban*), गरारी (*Medicago sativa*)—यह एक उत्तम चारा भी है। इमारती लकड़ी: शीशम (*Dalbergia sissoo*)। अन्य उपयोगी पौधे: मूंगफली (*Arachis hypogaea*), शोला (*Aeschynomene indica*), सनई (*Crotalaria juncea*), मेथी (*Trigonella*), नील (*Indigofera*), रत्ती (*Abrus precatorius*), सुगन्धित त्रिपुटी (*Lathyrus odoratus*), आदि।

इस कुल के अन्य साधारण पौधे—झुनझुनिया (*Crotalaria sericea*), गोकर्ण (*Clitoria ternatea*), पलास (*Butea monosperma*), जंगली मटर (*Lathyrus aphaca*), पांगरा (*Erythrina indica*), शालिपर्णी (*Desmodium gangeticum*), इत्यादि।

सीजलपिनी (*Caesalpinieae*) के उदाहरण—उपयोगी पौधे—इमली (*Tamarindus indica*) खट्टे स्वाद की वस्तुये बनाने के लिये फल का उपयोग होता है;
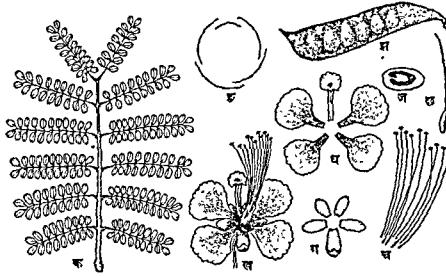
सिजलपिनी—चित्र ५६१—छोटा गुलमुहर या सिजलपिनिआ पल्चेरिमा। क, एक पक्षवत् संयुक्त पर्ण; ख, एक पुष्प; ग, बाह्यदल पुंज, घ, दलपुंज—दल भाजित किये हुये; ङ, पुष्पदल विन्यास (अनियमछादी); च, पुंकेसर; छ, स्त्रीकेसर (एक स्त्रीकेसर), ज, अण्डाशय अनुप्रस्थ काट में सीमान्त जरायुन्यास प्रदर्शित करते हुये; झ, एक फल।

अमलतास (*Cassia fistula*)—अन्त: काष्ठ (heart wood) बहुत कठोर व टिकाऊ होता है और पुष्प शोभाकारी होते हैं; भेषजीय: सनाय का पौधा (*Cassia

angustifolia), सीता अशोक (*Saraca indica*), इत्यादि; शोभाकारी: कचनार (*Bauhinia*), गुलमुहर (*Delonix regia*), सिजलपिनिआ पल्चेरिमा (*Caesalpinia pulcherrima*), इत्यादि।

इस कुल के अन्य साधारण पौधे—कासुन्दा (*Cassia sophera*), दाद मर्दन (*Cassia alata*), चकुन्दा (*C. tora*), इत्यादि।

माइमोसी के उदाहरण—उपयोगी पौधे—कत्था (*Acacia catechu*)-अंतः काष्ठ के टुकड़े उबालने से कत्था, एक प्रकार का टैनिन, प्राप्त होता है। बबूल या कीकर (*Acacia arabica*) और कुम्हटिया (*Acacia senegal*) से गोंद प्राप्त होता है। ऐकेशिया की अनेक स्पीशीज़ से टैनिन और
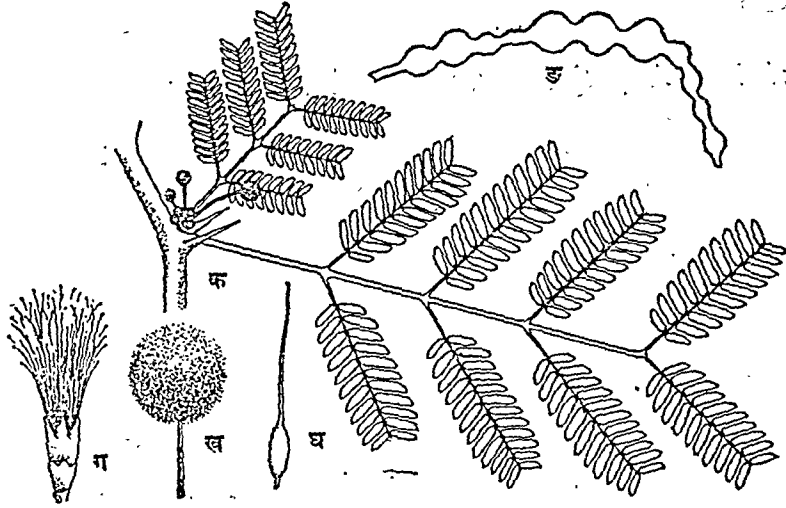
माइमोसी। चित्र ५६२—कीकर या बबूल (*Acacia arabica*)। क, एक शाखा द्विपक्षवत् संयुक्त पर्ण सहित; ख, एक पुष्पक्रम (मुंडक); ग, एक पुष्प; घ, स्त्री केसर (एक स्त्री केसर); और ङ, एक फल (अनुप्रस्थक)।

जलाने की लकड़ी (ईंधन) भी प्राप्त होती है। सिरस (*Albizzia lebbek*) एक शहतीर-वाला वृक्ष है। सफेद सिरस (*Albizzia procera*) का काष्ठ चाय के बक्सों के उपयुक्त होता है। ऐल्बिज़िया की अनेक स्पीशीज ईंधन के स्रोत हैं। इन्टरोलोबियम (*Enterolobium*) छाया वृक्ष की भांति लगाया जाता है और पार्किया (*Parkia*) भी सुन्दर वीथि (avenue) वृक्ष है।

इस कुल के अन्य साधारण पौधे—छुईमुई (*Mimosa pudica*), पानी लंजुक या नेपच्यूनिया ओलेरेशिया (*Neptunia oleracea*), पिथीकोलो-

चित्र ५६४—रोजेसी का पुष्प चित्र।
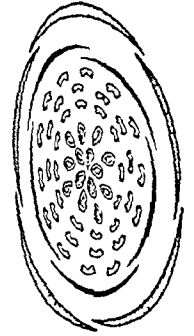
विलायती इमली (*Pithecolobium dulce*), गिला या एन्टाडा स्कैनडेन्स (*Entada scandens*) और शोमी या प्रोसोपिस स्पीसीजेरा (*Prosopis spicigera*)।

माइमोसी। चित्र ५६३—छुई-मुई (*Mimosa pudica*)। क, एक शाखा, ख, एक पुष्पक्रम; ग, एक पुष्प; और घ, स्त्रीकेसर (एक स्त्री केसर)।

कुल या फैमिली ५—रोज़ेसी (*Rosaceae*; २,००० स्पीशीज़—भारतवर्ष में २४४ स्पीशीज़)।

स्वरूप—शाक, क्षुप, वृक्ष या आरोही। पत्तियां सरल या संयुक्त, एकान्तरित, अनुपत्र २, प्रायः पर्णवृन्त से लग्न। पुष्पक्रम—फूल एकल या अग्रीय एकवर्ध्यक्षों या बहुवर्ध्यक्षों में। पुष्प-निर्यमित, द्विलिंगी, पाटलीय या गुलाबाकार, प्रारूपिकत परिजाय, पुष्पासन खोखला और चषकाकार, विरलत ऊर्ध्वस्थ (जैसे सेब व नाशपाती में); बिम्ब प्राय. एक वलय के रूप में उपस्थित। बाह्यदल पुंज—बाह्यदल ५, पुष्पासन से लग्न, पिडक पृथक, कभी-कभी अनुबाह्यदल सहित। दलपुंज—दल ५ (कृष्ट गुलाबों में अनेक), पृथक प्रायः अनियमछादी, बाह्यदलों से एकान्तरित, सामान्यतः श्वेत या गुलाबी। पुमंग—पुंकेसर असंख्य, कलिका में अन्दर की ओर वक्र, चक्रीय क्रम में विन्यस्त, विरलतः कम। जायांग—स्त्रीकेसर प्रायः असंख्य, पृथक (जैसे गुलाब में) या कभी (५) युक्त (जैसे सेब और नाशपाती में) या केवल १ (जैसे आड़ू और आलूचा में); अण्डाशय एककोष्ठी, या युक्ताण्डपी स्त्रीकेसर में ५-कोष्ठी, प्रत्येक कोष्ठ में [illegible] या ३ बीजाण्ड, बीजाण्ड अधोमुख और [illegible]वत्। फल विभिन्न प्रकार के—[illegible] एकसेवनी, भरी, [illegible], या [illegible]। बीज अएँल्ब्यूमिनी। पुष्प सूत्र—[illegible] ($_5$) या 1।
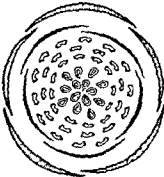
चित्र ५६४—रोजेसी का पुष्प चित्र।

आर्थिक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कुल है। [illegible] डेमेस्केना (*Rosa damascena*) और रोजा सेन्टिफोलिया (*R. centifolia*)

से प्राप्त होता है ; इस कुल में अनेक मांसल भक्ष्य फल, उदाहरणार्थ आलूचा, आड़ू, आलू, बुखारा, सेव, नाशपाती, स्ट्राबेरी इत्यादि हैं ; और गुलाब की कई किस्में शोभाकारी बाग के पौधे हैं।

उदाहरण—गुलाब (*Rosa*) की १५० स्पीशीज, और अनेक संकर (hybrids), लोकाट (*Eriobotrya japonica*), आलूचा (*Prunus communis*), आड़ू (*P. persica*), योरोपी आलूचा (*P. domestica*), खूबानी (*P. armeniaca*), बादाम (*P. amygdalus*), मीठी चेरी (*P. avium*), बीही (*Cynodia oblonga*), स्ट्राबेरी (*Fragaria vesca*), वन स्ट्राबेरी (*F. indica*), सेव (*Malus sylvestris*), नाशपाती (*Pyrus communis* and *P. pyrifolia*), रसभरी (*Rubus idaeus*), जंगली रसभरी (*R. moluccanus*) और पहाड़ों में अनेक जंगली स्पीशीज।

कुल या फैमिली ६—क्यूकरबिटेसी (*Cucurbitaceae*; ८०० स्पीशीज—भारतवर्ष में ८४ स्पीशीज)।

स्वरूप—तन्तु आरोही ; तन्तु अतिरिक्त-कक्षस्थ, सरल या शाखी। **पत्तियाँ**—सरल, एकान्तरित, पाणिवत् शिरा विन्यास। **पुष्प**—नियमित, एकलिंगी, ऊर्ध्वस्थ, और एकक्षयक या द्वयोकसी। **वाह्यदल पुंज**—वाह्यदल (५), युक्त, प्रायः दीर्घ ५-पिंडकीय। **दलपुंज**—दल (५), युक्त, प्रायः दीर्घ ५-पिंडकीय, अनियमछादी, वाह्यदल नलिका पर निविष्ट।

नर पुष्प (Male Flowers)—**पुमंग**—पुंकेसर प्रायः ३, कभी-कभी ५, लक्षणों में परिवर्ती ; कभी-कभी वे अलग्न रहते हैं लेकिन प्रायः वे युग्मों में (या दो
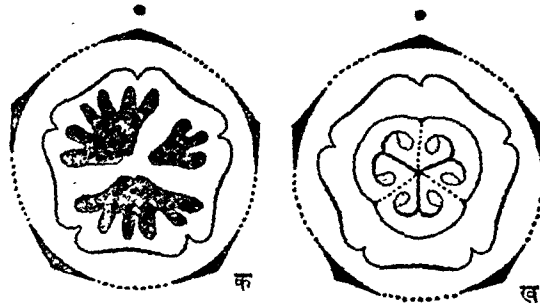
चित्र ५६५—क्यूकरबिटेसी के पुष्प चित्र ; क, नर पुष्प ; ख, मादा पुष्प।

युग्मों में जब पुंकेसर ५ होते हैं) अपनी सम्पूर्ण लम्बाई में युक्त रहते हैं (संमिल परागकोशीय), विषम पुंकेसर मुक्त रहता है ; कुछ दशाओं में केवल

पराग कोश ही युक्त रहते हैं (संपराग) ; प्रत्येक पराग कोश १-पिंडकीय या २-पिंडकीय; युग्मित पुंकेसर में २-पिंडकीय या ४-पिंडकीय पराग कोश होते हैं ; परागकोश के पिंडक विभिन्न रूप में वलित या लहरदार (sinuous), अर्थात् अनुप्रस्थ S के समान व्यावृत (twisted)। अल्प विकसित स्त्रीकेसर कभी-कभी उपस्थित रहता है।

स्त्री पुष्प (Female Flowers)—जायांग—स्त्रीकेसर (३), युक्ताण्डपी ; अण्डाशय अधोवर्ती, एककोष्ठी, जरायुन्यास भित्तिलग्न, लेकिन प्रायः जरायु
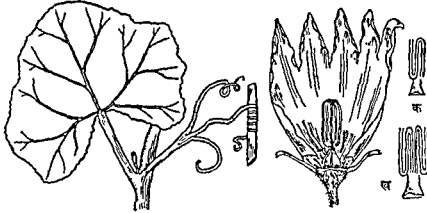
चित्र ५६६ चित्र ५६७

कुकरबिटेसी। चित्र ५६६—सफेद कद्दू (*Cucurbita pepo*)। शाखा का एक भाग एक पर्ण और तन्तु सहित। चित्र ५६७—उसी का नर पुष्प। क, एक पुंकेसर; ख, दो पुंकेसर आपस में संयुक्त।

अण्डाशय के कोष्ठ में अन्दर तक चले जाते हैं और अण्डाशय कूट रूप में त्रिकोष्ठी हो जाता है ; बीजाण्ड कई ; वर्तिका १ ; वर्तिकाग्र ३ जो प्रायः द्विशाखित होते हैं। फल पीपो (pepo)। पुष्प सूत्र—नर पुष्प: $K_{(5)}\ C_{(5)}\ A_3$ या A_5 और स्त्री पुष्प: $K_{(5)}\ C_{(5)}\ \overline{G}_{(3)}$।

इस कुल के पादप अधिकतर सब्जियों के काम आते हैं, और कुछ गर्मियों के स्वादिष्ट फल उत्पन्न करते हैं, और कुछ भेषजीय हैं।

उदाहरण—काशीफल या सीताफल (*Cucurbita moschata*), विलायती कद्दू (*C. pepo*); चचिंडा (*Trichosanthes anguina*), परवल (*T. dioica*), करेला (*Momordica charantia*), किकोड़ा या ककरोल (*M. cochinchinensis*), लौकी (*Lagenaria siceraria*), पेठा (*Benincasa cerifera*), काली तोरई (*Luffa acutangula*), घिया तोरई (*L. cylindrica*), कुंदरू (*Coccinia*

indica), खीरा (*Cucumis sativus*), खरबूजा (*C. melo*), तरबूज *Citrullus vulgaris*). भेषजीय : इन्द्रायन (*C. colocynthis*), बहुपत्रा या शिवलिंगी (*Bryonopsis*)।

चित्र ५६८—सफेद कद्दू का मादा पुष्प। क, अण्डाशय अनुप्रस्थ काट में जरायुन्यास प्रदर्शित करते हुये।

कुल या फैमिली ७—अम्बेलीफरी (*Umbelliferae*—२,७०० स्पीशीज़—भारतवर्ष में १७६ स्पीशीज़)।

स्वरूप—शाक (विरलतः) क्षुप; स्तम्भ प्रायः खोखला। **पत्तियाँ** एकान्तरित, सरल या प्रायः बहुत भाजित (dissected), प्रायः बहुसंयुक्त; पर्णवृन्त प्रायः आधार पर छादीय। **पुष्पक्रम** छत्रक (umbel), प्रायः संयुक्त छत्रक, या कुछ दशाओं में साधारण छत्रक। **पुष्प** नियमित (बहुयुग्म) या एकयुग्म, ऊर्ध्वस्थ, द्विलिंगी या बहुलिंगी, बाह्यपुष्प कभी-कभी किरणवत्; निपत्र व निपत्रिकायें निचक्रीय। **बाह्यदल पुंज**—बाह्यदल ५, पृथक, अण्डाशय से आलग्न।
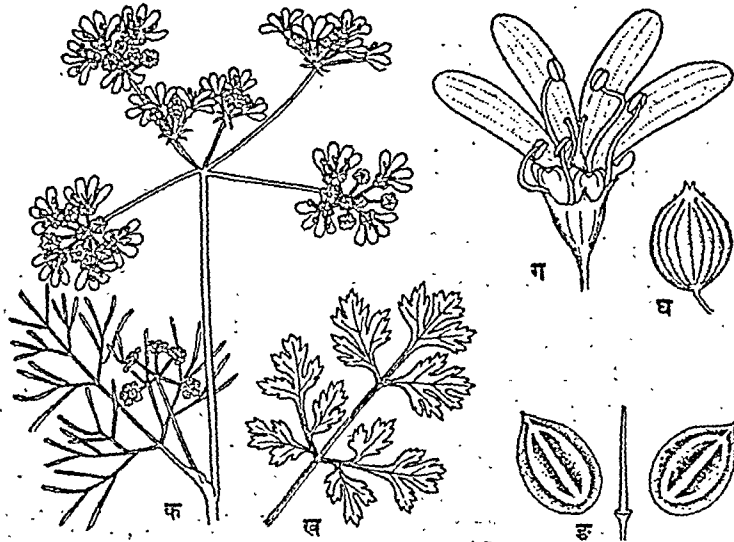
अम्बेलीफरी। चित्र ५६९—धनिया (*Coriandrum sativum*)। क, एक शाखा पर्ण और पुष्पक्रम सहित (संयुक्त छत्रक); ख, एक निम्न पत्ती; ग, एक पुष्प; घ, एक फल; और ङ, एक फल दो एकस्फोटियों और फल तंतु सहित।

दलपुंज—दल ५, पृथक, अण्डाशय से आलग्न कभी-कभी विषम, नोक (तट) प्रायः अन्दर की ओर मुड़े हुये, प्रायः अनियमछादी। पुमंग—पुंकेसर ५, पृथक, दलों से एकान्तरित; ऊर्ध्वस्थ, पराग कोश मध्य दोली। जायांग—स्त्रीकेसर (२), युक्ताण्डपी, अण्डाशय अधोवर्ती, २-कोष्ठी, शिखर पर द्विशिखीय बिम्ब सहित, वर्तिकायें २, वर्तिकाग्र समुण्ड, बीजाण्ड २, प्रत्येक कोष्ठ में १, लोलकवत्। फल—युग्म वेश्म दो अस्फोटी स्त्रीकेसरों का बना होता है

अम्बेलीफरी। चित्र ५७०—क, बाह्यदलपुंज अधोवर्ती अण्डाशय सहित, ख, दल भाजित किये हुये; ग, पुंकेसर भाजित किये हुये, घ, स्त्रीकेसर, और ङ, अण्डाशय अनुदैर्ध्य काट में।

जो पार्श्विक रूप से पृष्ठीय रूप में संपीडित रहते हैं और दो भागों में अलग होते हैं जिनको एकस्फोटी (mericarp) कहते हैं, प्रत्येक एकस्फोटी एक पतले प्रायः द्विशाखी अक्ष (फलतंतु) से जुड़ा रहता है। एकस्फोटी में साधारणतः पांच अनुलम्ब कूटक होते हैं। कूटकों के बीच में खाँचें होती हैं जिनके नीचे तेल नलिकायें (तैलिकायें) होती हैं। बीज—२, प्रत्येक स्त्रीकेसर में एक, भ्रूणपोषी।

पुष्प सूत्र—$K_5\ C_5\ A_5\ \overline{G}_{(2)}$।

उदाहरण—उपयोगी पौधे: धनिया (*Coriandrum sativum*); सौंफ (*Foeniculum vulgare*), अजवाइन (*Carum copticum*); स्याह जीरा (*C. carvi*), सफ़ेद जीरा (*Cuminum cyminum*), सोआ (*Peucedanum*), गाजर (*Daucus carota*), हींग (*Ferula foetida*), अजमोद (*Apium graveolens*)।

इस कुल के अन्य सामान्य पौधे—वन धनिया (*Eryngium foetidum*), ब्राह्मी (*Centella asiatica*)।

कुल या फैमिली ८—कम्पोज़िटी (*Compositae*; १४,१०० स्पीशीज़—भारत-वर्ष में ६७४ स्पीशीज़)।

स्वरूप—शाक और क्षुप। **पत्तियां** सरल, एकान्तरित या विपरीत, दुर्लभतः संयुक्त। **पुष्पक्रम** एक मुण्डक (capitulum), निपत्रों के एक निचक्र (involucre) युक्त। **पुष्पक** ; पुष्पक (florets) या तो सब नलिकाकार (tubular) या सब पट्टाकार (ligulate), या केन्द्रीय पुष्पक नलिकाकार और सीमान्त पुष्पक पट्टाकार ; केन्द्रीय नलिकाकार पुष्पक विम्ब पुष्पक (disc florets) कहलाते हैं और सीमान्त जिह्विकाकार पुष्पक रश्मि पुष्पक (ray florets) कहलाते हैं।

चित्र ५७१—कम्पोज़िटी का पुष्प चित्र।

विम्व पुष्पक : नियमित, नलिकाकार, द्विलिंगी, और ऊर्ध्वस्थ (epigynous), साधारणत: प्रत्येक एक निपत्रिका के कक्ष में। **वाह्यदल पुंज** प्राय: वाह्यदल रोम या पैपस (pappus) नामक एक रोमों के गुच्छ में रूपान्तरित—जैसे ट्राइडैक्स (*Tridax*) और एजीरेटम (*Ageratum*) में, या शल्क रूप में रूपान्तरित—जैसे सूर्यमुखी (sunflower) और भृंगराज या एक्लिप्टा (*Eclipta*) में, या अनुपस्थित (absent), जैसे चन्द्रशूर (*Enhydra*) में। **दलपुंज**—दल (५), युक्तदली, नलिकाकार। **पुमंग**—पुंकेसर ५, दल लग्न (epipetalous), तंतु (filaments) अलग्न, किन्तु परागकोश (anthers) संयुक्त [संपराग (syngenesious)]। **जायांग**—स्त्रीकेसर (२), युक्ताण्डपी (syncarpous), अंडाशय अधोवर्ती (inferior), एककोष्ठी, एक आधारलग्न (basal) अधोमुख (anatropous) बीजांड सहित, वर्तिका १, वर्तिकाग्र द्विशाख (bifid)। **फल** एक सूर्यमुखी फल या सिप्सेला (cypsela)। पुष्प सूत्र—K पैपस या o $\overline{C_{(5)}A_{(5)}}\overline{G}_{(2)}$।

रश्मि पुष्पक: एकयुग्म (zygomorphic), पट्टाकार, एकलिंगी (स्त्री) और ऊर्ध्वस्थ, प्रत्येक साधारणतया एक निपत्रिका के कक्ष में। **वाह्यदल पुंज** साधारणतः वाह्यदल-रोम या पैपस में रूपान्तरित, कभी-कभी यह शल्की (scaly) या अनुपस्थित होता है। **दलपुंज**—दल (५), युक्तदली, पट्टाकार (strap-shaped)। **जायांग**—स्त्रीकेसर वैसे ही जैसे विम्ब पुष्पक में होता

हैं। फल भी वैसे ही जैसे बिम्ब पुष्पक में होता है। पुष्प सूत्र --K पैपस या ० $C_{(5)}$ A_0 $\overline{G_{(2)}}$ या ०।

उदाहरण--उपयोगी पौधे--भेषजीय: नागदुना या सर्मी (*Artemisia vulgaris*), काला जीरा (*Vernonia anthelmintica*), अयापान (*Eupatorium ayapana*), भागरा (*Wedelia calendulacea*) भृंगराज (*Eclipta alba*), इत्यादि। सब्जियाँ: कासनी (*Cichorium intybus*), साइकोरियम एंडेविया (*C. endivia*), सलाद (*Lactuca sativa*), साइनेरा (*Cynara*), हाथी चक (*Helianthus tuberosus*), इत्यादि। तेल: कुसुम (*Carthamus tinctorius*)--एक रंग का श्रोत भी है; सूर्यमुखी (*Helianthus annuus*), इत्यादि। कीटनाशी: क्राइसेन्थिमम (*Chrysanthemum*) की कुछ स्पीशीज, जैसे क्राइसेन्थिमम सिनरैरीफोलियम (*C. cinerariefolium*) से न्यूनाधिकत. १% पाइरेथ्रिन (*pyrethrin*) प्राप्त होता है। शोभाकारी: सूर्यमुखी (sunflower), जिनिया (*Zinnia*), कॉसमॉस (*Cosmos*), डेलिया (*Dahlia*), गुलदाउदी (*Chrysanthemum*), गेंदा (*Tagetes patula*), इत्यादि।

कम्पोजिटी। चित्र ५७२--सूर्यमुखी (*Helianthus anniuus*) शाखा का एक भाग (बायें ओर)।

इस कुल के अन्य साधारण पौधे--एजीरेटम कोनीज़्वाइडीस (*Ageratum conyzoides*), ककरौंदा (*Blumea lacera*), इकाइनोप्स (*Echinops*), यूपेटोरियम ओडोरेटम (*Eupatorium odoratum*), घावपत्ता (*Tridax procumbens*), ज़ैन्थियम स्ट्रूमेरियम (*Xanthium strumarium*)।
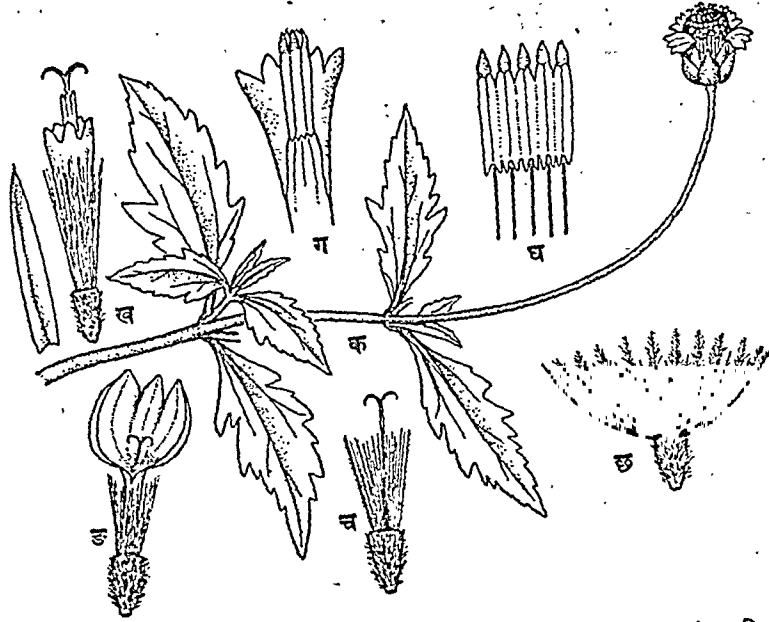
चित्र ५७३—घावपत्ता या ट्राइडैक्स। क, एक शाखा पुष्पक्रम (मण्डक) सहित ; ख, एक विम्ब पुष्पक निपत्रिका सहित ; ग, दलपुंज (विपाटित किया हुआ) और दल लग्न पुंकेसर ; घ, संपराग पुंकेसर (विपाटित किया हुआ) ; ङ, रश्मि पुष्पक; च, स्त्री केसर और पैपस ; और छ, एक फल (सिप्सेला) पैपस सहित (वायु छत्रत्व)

कुल या फैमिली ९—सोलेनेसी (*Solanaceae*; २,००० स्पीशीज़—भारतवर्ष में ५८ स्पीशीज़)।
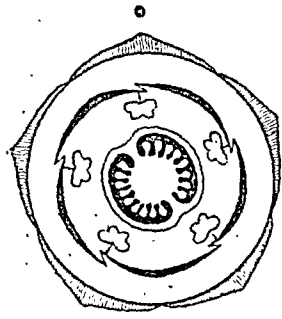
चित्र ५७४—सोलेनेसी का पुष्प चित्र।

स्वरूप—शाक या क्षुप। **पत्तियां** सरल (simple), या कभी-कभी पक्षवत् (pinnate), जैसे टमाटर में, एकान्तरित। **पुष्प** नियमित, द्विलिंगी, अधोजाय (hypogynous)। **वाह्यदलपुंज**—वाह्यदल (५), युक्त, चिरलग्न (persistent)। **दलपुंज**—दल (५), युक्त, साधारणतः धतूराकार (funnel-shaped) या चषकाकार (cup-shaped), ५-पिंडकीय (5-lobed), पिण्ड या पालियां (lobes), कलिका में धारास्पर्शी (valvate) या व्यावृत (twisted)। **पुमंग**—पुंकेसर ५, दललग्न (epipetalous),

दलपुंज खिण्डों या पालियों (corolla lobes) से एकान्तरित; परागकोष आभासतः (apparently) संयुक्त (connate)। जायांग—स्त्रीकेसर
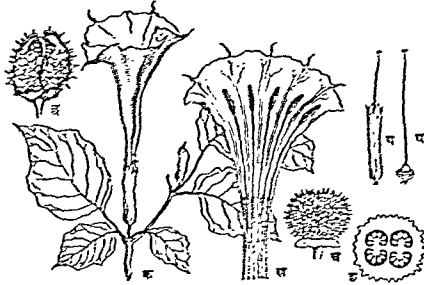
मोल्निनेमी। चित्र ५३५—धतूरा (*Datura fastuosa*)। क, एक पर्णयुक्त शाखा फूल सहित; ख, दलपुंज नालित किया हुआ दललग्न पुंकेसरों सहित; ग, स्त्रीकेसर और विच्छिन्न बाह्यदल पुंज; घ, स्त्रीकेसर; ङ, अण्डाशय की काट चार कोष्ठ प्रदर्शित करते हुये (कोष्ठ प्रायः संख्या में २ से ५ हो सकते हैं); च, एक तरुण फल; और छ, एक सम्पुटिका।

(२), युक्ताण्डपी (syncarpous), अंडाशय ऊर्ध्ववर्ती (superior); द्विकोष्ठी, या कभी-कभी कूटपट (false septum) के परिवर्धन से ४-कोष्ठी, जैसे टमाटर और धतूरा में; प्रत्येक कोष्ठ में अनेक बीजाण्ड, जरायुन्यास अक्षवर्ती (axile)। फल एक भरी (berry), या अनेक बीजों युक्त स्फोटिका या (capsule)। पुष्प सूत्र—$K_{(5)} \overline{C_{(5)} A_5} \underline{G}_{(2)}$।

उदाहरण—उपयोगी पौधे: आलू (*Solanum tuberosum*) बैंगन (*S. melongena*), लाल मिर्च (*Capsicum frutescens*), टमाटर (*Lycopersicum esculentum*), इत्यादि; भेषजीय: एट्रोपा बेलाडोना (*Atropa belladonna*), धतूरा (*Datura fastuosa*) के बीज बड़े विषाक्त होते हैं; गुरकमे (*Solanum dulcamara*), कटियारी (*Solanum xanthocarpum*), असगन्ध (*Withania somnifera*); स्वापक (narcotic):

तम्बाकू (*Nicotiana tabacum*) ; फल—रसभरी (*Physalis peruviana*) ;
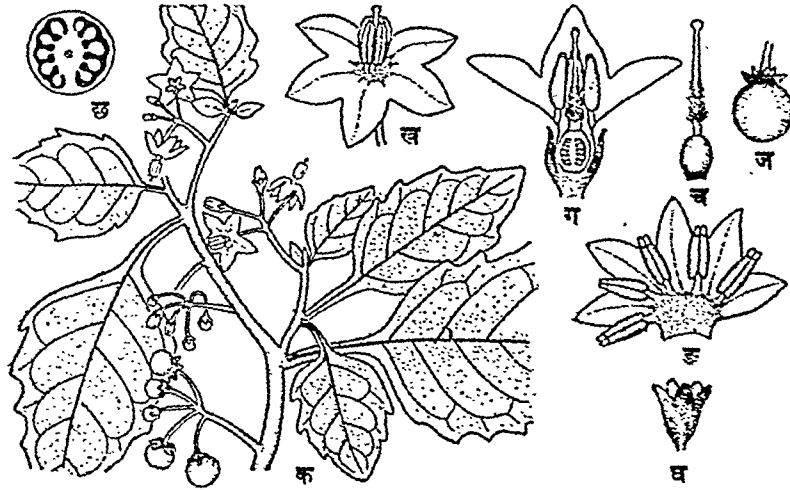
चित्र ५७६—मकोय (*Solanum nigrum*)। क, एक शाखा ; ख, एक पुष्प ; ग, एक पुष्प अनुदैर्घ्य काट में ; घ, वाह्यदल पुंज ; ङ, दलपुंज दल-लग्न पुंकेसर सहित ; च, स्त्री केसर ; छ, अण्डाशय अनुप्रस्थ काट में ; ज, एक फल।

शोभाकारी : पीट्यूनिया (*Petunia*), रात की रानी (*Cestrum nocturnum*) इत्यादि।

इस कुल के अन्य साधारण पौधे : मकोय (*Solanum nigrum*), रस बदरी (*Physalis minima*), जंगली तम्बाकू (*Nicotiana plumbaginifolia*)।

कुल या फैमिली १०—लैबिएटी (*Labiatae*; ३,००० स्पीशीज—भारतवर्ष में ३९१ स्पीशीज)।

स्वरूप—शाक (herbs) और क्षुप, वर्गाकार स्तम्भ युक्त। **पत्तियां** सरल (simple), विपरीत या आवर्तरूप (whorled), अननुपत्री (exstipulate), तेल ग्रन्थियों (oil-glands) युक्त। **पुष्प** एकयुग्म (zygomorphic), द्वयोष्ठी (bilabiate), अधोजाय (hypogynous) और द्विलिंगी। **पुष्प-क्रम** भ्रमि युग्म या वर्टिसिलास्टर (verticillaster) (देखिये चित्र १९७), प्रायः सत्य बहुवर्ध्यक्ष (true cyme) में ह्रासित (reduced), जैसे तुलसी में। **वाह्यदल पुंज**-वाह्यदल (५), युक्तवाह्यदली (gamosepalous), ५-पिंडकीय या पालिमत (5-lobed) या २-ओष्ठीय (2-lipped), चिरलग्न।

दलपुंज—दल (५), युक्तदली (gamopetalous), २-ओष्ठीय (2-lipped), पुष्पदल विन्यास अनियमछादी (imbricate)। पुमंग—पुंकेसर ४, द्विदीर्घक (didynamous), कभी-कभी केवल २, जैसे सैल्विया (*Salvia*; —देखिये चित्र २९४ में) दललग्न (epipetalous)। जायांग—स्त्रीकेसर (२), युक्ताण्डपी (syncarpous), बिम्ब (disc) प्रमुख; अंडाशय ४-पिंडकीय या पालिमत और ४-कोष्ठी, प्रत्येक कोष्ठ में एक बीजाण्ड युक्त, आधार से आरोही (ascending); वर्तिका (style) जायांग आधारिक (gynobasic) (देखिये पृष्ठ १४८), अर्थात् पिंडकीय अंडाशय के अवनत (depressed) केन्द्र से परिवर्धित होता है; वर्तिकाग्र (stigma) द्विशाख। फल चार दृढ़फलिकाओं (nutlets) का एक समूह। पुष्प सूत्र—$K_{(5)} \overline{C_{(2+3)} A_{2+2}} \underline{G}_{(2)}$।
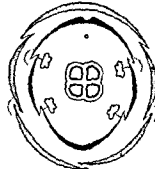
चित्र ५७७—लैबिएटी का पुष्प चित्र।

लेबिएटी में वाष्पशील (volatile) सुगंध (aromatic) तेल प्रचुरतः होते हैं जो सुगंधि व्यवसाय में और उद्दीपकों के रूप में काम में आते हैं। उन में से अनेक में तिक्त (bitter) कषाय (astringent) तत्व होते हैं।

उदाहरण—उपयोगी पौधे—भेषजीय: तुलसी (*Ocimum sanctum*), पुदीना (*Mentha arvensis*), पिपरमिंट (*M. piperita*) इस से पिपरमिंट तेल निकाला जाता है जिस से मेन्थॉल (menthol) प्राप्त होता है; थाइमस (*Thymus*) से थाइम तैल प्राप्त होता है जिस से थाइमॉल (thymol) प्राप्त होता है; पोगोस्टेमोन (*Pogostemon*) जिसे से पटचावली (patchouli) तेल प्राप्त होता है; लैवेन्डुला (*Lavendula*) से लैवेन्डर तेल प्राप्त होता है; रोजमेरिनस (*Rosmarinus*) से रोजमेरी तेल प्राप्त होता है। शोभाकारी: कनरकम या सैल्विया प्लेबेजा (*Salvia plebeja*) और सैल्विया कोक्सीनिआ (*Salvia coccinea*), कोलियस (*Coleus*; चित्र ३२), ओरीगेनम (*Origanum*)—सुगन्धित पत्तियों के लिये लगाये जाते हैं।

इस कुल के अन्य सामान्य पौधे—राम तुलसी (*Ocimum gratissimum*), ओसिमम बेसिलिकम (*Ocimum basilicum*), ओसिमम कैनम (*Ocimum canum*), ऐनाइसोमैलीज (*Anisomeles*), हलकुश (*Leonurus*), छोटा हलकुश (*Leucas*), इत्यादि।

लैबिएटी। चित्र ५७८—तुलसी (*Ocimum basilicum*)। क, एक शाखा पुष्पक्रम सहित; ख, एक पुष्प-द्वयोष्ठी (द्विदीर्घक पुंकेसरों को नोट करो); ग, वाह्यदल पुंज; घ, दलपुंज विपाटित किया हुआ; ङ, स्त्रीकेसर (जायांग आधारक वर्तिका को नोट करो); च, अण्डाशय बिम्ब सहित अनुदैर्घ्य काट में; छ, चार काष्ठ फलकों का फल चिरलग्न वाह्यदल पुंज से परिवेष्टित।

अध्याय ३

एकबीजपत्री के वरित कुल

(SELECTED FAMILIES OF MONOCOTYLEDONS)

कुल या फैमिली १—लिलिएसी (*Liliaceae*; २,६०० स्पीशीज)।

स्वरूप—शाक दुर्लभतः क्षुप, रेशेदार मूलों युक्त, या बल्ब या धनकन्द या विसर्पी प्रकन्द सहित। पत्तियां सरल, मूल या स्तम्भीय या दोनों। **पुष्प**

नियमित, द्विलिंगी, और अधोजाय, एकल, या शूकी में, एकवर्ध्यक्ष या पुष्प गुच्छ; निपत्र क्षुद्र, पतला और शुष्क या पृथुपर्णीय। परिदलपुंज दलाभ, साधारणतः ६ खंड (segments) दो आवर्तों में, साधारणतः पृथक (पृथक परिदली), कभी-कभी युक्त (युक्त परिदली)। पुमंग—पुंकेसर ६, दो आवर्तों में, दुर्लभतः ३, अधोजाय, अलग्न (free), या परिदल से संयुक्त (परिदल लग्न)। जायांग—स्त्रीकेसर (३), युक्ताण्डपी, अंडाशय उत्तरीय (superior), ३-कोष्ठी; बीजाण्ड प्रत्येक कोष्ठ में दो या अधिक, जरायुन्यास अक्षवर्ती (axile), वर्तिकाग्र साधारणतः ३। फल भरी या स्फोटिका।

चित्र ५७९—लिलिएसी का पुष्प चित्र।

बीज ऐल्ब्यूमिनी। पुष्प सूत्र—$P_{3+3}\ A_{3+3}\ \underline{G}_{(3)}$ या $\overline{P_{(3+3)}\ A_{3+3}}\ \underline{G}_{(3)}$।
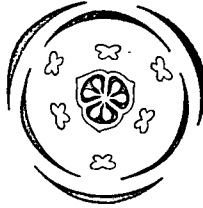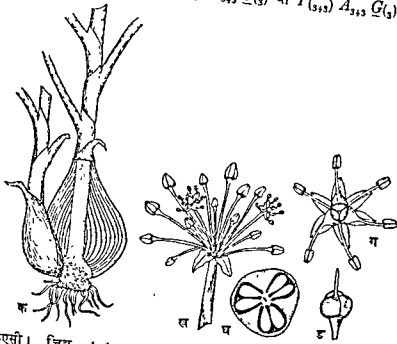
लिलिएसी। चित्र ५८०—प्याज (*Allium cepa*)। क, एक प्याज का पौधा; ख, एक पुष्पक्रम; ग, एक पुष्प; घ, अण्डाशय अनुप्रस्थ काट में अक्षवर्ती जरायुन्यास प्रदर्शित करते हुये; और ङ, स्त्रीकेसर।

उदाहरण—उपयोगी पौधे—सब्जियाँ: प्याज (*Allium cepa*), लहसुन (*Allium sativum*), गंधुन या एक-कली लहसुन (*A. ascalonicum*), गंधीना (*A. tuberosum*), इत्यादि; भेषजीय: शतावरी (*Asparagus racemosus*), चोबचीनी (*Smilax macrophylla*), घृतकुमारी (*Aloe vera*), कोल्चीकम (*Colchicum*), प्याजी (*Asphodelus*); शोभाकारी: लिलि (*Lilium*), इन्द्रपुष्पिका (*Gloriosa superba*), यक्का (*Yucca*), ड्रेसीना (*Dracaena*), सेन्सीवियरिया (*Sansevieria lourentii*)। रेशेदार: फोरमियम (*Phormium*), यक्का (*Yucca*), मारूल या सेन्सीवियरिया राक्सबर्गियाना (*Sansevieria roxburghiana*—bowstring hemp)।

कुल या फैमिली २—ग्रैमिनेसी या ग्रैमिनी (*Graminaceae*; ५,००० स्पीशीज)।

स्वरूप-शाक (herbs) दुर्लभतः काष्ठीय, जैसे बाँस। स्तंभ बेलनाकार स्पष्ट गांठ और पर्व युक्त (कभी-कभी खोखला)। पत्तियाँ सरल, एकान्तरित, द्विपंक्तिक, छादक पर्णाधार युक्त जो पर्णदल की विपरीत दिशा में फट कर खुला होता है। पत्रदल के आधार में जिह्विका नाम की एक रोयेंदार संरचना होती है। पुष्पक्रम साधारणतः एक शूकी या स्पाइक, या अनुशूकियों (स्पाइकलेट्स) का पुष्प गुच्छ; प्रत्येक अनुशूकी या स्पाइकेलट् (spikelet) में एक, थोड़े या अनेक फूल होते हैं और यह आधार पर तीन निपत्रों या तुष निपत्रों (glumes) को धारण करता है; उनमें से एक दूसरे के कुछ ऊपर रहता है। निम्नतम दो खाली होते हैं और तीसरा पुष्पी होता है जिसे वाह्य पुष्प कवच या लेम्मा कहते हैं, अर्थात् यह अपने अक्ष (axil) में एक पुष्प परिवेष्टित (encloses) करता है; वाह्य पुष्प कवच या पुष्पी तुष निपत्र (lemma) के विपरीत एक कुछ छोटा सा, दो शिराओं वाला (2-nerved), तुष निपत्र होता है जिसे

ग्रैमिनेसी। चित्र ५८१—घास की अनुशूकी। प्र० तु०, प्रथम वंध्या तुष निपत्र; द्वि० तु०, दूसरा वंध्या तुष निपत्र; पु० तु०, पुष्पी तुष निपत्र; पे, पेलिया; प पु०, परिपुष्पक; पुंकेसर और स्त्रीकेसर चित्र में स्पष्ट है।

अन्तः पुष्प कवच या पेलिया (palea) कहते हैं। अनुशूकी अवृन्त या सवृन्त हो सकती है। पुष्प साधारणतः द्विलिंगी, कभी-कभी एकलिंगी, एकशयक (monoecious)। परिदल पुंज पुष्प के आधार में दो सूक्ष्म शल्कों द्वारा निरूपित रहता है जिन्हें परिपुष्पक या लोडिक्यूल (lodicule) कहते हैं। ये आद्यरूप (rudimentary) परिदल पुंज निर्मित करने वाले माने जाते हैं। पुमंग—पुंकेसर ३, कभी-कभी ६, जैसे धान और बाँस (bamboo) में; पराग कोश मध्य दोली (versatile) और लोलकवत (pendulous)। जायांग—स्त्री केसर १; अंडाशय उत्तरीय (superior), एक-कोष्ठी (unilocular), एक बीजाण्ड युक्त; वर्तिकाग्र २, पक्षवत् (feathery)। फल केर्योप्सिस (caryopsis)। बीज ऐल्ब्यूमिनी (albuminous)। परागण हवा द्वारा निष्पन्न होता है। पुष्प सूत्र—$P_{lodicules}$ या $_0A_3$ or $_6\underline{G}_1$।

आर्थिक दृष्टि से ग्रैमिनेसी सब से महत्वपूर्ण कुल माना जाता है क्योंकि धान्य (cereals) और जुवार, बाजरा आदि (millets) जो मानव जाति के प्रमुख खाद्य हैं, इस कुल के ही हैं। अधिकांशतः चारा की फसलें (fodder crops) जो पालतू जानवरों के लिये उतनी ही आवश्यक हैं, इस कुल की हैं। इमारती सामान जैसे बाँस, छप्पर की घास, सरकंडा, तथा ईख जिससे गुड़ और चीनी प्राप्त होती है, का महत्व सुज्ञात है। कागज के गूदे (pulp) के स्रोत रूप में सबई घास (sabai grass) और बाँस की कुछ किस्मों का महत्व कम नहीं है।

उदाहरण—उपयोगी पौधे: धान्य, जैसे धान (*Oryza sativa*), मक्का (*Zea mays*), गेंहू (*Triticum sativum*), जौ (*Hordeum vulgare*), जई (*Avena sativa*), इत्यादि, जुवार, बाजरा इत्यादि जैसे जुवार (*Sorghum vulgare*), कगनी (*Setaria italica*), चीना (*Panicum miliaceum*), सावा (*P. miliare*), बाजरा (*Pennisetum typhoides*) मडुवा (*Eleusine coracana*), ईख (*Saccharum officinarum*), कास (*S. spontaneum*), सरकंडा (*Phragmites karka*), बाँस (*Bambusa*), गिनी घास (*Panicum maximum*), लेमन ग्रास (*Cymbopogon*), खस खस (*Andropogon squarrosus*)।

इस कुल के अन्य साधारण पौधे—दूब (*Cynodon dactylon*), क्राइसोपोगोन (*Chrysopogon*), इम्परेटा सिलिन्ड्रिका (*Imperata cylindrica*), श्यामा (*Panicum crus-galli*) इत्यादि।

धान (*Oryza sativa*) के पौधे का वर्णन (चित्र ५८२)—एक लम्बी वार्षिक घास। पर्ण—सरल, लम्बी, सकरी, और चपटी, छादक आधार

ग्रैमिनेसी। चित्र ५८२—धान (*Oryza sativa*)। क, शाखा का एक भाग छादक आवार युक्त पत्तियों और जिह्विकाओं सहित; ख, अनुशूकी का पुष्प गुच्छ; ग, एक-पुष्पी अनुशूकी (तुष निपत्र और पुंकेसरों को नोट करो); घ, अनुशूकी भाजित की हुई—तु I, प्रथम वंध्या तुष निपत्र; तु II, दूसरा वंध्या तुष निपत्र; पु, पुष्पी तुष निपत्र; पे, पेलिया; प, परिपुष्पक; पुं पुं, पुंकेसर; और जा, जायांग।

ग्रैमिनेसी। चित्र ५८३—मक्का (*Zea mays*)। क, अस्थानिक मूल; ख, एक पर्ण के कक्ष में मादा स्थूल मंजरी—व, वर्तिकायें; ग, मादा अनुशूकी; घ, परिपक्व मक्का का वाल (cob); ङ, नर पुष्पों की अनुशूकी; च, नर अनुशूकियों के दो युग्म; और छ, एक नर अनुशूकी भाजित की हुई—तु I, प्रथम वंध्या तुष निपत्र; तु II, दूसरा वंध्या तुष निपत्र; पे, निचले पुष्प का पेलिया; पु, पुष्पी तुष निपत्र; पे', ऊपरी पुष्प का पेलिया; प, परिपुष्पक; पुं, ऊपरी पुष्प के तीन पुंकेसर।

और जिह्विका सहित। पुष्पक्रम (Inflorescence)—अनुशूकी का पुष्पगुच्छ, अनुशूकी एक पुष्पी, पुष्प गुच्छ की पतली शाखाओं से जुड़ी हुई। पुष्प द्विलिंगी, तुष निपत्र I और II सूक्ष्म, बंध्या, तुष निपत्र III कठोर, नौतलित, ५-शिरी, सीकुर रहित या छोटा या लम्बा अग्रस्थ सीकुर (एक कूचवत् उपांग); पेलिया तुष निपत्र III के बराबर लम्बा, नौतलित, ३-शिरी। पेलिया और तुष निपत्र III से परिवेष्टित एक पुष्प। परिदलपुंज दो पूर्ण या द्विखंडित कायों, जिनको परिपुष्पक (lodicules) कहते है, मे निरूपित। पुमंग—६ पुंकेसर, पराग कोश रेखाकार, लोलकवत्। जायांग—स्त्रीकेसर १, वर्तिकाग्र २, पक्षवत् पार्श्विक उत्क्षिप्त (laterally inserted)। फल या धान का दाना केर्योप्सिस कहलाता है। यह तुष निपत्र III और पेलिया मे ढका रहता है और इसके आधार पर तुष निपत्र I और II रहते हैं। यह ऐल्व्यूमिनी तथा स्पष्ट वरूथिका सहित होता है। यह अधोभूमिक अंकुरण प्रदर्शित करता है। परागण वायु के द्वारा होता है। धान एक धान्य है जो इसके दाने के लिये कृष्ट किया जाता है जिसमें मंड प्रचुर मात्रा में रहता है।

के स्तर पौधों और जन्तुओं के विशेष प्ररूप (types) धारण करते पाये गये हैं। इस प्रकार प्राचीन चट्टानें पौधों और जन्तुओं के पूर्वतम तथा सरलतम रूप प्रकट करते हैं, जैसे समुद्री शैवाल (algae) और समुद्री अपृष्ठवंशी (invertebrate) जन्तु। कालान्तर में निर्मित चट्टानें अधिक प्रगत तथा जटिल रूप प्रकट करते हैं, जैसे समुद्री घास (sea-weeds), मॉस, पर्णांग या फर्न, जिम्नोस्पर्म्स और उच्च अपृष्ठवंशी तथा निम्न (lower) पृष्ठवंशी (vertebrates) और उनमें पर्णांगों और मत्स्यों (fishes) को प्रवल (dominant) पाया जाता है तथा उभयचर (amphibians) अपना अस्तित्व प्रारंभ करते हैं। उत्तरवर्ती (later) स्तर पर्णांगों का क्षय (waning), जिम्नोस्पर्म्स को प्रवल (dominant) तथा भूमीय पृष्ठवंशियों की वृद्धि करते प्रदर्शित करते हैं। तत्पश्चात् काल में द्विवीजपत्री (dicotyledons) के सम्भाव्य (probable) उद्भव तथा स्तनधारियों (mammals) को संवधित पाते हैं तथा एकवीजपत्रियों (monocotyledons) [विशेषतया नारियल और घासों (grasses)], पक्षियों तथा सरीसृपों (reptiles) का उद्गम होते देखते हैं। इस के बाद वनों (forests), उच्च स्तनधारियों और पक्षियों का काल आता है। इस के पश्चात् वनों की न्यूनता (decrease), अनेक विशाल स्तनधारियों और वृक्षों का लोप (extinction) तथा मनुष्य की प्रतीति दिखाई पड़ती है। आधुनिक काल मानव (सभ्य) तथा शाकीय पौधों की प्रवलता प्रदर्शित करता है। अतएव फॉसिल अभिलेख विकास की समस्या के निराकरण में बड़े महत्व के हैं, किन्तु पौधों और जन्तुओं के वैकासिक (evolutionary) इतिहास में फॉसिल विस्तृत अन्तराल (wide gaps) प्रकट करते हैं। लुप्त कड़ी (missing link) के एक अत्यन्त रोचक उदाहरण का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। विलुप्त (extinct) पौधों का एक वर्ग, जिसने कार्बोनीफेरस (कार्बन) युग में प्रचुरत: परिवर्धन किया फॉसिल अवस्था में पाया गया है। वे साधारण रूप में और अनेक अन्य दृष्टियों से पर्णांगों के समान थे। किन्तु वे बीजाण्ड उत्पन्न करते थे (यद्यपि उन में बीज नहीं पाया जाता था) और वर्तमान कालीन (जीवित) जिम्नोस्पर्म्स की भांति एधा (cambium) निर्मित करते थे। वे प्रत्यक्षरूपेण टेरीडोफाइट्स (pteridophytes) और साइकैड-वत् (cycad-like) जिम्नोस्पर्म्स के मध्य एक अंतर्कालीन (transitional) अवस्था का निरूपण करते थे और वे बीज-पर्णांग (seed-ferns) या टेरीडोस्पर्म्स (pteridosperms) कहलाते हैं।

(२) वर्गीकरण प्रमाण (Taxonomic Evidence)—साम्य और विभि-

भता के अनुसार हम पौधों को निश्चित यथेष्ट चिह्नित (well-marked) समूहों में वर्गीकृत करते हैं। प्रत्येक वर्ग के सदस्य एक दूसरे से अधिक निकटतः साम्य होते हैं। रूपों में उन साम्यों की विद्यमानता विकास का अवलंब लिये बिना समझा सकना कठिन है। इस के अतिरिक्त यह देखा जाता है कि किसी जीनस की दो या अधिक स्पीशीज़ के मध्य मध्यवर्ती (intermediary) रूप होते हैं जो उन स्पीशीज़ (मध्यावस्थीय स्पीशीज़—intergrading species) को सम्बद्ध (link) करते हैं। यदि स्पीशीज़ स्थिर होतीं, तो ऐसे रूपों की घटना का समाधान नहीं हो सकता था।

(३) आकारिकीय और शारीरीय प्रमाण (Morphological and Anatomical Evidence)—पौधों के निश्चित समूहों में मूल, स्तम्भ, पत्तियों, पुष्पों और अन्य आकारिकीय लक्षणों (characters) और जन्तुओं के निश्चित समूहों में अस्थियों तथा ऐसे अवयवों के आकारिकीय साम्य तथा सरलतर रूपों से जटिल रूपों तक ऐसे अंगों के परिवर्धन के क्रमिक अवस्थाओं से क्रमशः पौधों तथा जन्तुओं के मध्य वैकासिक प्रवृत्ति प्रमाणित होती है। पौधों के एक समूह में शिरा विन्यास के प्रारूपों, दलपुंज के रूपों, पुंकेसरों के संलग्न और अभिलाग तथा अन्य समरूप आकारिकीय विशिष्ट लक्षणों के आकारिकीय साम्य विकास की समस्या में बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार उच्च क्रिप्टोगम्स, जिम्नोस्पर्म्स और ऐन्जियोस्पर्म्स में दारु के प्रारूपों, रम्भ के परिवर्धन, दारु वाहिनि-काओं और वाहिनियों की प्रकृति तथा जन्तुओं में कशेरुकों तथा उपांगों के परिवर्धन का अध्ययन विकास वाद (theory of evolution) को अतिरिक्त समर्थन प्रदान करता है। कभी-कभी प्रगामी (progressive) विकास के स्थान पर पौधों के कुछ भाग पैतृक (ancestral) प्रकार की ओर प्रतिवर्तन (reversion) प्रकट करते हैं।

(४) भ्रौणिकीय प्रमाण (Embryological Evidence)—भ्रूण की प्रकृति और परिवर्धन का अध्ययन पौधों और जन्तुओं के निश्चित समूहों में महान साम्य प्रदर्शित करता है। परिवर्धन (development) उस वैकासिक परिवर्तन को प्रकट करता है जो क्रमिक अवस्थाओं में निष्पन्न हुआ है। इस के अतिरिक्त सब अवस्थाओं में कम से कम एक तथ्य उभयनिष्ठ होता है, अर्थात् भ्रूण का परिवर्धन अंड कोशिका या अंडाणु से होता है। कभी-कभी पौधों या जन्तुओं के कुछ अवयव निश्चित अवयवों से उल्लेखनीय साम्य प्रकट करते हैं जिन से उन की सम्भाव्य उत्पत्ति हुई रहती है। इस प्रकार जब एक फर्न बीजाणु अंकुरित होता है तो वह एक तन्तु शैवाल से साम्य रखता है, और यह तब लिवरवर्ट से साम्य रखता हुआ सूकायाम (thalloid) रूप धारण करता है ...

वह पर्णांग पौधे रूप में वृद्धि करता है। मेढक टैडपोल बेंगची अवस्था में मध्यान्तरित होता है जो मछली से साम्य रखता है और उस का पूर्वज (ancestor) माना जाता है। नवोद्‌भिज् (seedlings) कभी-कभी ऐसे पौधों से अपना साम्य प्रकट करते हैं जो उन के पूर्वज हो सकते हैं। इस प्रकार आस्ट्रेलियन ऐकेशिया (Australian *Acacia*) में नवोद्‌भिज ऐकेशिया की अन्य स्पीशीज़ की भाँति द्विपक्षवत (bipinnate) संयुक्त पर्ण प्रदर्शित करता है। यद्यपि प्रौढ़ आस्ट्रेलियन ऐकेशिया में केवल सपक्ष वृन्त या प्राक्ष (पर्णायित वृन्त—phyllode) संयुक्त पर्ण विहीन होता है।

(५) **भौगोलिक वितरण से प्रमाण** (Evidence from Geographical Distribution)--यह देखा गया है कि अनेक पौधों की समवर्गी स्पीशीज़ अपनी वन (wild) अवस्था में अपने विशेष क्षेत्र में ही सीमित रहती हैं। इसकी यह व्याख्या है कि उन क्षेत्रों में वे एक उभयनिष्ठ पूर्वज से उत्पन्न हुये और कुछ रोधों (barrier), जैसे उच्च पर्वत, समुद्र तथा मरुस्थल के कारण अन्यत्र प्रवासन (migrate) न कर सके, इस प्रकार हम देखते हैं कि लोडोइसिया (*Lodoicea*) का सिकेलीज, रैवीनाले (*Ravenala*) का मेडागास्कर, और युकेलिप्टस (*Eucalyptus*) का आस्ट्रेलिया में उद्‌भव हुआ जिन के साथ प्रायः समवर्गी (allied) स्पीशीज़ भी निकटतः उत्पन्न हुई जिस से प्रकट होता है कि उन की सब समवर्गी स्पीशीज़ का विकास समान पूर्वज स्पीशीज़ से हुआ।

जैविक विकास की यान्त्रिकता (Mechanism of Organic Evolution)

विभिन्नता या विविधता (Variation)--विभिन्नता प्रकृति का नियम है। एक ही स्पीशीज़ के भी कोई दो रूप, हूबहू समान नहीं होते। उन के मध्य के अन्तरों को **विभिन्नता** (variations) कहते हैं। विभिन्नतायें वे आधार हैं जिस पर विकास कार्यान्वित होता है। पौधों और जन्तुओं के विभिन्न अवयवों में उनकी आकृति, आकार, रंग, संख्या, रूप, और अन्य दिशाओं में विभिन्नतायें हो सकती हैं और उत्तरवर्ती (subsequent) पीढ़ियों में सतत (continuous) या असतत (discontinuous) हो सकती हैं। विभिन्नतायें सतत या असतत हो सकती हैं। **सतत विभिन्नता** (continuous variation) का अर्थ विशिष्ट रूप (specific type) के चारों ओर एक या अनेक लक्षणों की सूक्ष्म क्रम स्थापनों (gradation) के मार्ग व्यक्तिविशेषों की विभिन्नता या परिवर्तन है। ऐसी विभिन्नतायें पौधों की पत्तियों, पुष्पों, फलों, बीजों के रूप या स्वरूप में देखी जा सकती हैं। विभिन्नता

के इस रूप में स्पीसीज के व्यक्ति विशेषों के मध्य सातत्य (continuity) या क्रम स्थापन (gradation) स्थापित रक्खा जाता है। डार्विनवाद के प्राकृतिक वरण (natural selection) का आधार यही था। डार्विन का मत था कि व्यक्तियों की सूक्ष्म विभिन्नतायें प्राकृतिक वरण द्वारा परिरक्षित (preserved) तथा संचित (accumulated) होती हैं और सन्तान (offspring) तक पारेपित (transmitted) होती है। इस के विपरीत असतत विभिन्नता (discontinuous variation) या उत्परिवर्तन (mutation) का अर्थ एक या अनेक लक्षणों से सम्बन्धित स्पीसीज के एक या अनेक व्यक्तियों की आकस्मिक तथा तीव्र विभिन्नता है। व्यक्ति विशेष, पूर्व उदाहरण की भांति, क्रम स्थापन (gradation) नहीं प्रदर्शित करते किन्तु तुरन्त नया रूप धारण कर लेते हैं। इस रूप की तीव्र विभिन्नता संतान द्वारा सीधे वंशागत (inherited) होती है। यह डि व्रीज का मत है। उत्परिवर्तन आकस्मिक तथा स्वतो निष्पन्न होता है, अतएव यह ज्ञात नहीं हो सकता कि इस प्रकार द्वारा नया रूप कब प्रतीत होगा। उत्परिवर्तन के अनेक उदाहरण अभिलिखित (on record) हैं।

अनुकूलन (Adaptation)—विशेष संरचनाओं या कार्यों के साधन द्वारा पौधों और जन्तुओं का अपने पर्यावरण से समंजन या समायोजन (adjustment) अनुकूलन (adaptation) कहलाता है। पारिस्थितिकी (ecology) में अनुकूलन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। विकास पर भी अनुकूलन का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अपने पर्यावरण के प्रति अपने को अनुकूल बना लेने की अन्तर्निहित क्षमता पौधों में होती है। उन में से अनेक स्वभाव से सुनम्य (plastic) होते हैं और परिणामत. वे अपनी आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित अवस्थाओं के प्रति अपने को अनुकूल बनाने की स्थिति में होते हैं। जन्तुओं के संबंध में यह विशेषत अधिक सत्य है। यह लामार्क का मत है कि कम से कम उस दशा तक जब कि एक ही पर्यावरण बना रहता है, अनुकूलित संरचनायें स्थिर होती हैं तथा संतान द्वारा वंशागत होती हैं (उपार्जित लक्षणों की वंशागति—inheritance of acquired characters)। इस मत के अनुसार स्पीसीज के विशेष व्यक्ति जो दो या अधिक परिस्थितियों को आक्रान्त (invade) करते हैं तदनुरूपी (corresponding) संख्या के नये रूपों को उत्पन्न करते हैं।

आनुवंशिकता: लक्षणों की वंशागति (Heredity: Inheritance of Characters)—आनुवंशिकता का अर्थ जनक (parent) रूपों के सलक्षणों और विशेषताओं को अपनी संतान में संचरण या पारेपण (transmission)

है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि पौधों की निश्चित स्पीशीज प्रजनन पर उसी स्पीशीज़ को जन्म देती है ; अन्य को नहीं। यद्यपि कोई भी दो रूप यथार्थतः समान नहीं होते, तथापि संतान अपने पूर्वज रूपों से निकटतम साम्य रखती है, निस्सन्देह ही वैयक्तिक भेद होते हैं। यह एक विवादास्पद प्रसंग है कि विभिन्नता का अर्थ रखने वाले कौन से लक्षण संचरित या पारेषित होते हैं और कौन नहीं होते। किन्तु यह एक तथ्य है कि विभिन्नता के बिना विकास संभव नहीं है। आनुवंशिकता कुछ दिशाओं में संतान में विभिन्नता उत्पन्न करती है तथा यह विभिन्नता जैविक विकास का कारण होती है। अब प्रश्न यह है कि वंशागति की यांत्रिकता क्या है? प्रजनन के प्रकम में हम देखते हैं कि विपरीत लिंगों (sexes) के दो प्रजनक नाभिक (अर्थात् युग्मक (gametes)—पराग नलिका के पुंजन्यु (male gamete) और भ्रूण-कोष (embryo-sac) की अंड कोशिका) जिन में से प्रत्येक में x गुणसूत्र (chromosomes) हों, सायुज्यित होकर शुक्तितांड (oospore), भ्रूण (embryo) और अंततः परिपक्व (mature) पौधे को उत्पन्न करता है, जिन में से प्रत्येक में २x गुणसूत्र होते हैं। इस प्रकार लक्षणों की वंशागति उपर्युक्त नाभिक के द्वारा निष्पन्न होती है। १८८४ ई० में स्ट्रासबर्गर (Strasburger) और हर्टविग (Hertwig) ने इस तथ्य को सुस्थापित (established) किया कि गुणसूत्रों के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी लक्षण संचरित होते हैं। किन्तु यह स्पष्ट है कि जनक (parent) का कोई विशेष लक्षण (जैसे पुष्प का रंग) गुणसूत्रों में नहीं पाया जा सकता, किन्तु यह निस्सन्देह माना जा सकता है कि उस विशेष लक्षण का निरूपण करने वाली कोई वस्तु उन में अवश्य विद्यमान रहती है। वह "कुछ वस्तु" यद्यपि अस्पष्ट होती है, उस विशेष लक्षण के लिये कारक (factor) या निर्धारक (determiner) या जीन (gene) कहलाती है, और प्रजनक नाभिक के गुणसूत्र में स्थित जीन (gene) जनक पौधे के सब संलक्षणों (characteristics) के लिये और उन्हें संतान को संचरित करने के लिये उत्तरदायी होते हैं। गुणसूत्र में जीन का वाद (theory of gene) १९२६ ई० में मौरगन (Morgan) ने स्थापित किया।

कार्बनिक विकास के वाद (Theories of Organic Evolution)

लामार्क वाद: उपार्जित लक्षणों की वंशागति (Lamarck's Theory: Inheritence of Acquired Characters)—विकास के कारण का विवेचन करने वाला सर्व प्रथम आधुनिक वाद फ्रांसीसी जीव वैज्ञानिक लामार्क ने सन् १८०९ ई० में प्रस्तुत किया। लामार्क का यह मत था कि जीवित जीवों के विकास

और अनुपयोग और (ग) उपार्जित लक्षणों की वंशागति। लामार्क के वाद पर कई आपत्तियाँ हैं। एक आपत्ति यह है कि पर्यावरण के प्रभाव के कारण अनुकूलन बहुत अल्प तथा ऊपरी होता है। दूसरी आपत्ति यह है कि अभी तक उपार्जित लक्षणों की वंशागति प्रमाणित नहीं की जा सकी है। यथार्थ में हम देखते हैं कि यदि मूल (original) निवास स्थान में कई वर्षों बाद बीज बोये जाते हैं तो पौधे अपने मूल रूप के हो जाते हैं।

चित्र ५८५—चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin–1809–1882) प्रख्यात अंग्रेज जीव वैज्ञानिक तथा विकास वाद के प्रवर्तक।

डार्विन वाद : प्राकृतिक वरण (Darwin's Theory : Natural Selection)—विकास की समस्या हल करने वाला दूसरा वाद चार्ल्स डार्विन ने सन् १८५९ ई० में प्रस्तुत किया और "प्राकृतिक वरण के साधन द्वारा स्पीशीज़ की उत्पत्ति" ('Origin of Species by Means of Natural Selection') नामक पुस्तक में उसे प्रकाशित किया। उस का वाद यथार्थ प्रेक्षणों (observations) की संहति पर आधारित था, तथा दीर्घकालीन प्रयोगों ने सारे वैज्ञानिक जगत को विकास के सिद्धान्त में विश्वास करने के लिये उन्मुख किया। उस का वाद जो "प्राकृतिक वरण का वाद" कहलाता है तीन महत्वपूर्ण कारकों पर आधारित है: (१) संतानों का अत्युत्पादन (over-production) और फलतः जीवनार्थ संघर्ष, (ख) विभिन्नतायें (variations) और उन की वंशागति (inheritance) और (ग) प्रतिकूल या अननुकूल (unfavourable) विभिन्नताओं का विलोपन (योग्यतम की अतिजीविता—survival of the fittest)।

जीवन संघर्ष (Struggle for Existence)—यदि किसी विशेष पौधे के सब बीज अंकुरित हो जांय और सब नवोद्भिज पूर्ण आकार के पौधे रूप में वृद्धि कर सकें तो कुछ वर्षों में ही उन के द्वारा विस्तृत क्षेत्र घिर जायगा। यदि अन्य पौधे (और अन्य जन्तु भी) उसी वेग से वृद्धि करें तो एक तीव्र संघर्ष जिसे जीवन संघर्ष कहते हैं, उन के मध्य तुरन्त प्रारम्भ हो जाता है क्यों कि खाद्य,

जल और स्थान का प्रदाय (supply) मांग की अपेक्षा बहुत न्यून हो जायगा। तुरन्त ही एक सवर्ष उत्पन्न होगा जिसका परिणाम यह होगा कि बहुसंख्यक व्यक्तियों का विनाश होगा। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि वर्ष प्रति वर्ष जन्तुओं और पौधों की संख्या न्यूनाधिकतः स्थिर ही रहती है।

विभिन्नतायें और उनकी वशागति (Variations and their Inheritance)—यह सब को ज्ञात है कि एक ही जनक से उत्पन्न होने पर भी दो व्यक्ति यथार्थतः समरूप नही होते। एक व्यक्ति की अपेक्षा दूसरे में कुछ विभिन्नतायें अवश्य रहती है, वे बहुत सूक्ष्म भले ही हों। कुछ विभिन्नतायें पर्यावरण की परिस्थितियों के उपयुक्त होती है किन्तु अन्य विभिन्नतायें नहीं होती। डार्विन के अनुसार ये सूक्ष्म विभिन्नतायें उस के द्वारा प्रतिरक्षित होती है और सतान को संचरित होती है यद्यपि उसने इन विभिन्नताओं का कोई कारण नहीं बताया।

योग्यतम की अतिजीविता या उत्तरजीविता (Survival of the Fittest)—जीवन सवर्ष में उचित दिशा मे विभिन्नतायें प्रदर्शित करने वाले व्यक्ति, उत्तरजीवी होते है, और ये विभिन्नतायें संतान को सचरित होती है। अननुकूल या प्रतिकूल विभिन्नताओं वाले अन्य व्यक्ति नष्ट हो जाते है। यह वही तथ्य है जिसे डार्विन "योग्यतम की अतिजीविता या उत्तरजीविता" कहता है। उत्तरजीवी व्यक्ति क्रमश. और स्थिरतः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में परिवर्तित होते है और अततः नये रूप को उत्पन्न करते है। ये नये रूप परिवारक परिस्थितियों के लिये अनुकूलित होते हैं।

पालतू जन्तुओं तथा कृष्ट पौधों की विभिन्नताओं पर डार्विन के प्रेक्षणों (observations) ने उस के वाद के प्राकृतिक वरण के स्पष्टीकरण के लिये सकेत का कार्य किया। कभी-कभी कई पीढियों के मध्य ऐसे विस्तीर्ण परिवर्तन उपस्थित हो जाते है कि यह विश्वास करना ही कठिन हो जाता है कि प्रथम रूप ने अंतिम रूप को जन्म दिया है। इस के अतिरिक्त एक वाछित रूप प्राप्त करने के प्रयोजन से जतु प्रजनन व्यवसायी और पुष्प प्रजनन व्यवसायी व्यक्तियों में निश्चित विभिन्नताओं को ध्यान में रख लेते है तथा उन्हे भावी पीढ़ियों के लिये वरित (select) कर लेते है, तथा शेष को अस्वीकृत (reject) तथा नष्ट कर देते है। वे पीढी दर पीढी वरित प्ररूपों को उत्पन्न करते रहते है जब तक कि वाछित (desired) परिणाम प्राप्त नही हो जाता। नये प्ररूप इस प्रकार द्वारा उत्पन्न होते देखे जाते है जिसे "कृत्रिम वरण" (artificial selection) कहते है। अनेक कृष्ट (cultivated) पुष्प तथा सब्जियां प्रायः अनेक किस्में प्रकट करते है और कालान्तर में ये विभिन्नतायें प्रमुखतः लक्षित हो जाती है।

प्राकृतिक वरण (Natural Selection)—डार्विन द्वारा प्राकृतिक वरण की व्याख्या इस प्रकार है: जन्तु और पौधे असीम गति से संख्या वृद्धि कर रहे हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि कोई भी दो व्यक्ति यथार्थतः समरूप नहीं होते। नवीन रूप स्वभावतः बहुमुखी विभिन्नतायें प्रदर्शित करते हैं। जहाँ तक पर्यावरण की परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन का प्रश्न है कुछ किस्में (varieties) उपयुक्त या लाभप्रद होती हैं, तथा अन्य किस्में नहीं होती। एक स्थान पर अतिशयित (excessive) संख्या की भीड़ हो जाने से उनके जीवन के लिये तीव्र संघर्ष प्रारंभ हो जाता है। इस संघर्ष में वे किस्में जिन में अनुकूल विभिन्नतायें होती हैं और इस कारण उत्कृष्टतर क्षम होती हैं, स्वभावतः ही उत्तरजीवी होती हैं, और शेष विनष्ट हो जाती हैं यों ग्यतम की इस उत्तरजीविता के द्वारा स्पीशीज़ सूक्ष्म विभिन्नताओं के संचरण तथा परिरक्षण के कारण स्थिरतः परिवर्तित होती हैं और क्रमशः नये रूपों को जन्म देती हैं। डार्विन ने कृत्रिम वरण की समवृत्तिता के कारण इस प्रक्रम का नाम "प्राकृतिक वरण" (natural selection) रखा। अतः पर्यावरण ही उत्कृष्टतर प्ररूपों को वरित और परिरक्षित करता है और अनुपयुक्त रूपों को विनष्ट करता है।

चित्र ५८६–ह्यूगो डि व्रीज (Hugo De Vries–1848-1935) हालैंड के वनस्पति विज्ञानवेत्ता।

यद्यपि डार्विन को विकास के अंतिम सिद्धान्त को प्रस्तुत करने का श्रेय है तथापि उस के वाद पर अनेक सन्देह हैं।

डि व्रीज वाद: उत्परिवर्तन (De Vries' Theory: Mutation)—विकास वाद के कारण की व्याख्या करने वाला दूसरा वाद सन् १९०१ ई० में हालैंड के एक वनस्पति विज्ञानवेत्ता ह्यूगो डि व्रीज ने प्रस्तुत किया। उसका कथन यह था कि क्षुद्र विभिन्नतायें जिन्हें डार्विन विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण मानता था विशिष्ट प्ररूपों के परिपार्श्व में केवल उच्चावचन (fluctuations) हैं। ये विभिन्नतायें वंशागतिशील नहीं हैं। डि व्रीज का कथन था कि संतान में एक पीढ़ी में अकस्मात और स्वतोत्पन्न होने वाली दीर्घ विभिन्नतायें (large variations) विकास का कारण हैं। डि व्रीज इन विभिन्नताओं को उत्परिवर्तन (mutation) कहता था। उस ने अमेरिका से पुरःस्थापित

(introduced) एक औइनोथीरा लामार्कियाना (*Oenothera lamarckiana*) को हॉलैंड के एक खेत में उत्पन्न होते देखा। उस ने दो प्रकारों को अन्य सब से बिल्कुल भिन्न देखा। इन नये प्रकारों का पहले कहीं वर्णन नहीं किया गया था और तद्रूप प्रजनन के कारण उसने उन्हें पृथक स्पीशीज़ निर्धारित किया। औइनोथीरा लामार्कियाना और नई स्पीशीज़ ऐम्सटर्डम में उस के उद्यान में हटाई गई और अनेक पीढ़ियों तक उत्पन्न की जाती रहीं। यह देखा गया कि हजारों उत्पन्न किये हुए नवोद्भिजों में कुछ ही ऐसे थे जो अन्यों से भिन्न थे। फिर ये भी पीढ़ी दर पीढ़ी उत्पन्न किये जाते रहने पर तद्रूप प्रजनन करते रहे। ये नये रूप उत्परिवर्ती (mutants) कहलाते हैं। उसने निष्कर्ष निकाला कि उस का उत्परिवर्तन वाद विकास के कारण की व्याख्या करता है। डि व्रीज इस बात में डार्विन के विचार से सहमत था कि प्राकृतिक वरण में अनुपयुक्त रूप नष्ट हो जाते हैं। किन्तु वह इस विचार से सहमत नहीं था, जैसा डार्विन का कथन था, कि सतत विभिन्नताओं के मन्द प्रकम से नई स्पीशीज़ उत्पन्न होती हैं।

अध्याय २

आनुवंशिकी (GENETICS)

आनुवंशिकी (Genetics) वंशागति के नियमों (विभिन्नता और आनुवंशिकता) का आधुनिक प्रयोगात्मक अध्ययन है। कोशिका विज्ञान जो गुणसूत्रों की संरचना, संख्या, और व्यवहार आदि का अध्ययन करता है, आनुवंशिकी से संबंधित अनेक जटिल तथ्यों के स्पष्टीकरण में अत्यधिक महत्व का है क्यों कि गुणसूत्र वंशागति लक्षणों के वाहक होते हैं। यह भी स्मरण रखने योग्य है कि अपने व्यक्तित्व और संरचनात्मक रूप के अतिरिक्त प्रत्येक स्पीशीज के गुणसूत्रों की संख्या सदा स्थिर होती है। आनुवंशिकता का सर्व प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन ग्रेगर मेण्डल द्वारा किया गया था। यह बर्न (आस्ट्रिया) के एक मठ में प्रविष्ट हुआ जहाँ उस ने पौधों के संकरण (hybridization) पर वैज्ञानिक अनुसंधान जारी रखा। उस के आठ वर्ष के प्रजनन प्रयोगों के परिणाम सन् १८६५ ई० में बर्न की प्रकृति विज्ञान समिति के सम्मुख पढ़े गये और अगले वर्ष उस समिति के कार्य विवरण में वे प्रकाशित किये गये। किन्तु १९०० ई० तक उस का ग्रन्थ अज्ञात सा पड़ा रहा जब कि तीन प्रख्यात वनस्पति विज्ञान वेत्ता हालैंड के ह्यूगो डि व्रीज, आस्ट्रिया के शेरमक और जर्मनी के कारेन्स

ने उस के महत्व को प्रकाशित किया। तव से मेण्डल के ग्रन्थ ने आनुवंशिकता के अध्ययन का आधार का रूप धारण कर लिया है। सन् १८८४ ई० में अपने कार्य को स्वीकृत और मान्य देखने के पूर्व ही मेण्डल की मृत्यु हो गई।

मेण्डल के नियम : वंशागति नियम

एकसंकर अनुपात (Monohybrid Ratio)—मेण्डल ने अपने कार्य के लिये साधारण उद्यान मटर (common garden pea) को वरित (select) किया। मटर में उस ने अनेक विकल्पी लक्षण देखे—पुष्प नीलारुण (purple), लाल (red) या श्वेत (white) ; पौधे लम्बे या बौने ; बीज पीले या हरे, चिकने या झुर्रीदार (wrinkled)। एक समय पर उस ने एक जोड़े लक्षणों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया और अनेक पीढ़ियों तक उनका सावधानतया अनुरेखण (traced) किया। प्रयोगों की एक श्रेणी (series) में उस ने पौधे की लम्बाई और बौनेपन (dwarfness) को छाँटा। इन प्रयोगों में उस ने जो परिणाम प्राप्त किये वे सब अवस्थाओं में एक ही थे। इनमें प्रभाव में कोई अन्तर नहीं होता था, चाहे वह बौने पौधे को नर रूप में लेता था और लंबे पौधे को मादा रूप में या इसके विपरीत लेता था। उस ने एक मटर का पौधा ६ फुट ऊंचा और दूसरा पौधा १½ फुट ऊंचा वरित (select) किया। इन दोनों के मध्य उस ने कृत्रिम संकरण किया। इन संकरों से उत्पन्न सन्तान सब की सब ऊंची थी। यह पीढ़ी जो प्रथम आनुपित्र्य या एफ$_1$ पीढ़ी (first hybrid generation or F_1 generation) कहलाती थी अंतः प्रजनित (inbred) की गई। बीज एकत्र किये गये और अगले वर्ष बोये गये। उन्होंने ३ : १ अर्थात् तीन चौथाई ऊंचे और एक चौथाई बौने के अनुपात में ऊंचे और बौने पौधों की मिश्रित पीढ़ी उत्पन्न की (किन्तु मध्यवर्ती कोई नहीं था)। यह पीढ़ी द्वितीय आनुपित्र्य या एफ$_2$ पीढ़ी (second hybrid generation or F_2 generation) कहलाती थी। सब बौने पौधों ने उत्तरवर्ती (subse-

चित्र ५८७—मेण्डल (Gregor Johann Mendel–1822-84) आस्ट्रियन मठवासी (monk), और प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक।

(F_1) पीढ़ी में जो लक्षण अपने को अभिव्यक्त करता है वह प्रबल या प्रभावी (dominant) कहा जाता है और वह लक्षण जो एफ, (F_1) पीढ़ी में प्रकट नहीं होता, अप्रबल या अप्रावी (recessive) कहलाता है। लेकिन अप्रबल लक्षण एफ, पीढ़ी में सतत विद्यमान रहता है। उपर्युक्त प्रयोग में ऊँचापन प्रबल लक्षण है और अवरुद्ध बौनापन अप्रबल लक्षण है। लक्षणों के विरोधी युग्म युग्म विकल्पी या एलेलोमोर्फ़ (allelomorph) कहलाते हैं। अतएव ऊँचापन और बौनापन युग्म विकल्पी हैं।

(३) युग्मकों की शुद्धता (Purity of Gametes)—यह स्पष्ट है कि एफ, (F_1) निषेचनज् (zygote) में दोनों एकान्तरित लक्षणों, अर्थात् ऊँचापन और बौनापन के कारक सन्निविष्ट रहते हैं, यद्यपि एफ, (F_1) पीढ़ी में ऊंचापन ही अपने को अभिव्यक्त कर सका है। एफ, (F_1) व्यक्तियों के कायिक (somatic) कोशिकाओं में आजीवन भर ये कारक संचित रहते हैं। जीवनचक्र के उत्तरवर्ती काल में जब बीजाणु—पराग कण तथा गुरु बीजाणु (और उत्तरवर्तितः युग्मक) ह्रास विभाजन के परिणाम स्वरूप निर्मित होते हैं, तो समजात (homologous) गुणसूत्रों में स्थित कारक पृथक हो जाते हैं, और चार बीजाणुओं (और युग्मकों) में से प्रत्येक में युग्म का केवल एक ही कारक (ऊँचापन या बौनापन) रहता है, दोनों नहीं रहते, अर्थात् विशेष लक्षण के लिये युग्मक शुद्ध हो जाता है। एफ, (F_2) की संतान से यह स्पष्ट हो जाता है। जब एफ, (F_1) निषेचनज् एफ, (F_2) पीढ़ी की सन्तान उत्पन्न करता है तो निम्न अनुपात में लक्षणों का वियोजन (segregation of characters) निष्पन्न होता है—१ : २ : १—एक चौथाई शुद्ध ऊँचे, एक चौथाई शुद्ध बौने और आधे अशुद्ध ऊँचे।

दृश्य रूप या फ़ीनोटाइप और जीन रूप या आनुवंशिक रूप या जीनोटाइप (Phenotype and Genotype)—जब दो व्यक्ति अपने बाह्यवर्ती रूप में समरूप होते हैं किन्तु अपनी जीनीय या आनुवंशिक रचना में भिन्न होते हैं तो वे दृश्य रूप या फ़ीनोटाइप (phenotype) कहलाते हैं, और जब उनकी जीनीय या आनुवंशिक रचना (genetic composition) एक सी होती है तो वे जीन रूप या आनुवंशिक रूप या जीनोटाइप (genotype) कहलाते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त मेण्डल के प्रयोग में एफ, (F_2) पीढ़ी के TT और T(t) व्यक्ति दृश्य रूप हैं, यद्यपि अपने जीनों के संबंध में एक दूसरे से भिन्न हैं, अतएव वे एक ही दृश्य रूप के हैं। किन्तु अपनी जीनीय या आनुवंशिक रचना में भिन्न होने के कारण वे भिन्न जीन रूप के कहलाते हैं, TT तो एक का है और T (t) दूसरे का है। यह भी ध्यान में रखा जा सकता है कि जब व्यक्तियों में समरूप जीन युग्म होते हैं तो वे सम जननांशी (homozygous) कहलाते हैं और

जब वे असम रूप होते हैं तो विषम जननांगी (heterozygous) कहलाते हैं। इस प्रकार TT or tt व्यक्ति सम जननांगी और T(t) व्यक्ति विषम जननांगी हैं।

मेण्डल ने एकान्तरित लक्षणों के अन्य युग्मों पर भी प्रयोग किये और उसने देखा कि प्रत्येक अवस्था में लक्षणों ने वंशागति की एक ही योजना का अनुसरण किया। इस प्रकार उद्यान मटर में उस ने आविष्कृत किया कि रंगीन पुष्प श्वेत पुष्पों के ऊपर प्रबल था; पीला बीज हरे बीज पर और चिकना बीज झुर्रीदार बीज पर प्रबल था।

द्विसंकर अनुपात (Dihybrid Ratio)—हमने ऊपर एकसंकर (monohybrid) अनुपात अर्थात् विपरीत लक्षणों के एक युग्म को विचाराधीन रखा जाने पर प्राप्त अनुपात पर विचार किया है। अब हम द्विसंकर अनुपात पर ध्यान देंगे, अर्थात् विपरीत लक्षणों के दो युग्मों के परिणाम पर विचार करेंगे। मेण्डल ने एक ऊँचा पौधा लाल पुष्पों युक्त और एक बौना पौधा श्वेत पुष्पों युक्त छाटा। अतएव द्विसंकर अनुपात में चार इकाई लक्षणों का संनिवेश है। ऊँचे-पन या बौनेपन और लाल पुष्प या सफेद पुष्प के कारक स्वतन्त्रतः वंशागत होते हैं और पृथक गुणसूत्रों में स्थित माने जा सकते हैं। इन दो पौधों के मध्य कृत्रिम संकरण किया गया। एफ$_1$ (F_1) पीढ़ी में सब व्यक्ति ऊँचे और लाल पुष्प युक्त थे; क्योंकि ऊंचापन बौनेपन पर प्रबल था और रंगीन पुष्प श्वेत पुष्प पर प्रबल होता है। जब एफ$_1$ (F_1) पीढ़ी के बीज बोये गये तो सब संभव संयोगों (combinations) को प्रकट करने वाले लक्षणों का वियोजन (segregation) निम्न अनुपातों में प्रकट हुआ. ९ लाल ऊँचे, ३ श्वेत ऊँचे, ३ लाल बौने और एक श्वेत बौना। इस प्रकार ९:३:३:१ द्विसंकर अनुपात है।
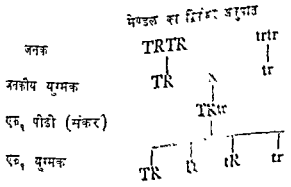
मेण्डल का द्विसंकर अनुपात

जनक	TRTR	trtr
जनकीय युग्मक	TR	tr
एफ$_1$ पीढ़ी (संकर)	TRtr	
एफ$_1$ युग्मक	TR Tr tR tr	

एफ१ के नर युग्मक

एफ१ के मादा युग्मक	TR	Tr	tR	tr
TR	TRTR (ऊंचा-लाल) (१)	TRTr (ऊंचा-लाल) (२)	TRtR (ऊंचा-लाल) (३)	TRtr (ऊंचा-लाल) (४)
Tr	TrTR (ऊंचा-लाल) (५)	TrTr (ऊंचा-श्वेत) (६)	TrtR (ऊंचा-लाल) (७)	Trtr (ऊंचा-श्वेत) (८)
tR	tRTR (ऊंचा-लाल) (९)	tRTr (ऊंचा-लाल) (१०)	tRtR (वौना-लाल) (११)	tRtr (वौना-लाल) (१२)
tr	trTR (ऊंचा-लाल) (१३)	trTr (ऊंचा-श्वेत) (१४)	trtR (वौना-लाल) (१५)	trtr (वौना-श्वेत) (१६)

एफ२ पीढ़ी

संख्या १, २, ३, ४, ५, ७, ९, १०, १३ ऊँचे लाल हैं=९
संख्या ६, ८, १४ ऊँचे श्वेत हैं=३
संख्या ११, १२, १५ वौने लाल हैं=३
संख्या १६ वौना श्वेत हैं=१

इस के अतिरिक्त यह भी देखा जायगा कि संख्या १, ६, ११ और १६ सम जननांशी (अर्थात् उन में दो समरूप युग्मक हैं) हैं और तदरूप प्रजनन करते हैं शेष विषम जननांशी (अर्थात् उन में दो असम रूप युग्मक हैं) जो अगली पीढ़ी में वियोजित हो जाते हैं।

संख्या १ (TRTR) ऊँचे लाल के तद्रूप प्रजनन करेगा
संख्या ६ (TrTr) ऊँचे श्वेत ,, ,, ,,
संख्या ११ (tRtR) वौने लाल ,, ,, ,,
संख्या १६ (trtr) वौने श्वेत ,, ,, ,,

परिशिष्ट १

प्रश्नावली

विषय प्रवेश—(१) इस कथन के पक्ष में प्रमाण दो कि पौधे जीवित हैं। (२) पौधों और जन्तुओं में क्या मुख्य भेद है? (३) आप जीवित और निर्जीव वस्तुओं के बीच कैसे भेद करेंगे? (४) जीवद्रव्य क्या है? इसकी भौतिक और रासायनिक प्रकृति का वर्णन करो।

भाग १—आकारिकी

अध्याय १-२—(१) सामान्य तौर पर एक पुष्पी पादप के विभिन्न भागों क वर्णन करो। (२) एक ऐल्ब्यूमिनी और अऐल्ब्यूमिनी बीज का रेखाचित्र बनाओ और भागों के नाम लिखो। दोनों में क्या अन्तर है, वर्णन करो। (३) एक मक्का के दाने का विस्तृत रूप में वर्णन करो और उसके अंकुरण की अवस्थाओं को दिखाते हुये रेखाचित्र खींचो। (४) अधोभूमिक और उपरिभूमिक अंकुरण के बीच प्रभेद करो। दोनों प्रकारों को उपयुक्त रेखाचित्रों और उदाहरणों से निर्देशन करो। (५) भ्रूण और भ्रूणपोष, भ्रूणाग्रचोल और भ्रूणमूल चोल के बीच प्रभेद करो।

अध्याय ३-४—(१) मूल के स्तम्भ मे प्रभेद करते हुये विशिष्ट लक्षणों का वर्णन करो। आवश्यक रेखाचित्र और उदाहरण दो। (२) विभिन्न रूपों के अस्थानिक मूलों का विवरण लिखो और उनके कार्यों का वर्णन लिखो। (३) विभिन्न भूमिगत स्तम्भों के नाम व विवरण लिखो। वे मूल क्यों नहीं माने जाते? (४) वर्धी प्रचारण के लिये स्तम्भों के विभिन्न रूपान्तरों का रेखाचित्रों तथा उदाहरणों सहित विवरण लिखो। (५) आलू, कण्टक, पर्णकार्य स्तम्भ तथा तन्तु की आकारिकीय प्रकृति का विवरण लिखो।

अध्याम ५-६—(१) एक प्रारूपिक पर्ण के विभिन्न भागों का वर्णन करो और इसके विभिन्न रूपान्तरों का विवरण लिखो। (२) शिरा विन्यास क्या है? उसके मुख्य प्रकारों का वर्णन लिखो। वे क्या कार्य करते हैं? (३) सयुक्त पत्ती और शाखा के बीच प्रभेद करो। संयुक्त पत्तियों के मुख्य प्रकारों का वर्णन लिखो। (४) पर्ण रचना का एक छोटा विवरण लिखो और एकान्तर पर्ण रचना के तीन रूपों में विकास कुन्तल और उदग्र पंक्ति का खाका खींचो। (५) पौधों में प्रतिरक्षी रचनाओं पर एक छोटा निबन्ध लिखो। (६) आप समजात और समवृति अंगों से क्या समझते हैं? कुछ साधारण उदाहरणों के अभ्युद्देश मे विवेचना करो।

अध्याय ७-८—(१) एक प्ररूपिक पुष्प के भागों का वर्णन करो और इन भागों के कार्यों का विवरण लिखो। (२) अधोजाय, परिजाय और ऊर्ध्वस्थ पुष्पों का रेखाचित्रों और उदाहरणों सहित विवरण लिखो। (३) सिद्ध करो कि पुष्प एक रूपान्तरित प्ररोह है। (४) पुष्पक्रम क्या है? उसके मुख्य रूपों का वर्णन करो। (५) हुरहुर (*Gynandropsis*) और झुमकलता के पुष्प का पुष्पाक्ष के विशेष अभ्युद्देश से वर्णन करो। (६) एक पक्व पराग कण और भ्रूण पोष का वर्णन लिखो। एक पराग कण के अंकुरण के पश्चात क्या होता है? (७) जरायुन्यास क्या है? रेखाचित्र और उदाहरणों सहित विभिन्न रूपों का विवरण लिखो। (८) एक अधोमुख बीजाण्ड का वर्णन लिखो और दूसरे प्रकार के बीजाण्डों का एक छोटा विवरण लिखो। (९) शूकी और स्थूल मंजरी, समशिख और छत्रक, पुंकेसर और बन्ध्य पुंकेसर, पराग कण और पराग पुंज के मध्य विभेद करो।

अध्याय ९-१०—(१) पर परागण क्या है? यह किस प्रकार सम्पन्न होता है? (२) कीटों द्वारा पर परागण के लिये पुष्पों में क्या विशेष अनुकूलन पाये जाते हैं? (३) स्वयं परागण को रोकने के लिये पुष्पों में क्या प्रयुक्तियां पाई जाती हैं? (४) पर परागण के क्या लाभ और हानियां हैं? (५) अस्पष्ट पुष्पता, द्वैध निषेचन, जलपरागिता और वायुपरागिता पर टिप्पणियां लिखो। (६) एक ऐंजियोस्पर्म में निषेचन के प्रक्रम का छोटा विवरण लिखो।

अध्याय ११-१३—(१) बीजाण्ड से बीज बनने में उसमें क्या-क्या परिवर्तन होते हैं? (२) आप फलों का किस प्रकार वर्गीकरण करेंगे? मुख्य प्रकार के फलों का वर्णन लिखो। (३) आम, लीची, अंजीर, अनन्नास, नारियल, अमरूद, सेव, टमाटर, काजू और केला के भक्ष्य भागों का वानस्पतिक शब्दों में वर्णन करो। (४) बीजों और फलों के विकिरण पर एक छोटा निबन्ध लिखो और उनके विकिरण का उद्देश्य लिखो।

भाग २—औतिकी

अध्याय १—(१) आप जीवद्रव्य के बारे में क्या जानते हैं, विस्तार सहित विवरण लिखो। (२) एक प्ररूपिक कोशिका के भागों का वर्णन करो और उनके कार्यों का एक छोटा विवरण लिखो। (३) आप कोशिका द्रव्य के ठोस अंतर्वस्तुओं के बारे में क्या जानते हैं? (४) पौधों में पाये जाने वाले मुख्य संचित द्रव्यों का परिगणन करो। प्रत्येक का छोटा विवरण दो। आप उनको कैसे पहचानोगे। (५) सैलूलोज क्या है? इसमें क्या परिवर्तन हो सकते हैं?

यह लिग्निन से किस प्रकार भिन्न है? यह कहाँ पाया जाता है और इसका कैसे पता लगाओगे? (६) कायिक कोशिका भाजन की आवश्यक चित्रों सहित रूपरेखा दो। इस प्रक्रम के महत्व को बताओ। (७) सूक्ष्म टिप्पणियाँ लिखो—परिवेशित गर्त, मध्य पटल, कोशिकाद्रव्य, गुण सूत्र, अगुणसूत्रिक, टैनिन, और सूचिस्फट।

अध्याय २-३—(१) विभाजी ऊतक क्या है? स्तम्भ के अग्रस्थ विभज्या का वर्णन करो और उसकी मूल के अग्रस्थ विभज्या से तुलना करो। (२) ऊतकों का वर्गीकरण करो और प्रत्येक का एक छोटा विवरण लिखो। (३) यांत्रिक ऊतक क्या है? एक द्विबीजपत्री और एकबीजपत्री स्तम्भ में उनके वितरण का छोटा विवरण लिखो। (४) रन्ध्र क्या है? उनकी संरचना और कार्य का वर्णन करो। जब वातावरण शुष्क रहता है तो ये किस प्रकार व्यवहार करते हैं? (५) वाहिनी बंडल के ऊतकों का वर्णन करो। पौधों में पाये जाने वाले नाना प्रकार के बंडल कौन-कौन हैं? (६) सूक्ष्म टिप्पणियाँ लिखो: वाहिनी, वाहिनिकी, कैलस, मूलछदजन, एधा, मध्यक रश्मि, चालनी नलिका, मध्य परिचक्र, अन्तस्त्वचिका।

अध्याय ४-६—(१) द्विबीजपत्री या एकबीजपत्री स्तम्भ के शारीरीय संरचना का वर्णन करो और दोनों के मध्य क्या अन्तर है लिखो। (२) द्विबीजपत्री मूल और एकबीजपत्री मूल के शारीरीय संरचना की तुलना करो। (३) पृष्ठ-प्रतिपृष्ठी पर्ण के शारीरीय संरचना का वर्णन लिखो और उसके ऊतकों के कार्यों का विवरण लिखो।

अध्याय ७—(१) परवर्ती वृद्धि के प्रारम्भ के समय एक द्विबीजपत्री स्तम्भ की आंतरिक संरचना का विवरण लिखो। (२) द्विबीजपत्री स्तम्भ स्थूलता में किस प्रकार वृद्धि करता है। क्या मोटाई में वृद्धि की विधि द्विबीजपत्री स्तम्भ और एकबीजपत्री स्तम्भ में समान है? (३) वार्षिक वलय क्या है? ये किस प्रकार बनते हैं? परवर्ती दारु और परवर्ती फ्लोएम, अन्त दारु और रस दारु में भेद बताओ। (४) द्विबीजपत्री में एधा के उद्गम और क्रिया का वर्णन करो। (५) काग क्या है? यह किस प्रकार बनता है? काग और छाल के कार्य का वर्णन करो। वातरन्ध्र क्या है?

भाग ३—कायिकी

अध्याय १-४—(१) पौधे की स्वस्थ्य वृद्धि के लिये कौन-कौन से आवश्यक रासायनिक तत्व हैं? उनका पता लगाने के लिये जो प्रयोग सामान्यतः किया जाता

हैं उसका विस्तार सहित विवरण लिखो। (२) पौधा अपना कार्बन और नाइट्रोजन किस प्रकार ग्रहण करता है। ये तत्व खाद्य के निर्माण में क्या भाग लेते हैं? (३) रसाकर्षण की परिभाषा लिखो। मूलरोम के विशेष अभ्युद्देश से इस घटना को समझाओ। (४) कोशिका द्रव्य कोच और आशूनता की व्याख्या करो।

अध्याय ५—(१) मूलदाब क्या हैं? आप इसको किस प्रकार प्रदर्शित करेंगे और नापेंगे? (२) वाष्पोत्सर्जन क्या हैं? एक प्रयोग की युक्ति करो जिसमें यह प्रदर्शित किया जाय कि पत्तियां अपनी दोनों सतहों से असमान वाष्पोत्सर्जन करती हैं? (३) एक साधारण प्रयोग की युक्ति करो जिसमें यह प्रदर्शित किया जा सके कि वाष्पोत्सर्जन के फलस्वरूप चूषण (शोषण) उत्पन्न होता हैं। (४) स्पष्ट रूप से समझाओ कि पौधों में जल किस प्रकार प्रवेश करता हैं, संवाहन करता है और बाहर निकलता है। (५) पादप काय में रसारोहण से सम्बन्धित बलों की व्याख्या करो।

अध्याय ६—(१) आप प्रकाश संश्लेषण से क्या समझते हैं? सारांश में इस प्रक्रम की व्याख्या करो। (२) हरे पादप और वायुमंडल में जिन कार्यिकीय प्रक्रमों द्वारा गैस का विनिमय होता है उसकी सारांश में व्याख्या करो। (३) प्रकाश संश्लेषण में क्या अन्तः उत्पाद होते हैं? आप उनको प्रयोगात्मक रूप में कैसे सिद्ध करेंगे? (४) आप प्रयोगात्मकतः कैसे सिद्ध करेंगे कि हरी पत्तियों में मंड केवल सूर्य के प्रकाश में बनता हैं? (५) एक प्रयोग यह प्रदर्शित करने के लिये प्रयुक्त करो कि कार्बन डाइऑक्साइड के अभाव में प्रकाश संश्लेषण घटित नहीं होता। (६) एक प्रयोग यह प्रदर्शित करने के लिये प्रयुक्त करो कि कार्बोहाइड्रेट का निर्माण पर्णहरिम के अभाव में नही होता।

अध्याय ७-९—(१) स्वजीवी व परजीवी पोषाहार की विधियों का उदाहरण सहित विवरण लिखो। (२) कीटाहारी पादपों का सचित्र वर्णन लिखो। (३) खाद्य का स्थानान्तरण और संग्रह का एक विवरण लिखो। (४) आप भोजन के पाचन और स्वांगीकरण के बारे में क्या जानते हैं लिखिये? (५) श्वसन का क्या अर्थ है? आप प्रयोगात्मक रूप में कैसे सिद्ध करेंगे कि पौधे श्वसन करते हैं? (६) आक्सीजन के अभाव में पौधे किस प्रकार व्यवहार करते हैं? प्रयोग द्वारा प्रदर्शित करो। (७) उन प्रक्रमों का वर्णन कीजिये जिनके द्वारा पौधे वायुमंडल की आर्द्रता और रचना को प्रभावित करते हैं? (८) श्वसन और प्रकाश संश्लेषण में भेद बताओ।

अध्याय १२-१४—(१) वृद्धि क्या है? वृद्धि की समय अवधि से आप क्या समझते हैं? (२) आप मूल और स्तम्भ की लम्बाई में वृद्धि कैसे नापेंगे?

(३) उत्तेज्यता का क्या अर्थ है? इसकी पौधों में क्या अभिव्यक्ति होती है? (४) पौधों में अभिवक्र गति पर एक निबन्ध लिखो। (५) निम्नलिखित का उपयोग लिखो और इनमें से प्रत्येक के द्वारा एक प्रयोग प्रयुक्त करो: चाप-सूचक, क्लाइनोस्टैट, सूर्याभिवर्त कक्ष। (६) पुष्पी पादपों में वर्धी प्रजनन का एक संक्षिप्त विवरण लिखो।

भाग ४—पारिस्थितिकी

अध्याय १–२—(१) जलोद्भिदों के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन करो और कम से कम पाँच उदाहरण दो। (२) मरुद्भिदों के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन करो और कम से कम पाँच उदाहरण दो। (३) लवणोद्भिद् क्या है? आप उनके विशिष्ट लक्षणों के बारे में क्या जानते हैं? क्या वे मरुद्भिदों से किसी बात में समान हैं? यदि हैं तो कैसे? (४) कच्छ वनस्पति क्या है? आप इसको कहाँ पाते हैं? इस वनस्पति के द्वारा प्रदर्शित अनुकूली लक्षणों का वर्णन करो। (५) पौधों के पारिस्थितिक वर्गीकरण की रूप रेखा दीजिये और प्रत्येक प्रकार के मुख्य संरचनात्मक लक्षणों की विशेषतायें लिखिये।

भाग ५—क्रिप्टोगम्स

अध्याय १–३—(१) थैलोफाइटा क्या है? कवकों और शैवालों के मध्य भेद बताइये। (२) स्पाइरोगाइरा या म्यूकर के जीवन वृत्त का संक्षेप में वर्णन करो। (३) स्पाइरोगाइरा और म्यूकर के जीवन वृत्त की तुलना करो। (४) जीवाणुओं के सामान्य लक्षण क्या हैं? उनके लाभदायक प्रभावों का वर्णन करो। (५) आपको ज्ञात किसी पराश्रयी कवक की संरचना और प्रजनन की विधि का वर्णन करो। (६) कुछ यीस्ट कोशिकायें शर्करा विलयन में डालकर एक ऊष्ण स्थान में रख दी गई हैं। उन परिवर्तनों का वर्णन करो जो यीस्ट कोशिकाओं और शर्करा विलयन में घटित होंगे? (७) सूक्ष्म टिप्पणियां लिखो: पुम् अणु, युग्मनज, अखंड कोशिका, समयुग्मन।

अध्याय ४–६—(१) मॉस संपुटिका की संरचना का वर्णन करो। मॉस के जीवन वृत्त में संपुटिका किस अवस्था को निरूपित करता है? (२) मॉस और पर्णांग के युग्मक-भू पीढ़ी की तुलना करो। जब मॉस का बीजाणु अंकुरित होता है तो क्या बनता है? (४) आप पीढ़ी एकान्तरण से क्या समझते हैं? अपने उत्तर को मॉस या पर्णांग के पौधे का संदर्भ देते हुये निर्देशन करो।

(५) बीजाणुधानी क्या है ? मॉस और पर्णांग के बीजाणु धारण वर्णन करो। (६) मॉस या पर्णांग के जीवन वृत का वर्ण अवस्थाओं की सीमाओं का वर्णन करो।

भाग ६—जिम्नोस्पर्म्स

अध्याय १—(१) साइकस के जीवन वृत का सारांश में व साइकस के बीजाण्ड की संरचना का, जिस प्रकार वह अनुदै देता है, वर्णन करो। (३) साइकस की परागण विधि और करो।

भाग ७—ऐंजियोस्पर्म्स

अध्याय १–३—(१) स्पीशीज, जीनस (वंश), कुल, नाम पर लिखो और उनको उपयुक्त उदाहरणों से निर्देशित करो। (२ वर्गीकरण की पद्धति की रूपरेखा दो और मुख्य वर्गों का सूक्ष (३) पैपिलिओनेसी, क्रूसीफेरी, और माल्वेसी के किसी पुष्प क सहित वर्णन करो। (४) कम्पोजिटी, क्यूकरविटेसी, और र लक्षणों का वर्णन करो। प्रत्येक कुल के दो आर्थिक महत्व के लिखो। (५) लैबिएटी और कम्पोजिटी के पुष्पक्रम और पुमंग प्रत्येक कुल के तीन पौधों का नाम लिखो। (६) किसी कुल का लिखो जो आर्थिक दृष्टि से सबसे महत्व का हो।

भाग ८—विकास और आनुवंशिकी

अध्याय १–२—(१) जैविक विकास के प्रत्यय के बारे में डा का विवरण लिखो। (२) आप जैविक विकास से क्या समझते की पुष्टि के लिये आप कौन-कौन से साक्ष्यों का प्रमाण देंगे ? (३ की व्याख्या करने के लिये समय-समय पर जो मुख्य सिद्धान्त र संक्षिप्त वर्णन लिखो। (४) मेण्डल के एकसंकर और का वर्णन लिखो। (५) टिप्पणियाँ लिखो: जीवन संघर्ष, उ वंशागति, प्राकृतिक वरण, प्रभाविता, युग्म विकल्प।

Cortex अन्तस्त्वचिका
Corymb समशिख
Creeping विसर्पी
Creeper विसर्पी
Cross-pollination पर-परागण
Cruciform स्वस्तिकाकार
Crystal केलास, मणिभ
Cuticle बाह्यचर्म
Cylindrical बेलनाकार
Cypsela सूर्यमुखी फल
Cystolith कोशिकाश्म
Cytoplasm कोशिका द्रव्य

Daughter cell अपत्य कोशिका
,, chromosome अपत्य गुणसूत्र
Dehiscence स्फुटन
Deliquescent अपक्षयी
Development परिवर्धन
Diadelphous द्विसंलाग
Dichotomous युग्मभुजी
Dichotomy युग्मशाखिता
Diffuse प्रसृत
Diffusion विसरण
Dioecious द्विदायक
Diploid number द्विगुण संख्या
Disc बिम्ब
,, floret बिम्ब पुष्पक
Disk flower बिम्ब पुष्प
Dispersal विकिरण
Division विभाजन .
Dormant सुषुप्त
Dorsal पृष्ठ
Dorsifixed पृष्ठलग्न
Dorsiventral पृष्ठ-प्रतिपृष्ठी
Drupe अष्टि फल
Duramen अन्तः काष्ठ

Egg cell अण्ड कोशिका
Embryo भ्रूण
,, sac भ्रूणकोष
Endocarp आन्तरभित्ति
Endodermis अन्तस्त्वचा
Endogenous अन्तर्जात
Endosperm भ्रूणपोष
Energy ऊर्जा
Epicalyx अनुबाह्यदल
Epicotyl बीजोपर
Epidermis बाह्यत्वचा
Epigeal उपरिभूमिक
Epipetalous दललग्न
Essential oil वाष्पी तैल
Evolution विकास
Exarch बहिरारम्भ
Extrorse बहिर्मुख
Exudation स्राव
Eye spot नेत्रबिंदु

Factor कारक
False dichotomy कूट युग्मशाखिता
Female flower स्त्री पुष्प
Fermentation किण्वन
Fertilization निषेचन, गर्भाधान
Fertilizers उर्वरक
Fibro-vascular bundle वाहिनी बंडल

Filament (of anther) पुंतन्तु
Filial generation आनुपित्र्य पीढ़ी
Fixation विनिवेशन
Fleshy मांसल
Floral diagram पुष्प चित्र
,, formula पुष्प सूत्र
Flower पुष्प
Flowering plant पुष्पी पादप
Foot पाद
Free cell formation मुक्त कोशिका निर्माण
Free central placentation अलग्न जरायुन्यास
Fruit फल
Fungus कवक
Funicle बीजाण्ड वृन्तिका
Fused सायुज्यित
Fusiform तर्कु रूप
Fusion सायुज्य

Gamete युग्मक
Gametophyte युग्मक-सू
Generative cell जनन कोशिका
Genetics आनुवंशिकी
Genetic spiral विकास कुन्तल
Geotropism भू-अभिवर्तन
Germination अंकुरण
Germ tube जनित्र नलिका
Gland ग्रंथि
Glandular hair ग्रंथिल रोम
Glaucous नील हरित
Glume तुष निपत्र
Graft कलम, कलम लगाना
Ground tissue आधार ऊतक
Growth वृद्धि
,, ring वृद्धि वलय
Guard cell द्वार कोशिका
Guttation निस्यन्दन
Gynoecium जायांग
Gynobasic जायांग आधारिक
Gynophore जायांग वृंत

Hair रोम
Haploid number अगुणित संख्या
Haustorium पराश्रयी शोषक मूल
Heart wood अन्तःकाष्ठ
Helicoid कुंडलाकार
Heliotropism सूर्याभिवर्तन
Herb शाक
Herbaceous शाकीय
Hermaphrodite द्विलिंगी
Heterogamy विविध पुष्पता
Hilum वृन्तक
Histology औतिकी
Holdfast स्थानित्र
Homogamy सविध पुष्पता
Homologous समजात
Hook हुक
Host पोषक
Hybrid संकर
Hydrophyte जलोद्भिद
Hydrotropism जलाभिवर्तन
Hypha कवक तंतु
Hypocotyl बीजोधर
Hypodermis अधस्त्वचा

Monoecious एक क्षयक
Morphology आकार विज्ञान
Mosaic चित्रवर्ण
Movement गति
  Autonomous- स्वप्रेरित गति
  Induced- परप्रेरित गति
  Nastic- अदिश प्रेरण गति
  Spontaneous- स्वतः प्रेरित गति
  Stomatal- रंध्र गति
  Tropic- अभिवक्र गति
  of curvature वक्रता गति
  of growth वृद्धि गति
Mucilage क्लेद
Multicellular बहुकोशिक
Multiple fruit अनेकि फल
Mutation गुरु परिवर्तन, उत्परिवर्तन
Mycelium कवक जाल

Naked flower नग्न पुष्प
Napiform कुम्भीरूप
Natural selection प्राकृतिक वरण
Neck (of archegonium) ग्रीवा (अंडवानी की)
Neck canal cell ग्रीवानाल कोशिका
Nectary मकरन्द कोष
Nitrification नाइट्रीकरण
Nitrogen fixation नाइट्रोजन विनिवेशन
Node गांठ
Nodule ग्रंथा
Nucellus प्रदेश
Nuclear division नाभिक-विभाजन
,, membrane नाभिक झिल्ली
,, reticulum नाभिक-जालिका
,, sap नाभिक-रस
Nucleolus अणुनाभिक
Nucleoplasm नाभिक द्रव्य
Nucleus नाभिक
Nutation शिखावर्तन
Nutrition पोषाहार
Nyctinastic नक्त अदिश प्रेरित

Oblong दीर्घवत्
Ochrea परिवेष्टक
Offset भूस्तारिका
Oospore शुक्राण्ड, शुक्रितांड
Open bundle वर्धमान वंडल
Operculum पिधानक
Origin उद्गम
Orthostichy उदग्र पंक्ति
Osmosis रसाकर्षण
Osmotic pressure रसाकर्षण दाब
Outgrowth उद्वर्ध
Ovule बीजाण्ड

Panicle पुष्प गुच्छ
Papilionaceous आगस्तिक
Papilla प्राग्रक
Pappus वाह्यदल रोम
Paraphysis सहसूत्र, संसूत्र
Parasite पराश्रयी
Parenchyma मृदूतक
Parietal भित्तिलग्न

Parthenoc
Pedicel
Peduncle
Pepo
Perfect flo
Pericarp
Pericycle
Petaloid
Petiole
Phenotype
Phloem
Photosyn
Phyllode
Physiology
Pigment
Pinna
Pinnate
Pinnatifid
Pinnatipa
Pinnule
Pistil
Pistillate
Pistillode
Pit
Pith
Placenta
Placentatic
Plasma m
Plastid
Plumule

Parthenocarpy अनिषेक फलता
Pedicel पुष्प वृंत
Peduncle पुष्प दंड
Pepo पीपो
Perfect flower पूर्ण पुष्प
Pericarp फलावरण
Pericycle मध्य परिचक्र
Permeability पारगम्यता
Petaloid दलाभ
Petiole वृन्त
Phenotype दृश्य रूप
Phloem फ्लोएम
Photosynthesis प्रकाश संश्लेषण
Phyllode पर्णाभित वृंत
Phyllotaxy पर्ण रचना
Physiology कायिकी
Pigment रंग द्रव्य
Pinna पत्रक
Pinnate leaf पत्रवत् पर्ण
Pinnatifid पत्रवद्दूर
Pinnatipartite पत्रवद्विदर
Pinnatisect पत्रवच्छिदर
Pinnule पत्रकी
Pistil स्त्रीकेसर
Pistillate स्त्रीकेसरी
Pistillode वन्ध्य स्त्रीकेसर
Pit गर्त
Pith मज्जा
Placenta जरायु
Placentation जरायुन्यास
Plasma membrane द्रव्य झिल्ली
Plastid आदिलव
Plumule प्रांकुर

Pollen पराग
Pollen grain पराग कण
Pollen tube पराग नलिका
Pollinated परागित
Pollination परागण
Polyandrous बहुपुंकेसर
Porous छिद्रिल
Posterior पश्च
Positively geotropic भूम्याकृष्ट
Positively heliotropic प्रकाशाकृष्ट
Positively hydrotropic जलाकृष्ट
Potometer उत्स्वेदन मापक
Procumbent आनत
Prostrate भूशायी
Prothallus सूकायक
Protonema प्रतन्तु
Protoplasm जीवद्रव्य
Protoxylem आदि दारु

Raceme एकवर्ध्यक्ष
Rachis प्राक्ष
Radial bundle त्रिज्यक बहल
Radicle मूलांकुर
Raphe संधि रेखा
Raphide सूचिस्फट
Rare element विरल तत्व
Ray floret रश्मि-पुष्पक
Receptacle पुष्पधर
Regma एरड फल
Regular समित
Replum कूट पटी

Reproduction प्रजनन
Reproductive organ जननेन्द्रिय
Reserve material आरक्षित पदार्थ
,, product संचित द्रव्य
Respiration श्वसन
Respiratory cavity श्वसन विवर
Reticulum जालिका
Rhizoid मूलांग
Rhizome प्रकंद
Root मूल
,, cap मूलछद
,, climber मूल रोहिणी
,, hair मूल रोम
Rosaceous गुलाववत्
Rosette गुलाववत्
Rotation प्रतिभ्रमण
Rotation of crops सस्य चक्र, सस्यावर्तन
Runner भूप्रसारी

Samara सपक्ष
Saprophyte मृतोपजीवी
Sap wood रस दारु
Scalariform सोपानवत्
,, conjugation सोपानवत् युग्मन
Scale शल्क
Sclerenchyma दृढ़ोतक
Sclerotic tissue दृढ़ ऊतक
Scutellum वरुथिका
Secondary growth परवर्ती वृद्धि
,, phloem परवर्ती फ्लोएम
,, root परवर्ती मल
Secondary xylem परवर्ती दारु
Seed बीज
Seed coat बीजावरण
Seismonasty स्पर्श अदिश प्रेरण
Self-pollination स्वयं परागण
Seta संपुटिका वृन्त
Sexual लिंगी
Shoot प्ररोह
Shrub क्षुप
Sieve plate चालनी पट्टिका
,, tube चालनी-नलिका
Silica सिलिका
Silicula कूट पटीका
Sleeping movement निद्रा गति
Sorosis सरसाक्ष
Sorus धानी गुच्छ
Spadix स्थूल मंजरी
Spathe पृथुपर्ण
Spathulate पृथुपर्णवत्
Sperm पुंजनिका
Spike शूकी
,, let अनुशूकी
Spindle तर्कु
Spiral सर्पिल
Sporangium बीजाणुधानी
Spore बीजाणु
Spore mother cell बीजाणु मातृकोशिका
,, sac बीजाणु पुट
Sporophyll बीजाणु पर्ण
Sporophyte बीजाणु जनक
Spring wood वसन्त काष्ठ

Thallus सूकाय
Theory of natural selection प्राकृतिक वरण वाद
Thickening स्थूलन
Thorn कंटक
,, climber कंटक रोहिणी
Tomentose सघन रोमिल
Trace elements विरल तत्व
Tracheid दारु वाहिनिका
Transpiration वाष्पोत्सर्जन
Triple fusion त्रिधा समेकन
Tube cell नली कोशिका
Tuber कन्द
Tuberous root कंदिल मूल
Turgid आशून
Turgor आशूनता

Umbel छत्रक
Underground भूमिगत
Unifoliate एक पर्णी
Unisexual एकलिंगी

Vacuole रसधानी
Variegated चितकबरा
Vascular tissue संवहन ऊतक
Vegetation वनस्पति
Vegetative वर्धी
,, body वर्धी काय
,, cell वर्धी कोशिका
,, propagation वर्धी प्रचारण
Veinlet सूक्ष्म शिरा
Velamen जलशोषक त्वचा
Venter अंडधानी

Ventral अक्षीय
,, canal cell प्रतिपृष्ठ नाल कोशिका
Vernation पत्र पारस्पर्य
Vertical उदग्र
Verticillaster भ्रमि युग्म
Vessel वाहिनी
Vexillum ध्वजक
Virus विषाणु

Wall भित्ति
Waste product वर्ज्य पदार्थ
Water stomata जल रंध्र

Whorled आवर्त रूप
Wind pollinated वायु पराग
Wood काष्ठ

Xerophyte मरुद्भिद
Xylem दारु
,, parenchyma दारु मृदूतक
,, ray दारु किरण

Zoospore चल जन्यु
Zygomorphic एक युग्म
Zygospore युग्मनज
Zygote निषेचनज